प्रकाशक
भारत प्रकाशन मन्दिर,
अलीगढ़ ।

मूल्य बारह रुपये

मुद्रक
आदर्श प्रेस अलीगढ़ ।

श्रीनाथजी

परमानन्ददासजी के परमाराध्य

# समर्पण

अष्टछापी भक्तों के दिव्य लीला गान को
आठों याम श्रवण करने वाले
परमानन्ददासजी के परमाराध्य
लीलासागर श्रीनाथजी
के पादपद्मों में
यह तुलसीदल

# आत्मनिवेदन

'कविवर परमानन्ददास और वल्लभ-सम्प्रदाय' मेरे गवेषणात्मक प्रबन्ध के संवर्धित संशोधित और परिवर्तित स्वरूप का परिणाम है। सन् १९५५ में लिखे गए इस शोध-प्रबन्ध के दो खण्ड थे। द्वितीय खण्ड—परमानन्द सागर [पद-संग्रह] आवश्यकता और महत्त्व की दृष्टि से सन् १९५८ में ही प्रकाशित कर दिया गया था। सौभाग्य की बात हुई कि हिन्दी-जगत् ने उसका स्वागत किया और 'एक लम्बे अभाव की पूर्ति' बतलाई। यद्यपि वह परमानन्ददासजी के काव्य के सुव्यवस्थित प्रकाशन की दृष्टि से प्रथम प्रयास था फिर भी साहित्य-जगत् ने उसका हार्दिक स्वागत किया और विशेष संतोष की बात तो यह हुई कि साम्प्रदायिक आचार्यों एवं मर्मज्ञ विद्वानों तथा संगीत रसिकों का भी उसे आशीर्वाद प्राप्त हुआ। इसमें अधिकांश श्रेय भगवत्कृपा के साथ मेरे अग्रजकल्प गोलोकवासी परम भगवदीय श्री द्वारकादास जी परीख को है। वे मेरी पीठ पर थे। उनकी प्रेरणा प्रोत्साहन एवं श्रम का मुझे बल था। अतः मेरे पद-संग्रह के लिए अज्ञात पाण्डुलिपियाँ एकत्र कर पाठ-भेद की दृष्टि से संशोधन में सहायता देकर साम्प्रदायिक दृष्टि से वर्षोत्सव एवं नित्यसेवा के क्रम से व्यवस्थित करके तथा विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखकर उसकी प्रामाणिकता में उन्होंने जो वृद्धि की है लेखक उसके लिए उनका आजीवन ऋणी है और रहेगा। खेद है आज इस प्रथम खण्ड के प्रकाशन के अवसर पर वे अचानक गोलोकवासी हो गए। फिर भी उन्होंने इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़ा था और अपने बहुमूल्य सुझाव दिये थे। लेखक इसके लिए भी उनका आभारी है। वस्तुतः उनकी सदैव यह इच्छा रहती थी कि साहित्य की अज्ञात अमर निधियाँ यों ही बस्तों में न बँधी रह जायँ वे प्रकाश में आवें और समस्त व्यक्ति उपयोगी कार्य करें। आज तो उनकी अनुपस्थिति के कारण 'मन मर गया और खेल बिगड़ गया'। उनमें अद्भुत क्षमता थी कि वे काम कराते थे और प्रामाणिकता के साथ। वे संप्रदाय के मर्मज्ञ थे। मातृभाषा गुजराती होते हुए भी ब्रजभाषा पर उनका अच्छा अधिकार था। हिन्दी की उन्होंने ठोस सेवा की थी। उनके गोलोक वास से नौ-दस दिन पूर्व मैं उनके दर्शनार्थ गया था। बोले—"अब एक आपकू काम करनो है। अष्टछापेतर २ १ कवीन की सूची दई है इनको इतिहास तथा परिचय लिख डारियौ।" इस आदेश को मैंने सदैव की भाँति सहज रूप से ही लिया। क्या मालूम था मुझे कि यह उनका अंतिम आदेश था। भगवदिच्छा बलवती है शायद सुयोग आवे कि मैं उनकी अंतिम इच्छा पूरी कर सकूँ। सम्भव है तभी मैं उनसे उऋण हो सकूँ। इतना अवश्य है कि संप्रदाय में आज भी ब्रजभाषा का विपुल भंडार है जिसके लिए मैं हिन्दी के शोध-छात्रों का आवाहन करता हूँ।

हाँ तो प्रस्तुत ग्रन्थ अन्तर्गत परीक्षा की भी इच्छा से यथाशक्ति साम्प्रदायिक मर्यादाओं से बहिर्मुख होने से बचा रहा है। कवि का अनुशीलन करते समय साम्प्रदायिक दृष्टि को आवश्यक रूप से सचेत रखा गया है जिसके बिना उसके साथ न्याय नहीं हो सकता था। अष्टछापी कवियों—विशेषकर सूर-परमानन्द जैसे सागरों पर सम्प्रदाय निरपेक्ष दृष्टि रखकर काम ही नहीं चल सकता। उसके बिना उनकी भावना पद्धति को हृदयंगम ही नहीं किया जा

सकता। दोनों ही महानुभाव आचार्य वल्लभ के प्रमुख शिष्यों में से थे जिन्हें आचार्य ने अपने श्रीमुख से श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध (निरोध-लीला) की अनुक्रमणिका श्रवण कराकर लीला-गान का आदेश दिया था। फलस्वरूप दोनों ही सागरों—सूर परमानन्द—का दृष्टिकोण सम्प्रदाय के आचार्यों-वल्लभ-विट्ठल—के ही अनुसार हो गया था। अतः इनके काव्य के मूल में संप्रदाय की भावना-पद्धति अन्तःसलिला सरस्वती की प्रच्छन्नधारा की भाँति बह रही है। संप्रदायानुकूल अपनी भावना-पद्धति एवं अप्रतिम काव्य-शक्ति के कारण सूर-परमानन्द अष्टछापी भक्तों में ही नहीं सारे ब्रज-भाषा-कृष्ण-भक्ति-कवियों में श्रेष्ठ हैं। इसीलिए लेखक ने कविवर परमानन्ददास जी के अनुशीलन को प्रस्तुत करते हुए पदे पदे वल्लभीय सिद्धान्तों और साम्प्रदायिक मर्यादाओं की चर्चा की है। प्रत्येक प्रसंग के मूल में सम्प्रदाय के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। परमानन्ददासजी को उद्धृत करते समय 'परमानन्दसागर' के अपने ही संस्करण को दृष्टि में रखा है।

सिद्धान्त-चर्चा भक्ति-पद्धति सेवा भावना के प्रसंगों में मुझसे त्रुटियाँ हुई होंगी। यद्यपि कुल क्रमागत परम्पराओं से मुझे पुष्टिमार्गीय संस्कारों का वरदान प्राप्त है और शैशव में अपने स्वर्गीय पूज्य पिता श्री पंडित माधवनाथजी शुक्ल से 'कृपापुर चतुःश्लोकी' भी प्रसाद रूप में मिली थी परन्तु 'तब मति छोटी अचेत' के अनुसार 'मारग की रीति' के तत्त्वस्पर्शी ज्ञान को अथवा रहस्य को हृदयंगम नहीं कर सका था। वह अभाव शायद आज भी बना है परन्तु उनका अमोघ आशीर्वाद मेरे साथ सदैव रहा है। इस पुण्य अवसर पर उनका सादर स्मरण करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ की शुभप्रेरणा देने के लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्कृत-हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉक्टर हरवंशलाल शर्मा का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने 'आत्मानं सततं विद्धि' के अनुसार मुझे मेरी अभिरुचि के अनुकूल दिशा-दान दिया। उनके प्रति मैं अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इसके अनन्तर पूज्यपाद गोस्वामी श्री दीक्षितजी महाराज का मैं चिर ऋणी हूँ जिनके पावन चरणों में बैठकर मैंने समय समय पर अपनी शंकाओं का निराकरण करके समाधान प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त बन्धुवर छोटेलाल जी कांकरोली डॉ. पुणताम्बेकर भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना एवं सौभाग्यवती लक्ष्मी माणिक घाटकोपर (बम्बई) बंधुवर श्री सुरेन्द्रजीतसिंह जी (शिक्षा विभाग मध्यप्रदेश) एवं मेरे अग्रज बन्धुवर पंडित मथुरानाथजी शुक्ल आदि महानुभावों का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पुस्तकादि के प्राप्त करने और पाण्डुलिपियाँ देखने में सहायता दी।

अन्त में बन्धुवर पं. बद्रीप्रसाद जी शर्मा अध्यक्ष भारत प्रकाशन मंदिर सुभाष रोड अलीगढ़ का भी मैं आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में भरपूर रुचि ली है।

पुष्पनगर अलीगढ़<br>देव-प्रबोधिनी एकादशी<br>बुधवार<br>१ २

विनीत<br>गोवर्धननाथ शुक्ल

अष्टछाप के द्वितीय सागर

भक्त-प्रवर

प्राकट्य
(मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी स १५५ )

नित्यलीला प्रवेश
(भाद्रपद कृष्णा नवमी स १६४१)

# परमानन्द-स्तवन

उपासतामात्मविदः पुराणाः परं पुमांसं निहितं गुहायाम्।
वयं यशोदा शिशु बाल-लीला कथा-सुधा सिन्धुषु लीलयामः॥

सूर सूर जस हृदय प्रकासत।
परमानन्द आनन्द बढ़ावत॥

× × ×

कुम्भनदास महारस कन्द।
प्रेम भरे निज परमानन्द॥

× × ×

सर्वोपरि दास परमानन्ददरे।
गाया गुणनिधि बालमुकुन्दरे॥

द्वारकेश

× × ×

पौगण्ड बाल कैशोर गोप लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात हुती पहिलो जसु गाई॥
नैननि नीर प्रवाह रहत रोमाञ्च रैन दिन।
गद्गद गिरा उदार, स्याम-सोभा भीज्यौ तन॥
सारंग छाप ताकी भई, स्रवन सुनत आवेस देत।
ब्रज-वधू रीति कलजुग विषे परमानन्द भयो प्रेमकेत॥

नाभादास

× × × ×

परमानन्द और सूर मिलगाई, सब ब्रज रीति।
भूलिजात विधि भजन की सुन गोपिन की प्रीति॥

ध्रुवदास

× × × ×

मेरे येई वेद व्यास।
श्री हरिवंश व्यास गदाधर भट परमानन्ददास।

नागरीदास

# विषयानुक्रमणिका


विषय पृष्ठ

**प्रथम अध्याय—विषय प्रवेश** १ १६

अष्टछाप ग्रन्थ का इतिहास (२) अष्टछाप शब्द का अर्थ (३) अष्टछाप के कवियों का महत्व (४) साम्प्रदायिक भक्तों की दृष्टि में अष्टछापी कवि (७) अष्टछाप के कवियों का साहित्यिक महत्व (११) अष्टछापी कवियों का कलात्मक महत्व (१३) अष्टछाप के दूसरे सागर (१४)

**द्वितीय अध्याय—जीवनवृत्त** १७-६८

उपलब्ध सामग्री का वर्गीकरण (१८) अन्तस्साक्ष्य बाह्यसाक्ष्य (१८) परमानन्दसागर के नाम का रहस्य (१९) कवि के अपने काव्य के आधार पर उसकी जीवन झाँकी (२ ) वार्ता साहित्य की महत्ता (२७) चौरासी वैष्णवन की वार्ता में परमानन्ददास का जीवन वृत्त (२९) भावप्रकाश (३३) अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थों में परमानन्ददासजी का वृत्त (३५) वल्लभ दिग्विजय (३५) संस्कृत-वार्ता-मणिमाला (३५) अष्टसखामृत (३६) बैठक चरित्र (३७) प्राकट्य सिद्धान्त (३७) सम्प्रदाय से सम्बन्धित वैष्णवाह्निक पद (३७) अष्टसखान की भावना (४ ) सम्प्रदायेतर अन्य ग्रन्थ (४२) भक्तमाल (४२) भक्तनामावली (४२) नागर समुच्चय (४३) व्यास वाणी (४३) भक्त नामावली (४४) निष्कर्ष (४५) आधुनिक सामग्री (४५) खोज रिपोर्ट (४६) हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ (४७) गार्साद तासी (४७) शिवसिंह सरोज (४८) मिश्रबन्धु विनोद (४८) हिन्दी साहित्य का इतिहास (४९) हिन्दी भाषा साहित्य (५ ) हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास (५ ) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (५१) हिन्दी साहित्य की भूमिका (५१) आलोचनात्मक ग्रन्थ (५२) अष्टछाप प्राचीन वार्ता रहस्य (५२) अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण (५२) अष्टछाप परिचय (५२) अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (५२) अष्टछाप पदावली (५३) ब्रजमाधुरीसार (५३) पुष्टिमार्ग सेवा निबन्धादि (५४)

**सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री के आधार पर कवि के जीवन वृत्त की रूप रेखा—**

जाति (५५) नाम (५५) स्थान (५५) माता पिता तथा कुटुम्ब (५६) जन्म काल (५६) शैशव (५७) शिक्षा दीक्षा (५७) गृहत्याग (५८) गुरु सम्बन्धी उल्लेख (५८) विवाह (५८) सम्प्रदाय में दीक्षा एवं प्रवेश (६ ) ब्रज के लिये प्रस्थान (६१) गोकुलागमन (६१) गिरिराज पर पहुँचना (६२) अष्टछाप में स्थापना (६२) गोलोकवास (६२)

(१७२) सेवा (१७४) संप्रदाय के सेव्य स्वरूप (१७४) परमानन्ददास जी में पुष्टि भक्ति (१८१)।

षष्ठ अध्याय—भगवल्लीला और परमानन्ददासजी १८३–२००

तामस प्रकरण के नामकरण का कारण (१८६) लीला रहस्य (१८७) परमानन्ददासजी के लीला विषयक पद (१८८) श्रीमद्भागवतोक्त लीला और परमानन्ददासजी (१८९) श्रीमद्भागवत से निरपेक्षता (१९७)

सप्तम अध्याय—परमानन्दसागर में श्रीकृष्ण, राधा, गोपियाँ, रास मुरली और यमुना २०१–२२२

श्रीकृष्ण (२ १) श्री राधा (२ ४) परमानन्ददास जी की राधा का स्वरूप (२ ६, गोपी (२१ ) वेणु अथवा मुरली (२१२) परमानन्द दास जी का मुरली प्रसंग (२१५) यमुना (२१६) रास (२१८) परमानन्द दासजी के रास लीला विषयक पद

अष्टम अध्याय—परमानन्ददासजी का काव्य पक्ष २२३–३०६

परमानन्ददास जी की शैली(२२३) परमानन्ददास जी के पदों का वर्गीकरण (२२६) परमानन्ददासजी में भावव्यञ्जना (२२६) परमानन्ददासजी में वात्सल्य भाव (२१ ) परमानन्ददासजी में रस व्यंजना (२३७) वियोग श्रृङ्गार (२४२) हास्य (२५३) करुण (२५४) रौद्र (२५४) वीर (२५४) अद्भुत (२५५) शान्त (२५५) परमानन्ददासजी के काव्य में रस विमर्श (२५६) विशेषता (२६ ) सौंदर्य वर्णन (२६२) वात्सल्य भावात्मक सौंदर्य वर्णन (२६३) प्रकृति चित्रण (२६२) परमानन्ददासजी में कलापक्ष (२७४) अलंकार विधान (२७५) वृत्त्यनुप्रास छेकानुप्रास श्रुत्यनुप्रास यमक श्लेष उपमा अनन्वय उदाहरण प्रतीप रूपक रूपकातिशयोक्ति स्मरण उत्प्रेक्षा दृष्टान्त प्रतिवस्तूपमा व्यतिरेक परिकर, परिकरांकुर विशेषोक्ति, विषम काव्यार्थापत्ति काव्यलिंग अर्थान्तरन्यास पर्यायोक्ति, वक्रोक्ति अतिशयोक्ति लोकोक्ति, स्वभावोक्ति, छन्दोविधान (२८१) छन्द—चतुष्पद विष्णुपद शंकर, सिंह सार, ताटंक लावण्या मिश्र रोला विलाप सार सूक्ष्मा चौपई चौपाई दोहा रूपमाला समान सवैया बावनी सखी इत्यादि विषय। परमानन्ददास जी की भाषा (२८६) ब्रजभाषा (२८६) परमानन्ददासजी की भाषा का स्वरूप (२९२) तत्सम (२९६) समास एवं समासान्त पदावली (३ ०) नाद-सौंदर्य एवं संगीतात्मकता (३ ) पदों में संगीतात्मक शब्दावली (३ १) ठेठ ब्रज के शब्द (३ २) पंजाबी प्रयोग (३ २) खड़ी बोली के प्रयोग (३ ३)।

नवम अध्याय—कीर्तनकार परमानन्ददासजी ३१०—३२२

संगीत और भक्ति साधना (३११) पुष्टि सम्प्रदाय की संगीत साधना (३१३) नृत्य (३१४) सम्प्रदाय के विशिष्ट राग (३१४) कतिपय विधि-निषेध (३१५) परमानन्ददास जी की कीर्तन सेवा (३१६) वाद्यों की चर्चा (३२१)।

दशम अध्याय—परमानन्ददासजी और ब्रज संस्कृति ३२३–३३२

ब्रज संस्कार (३२४) ब्रज की वेष भूषा (३२६) धार्मिक परम्पराएं (३२६) पर्व और उत्सव (३२७) खान-पान भोजनादि (३२७) पर्दा प्रथा (३२८) रासलीला की चर्चा (३२८) मूर्ति पूजा एवं परिक्रमाविधि (३२९) परमानन्द सागर में उल्लिखित ब्रज के स्थान (३२९) परमानन्ददासजी की बहुज्ञता (३३१)

एकादश अध्याय— ३३३–३३७

परमानन्ददास जी एवं अष्टछाप के अन्य कवि।

श्रीहरि

# कविवर परमानन्द और उनका साहित्य

## विषय प्रवेश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में पूर्व मध्य युग जिसे 'भक्तिकाल' कहा जाता है उसे यदि हिन्दी साहित्य का 'स्वर्णयुग' कहें तो अनुचित न होगा। विषय की दृष्टि से इस युग में यद्यपि वैविध्य का अभाव था फिर भी निराकार साकार भक्ति को लेकर जिस उच्च कोटि के साहित्य की सृष्टि हुई वह अद्वितीय थी। माधुर्य और सौन्दर्य से उत्पन्न सगुण प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गहन से गहन भावानुभूतियों के समाधिमय क्षणों में जिस चिरंतन मानवीय रहस्य का उद्घाटन और उसकी वाङ्मय अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य में जैसी इस युग में हुई वैसी न तो उससे पूर्व हो पाई थी और न आगे चलकर फिर संभव हो सकी। शृंगार भावना की अभिव्यक्ति को सगुण भक्ति के पवित्र प्राचीर में सुरक्षित रखकर उसे जो चिरन्तनता इन भक्त कवियों ने दी वैसी अन्य किसी मानवीय भावना को कोई कवि या साहित्यकार आगे चलकर न दे पाया।

सगुण भक्ति धारा को जीवन-दान देकर पुष्ट प्रवहमान बनाने का श्रेय यों तो सभी भक्त कवियों को है किन्तु पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों को विशेष रूप से है। क्योंकि उनकी एकान्त अनुपम मधुर भावना ने जिस सरस साहित्य का सर्जन किया वह विश्व साहित्य में अद्वितीय है। इन कृष्णोपासक पुष्टिमार्गीय कवियों में भी अष्टछाप के कवियों का स्थान तो अत्यन्त ऊँचा है

आनन्दकन्द लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्णचन्द्र की 'कीर्तन सेवा' में इन आठों महानुभावों का भाव-सागर मानो सदा तरंगायित रहता था। अपनी भावना के दिव्योन्मादमय क्षणों में ये लोग जिन सरस संगीत-मय पदों की सृष्टि करते थे मानो भावनिधि के अमूल्य रत्न थे। इन 'अष्टछापकार' महानुभावों से ब्रज-साहित्य इतना श्री-सम्पन्न हुआ कि अन्य भारतीय भाषाओं का साहित्य कदाचित् ही उतना वैभवशाली हुआ हो। वास्तव में विक्रम की सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दी साहित्य की इतनी श्रीवृद्धि हुई कि उसका यथावत् विवरण प्रस्तुत करना कठिन है। अष्टछापकार इन आठ भक्तों के भावनामय साहित्यिक रूप का सामूहिक महत्त्व को समझकर 'अष्टछाप' की स्थापना तो आगे चलकर संवत् १६ २ में की गई परन्तु इनकी काव्य धारा ४ ५ वर्ष पूर्व से ही प्रारम्भ हो गई थी। अष्टछाप के प्रथम दो सागर तो संवत् १५५०-५१ में ही भगवान् का लीला-गुणगान करने लगे थे। इस प्रकार लगभग संवत् १५५५ से संवत् १६४२ तक का ७ वर्षों का युग जिस विलक्षण भाव रसार्णव का सर्जन कर सका उसे एक दैवी चमत्कार ही समझना चाहिए। क्योंकि न तो उससे पूर्व ही और न उसके पश्चात् ऐसी किसी पुष्ट [illegible] काव्य धारा के

४ १ [illegible] पृष्ठ १

दर्शन होते हैं जिसमे भक्ति की तन्मयता भावो की विभोरता आचार भावना की दृढ़ता संगीत की सरसता अभिव्यक्ति की गंभीरता के साथ-साथ भगवान् की कीर्तन सेवा की निरन्तर मनोवृत्ति मिलती हो। इस काल के साहित्य मे जीवन का एक निराला दर्शन मिलता है और भगवच्चरणारविन्द मे उसका पूर्ण विनियोग भी। 'प्राकृत-जन गान' की दुर्गंध से दूर भगवल्लीला की परम माधुरी से पूर्ण इन ब्रजभाषा के पदो मे जनमन को पावन और तन्मय कर देने की कितनी प्रबल सामर्थ्य थी इसका सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि तत्कालीन सप्रदाय के बड़े-बड़े आचार्य पण्डित जोकि संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे इन लीलापरक पदो पर मुग्ध होकर आनन्द विभोर हो जाते थे और देहानुसधान _ खो बैठते थे।

## अष्टछाप शब्द का इतिहास

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्तक एवं पुष्टि सम्प्रदाय के संस्थापक महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य ने स्वसिद्धान्त एवं भक्ति प्रचार के लिये भारत पर्यटन किया था। उस समय वे ब्रज भूमि मे भी पधारे और अनेक सेवको और शिष्यो को दीक्षा दी थी उन्होने जीवो को कल्याण-मार्ग का उपदेश देते हुए भगवत्सेवा-मार्ग का विधान प्रस्तुत किया। आचार्य जी ने ब्रज मे स्थित गोवर्धन-पर्वत से प्रकट हुए श्री गोवर्धननाथ जी के स्वयमु स्वरूप[1] को परम सेव्य बतलाकर वहाँ विधि-विधान से सेवा का प्रकाश किया।[2] और अपने शिष्यो मे प्रमुख सूरदास कुंभनदास परमानन्ददास और कृष्णदास इन चार भक्त कीर्तनकारो को श्रीनाथ जी के समक्ष कीर्तन सेवा सौंपी। सवत् १५८७ मे आचार्य जी के तिरोधान अथवा नित्य-लीला प्रवेश के उपरान्त और उनके द्वितीय पुत्र गुसाईं विट्ठलनाथजी के सवत् १५९९ मे आचार्य गद्दी पर विराजमान होने पर श्रीनाथजी की सेवा मे और भी अधिक सुव्यवस्था हुई। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की भगवत्सेवा मे अत्यधिक रुचि थी। अत वे उसे अधिकाधिक सुव्यवस्थित करने के प्रयत्न मे अहर्निश व्यस्त रहते थे। उनके विषय मे सप्रदाय मे प्रसिद्ध है—

सेवा की यह अद्भुत रीत।
श्री विट्ठलेश सौं राखै प्रीत॥

अत अष्टयाम-सेवा की साम्प्रदायिक अष्ट-समय-विधि—मगला शृगार, ग्वाल राजभोग उत्थापन-भोग सध्या-आरती और शयन की सुव्यवस्था हो जाने पर आठो पहर की सेवा-भावना से अष्टयाम के विभिन्न अवसरो पर आठ कीर्तनकारो की व्यवस्था भी की गई। अपने पिता के चार प्रमुख शिष्यो को लेकर और चार अपने प्रधान शिष्यो को लेकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सवत् १६ २ म अष्टछाप की स्थापना की। ये 'अष्टछाप' के आठ कवि महानुभाव 'अष्ट कीर्तन कारे' के नाम से सप्रदाय मे प्रसिद्ध हुए। स्वय गुसाईं विट्ठलनाथजी

१ सप्रदाय म स्वत मूर्ति 'स्वरूप' कही जाती है
२ श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता पृ० १६
३ सेवा क्रम-पद्धतिरत्नी [परिशिष्ट] पृ० ।

मे इनके लिए 'अष्टछाप' शब्द का व्यवहार नहीं किया था। 'अष्ट' शब्द को लेकर सम्प्रदाय में अष्टसखा' 'अष्ट कीर्तनकार' अथवा अष्टकाव्यकारे' आदि शब्द प्रचलित थे। अष्ट काव्यकारे' शब्द प्रामाणिक रूप से लगभग संवत् १७६६ तक चलता रहा।[१] साथ ही 'अष्टछाप' शब्द भी प्रचलित हो गया था[२]। सर्व प्रथम अष्टछाप' शब्द का प्रयोग वार्ता की संवत् १६६७ की प्रति मे उपलब्ध होता है। उसमे एक स्थान पर लिखा मिलता है 'अष्टछापी चार सेवकन की वार्ता'[३]। इससेपूर्व अष्ट छाप' शब्द का लिखित प्रयोग समवत उपलब्ध नहीं होता। इसी कारण सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान् श्री द्वारकादास जी परीख ने निष्कर्ष निकाला था कि इस शब्द को सर्व प्रथम लिखित रूप प्रभु चरण गोकुलनाथ जी ने दिया। हाँ अष्ट' शब्द अष्टयाम अष्टसखा आदि के लिए प्रयुक्त होता था। अत यह निश्चय है कि सर्व प्रथम प्रामाणिक रूप से 'अष्टछाप' शब्द सम्प्रदाय द्वारा ही प्रचलित किया गया है और गुसाईं विट्ठलनाथ जी के समय से ही चलता आ रहा है।

## अष्टछाप शब्द का अर्थ

वस्तुत 'छाप' शब्द का अर्थ है—मुद्रा मुँदरी मुद्रांकित करना ठप्पा ( सील ) से दबाकर चिह्नित करना आदि। ये कीर्तनकार आठ महानुभाव जिस छाप या मुद्रा से अंकित किये गये और तदुपरान्त जिस प्रकार सम्प्रदाय मे व प्रतिष्ठा मे आप्त या मान्य किये गये यह एक रहस्य है। वस्तुत यह 'छाप' साम्प्रदायिक कीर्तन-सेवा और भावना-पद्धति की छाप थी। 'अष्टछाप' के संस्थापक प्रभु चरण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी स्वय उच्च कोटि के सगीतज्ञ थे और वीणा बजाने मे निपुण थे[४] अपने सेव्यस्वरूप श्री नवनीत प्रिय जी को प्रात वीणा से जगाने मे आप को अतिशय सुख होता था। इनके अतिरिक्त समय-समय पर विविध राग-रागिनियो के द्वारा सेव-पद्धति से कीर्तन का विधान आपने भगवत्प्रीत्यर्थ ही किया था। अत सेवा-भावना के अनुकूल भारतीय सगीत की शुद्ध शास्त्रीय शास्त्रीय पद्धति से भगवान् की लीला का गान पुष्टिमार्गीय मदिरो म कीर्तन के रूप मे निरतर चलता रहे इस हेतु आपने आठो प्रहर की कीर्तन सेवा के लिये 'आठ कीर्तनकारे' महानुभावों को लेकर साम्प्रदायिक पद्धति पर सेवा भावना की छाप लगाकर 'अष्टछाप' की स्थापना की। ये आठो महानुभाव कोरे सगीतज्ञ ही नहीं थे अपितु उच्च कोटि के भगवद्भक्तिसाधक एव काव्य-स्रष्टा भी थे। साथ ही महानुभावो ने अपना-अपना विशाल पद-साहित्य अपने-अपने नामों की छाप से मुद्रित भी किया है।

स्वय गोस्वामी विट्ठलनाथ जी मे भी उच्चकोटि की काव्य प्रतिभा विद्यमान थी। आचार्यत्व प्राप्त करने से पूर्व वे ब्रज भाषा मे 'ललितादि' 'सहज प्रीति' आदि उपनामो से काव्य रचना किया करते थे।[५] और आचार्यत्व के प्राप्त होने के उपरान्त भाषा मे रचना न करके संस्कृत मे काव्य रचना करते थे। तात्पर्य यह है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी

---

[illegible]

१ [illegible]

२ [illegible] संवत् १६६७ की प्रति

[illegible]

विट्ठलेश चरितामृत पृ० ३।

५ वही पृ० ४।

उच्च कोटि के साहित्यमर्मज्ञ एवं संगीतज्ञ थे। अतः अष्टछाप की स्थापना में उनका उद्देश्य स्पष्ट रूप से साहित्य और संगीत के सुन्दर समन्वय के साथ कीर्तन-भक्ति की सुरसरि से सम्पूर्ण भरत खण्ड को आप्लावित करना था। यह सहज अनुमान करने की बात है कि अष्टछापी कवियों के जिस उच्च कोटि के साहित्य और संगीत की पीयूष धारा के माधुर्य-माधुर्य की थाह अतीत से लेकर आजतक भारतीय जन-मन नहीं पा सका है, उसका आद्य संस्थापक कितना अपार्थिव रसिक काव्य मर्मज्ञ एवं संगीत शिरोमणि रहा होगा। रमणीय कवित्त-रस और सरस राग के रत्नार्णव में अवगाहन करने वाले गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ललित कलाओं की परख के लिये कितनी पैनी दृष्टि वाले थे यह तो अष्टछापी काव्य और संगीत से अल्पतम परिचित व्यक्ति भी जान सकता है। साथ ही अष्टछाप के महानुभावों का सम्प्रदाय में कितना महत्त्वपूर्ण और सम्मान्य स्थान बन गया था कि उन्हीं के समय में उनके कीर्तनों और पदों को वर्षोत्सवों में तथा नित्य-सेवा में अनिवार्य स्थान मिला गया था और पूरी-पूरी लोकप्रियता प्राप्त हो गई थी। अष्टछापा मंडल की समादरणीयता और उसके गौरव का इससे भी अनुमान हो सकता है कि सूर जैसे उच्च कोटि के भक्त ने 'करी गुसाईं भरी आठ मध्य छाप'[1] कह कर प्रभुचरण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी।

## अष्टछाप के कवियों का महत्त्व

अष्टछाप के ये कविगण जिन्हें भगवान् के प्रति उनकी सख्यासक्ति के कारण 'अष्टसखा' भी कहा जाता रहा है मुख्य रूप से सगुणोपासक भक्त संगीतज्ञ कीर्तनकार एवं कवि थे। श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा ही इनका प्रियतम कार्य था। इस कीर्तन-संगीत का विषय हरिलीला ही था। भौतिक जीवन की संकुचित नश्वर परिधि से ऊपर उठकर अपार्थिवलीला गान को अपना एकमात्र लक्ष्य मानते हुए प्रभु प्रेम की शाश्वत निश्चित भावना के साथ जिस दिव्य भाव-लोक में ये कवि महानुभाव विचरण किया करते थे वह केवल अनुभवगम्य है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उसके लिये तर्क की अपेक्षा श्रद्धा और बुद्धि की अपेक्षा हृदय की अधिक आवश्यकता है।

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्

अतः इन भक्त कवियों का एकमात्र पुनीत कर्तव्य यही था कि वे नित्य और नैमित्तिक अवसरों पर श्री गिरिराज पर स्थित श्री गोवर्धननाथ जी के मंदिर में अपार्थिवस्वरूप के सम्मुख कीर्तन-सेवा किया करें। आगे चलकर पुष्टिमार्गीय सेवा-मर्यादा-प्रतिष्ठित हो जाने पर देशव्यापी सभी मंदिरों में यह कीर्तन-सेवा-पद्धति अपनाई गई और इस प्रकार सभी स्थानों की रचना उनकी भावानुभूति-संगीत-साहित्य तथा कीर्तन सेवा-पद्धति—सभी दृष्टि से देश भर के साम्प्रदायिक मंदिरों में एक प्रकार की एकरूपता ( Uniformity ) अनायास हो आ गई। इस दृष्टि से गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का यह कार्य कितना महत्त्वपूर्ण था इसका अनुमान सहज किया जा सकता है। वास्तव में हम इसे धर्म साहित्य और कला का एक त्रिवेणी-संगम मानें जिसने आर्यावर्त में पग-पग पर प्रयाग की सृष्टि कर दी थी—तो अनुचित न होगा। इसी तथ्य

---

१ वार्ता साहित्य के मर्मज्ञ श्री द्वारकादास परीख इस पद को प्रामाणिक नहीं मानते। (मिलान

इतिहासकारो और आलोचको ने कुछ अनुमान और कुछ अन्तस्साक्ष्य—बाह्यसाक्ष्य के आधार पर इनकी जीवनियो के सबध मे कुछ मान्यताएँ निर्धारित की है किन्तु उनको अंतिम रूप से सत्य नही कहा जा सकता क्योकि नवीन तथ्यो के प्रकाश मे उनमे परिवर्तन की पर्याप्त गुंजाइश बराबर बनी हुई है। फिर भी किसी भी कवि या लेखक का जीवन चरित्र लिखने के लिए अंतस्साक्ष्य और बाह्यसाक्ष्य के रूप मे उपलब्ध सामग्री के विश्लेषण की परिपाटी सी हो गई है। अत अष्टछाप के इन भक्त कवियो का जीवन चरित्र लिखने के लिये प्राय निम्न बातो पर विचार किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है—

१—अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत कवि का काव्य उसके पद तथा पदो मे प्रसगवश की गई यत्र-तत्र आत्म-चर्चाएँ।

२—बाह्यसाक्ष्य के अन्तर्गत— ( अ ) साम्प्रदायिक ग्रन्थ अन्य चरित्र-साहित्य वार्ता साहित्य आदि। इतिहास समसामयिक लेखको की कृतियाँ समकालीन अन्य ग्रन्थ एव अन्य राजकीय प्रमाण आदि।

उपर्युक्त साक्ष्यो के आधार ग्रहण करने के पूर्व अष्टछापी कवियो के सबध मे दो दृष्टियो पर भी ध्यान रखना होगा —

१—अष्टछाप सबन्धिनी साम्प्रदायिक-भावना।

२—सम्प्रदायेतर साहित्य-रसिको की भावना।

# साम्प्रदायिक वैष्णवों की दृष्टि में अष्टछापी कवि

महाप्रभु वल्लभाचार्य के चौरासी वैष्णव सेवकों की वार्ता तथा गुसाईं विट्ठलनाथ जी के अपने पिता से ठीक तिगुने-दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता में इन आठों भक्त कवियों का वृत्तान्त मिल जाता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के उपस्थिति-काल में इन वार्ता पुस्तकों का अस्तित्व मौखिक रूप में ही था। क्योंकि सम्प्रदाय में महाप्रभु वल्लभाचार्य को पुष्टि मार्गीय आदर्श सेवकों की वार्ताओं का आद्य-प्रणेता कहा गया है।[1] और उन प्रसंगों के प्रथम वक्ता उनके प्रथम सेवक (शिष्य) श्री दामोदरदास हरसानी बतलाये गये हैं। इन प्रसंगों का विकास करने वाले श्री *विट्ठलनाथ जी (गुसाईं जी) हैं। आगे चल कर उन वार्ताओं के प्रचारक श्री* गोवर्धननाथ थे।[2] वार्ताओं के उन प्रसंगों को लेखबद्ध करने वाले श्रीकृष्ण भट्ट[3] एवं चौरासी और दो सौ बावन संख्याओं में वर्गीकृत करके उन वार्ताओं को विशद रूप में प्रस्तुत करने वाले श्री गोकुलनाथ जी थे।[4] इन समग्र वार्ताओं के टीकाकार अर्थात् भावप्रकाश के लेखक श्री हरिराय जी हैं। ये गोस्वामी गोविन्दराय जी के पौत्र कल्याणराय जी के पुत्र एवं प्रभुचरण गोकुलनाथ जी के भतीजे एवं शिष्य थे। श्री हरिराय ने अपने भावप्रकाश में वार्ता साहित्य के निगूढ तत्त्वों का मथन और प्रकाशन करके वार्ता को एक लोकोत्तरता प्रदान की था। उनका भाव प्रकाश रूप टिप्पण साम्प्रदायिक वस्तु होने के कारण वैष्णव समाज के नित्य स्वाध्याय में समाविष्ट होने वाली सामग्री बन गया है अतः चौरासी एवं दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता और उनकी चर्चा पुष्टिमार्गीय वैष्णवों के नित्य के स्वाध्याय या मनन चिन्तन और आचरण की वस्तु बन गई है। इनमें भी अष्ट सखाओं का चरित्र तो अत्यन्त ही आचरणीय पठनीय एवं मननीय है। अष्टसखा सम्प्रदाय की मान्यता में कोरे कवि या कीर्तनकार ही नहीं थे भगवान् गोवर्धनधर की नित्य लीला के नित्य सहचर भी हैं। ये समस्त सखा गिरिराज-गोवर्धन के अष्टद्वारों के अधिपति और भगवान की निकुंज लीला के सहचर हैं।

ब्रज में स्थित गोवर्धन पर्वत अथवा श्री गिरिराज की बड़ी महिमा है। सात मील लम्बे ब्रजभूमि के मानदण्ड रूप इस पर्वत को पुराणों में बड़ा गौरव दिया गया है। इन्हें गिरीन्द्र अथवा गिरिराज कहकर मोक्ष का साधन रूप माना गया है।
गर्ग संहिता में आया है.—

समुत्पितोऽसौ हरि वक्षसो गिरिर्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्र राजराट्।

समागतो ह्यत्र पुलस्त्य तेजसा यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते ॥[5]

१ वार्ता साहित्य मीमांसा लेखक श्री हरिहरनाथ टंडन पृ० २।
२ २५२ वैष्णव की वार्ता (लीला भावना) श्री द्वारिकादास परीख, पृ० १ २ २ २ ९।
३ २५२ वैष्णव की वार्ता भावना ५ २२ शुद्धाद्वैत अकेडमी कांकरोली।
४ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र देखो निजवार्ता चरितामृत।
५ गर्ग संहिता गिरिराज खण्ड अ० १ श्लोक २१

अष्ट प्रहर के साक्षी व्रजलीला के सखा हैं जो श्रीगिरिराज के नित्य-निकुंज के आठ द्वारों पर स्थित रहकर भगवान् की नित्य सेवा में तत्पर रहते हैं। इस लौकिक लीला में वे नित्य निकुंज के आठों द्वारों पर भौतिक शरीर से उपस्थित रहते हैं और इस लौकिक लीला के अनन्तर वे सखा गए अपने दिव्य देह (लीलोपयोगी) से अलौकिक रूप में नित्य लीला में स्थित रहते हैं।

नित्य लीला में स्थित भगवान् के ग्यारह सखाओं की चर्चा हमें श्रीमद्भागवत में मिल जाती है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण के साथ यत्र-तत्र ग्वाल बालों की चर्चा हुई है। उनकी बनलीला में सखाओं का अनिवार्य साहचर्य सर्वत्र दृष्टिगत होता है।[1] इनके नामों का उल्लेख एक दो स्थलों पर आया भी है। उदाहरण के लिये कुछ मुख्य सखा ये हैं—

श्रीदामा नाम गोपालो राम केशवयो सखा।
सुबल स्तोक कृष्णाद्या गोपा प्रेम्णैवमब्रुवन्॥ भाग १ । १५। २

यहाँ 'स्तोक कृष्णाद्या' कहकर कुछ अन्य सखाओं की ओर भी संकेत है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के २२ वें अध्याय में गोपी-वस्त्र-हरण प्रसंग के उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीमुख से कुछ प्रमुख सखाओं के नाम गिना दिये गये हैं। सुरम्य व्रज-वनस्थली के वृक्षों के सौन्दर्य की ओर लक्ष्य कराते हुए श्रीकृष्ण अपने सखाओं में से प्रत्येक का नाम ले लेकर पुकारते हैं—

हे स्तोक कृष्ण ! हे अंशो ! श्रीदामन् सुबलार्जुन।
विशालर्षभ ! तेजस्विन् ! देवप्रस्थ ! वरूथप॥
पश्यैतान् महाभागान् परार्थैकान्त जीवितान्॥ श्रीमद्भागवत् १ । २२। ३१

उपर्युक्त श्लोक में दस सखाओं के नाम आए हैं। ये बलरामजी सहित श्रीकृष्ण के ग्यारह सखा होते हैं। इन्हीं सखाओं की चर्चा गर्गसंहिता में धेनुकासुर मोक्ष-प्रसंग में भी आई है—

श्रीदामा तत्र दंडेन सुबलो मुष्टिना तथा।
स्तोकश्चापेन च दैत्यं सताड महाबलम्॥
क्षेपणेनार्जुनो योऽशुरस्य दैत्यं सतिमातरम्।
विशालर्षभ चैन्यायु पादेन स्वबलेन च।
तेजस्वी हार्यचन्द्रेण देवप्रस्थश्चपेटकैः॥
वरूथप वस्तुवेन सन्ताड महासुरम्॥
अथ कृष्णोऽपि तं नीत्वा हस्ताभ्यां धेनुकासुरम्॥[2]

ये दसों भगवान् श्रीकृष्ण की बाललीला के नित्य सखा हैं जिनके नाम बिना किसी हेर-फेर या परिवर्तन के श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त स्कन्दपुराण गर्गसंहिता आदि में भी मिलते हैं।

---

1 श्रीमद्भागवत १ ०

2 गर्ग संहिता वृन्दावन खण्ड अध्या ११ श्लोक १३ १४ १५ १६

अष्ट सखाओ की भाँति मुख्य स्वामिनी राधिका की शृंगार-सज्जा करने वाली नित्य सहचरियाँ ललिता विशाखा आदि की भी चर्चा नित्यलीला म उपलब्ध होती है[1] और इन की भावना भी सम्प्रदाय मे यथावत् मिलती है। सखाओ और सहचरियो को भगवान से इतना अभिन्न माना गया है कि वे उनके अवभूत भी कही गयी हैं। इन सबके मूल म साम्प्रदायिक भावना ही प्रमाण भूत है। इस भावना-तत्त्व के आद्य प्रवर्तक गोस्वामी विट्ठलनाथ जी एव प्रभु चरण हरिराय जी थे। स्वय इन दोनो महानुभावो का व्यक्तित्व भावनामय था अत श्रद्धा और भावना से अनुप्राणित होकर रसेश्वर पूर्णब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण (श्रीनाथजी) की सेवा का विधान इनके द्वारा हुआ। जिसमे आठो सखा प्रभु के सहचर माने गये हैं।

## अष्टछाप के कवियों का साहित्यिक महत्व—

अष्ट छाप के आठो ही कवि महानुभाव यद्यपि उच्च कोटि के काव्य-प्रणेता एव सगीतज्ञ कीर्तनकार थे परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सम्प्रदाय न तो इन्हे कवि अथवा साहित्यकार की दृष्टि से महत्त्व देता है न गायक अथवा कलाकार की दृष्टि से। सम्प्रदाय तो इन्हे भगवत स्वरूप समझ पूज्य बुद्धि से इन्हे भगवान के नित्य लीला के चिर सहचर अथवा नित्य सखा मान कर इनको भगवद् तुल्यत मश्रद्धा हुआ इनकी पूत वाणी का मनन अनुशीलन करके आत्मलाभ करता है परन्तु आज के तर्क-प्रधान साहित्य जगत् के लिए इन आठो कवि महानुभावो का साहित्यिक महत्व ही सबसे उतरने वाला है।

चौरासी एव दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता म अष्टछाप के कवियो का परिचय है। इन ग्रन्थो मे इनकी शरण भावना भक्ति भावना और कीर्तन सेवा की ही चर्चा है। इनके साहित्यिक महत्व का वहाँ कोई महत्व नही न इसके लिए वहाँ कोई गुन्जायश ही थी। वस्तुत इन पुस्तको के प्रणेता एव सकलन कर्ताओ का दृष्टि कोण ही दूसरा था। कोई भी काव्य अथवा साहित्य भगवद् गुण-गान के अभाव मे या तो कोरा वाग्विलास है अथवा विलवाड मात्र। जो

१ स्वर्णिम्यासन मृ मार्ग चन्द्र। सखो मुरान्विता।
श्रीनई कु कुमाथैरच तावर। गुरू कामने
भवन्ते। कीर्तिमद्य तो समभक्ते निवासना।
हरी श्री चतुरा नावार राजावै नृत्यलक्षणम्॥
मंजीर भूषव रिम्य श्री गंधा मव मदिनी
श्री रमा क्रिम्यो म नं हार श्री मधुमाधवी॥
चंद्रहारं च निरच कोटि चंद्रामर्न शुभम्।
ललिता कपुच मधि विराला चचरूनूपरम्॥
चगुन्नीवक रत्नानि हरी चन्द्राननाननी।
चन्द्ररसी राधिकायै रत्नादच कचच रचम्॥
वाटई सुगन्ध वंशी कुवदने सुवराविनी
सुख कच्च रत्नानि रात चन्द्राननना हरी।
तस्मै मधुमती सायान्सुगन्धसौगर रचम्
भामन्दी वा स्मी सुखमा राधायै माण तोरणम्।
चरमा मद्न न निर्न्द रिन्दु चन्द्रभना हरी
माला मौक्तिमाल्यानं हरी चरमावती मनी
वामाल च नि तंदुल मम सुर्न मनोहरम्
श्री राधायै हरी चम्पक-कपाला अमीसुखा।

केवल मन बहलाव के लिए होता है । भारतीय-जन-जीवन की प्रत्येक परम्परा मे अध्यात्म दृष्टि का प्रमुख सर्वोपरि रहा है अत भगवत्भक्ति शून्य काव्य कभी समादृत नही हुआ । आदि कवि का शोक जब श्लोकत्व को प्राप्त हुआ तब देवर्षि नारद से उन्हे राम-गुण-गान की ही प्रेरणा मिली थी । अत कोरा काव्य जिसमे भगवल्लीला की चर्चा न हो सरस्वती को भ्रम दायक ही होता है । इसी कारण अष्टछाप के कवियो के साहित्य पर विचार करते समय सम्प्रदाय ने वस्तु पर दृष्टि रखी थी शिल्प पर नही । शिल्प तो अनायास ही भव्य बनता चला गया उन्होने वर्ण्य को देखा वर्णन को नही । वे सुरगिरा अथवा नरगिरा के पचडे मे नही पडे । उन्हे स्वाद से तात्पर्य था । थाली अथवा पात्र स्वर्ण का है अथवा मृत्तिका का इससे उन्हे कोई प्रयोजन नही था फिर भी इन आठ महानुभावो का साहित्यिक महत्व अनुपम है । सूर तो साहित्याकाश के साक्षात् सूर्य ही है । जिनके जोड का दूसरा कवि विश्व कवियो मे कदाचित् ही मिले । सम्प्रदाय मे वे 'सागर' कहे जाते है । सूर साक्षात् 'लीलासागर' है । उनके हृदय सागर मे अहर्निशभगवल्लीला का सागर उद्वेलित रहता था उसके परिणाम स्वरूप जो पद सीकर अनायास उनके मुख से निकल पडते थे । वही आज लाखो की संख्या मे हिन्दी साहित्य की निधि बने हुए है । सूरदास की काव्य प्रतिभा अपने क्षेत्र मे विश्व साहित्य मे बेजोड सिद्ध हो चुकी है । उनके साहित्यिक महत्व से अभिभूत होकर डा वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते है —

'शुद्ध काव्य के आनन्द की दृष्टि से सूरदास की रचना समस्त राष्ट्र की निधि है ।'[1]

इसी प्रकार सूर साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डा हरबंशलाल कहते है —

महाकवि सूरदास के साहित्य महोदधि का मथन वास्तव मे अत्यन्त दुष्कर कार्य है । विभिन्न युगो के अनेक स्तरो के बीच से मन्द-मन्द किन्तु अव्याहत गति से बहती हुई अनेक दिशाओ मे उल्टी सीधी बहकर आने वाली विविध विचार धाराओ को आत्मसात् करती हुई भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो की सिद्धान्त सार-सुधा से प्राणियो के अन्त करण को तृप्त करती हुई भारतीय साधना की मन्दाकिनी ने इस सागर को ऐसा लबालब भर दिया है कि उसमे मग्न हो कर भी तह तक पहुचना सरल कार्य नही है ।[2]

इसमे सन्देह नही कि भारतीय कवियो मे सूर सम्राट् है और गीत-परम्परा के आदि प्रणेता है । उनके समसामयिक अन्य अष्टछापी परमानन्ददासादि कविगण उनकी लीला सुरसरि मे प्रवाह को विस्तार प्रदान करने वाले पवित्र स्रोत है । सूरदास आदि अष्टछाप के कवियो से पूर्व ब्रजभाषा का न तो व्यवस्थित स्वरूप मिलता है न किसी लब्धप्रतिष्ठ कवि का नाम । नामदेव आदि सन्तो की वाणी मे जो ब्रजभाषा मिलती है वह शुद्ध और प्रवाहमयी ब्रजभाषा नही कही जा सकती । अत डा दीनदयालु गुप्त के अनुसार अष्टछाप का प्रथम कवि वर्ग ही ब्रज भाषा का आदि वर्ग है और उसमे भी मूर्धन्य सूर है ।[3]

---

१ सूरसागर भूमिका डॉ वा श अग्रवाल

२ सूर जयंती समारोह के अवसर पर दिया गया अभिभाषण पृ ७ ।

३ अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग १-पृ २१ ।

भाषा की दृष्टि से तो अष्टछाप कवियों का महत्व बड़ा-चढ़ा है ही भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी अष्टछाप कवि-मंडल अद्वितीय है। वैष्णव भक्तों का भाव-जगत् अपनी गहनता अनूठेपन सरसता एवं स्वच्छता के लिये सर्वत्र स्तुत्य रहा है। उनमें भी ब्रजभाषा के अष्टछापी महानुभावों के भाव-जगत् की कोमलता रमणीयता और तन्मयता एक दिव्य लोक की सृष्टि करने वाली होती है, जिसमें रमण करने वाला ही उसके आनन्द को जान सकता है।

इसी कारण सम्प्रदाय के आचार्य गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने यह व्यवस्था की थी कि काव्य संगीत और भक्ति-भावना की त्रिवेणी काश्मीर से कन्याकुमारी तक के पुष्टिमार्गीय मंदिरों में अबाध गति से बहती रहे। और उसी के परिणाम स्वरूप आज शताब्दियों बाद भी साहित्य संगीत और भक्ति-भावना की त्रिपथगा न केवल साम्प्रदायिक मंदिरों को ही पुनीत कर रही है अपितु सारे भारत के निखिल जन मन को पावन करती आ रही है।

वास्तव में पुष्टिसम्प्रदाय के इन भक्तों ने ब्रज भाषा के गद्य-पद्य साहित्य को अत्यन्त ही वैभवशाली बनाया है। वार्तासाहित्य के रूप में ब्रज भाषा का गद्य भी प्रचुर मात्रा में है। इस प्रकार इन अष्टछापी महानुभावों का साहित्यिक महत्व साम्प्रदायिक महत्व से कहीं बढ़ा चढ़ा है।

## अष्टछापी कवियों का कलात्मक महत्व—

अष्टछाप के भक्त कवि जहाँ सम्प्रदायानुयायियों में सखा भाव के कारण पूजित हैं और साहित्य क्षेत्र में मूढ़ रूप कवि शिरोमणि रसिक और भावुक रूप में माने गये हैं वहाँ संगीत के क्षेत्र में महान् कलाकार के रूप में माने गये हैं। भारतीय संगीत-साधना अपने विकसित-तम रूप में ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाली मानी गई है।[1] अष्टछाप के कवियों ने अपनी संगीत-साधना के सहारे और कीर्तन-सेवा के माध्यम से रसिक मूढ़ रूप लीलासागर श्री गोवर्धन नाथजी के समक्ष जिस देव-दुर्लभ नाद-माधुर्य की सृष्टि की उससे भारतीय संगीतज्ञ समाज सुपरिचित है। आज का हिन्दी-समाज जब अष्टछाप के काव्य वैभव से सुपरिचित भी नहीं हुआ था उससे पूर्व से हमारा संगीतसमाज अष्टछापी कवियों के पद-माधुर्यार्जन में चिरकाल से अवगाहन करता चला आ रहा था। भारतीय संगीत की ध्रुपद एवं धमार वाली उत्तरी शैली जिसे देशी संगीत कहा जाता है—के विकास और वृद्धि का श्रेय इन्हीं अष्टसखाओं को है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने सवत् १६ २ में जब गिरिराज पर श्री गोवर्धननाथ जी की

१—गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञ पार्वती पति ।
गोपी पतिरनन्तोऽपि वंशध्वनि वशंगतः ॥
तस्य गीतस्य माहात्म्यं के प्रशंसितुमीशते ।
धर्मार्थ काम मोक्षाणामिदमेवैक साधनम् ॥ संगीत रत्नाकर प्रथम प्रकरण श्लोक ३० ।
नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णु महेश्वराः ।
भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः ॥ — नाद नाम प्रकरण श्लोक २
नृत्यं वादि गुर्ण वाद्यं वाद्यानुगोऽपि गुर्व जर
अतस्त्रोऽपि गुण गानं गानन्यतरं मति ॥
नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ प० पु० उ० ख०

सेवा का महान किया और उसकी सुव्यवस्था की तो उसके तीन अंग निर्धारित किए। भोग राग और शृंगार। उसमें राग विभाग सबसे सुव्यवस्थित एवं सुसम्पन्न था। नित्य और नैमित्तिक सेवा का कार्य-क्रम कीर्तन संगीत के साथ गुंफित होने के कारण दिन के प्रत्येक याम के ममवल्लीला के कीर्तन पर शास्त्रीय संगीत के साथ चलते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और गुसाईं जी के समय में इन कीर्तनकारों को प्रत्यक्ष में अथवा अपने भावलोक में साक्षात् प्रभुदर्शन अथवा भगवदनुभाव द्वारा भगवदनुभव होने के कारण पद अथवा कीर्तन तत्काल रचकर वे लोग प्रभु के समक्ष प्रस्तुत कर देते थे। इन प्रभु-सखाओं के उच्च कोटि के कीर्तन को जिस भावना विषय में प्रत्यक्ष अर्पण किया था आगे चल कर परवर्ती कीर्तनकार वैसी कीर्तन सेवा करने में असमर्थ रहे अतः उसी भावना से यद्यपि पुष्टिमार्गीय मंदिरों में अर्वाचीन भावकों के कीर्तन भजन नहीं निवेदित किये जाते। पुष्टिमार्ग की यह अपनी मर्यादा है। प्रभु का उन अष्ट सखाओं का ही कीर्तन स्वीकार है। वैसी भावमय अन्य कीर्तन परम्परा न होने से अष्टछापी सखाओं का भाव प्रभाव ही आज तक चलता आ रहा है। संगीत कला को सम्प्रदाय में विद्या कला" नाम दिया गया है। संगीत कला की इतनी लम्बी परम्परा किसी देश में शायद ही चली हो यथाविधि के उपरान्त भी आज सूरदास परमानन्ददासादि अष्टछापी महानुभाव निर्गुण रूप में (भक्ति, साहित्य और संगीत के प्रवर्तक के रूप में) अपने यश शरीर से विद्यमान हैं और अपनी इस विभूति के कारण युग-युग तक स्मरणीय रहेंगे।

## अष्टछाप के दूसरे सागर—

अष्टछाप कवियों के साम्प्रदायिक साहित्यिक और कलात्मक-त्रिविध महत्वों पर विचार कर लेने के उपरान्त सम्प्रदाय की मान्यता साहित्यिक महत्ता और कला सौष्ठव की दृष्टि से हम सूर के उपरान्त सम्प्रदाय के दूसरे सागर परमानन्ददास जी को लेते हैं। महात्मा सूरदास को लेकर हिन्दी साहित्य में पर्याप्त चर्चा हुई है और उनके महत्व को प्रतिपादित करने में अनेक विद्वानों ने स्तुत्य श्रम भी किया है। उनकी जीवनी और उसके विवादास्पद तथ्यों को लेकर पर्याप्त आन्दोलन हुआ है और श्रमपूर्ण खोज के उपरान्त विद्वत्समाज ने अनेक विचारणीय तथ्य निकाले हैं जो बहुत अंशों में मान्य हो चुके हैं जैसे सूर के जन्म स्थान जन्म संवत्, जन्मान्धता उनके ग्रन्थों में आई हुई पद संख्या तथा उनके अवसान संवत् आदि प्रसंगों पर विद्वानों ने पर्याप्त खोज की है और तथ्यपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। परन्तु उनके उपरान्त सम्प्रदाय के दूसरे सागर श्री परमानन्ददास अभी तक अधिकांश विद्वानों से उपेक्षित से रहे हैं। यद्यपि अष्टछाप पर लिखने वाले ग्रन्थों में उनकी चर्चा हुई है पर नहीं के बराबर। यह तो निर्विवाद है कि कविवर परमानन्ददास की अष्टछापी कवियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस कारण अष्टछाप के कवियों की जहाँ भी चर्चा हुई वहीं उनका प्रसंग आना स्वाभाविक था परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक शैली से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन नहीं हुआ है। इसका क्या कारण रहा है इसकी चर्चा न करके यहाँ केवल इतना ही संकेत करना पर्याप्त है कि सूर

परमानन्द दास जी को सम्प्रदाय में सूर के ही समान 'सागर' पुकारा गया है इन दोनों महानुभावों को इन्हीं 'सागर' कही गई है क्योंकि दोनों ही महानुभावों का हृदय 'लीलाब्धि सागर' है साथ ही ये केवल सूर एवं परमानन्ददासजी दो ही महानुभावों को महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवत् लीलामृत की अनुभविता करायी थी। (लेखक)

के अध्ययन में ही अवकाश प्राप्त करना विद्वानों के लिये कठिन हो रहा है। फिर अष्टछाप के अन्य कवियों की चर्चा किस प्रकार हो इसी कारण सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य सभी कवि लगभग अछूते से ही पड़े हैं जिन पर कार्य करने और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त क्षेत्र है।

प्रस्तुत अध्ययन इसी दृष्टिकोण को लेकर किया गया है। सूर के सागर के मंथन आलोडन का कार्य विद्वत्समाज द्वारा अहर्निश किया जा रहा है वहाँ अन्य सागरों के मंथन की भी चर्चा की जानी चाहिए क्योंकि वे परमानन्ददासजी भी सम्प्रदाय के दूसरे 'सागर' हैं। उनके अवसान के उपरान्त गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने कहा था—

'जो या पुष्टि मार्ग में दोउ 'सागर' भए। एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिनको हृदय अगाधरस भगवल्लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं।'[1] आदि

खेद है कि 'दूसरे सागर' के अगाध रस का न तो किसी भावुक रसिक ने भली भाँति रसास्वादन ही किया अथवा कराया न उन रत्नों के समूह का किसी मरजीवा ने पूर्ण रूपेण उद्घाटन ही।

सम्प्रदाय की मान्यता में तो अष्टछाप के सभी कविगण 'सखा' कोटि में आ जाते हैं अतः उनमें किसी प्रकार का तारतम्य वहाँ माना ही नहीं जाता। किन्तु आधुनिक साहित्यिकों द्वारा संभवतः सूर को अत्यधिक महत्ता दी गई है। परन्तु जब तक किसी कवि के सम्पूर्ण काव्य का तुलनात्मक एवं वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन नहीं प्रस्तुत कर दिया जाता तब तक किसी कवि के प्रति कोई धारणा बना लेना उचित प्रतीत नहीं होता। भले ही सूर साहित्याकाश के सूर्य हों परन्तु अष्टछाप के अन्य कवि भी अपने अपने भाव-क्षेत्र में किसी भाँति घट कर नहीं। इसी भाव से प्रेरित हो कर अष्टछाप पदावली के सम्पादक डा० सोमनाथ गुप्त ने कहा है—

अभी तक तो सेहरा सूर के सर है। संभव है परमानन्ददास जी का काव्य-संग्रह प्राप्त हो जाने पर विद्वानों को निर्णय करने में कुछ कठिनता हो।[2]

अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय के यशस्वी लेखक डा० गुप्त ने भी कुछ-कुछ इसी प्रकार का विचार प्रकट किया है परमानन्ददास का परमानन्दसागर भी सूरसागर की टक्कर का कहा जाता रहा है। खेद का यह विषय है कि केवल अन्य उपलब्ध रचनाओं के आधार पर ही इतनी प्रशंसा के अधिकारी माने हुए इन अष्ट महान् कवियों की रचनाओं की न तो भली प्रकार अब तक खोज हुई थी न उपलब्ध रचनाओं की प्रामाणिकता की जाँच हुई और न उनके काव्य का दर्शन तथा भक्ति की दृष्टि से गंभीर अध्ययन ही हुआ।[3]

तात्पर्य यह है कि जिस कवि को सूर के समान स्थिर करने का साहस किया जा सकता है वह अभी तक प्राय अन्धकार की गहन-गुहा में ही पड़ा रहे और उस पर कोई भी विद्वान् वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन प्रस्तुत न करे—उचित प्रतीत नहीं होता।

१ [illegible] वैष्णवन की [illegible] १० सम्प्रदा का [illegible]।
२ अष्टछाप पदावली भूमिका पृ० १
३ अष्टछाप व [illegible] वल्लभ सम्प्रदाय-[illegible]।

प्रस्तुत प्रबंध के द्वारा कविवर परमानन्ददास का प्रामाणिक जीवन और उनके काव्य का संग्रह और उसके सम्यक् अध्ययन को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। इस दृष्टि से प्रस्तुत प्रबंध को तीन भागों मे वर्गीकृत किया गया है—

१—प्रथम खंड मे कवि की अन्तस्साक्ष्य के आधारो पर प्रामाणिक जीवनी।

२—द्वितीय खंड मे कवि के काव्य की वैज्ञानिक समीक्षा।

३—तीसरे खंड मे कवि के प्रामाणिक पदो का संग्रह प्रस्तुत किया गया है। यह संग्रह कतिपय दुर्लभ प्राचीन हस्तलिखित संग्रहो से प्रस्तुत किया गया है। इन संग्रहो की चर्चा विद्या-विभाग-कांकरौली से प्रकाशित विज्ञप्ति मे भी नहीं है।[1]

---

१ [illegible] संपादक—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल प्रकाशक—भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़।

# द्वितीय अध्याय

## जीवनवृत्त

सन्तों एवं भक्त कवियों ने स्वात्म को भी 'प्राकृत जन' की परिधि में ही रखा था अतः आत्म-चरित अथवा आत्म-कथन को अपराध की कोटि में मानते हुए उन्होंने अपना जीवन-वृत्त देने की आवश्यकता नहीं समझी। भक्ति की भाव भूमि पर जब सारी त्रिविध एषणाएँ स्वयमेव तिरोहित हो जाती हैं तब दासोऽहम् से सोऽहम् की सर्वोच्च भाव-स्थली की ओर अभिमुख भक्त को आत्म-परिचय देने का अवकाश कहाँ रह जाता है। 'स्व' या तो वह पहिले ही खो चुका होता है या अपने इष्ट को अर्पण हो चुका होता है। ऐसे भावुक भक्त को अपना आत्म-परिचय देने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। देहाध्यास या देहाभिमान का ही लक्षण है कि वह अपना परिचय दे। सागर में लय हुई बिंदु का परिचय कैसा ?

अध्यात्म-प्रधान भारतीय संस्कृति में लोकैषणा जैसी भौतिक वस्तु को स्थान नहीं। अमृतत्व के उपासकों ने अपनी हंसवाहिनी का आवाहन सदैव भगवद्गुणगान के लिए ही किया है और उनका सदैव से यही विश्वास रहा है कि विधि-भवन को छोड़ कर मर्त्य लोक में आने वाली वीणापाणि के श्रम का परिहार तभी होगा जब वह भक्ति-काव्य की सुरसरि धारा में अवगाहन करेगी। अतः व्यास-वाल्मीकि से लेकर आज तक के भक्त कवियों का परिचय अप्राप्य ही है। कुछ भक्तों का जीवनवृत्त या तो उनके निजी परिकर से मिलता है अथवा तात्कालिक अन्य साक्ष्यों से अन्यथा फिर दैन्य विनय एवं चरम भावुकता के क्षणों में यत्र-तत्र आत्मनिवेदन के कथनों से। इस प्रकार के अनुसंधान में 'अटकल' का अवकाश भी बहुत कुछ रहता है। अनुमान या अटकल में कभी-कभी तो हम यथार्थ से इतनी दूर जा पड़ते हैं कि इन भक्तों अथवा भक्त कवियों के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाएँ समाज-रूढ़ हो जाती हैं फिर उनका निराकरण शोध मनीषा के लिए एक दुस्तर कार्य हो जाता है। यही कारण है कि व्यास वाल्मीकि कालिदास प्रभृति की प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं। महाकवि चन्द बरदाई का व्यक्तित्व अनेक कपोल कल्पनाओं में फँसा है। कबीर की महत्ता के सम्बन्ध में उत्पत्ति सूर का जन्मान्ध तुलसी की नारी से उत्पत्ति आदि अनेक भ्रान्त धारणाएँ विवाद का विषय बनी हुई हैं। प्रायः अनेक भारतीय भक्तों एवं सन्तों का परिचय ज्ञात नहीं है। आज की वैज्ञानिक शोध पद्धति इतनी बुद्धि प्रधान है कि मानो व सत्य सभी समय लिया या कपोलकल्पना पर अविश्वास करने के लिए वह बाध्य है। आप हो उसे सब कुछ तर्क-सम्मत चाहिए। भावना, श्रद्धा भगवान की समय-शक्ति बुद्धि-गम्य न होने से तर्क-समाधिन-समाज घटनाओं को स्वीकार नहीं कर सकता परन्तु ईश्वरीय-चमत्कार जैसी वस्तु सब ... में मान्य हुई है। सभी देशों के सन्तों भक्तों के जीवन-प्रसंग थोड़ी बहुत चमत्कारानियों से सम्बद्ध रहे हैं। अतः बुद्धि और तर्क के बोलबाले पर भी चमत्कार का लोप विलुप्ति नहीं है। भावुकता और श्रद्धायुक्त गुण विशुद्ध-अध्ययन के आधार पर उपलब्ध तथ्य पुष्ट वृत्त

ही मन समाहित होते हैं। उसी को भाव का वैज्ञानिक अध्ययन अथवा शोध-दर्शन कहा गया है। इस कसौटी पर प्रामाणिक तथ्य ही अब हमारे अध्ययन के लक्ष्य होते हैं। अतः भाव के प्रयत्न ही भाव के सिद्धान्तों की तर्क प्रधान बुद्धि को प्राप्त है। इसी प्रक्रिया पर परमानन्ददासजी की जीवनी का ढाँचा पूरा करने का प्रयत्न किया जायगा।

परमानन्ददास की जीवनी विषयक सामग्री का नितान्त अभाव है। कवि ने भी भारतीय-भक्तों की परम्परा के अनुसार 'आत्म-परिचय' की अवहेलना की दृष्टि से देखा है। सूर तुलसी ने तो फिर भी अपनी प्रारम्भिक दुर्दशाओं का प्रसंगवश कहीं कुछ संकेत दे दिया है परन्तु भक्तप्रवर परमानन्ददास ने तो अपने विषय में कहीं भी कुछ नहीं लिखा। इसके सम्भवतः दो कारण थे—पहले तो कवि बहुत ही साधारण परिस्थिति में जन्मा था। अतः उसे अपने विषय में कुछ भी उल्लेख्य प्रतीत नहीं हुआ। दूसरे—भक्त परमानन्ददास का जीवन अत्यन्त सरल शान्त एवं अतिशय होने से घटनाविषय में महत्त्व नहीं था। कवि को अपना गुणगान न अभिप्रेत न कुछ कहने को था न कहने को। न उस ओर कोई अन्य लौकिक प्रेरणा थी। भगवद् विषय में अनन्य विश्वासी और स्वभावतः मनोयोगी होने से कवि ने कभी भी कोई लौकिक प्रसंग न अपने विषय में उठाया न पराये विषय में। अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख तो दूर समसामयिक राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक घटना-चक्र की चर्चा भी उनमें नहीं की। अतः उनके ईश्वरपरक पदों में प्रारम्भ चर्चा की कहीं हल्की छाया भी यत्र तत्र भासमान होती है। अतः जीवनी के लिए अधिकांशतः बाह्य-साक्ष्यों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। बाह्य-साक्ष्यों में साम्प्रदायिक साहित्य में तो यत्किंचित् कुछ मिल जाता है परन्तु अन्य राजनीतिक इतिहास अथवा तत्कालीन साहित्य प्रायः मौन सा है। जन्म तिथि माता-पिता, जन्म स्थान आदि के विषय में तो प्रामाणिक आधारों का नितान्त अभाव है। ऐसी परिस्थिति में इन सबके लिए केवल साम्प्रदायिक जन्म तिथियाँ एवं वार्ता-साहित्य ही आधार सूत्र हैं। इन्हीं आधार-सूत्रों से विद्वानों ने उनकी जाति जन्म स्थान तथा जन्म सम्वत् आदि की खोज की है। साम्प्रदायिक और सम्प्रदायेतर जितनी भी सामग्री उपलब्ध है उसके आधार पर कवि के जीवन के इतिवृत्त के सम्बन्ध में तथ्य एकत्र करने का प्रयास किया जायगा।

## उपलब्ध सामग्री का वर्गीकरण—

परमानन्ददासजी के सम्बन्ध में जो भी सामग्री उपलब्ध है उसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है

अन्तस्साक्ष्य—

(१) उनके अपने भगवल्लीला विषयक पद जिनके आधार पर हम उनके अस्तित्व तक पहुँचते हैं, अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत आयेंगे। इन्हीं पदों के समूह को 'परमानन्दसागर' पुकारा गया है

(ब) बाह्यसाक्ष्य [साम्प्रदायिक]

१—वार्तासाहित्य—जिसके अन्तर्गत (१) चौरासी वैष्णवों की वार्ता (२) निज वार्ता (३) श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश (४) वल्लभदिग्विजय (५) अष्टसखामृत एवं सम्प्रदाय सम्बन्धी अन्य ग्रन्थ जिनकी चर्चा आगे चलकर की जायगी।

## कवि के अपने काव्य के आधार पर उसकी जीवन झाँकी—

"परमानन्दसागर" उनकी प्रामाणिक रचना है। उसमें आत्माभिव्यक्ति विषयक उल्लेखों का अभाव है। उनके पद—समूहों में ऐसे पद अवश्य उपलब्ध होते हैं जिनमें उनके जीवन प्रसंग का थोड़ा-बहुत संकेत मिल जाता है उन्हीं को एकत्र करके कवि की जीवनी का ढाँचा खड़ा किया जा सकता है क्योंकि स्वयं कवि ने अपना यथेष्ट परिचय कहीं नहीं दिया न उनके जन्म संवत् का ही पता चलता है न जन्म स्थान माता-पिता कुटुम्ब आदि के विषय में कुछ पता चलता। हाँ सम्प्रदाय में शरणागमन का ब्रजवास का उनकी उत्कट भगवद् भक्ति का और उनके उपस्थिति काल की चर्चा मिल जाती है परन्तु इन सबका उल्लेख भी कवि ने प्रसंगवश ही किया है। आत्म-परिचय की दृष्टि से नहीं।

अपने समय की परिस्थिति का कवि ने थोड़ा सा संकेत भी किया है। पर वह पर्याप्त नहीं। इन सब उल्लेखों से कवि के व्यक्तित्व उसके स्वभाव शिक्षा दीक्षा गुरु-भावना ईश्वर भक्ति सम्प्रदाय के प्रति श्रद्धा और प्रेम ब्रजवास की इच्छा पुष्टिमार्ग में विश्वास आदि का पता तो चल जाता है पर लौकिक जीवन संबंधी अन्य आवश्यक बातों की कुछ भी जानकारी नहीं हो पाती। फिर भी हम यहाँ उन कतिपय पदों को प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे जिनसे परमानन्ददासजी के जीवन के प्रामाणिक प्रसंगों पर प्रकाश पड़ता है।

परमानन्ददासजी महाप्रभुवल्लभाचार्य जी की शरण में आने से पूर्व एक जिज्ञासु भक्त और अध्यात्म-पथ के सत्यान्वेषी पथिक थे। वे प्रयत्नशील थे कि उन्हें जीवन का सत्य उपलब्ध हो सके। प्रमाण व कहन है —

श्री वल्लभ रतन जतन करि पायौ।
खारौ खात मोहि राखि लियौ है पिय सम हाथ गहायौ।
दुष्टनग मग सब दूरि किये हैं, चरनन सीस नवायौ॥
परमानन्ददास कौ ठाकुर नैनन प्रगट दिखायौ॥

यहाँ जतन करि पायौ और नैनन "प्रगट दिखायो" विशेष रूप से मननीय है। कवि ने गुरु की प्राप्ति अनायास नहीं की है। साथ ही उसने गुरु कृपा से भगवत्साक्षात्कार किया है और भगवल्लीला का प्रत्यक्ष अनुभव भी किया है। संसार सागर के प्रवाह में बहते हुये कवि को उसके गुरुदेव महाप्रभु वल्लभाचार्य से सहारा मिला और उन्होंने उसकी तात्त्विकता पर द्रवित हो कर उसे शरण में लिया आदि बातों का स्पष्ट उल्लेख यहाँ है। महाप्रभु वल्लभाचार्य और ठाकुर जी ने कवि की अभय वृद्धि की—

सुमन माल मन ध्यान माले उर ले राखे हृद आठो याम।
परमानन्ददास को ठाकुर हैं वल्लभ के सुन्दर श्याम॥

कवि ने महाप्रभु से समर्पण (ब्रह्मसम्बन्ध-दीक्षा) पाई। उसका उल्लेख उसने इस प्रकार किया है —

बाढ़्यो है माई माधौं सौं सनेहरा ।
बैठौं तहाँ जहाँ नन्द नन्दन राज करौ मह मेहरा ।।
अब तो बिय ऐसी बनि आइ कियौ समर्पन देहरा ।।
'परमानन्द' बको बीज ति ही बरजन लाग्यो मेहरा ।।[1]

दूसरा पद–

मैं तो प्रीति स्याम सौं कीनी ।
कोऊ निदौ कोऊ बदौ अब तो यह बर बीनी ।।
जो पतिव्रत तो या ढोटा सो इन्है ही समरप्यौ देह ।
जो व्यभिचार तो नन्द नन्दन सौ बाढ़्यो अधिक सनेह ।।
जो व्रत गह्यौ सो और न निबह्यौ मर्यादा की सग ।
'परमानन्द' लाल गिरधर को पायो मोटो सग ।।[2]

कवि अपने जीवन के प्रारम्भ में सम्भवत बड़ा अकिंचन और आपद्ग्रस्त था । बाद में वह वैभव सम्पन्न हो गया था और उसे आर्थिक सौकर्य हो गया था ।

तिहि कर कमल दासपरमानन्द सुमरित यह दिन धायो ।
उसे कौटुम्बिक सुख नहीं मिला था वह कहता है—

तुम तजि कौन सनेही कीजै ।
यह न होइ अपनी जननी ते पिता करत नही ऐसी ।
बधु सहोदर से सोउ करत है मदनगोपाल करत है जैसी ।
सुत अरु लोक देत है व्रजपति अरु वृन्दावन वास बसावत ।।

१—जाके दिए बहुरि नहिं जाँचै सुख दरिद्र नहिं जानै ।
२—गुरु प्रसाद जाकी सपति बन परमानन्द रक कियौ
३—परमानन्द इन्द्र को वभव विप्र सुदामा पायो ।
४—माधो तुम्हारी कृपातें को को न बढ्यो
५—ताहि निहाल करै परमानन्द नैक मौज जो आवै ।।

परमानन्ददास बड़े सुबोध और विद्वान् थे परन्तु उन्हें अपनी विद्वत्ता का गर्व लेशमात्र नही था । वे उसे भगवत्प्रसाद ही मानते थे । वे मानते थे कि उसकी सपूर्ण विद्वत्ता भगवत्कृपा से ही है —

जाके सरण गए भय नाही सकल बात को ज्ञाता ।

कवि का शरीर सुन्दर और बलिष्ठ था । एक स्थान पर वह लिखता है —

कापत तन घर धरात अतिसुजत सीत लगत तन भारो ।

---

१ लेखक द्वारा सपादित परम नन्द सागर मे ६०–८१ ।
२ लेखक द्वारा सपादित परमानन्द सागर मे ६ –२७०
३ ,, ,,
१ ,, ,,
३ ,, ,,
४ ,, ,,
५ ,, ,,

तन मारो" से उसके पुष्ट और स्थूल होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

परमानन्ददासजी के उक्त पद-पंक्तियों में न केवल उनका आत्मसमर्पण ही द्योतित होता है अपितु सदैव के लिए गृह-त्याग और ब्रज बसने का संकल्प भी ध्वनित होता है। परमानन्द निश्चय कर चुके थे कि —

अब यह देह दूसरे न हुई परमानन्द गोपाल की। [1]

उनके दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व गोस्वामी विट्ठलनाथजी का जन्म हो चुका था। कवि ने गोस्वामी विट्ठलनाथजी का शिशु रूप देखा था। वह उनकी बधाई में लिखता है —

"श्री विट्ठलनाथ पालने झूले मात अक्काजू झुलावें हो।

और इसी पद में आगे चलकर वह कहता है —

'पुष्टि प्रकास करेंगे भूतल दैवी जीव उधारई हो। [2]

यहाँ 'करेंगे' भविष्यत् काल की क्रिया है। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि परमानन्ददासजी ने विट्ठलनाथजी की अत्यन्त शिशु अवस्था से लेकर आगे उनके यौवन को भी देखा था और उनके आचार्यत्व की भविष्यवाणी कर दी थी। महाप्रभुवल्लभाचार्य की शरण में आने के उपरान्त परमानन्ददासजी को भगवान की बाल लीला ही अधिक प्रिय हो गई थी। श्रीकृष्ण की बाल-लीला-वर्णन में ही उन्होंने अपना सारा जीवन विनियोग कर दिया था।

उन्होंने अपनी रुचि इन पंक्तियों में व्यक्त की है —

१—नील पीत पट ओढ़नी देखत मोहिं भावें।
बाल विनोद आनन्द एँ परमानन्द गावें॥

२—तू मेरो बालक यदुनन्दन तोहिं विश्वम्भर राखें।
परमानन्द चिरजीवो बार बार यों भाखें॥

३—बालदसा गोपाल की सब काहू भावें॥

४—बालविनोद गोपाल के देखत मोहिं भावें॥

५—बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन ब्रजजन सुखदाई॥

६—गावत हरि के बाल विनोद।

७—बाल विनोद खरे जिय भावत॥

—"परमानन्द प्रभु बालक लीला हौंहि चितवत फिर पाछे'।

८—बाल दसा में प्रीति निरन्तर क्रीड़त गोकुल वासा। आदि पदों में बाल लीला गान करते हुए अपने आराध्य की लीला-भूमि ब्रज में बसने की परमानन्ददास की उत्कट इच्छा थी —

१—यह मांगो गोपीजन वल्लभ
मानुस जन्म और हरि की सेवा ब्रज बसिबो दीजे मोहिं सुल्लभ।

---

[1] विद्या द्वारा सम्पादित परमानन्द सागर से।
[2] ,,

२—ब्रज बसि बोल सबनि के सहिये।

३—जैसे वह देस जहाँ नन्द नन्दन भेटिये।

परमानन्दजी को महाप्रभु का सतत साहचर्य मिला था और श्रीमद्भागवत सुबोधिनीजी तथा अन्य पुराणों को उसने श्रवण किया था—

प्रथम पुरान कथा यह पावन करनी प्रति अथाह नहीं।
तीर्थ महातम जानि जगत गुरु सौ परमानन्ददास सही।।

ब्रज में आने के उपरान्त कवि आजीवन भक्ति-भावना में तन्मय रहा। भक्ति की महिमा की चर्चा उसने यत्र तत्र सर्वत्र की है। वह कहता है—

१—कोई कुलीन दासपरमानन्द जो हरि सन्मुख जाई।

२ तातें नवधा भक्ति भली।

परमानन्ददासजी भक्ति भावना में उदार थे। रामकृष्ण में उनकी अभेद बुद्धि थी संकीर्णता उनमें लेशमात्र नहीं थी।

मदनगोपाल हमारे राम।
परमानन्द प्रभु भेद रहित हरि निज जन मिलि गावै गुनग्राम।।

परमानन्ददास जी स्वभाव से वैराग्यवान् थे। जागतिक मोह उन्हें छू तक नहीं गया था। वे इस नश्वर जग में एक पथिक की भाँति आये थे—

मेरो मन गोविन्द सौं मान्यौ तातें और न जिय भावै।
जागत सोवत यह उत्कण्ठा कोउ व्रजनाथ मिलावै।।
छाँड़ि आहार विहार और देह सुख और चाह न कोऊ।
परमानन्द बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ।।१

कवि को वेदमार्ग और व्यावहारिक मर्यादा की भी चिन्ता नहीं रह गई थी वह कहता है—

ऐसे कीजै वेद कह्यो।
हरि मुख निरखत विधि निषेध को नाहिन ठौर रह्यो।
दुख को मूल सनेह सखी री सो उर बैठि रह्यो।।
परमानन्द प्रेम सागर में पर्यो सों लीन भयो।।

पुष्टिमार्ग में कवि की परम आस्था थी—

माधव हम गोपाल भजेंगे।
पावत बाल-किशोर कान्ह में आरत न उपजैंगे।।

---

१ मित्तल द्वारा संपादित परमानन्द सागर में।
२ मित्तल द्वारा संपादित परमानन्द सागर में।
३ " "

गो घनश्यामजी के जन्म समय से लेकर 'पोथी में ध्यान' तक कवि विद्यमान था। इतना ही नहीं। 'पोथी मे ध्यान' घनश्यामजी के अध्ययन में मगन का संकेत देता है। बालक घनश्याम जो विट्ठलेश के सप्तम पुत्र हैं।

## निष्कर्ष

उपर्युक्त पदो के साक्ष्य के आधार पर हम निम्नांकित तथ्यों पर पहुँचते है —

१—अष्टछापी कवियों मे परमानन्ददास नामके एक प्रतिभासपन्न भावुक व्यक्ति हुये थे। जिन्होंने श्रीकृष्ण की बाललीला परक सरस भावपूर्ण पदो की रचना की थी। इनके पदो का संग्रह 'परमानन्दसागर' नामक हस्तलिखित प्रतियों मे आज भी सुरक्षित है।

२—जीवन के प्रभात मे वे अकिंचन थे और बाद मे भगवद् कृपा से ब्रजवासी हो गये थे।

३—वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के कृपापात्र शिष्य थे और अपने गुरु को वे भगवत्तुल्य समझते थे।

अपने गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य से समर्पण दीक्षा प्राप्त करके भावुक भक्त बन गए और सदैव के लिए ब्रजवास करने चले आए थे।

ब्रज से उन्हे अत्यन्त प्रेम था। यही उन्होने भगवान् की बाल-लीला का गान किया।

वे राम और श्याम मे अभेद बुद्धि रखते थे और भक्ति मार्ग के उदार भावुक पथिक थे।

पुष्टिमार्ग उनका अपना मनोनीत सम्प्रदाय था उसी मे दीक्षित होकर उच्चकोटि का आचार पालन करते हुए वे भगवान् की लीला का गान करते रहते थे

उपर्युक्त पदो के आधार पर उनको जीवन-वृत्त इतना थोड़ा उपलब्ध होता है कि जिज्ञासु पाठक को सतोष नही होता। अतः उसे बाध्य होकर अन्य साक्ष्यो की शरण लेनी पड़ती है।

## बाह्यसाक्ष्यः—

बाह्यसाक्ष्य के अन्तर्गत जैसा कि पहले कहा जा चुका है सर्व प्रथम "वार्ता साहित्य" आता है। वार्ता साहित्य कविवर परमानन्ददासजी के विषय मे ही क्या सभी अष्टछापी कवियों के विषय मे सर्वाधिक प्रामाणिक और अपरिहार्य आधार है। अतः आज तक जितना भी कार्य इन आठ भक्त महानुभावो के सबध मे हुआ है वह सब वार्तासाहित्य से ऋणलेकर ही। परन्तु खेद है कि स्वयं वार्ता साहित्य को बहुत समय तक विद्वानों ने प्रामाणिकता की मुद्रा से अंकित नहीं किया जबकि समस्त प्रामाणिक साम्प्रदायिक अनुसंधान इन्हीं दो ग्रन्थो-चौरासी वैष्णवन की वार्ता और 'दोसौ बावन वैष्णवन" की वार्ता पर आधारित है। इनके अतिरिक्त कवि के जीवन वृत्त के लिए बाह्य-साक्ष्य के ही अन्तर्गत साम्प्रदायिक अन्य ग्रन्थ भी प्रमाणिकता के लिए ग्राह्य है —

१—भावप्रकाश ( हरिराय जी कृत ) (चौरासी एवं दोसौ बावन वार्ताओं पर टिप्पण)

२—कसम विविजय

३—संस्कृत वार्ता मणिमाला। (श्रीनाथ भट्ट कृत )

४—अष्टसखामृत

५—बैठक चरित्र

६—प्राकट्य सिद्धान्त

७—सम्प्रदायिक पद

—श्री गोकुलनाथजी के स्फुट वचनामृत

९—हारेरायजीकृत चौरासी बोल

१ —अन्य साम्प्रदायिक भक्तों की उक्तियाँ जैसे कृष्णदास कृत वसन्तोत्सव वाला पद-आदि।

उपर्युक्त साम्प्रदायिक साहित्य के अतिरिक्त निम्नांकित समसामयिक अथवा परवर्ती किन्तु सम्प्रदायेतर ग्रन्थों में भी कवि का उल्लेख मिलता है —

१—भक्तमाल- नाभादासजी कृत तथा भक्तमाल टीका प्रियादासजी कृत।

२—भक्तनामावली-ध्रुवदास

३—नागर समुच्चय- नागरीदास। (पद प्रसंगमाला)

४—व्यासवाणी

५—भगवत रसिक की भक्त नामावली।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त वाह्यसाक्ष्य के रूप में उपलब्ध आधुनिक सामग्री में भी परमानन्ददासजी की अत्यन्त स्वल्प चर्चा निम्नांकित इतिहास-ग्रन्थों में मिलती है—

१—खोज रिपोर्ट। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा।

२—तासी का इस्त्वार दे ला लिटेरात्यूर ऐन्दुवे एन्दुस्तानी।

३—शिवसिंह सेंगर का शिवसिंह सरोज"

४—सर जार्ज ग्रियर्सन का माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान।

५—मिश्र-बन्धुओं का मिश्रबन्धु विनोद।

६—रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास।

७—डाक्टर रामकुमार वर्मा-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

—डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य।

९—कांकरोली का इतिहास।

इसके अतिरिक्त निम्नांकित ग्रन्थों में परमानन्ददासजी की यथा स्थान चर्चा है।

१—डॉ धीरेन्द्र वर्मा-अष्टछाप।

२—श्री द्वारकादास परीख-अष्टछाप की वार्ता (तीन जन्म की लीला भावना वाली) स २ ७।

३—डा दीनदयालु गुप्त-अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय।

४—प्रभुदयाल मीतल-अष्टछाप परिचय।

उपर्युक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त कतिपय पत्र-पत्रिकाओ जैसे—वल्लभीय सुधा तथा कल्याण के भक्तांक मे भी परमानन्ददासजी की चर्चा हुई है। श्रीललितकुमार देव का एक लेख पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ मे भी परमानन्ददासजी पर प्रकाशित हुआ है।

उपर्युक्त साहित्यिक सूत्रो के अतिरिक्त कविवर परमानन्ददासजी का कही भी कैसा भी कुछ भी पता नही चलता। क्योकि वे गोपीभाव के साधक एकान्त कवि थे। प्रभु गुणगान के द्वारा वे गौण रूप से लोक कल्याण के पोषक भी थे। कबीर या तुलसी की भाँति उनमे सीधी लोक कल्याण-भावना नही थी जिससे वे जन जन के कवि हो सकते। ना ही वे केशव बिहारी अथवा भूषण की भाँति किसी नरेश के राज्याश्रित कवि किंकर थे। जिससे कोई समसामयिक साहित्यकार या इतिहासकार उनका परिचय देता। वे सीधे सादे भक्त कवि और कीर्तनकार थे जिन्होने अपना सर्वस्व गुरु और गोविन्द को समर्पित कर रखा था 'श्री वल्लभ 'रतन' उन्होने बडे जतन से पाया था और उसी के माध्यम से श्री गोवर्धननाथजी के पावन चरणो मे अपने जीवन का विनियोग कर चुके थे। अत आजीवन विविध भावनाओ एव आसक्तियो द्वारा रससिक्त होकर श्रीनाथजी के सिंह द्वार पर पडे रहे।[1] अत उनके जीवन का विस्तृत परिचय देने वाला ग्रन्थ "चौरासी" वैष्णवन की वार्ता ही है और उसी पर श्री हरिरायजी का भाव-प्रकाश नामक टिप्पण और भी अधिक भावना का समावेश कर देता है।

'चौरासी' वैष्णव की वार्ता और भाव प्रकाश मे उनके विषय मे जो जो सूचनाएँ उपलब्ध होती है उनकी चर्चा करने से पूर्व वार्ता साहित्य की महत्ता पर यहाँ संक्षिप्त सा उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा। अब इस साहित्य पर प्रामाणिक शोध-प्रबन्ध छप चुका है।[2]

## वार्ता साहित्य की महत्ता—

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सम्पूर्ण अष्टछापी कवियो का पूरा परिचय इन दोनो ग्रन्थो चौरासी वैष्णवन की वार्ता और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता में मिलता है।

और इन वार्ता ग्रन्थो के आद्यप्रणेता स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य थे। ये वार्ताएँ बहुत काल (१५१२ १५८७) तक मौखिक रही। इसके उपरान्त श्रीगुसाई विट्ठलनाथजी के

१ "रस में भाते रसिक कुवर मनि परमानन्द सिंहद्वारे दोऊ।" व समर—लेखक द्वारा संपादित।

२ लेखक—डॉ हरिहरनाथ टडन—प्रकाशक वा म मन्दिर अलीगढ।

समय में (१५७२-१५४२) में ब्रज भाषा के गद्य पद्यात्मक रूप में लेख बद्ध हुईं। वार्ताओं को सर्व प्रथम लेखबद्ध करने वाले उज्जैन निवासी गोसाईंजी के सेवक कृष्ण भट्ट थे।[1] वार्ताओं को ८४ और २५२ रूप में वर्गीकृत करने वाले गोस्वामी गोकुलनाथजी और भाव प्रकाश नाम से टिप्पणी देने वाले थे प्रभु चरण श्रीहरिरायजी थे।[1]

इसप्रकार वार्ताओं की जो अपनी एक वार्ता है और शृंखला है। सम्प्रदाय में उसकी बड़ी भारी महत्ता है। ये वार्ताएँ लिपि प्रतिलिपि की एक बड़ी शृंखला को पार करती हुई वर्तमान रूप में जिस प्रकार उपलब्ध होती हैं यह एक अपने में विचारणीय समस्या है। वस्तुतः ये वार्ताएँ सम्प्रदाय के अनेक भावुक भक्तों की हैं। ये वार्ताएँ सम्प्रदाय की अपनी निज की निधिस्वरूपा हैं। इनका ज्ञान और इनकी महत्ता एवं इनके माहात्म्य का बोध सम्प्रदाय के भक्तों की सीमा में ही आबद्ध रहा। अतः सम्प्रदायेतर समाज को इनका बोध न होना स्वाभाविक था। साथ ही वार्ताओं पर सम्प्रदाय की भावात्मक दृष्टि है साहित्यिक नहीं। अतः इनकी साहित्यिक महत्ता पर सम्प्रदाय वालों ने कभी ध्यान ही नहीं दिया। न इसकी आवश्यकता ही थी। भारतीय अध्यात्म-साधना के विविध रूप रहे हैं और ये विविध सम्प्रदायों के रूपमें लम्बी शृंखलाके रूपमें जीवित रहे हैं। प्रत्येक ऐसी धार्मिक शृंखला या परम्परा एक दूसरी से निरपेक्ष रही है। अतः किसी एक शृंखला का साहित्य यदि किसी दूसरी शृंखला के साहित्य का परिचय नहीं देता तो स्वाभाविक ही है। इसी कारण वार्ता-साहित्य इतना महत्त्वपूर्ण होते हुए भी अपने समसामयिक साहित्य में चर्चा का विषय नहीं बना। और यह तथ्य किसी साहित्य की अप्रमाणिकता का कारण नहीं बनता। आज भी यह दृष्टि-गत होता है कि जो लोग किसी विशिष्ट धार्मिक परम्परा के अनुयायी हैं वे बहुधा अन्य धार्मिक-परम्पराओं के रहस्यों से अपरिचित होते हैं और उनके साहित्य से अनवगत। इसीलिए वार्ता साहित्य की चर्चा उसके समसामयिक साहित्य में उपलब्ध नहीं होती। वस्तुतः यह ग्रन्थ पुष्टि-सम्प्रदाय-दीक्षित भक्तजनों का नैत्यिक-एकान्त अध्ययन और स्वाध्याय की वस्तु होने से इसे सम्प्रदायबाह्य लोकप्रियता न मिल सकी। इसके अध्ययन से आज भी वैष्णव जन रोमांचित, गद्गद और कण्ठावरुद्ध हो जाते हैं। भावुकता के निधि स्वरूप ये दोनों ग्रन्थ कोरी वैष्णवी भावुकता से ही सन्निविष्ट नहीं हैं इसमें पुष्टि सिद्धान्त *साधना और इतिहास निरूपक गूढ़ तत्वों का सन्निवेश भी है। मध्यकालीन-भक्ति-साधना और* प्रेम साधना का विषद लेखा-जोखा यदि देखना हो तो वार्ता साहित्य का पारायण अत्यन्त अपेक्षणीय है। इनमें तत्कालीन धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का अन्तर्निहित किन्तु इतना सुस्पष्ट चित्र मिलता है कि पाठक एक भिन्न लोक में विचरण करने लगता है। वार्ताओं में तिथियों की उपेक्षा अवश्य है परन्तु वार्ता का ही तिथियों से वास्ता नहीं रखता। भगवान और उनके भक्तों की वार्ता भगवान के ही समान 'दिक्कालाद्यनवच्छिन्न' है अतः उसमें जान बूझ कर तिथियों की अवहेलना की जाय तो क्या आश्चर्य है। फिर भी प्रामाणिकता का खोजी यदि चाहे तो वार्ता में क्रमबद्ध ऐतिहासिकता प्राप्त कर सकता है। *वार्ता में आए अनेक व्यक्तियों की* अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों एवं इतिहासों में तिथि सहित चर्चा

---

१ वैष्णव [illegible] प्रस्तावना पृष्ठ [illegible] डा० [illegible] हेमी [illegible]।

२ [illegible]

मिलजाती है। वार्ता मे पाई हुई तत्कालीन राजकीय परिस्थिति का और शासकवर्ग के व्यवहार का एक सुस्पष्ट चित्र पाठक की कल्पना मे अंकित होता है, जिसको यदि पाठक चाहे तो अन्य तत्कालीन इतिहासो के आधार पर पुष्ट कर सकता है जैसे अकबर बीरबल टोडरमल तुलसीदास जहाँगीर शाहजहाँ औरंगजेब आदि ऐसे ऐतिहासिक व्यक्ति हैं जिनकी चर्चाएँ वार्ता साहित्य मे मिलती है। उसी प्रकार फैजी की "आइने अकबरी" मे उल्लिखित सामाजिक स्थिति और वार्ता मे वर्णित सामाजिक स्थिति मे कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नही होता।

फिर वार्ता ग्रन्थो की चर्चा अन्य प्रामाणिक चरित्र-ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है जैसे महाप्रभु हरिरायजी के जीवन चरित्र मे वार्तासाहित्य की पूरी चर्चा है। उसी प्रकार "निजवार्ता" "घरूवार्ता" महाप्रभु वल्लभाचार्य का "बैठक-चरित्र" आदि अनेक ग्रन्थो मे वार्ता साहित्य का उल्लेख है। अत: वस्तु विषय शैली भाषा आदि सभी दृष्टियो से वार्ता साहित्य प्रामाणिक ठहरता है। वार्ता साहित्य की महत्ता पर मुग्ध होकर सम्प्रदाय के मार्मिक ज्ञाता श्रीद्वारकादास परीख लिखते हैं।

"आ वार्ताओ मा केटलूं बधु साम्प्रदायिक अगाध रहस्य समायेलूं छे ते जणाववाने अर्थे श्री हरिराय प्रभुए दरेक वार्तानां दरेक प्रसग ऊपर मध्यम भाषा थी – अर्थात् न अत्यन्त स्पष्ट तेमज न अत्यन्त गूढ एवी भाषा मा रहस्य नू उद्घाटन कर्यु छे। अर्थात् 'इस वार्ता मे कितना सारा साम्प्रदायिक गहन रहस्य समाया हुआ है उसको समझाने के लिए श्री हरि राय जी महाप्रभु ने प्रत्येक वार्ता के प्रत्येक प्रसग पर मध्यम भाषा मे – अर्थात् न अत्यन्त स्पष्ट न अत्यन्त गूढ ऐसी भाषा मे रहस्य का उद्घाटन किया है।

तात्पर्य यह है कि वार्ता साहित्य और उस पर हरिराय जी का टिप्पण साम्प्रदायिक-रहस्य को जानने के लिये अत्यन्त उपयोगी अपरिहार्य और प्रामाणिक है। इसके बिना सम्प्रदाय के रहस्यो का गम्भीर बोध नही हो सकता। न ब्रजभाषा के उन मूर्धन्य कवियो के विषय मे जानकारी हो सकती है जिन्होने लोकोत्तर काव्य प्रतिभा से ब्रज साहित्य को उसकी अमूल्य निधि मे अपने भाव रत्नो को समाविष्ट कर उसे वैभवशाली और भी सम्पन्न बनाया।

## १–चौरासीवैष्णवन की वार्ता में परमानन्ददासजी का वृत्त

कविवर परमानन्ददासजी का जीवन परिचय "चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे इस प्रकार उपलब्ध होता है –

कवि का जन्म कन्नौज मे एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ। जन्म के दिन पिता को कही से बहुत सा द्रव्य मिला। अत उसने परमानन्दित होकर पुत्र का नाम 'परमानन्ददास' रख दिया। जातकर्म नामकरण आदि सस्कारो के हो जाने पर पिता ने यज्ञोपवीत कर दिया। बालक परमानन्ददास जन्मजात कवि थे। विद्याध्ययन द्वारा अच्छी योग्यता सपादित की और काव्य रचना करने लगे। वे कुलीन और मान्य थे शीलादि देकर शिष्य बनाते थे। इस प्रकार इनका अपना एक मडल था। कन्नौज मे एक बार अकाल पडा और परमानन्ददास की की समस्त पैतृक सपत्ति राज्य द्वारा हरण करली गई।

---

१ श्री वार्ता रहस्य भूमिका–वार्ता श्री प्रकाश

इस समय तक इनका विवाह नहीं होने पाया था अतः पिता ने इन्हें द्रव्योपार्जन करने के लिए आदेश दिया। परन्तु परमानन्ददास स्वभाव से विरक्त थे द्रव्योपार्जन में आस्था नहीं थी अतः वे द्रव्य-संग्रह के लिये कहीं नहीं गए। परन्तु इनके पिता अवश्य द्रव्यार्थ इतस्ततः भटकते रहे।

कुछ काल के उपरान्त मकर-स्नान-पर्व पर परमानन्ददासजी प्रयाग पधारे। वहाँ इनके कीर्तन और पद गान की बड़ी धूम रही। महाप्रभु वल्लभाचार्य के कपड़िया कपूर क्षत्री ने इनके पदगान की प्रशंसा सुनी और एक दिन एकादशी की रात्रि में यमुना पार कर के परमानन्ददासजी की कीर्तन मण्डली में सम्मिलित हुए। दूसरे दिन द्वादशी को "क्षत्री कपूर" ने महाप्रभु वल्लभाचार्य के समक्ष परमानन्ददासजी के पद गान की प्रशंसा की। फिर किसी एकादशी की रात्रि को जागरण के बहाने कपूर क्षत्री पुनः परमानन्ददासजी के समाज में सम्मिलित हुए और प्रभात में पुनः अपने कार्य में लग गये। उधर परमानन्ददासजी ने अंतिम प्रहर में स्वप्न देखा कि इनके समाज में सम्मिलित होने वाले कपूर क्षत्री की गोद में भगवान नवनीतप्रिय बैठे हैं और वे इनका गान श्रवण कर रहे हैं। नेत्र खुलने पर परमानन्ददासजी भगवद् विरह में व्याकुल हुए और नवनीतप्रिय जी के साक्षात् दर्शन की इच्छा हुई। अतः वे कपूर क्षत्री से मिलने को अड़ेल चल दिए और नौका से यमुना पार करके आचार्य महाप्रभु के स्थान पर आए। वहाँ पर उन्हें प्रथम बार महाप्रभु के दर्शन हुए और उसी क्षण उन्होंने उनकी शरण में आने का संकल्प कर लिया। महाप्रभु ने उन्हें भगवद् लीला गान करने का आदेश दिया। जिस पर परमानन्ददास ने कुछ विरह-परक पद गाए। महाप्रभु ने उन्हें बाल लीला-गान का आदेश दिया उस पर परमानन्ददासजी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। तब आचार्य जी ने उन्हें यमुना में स्नान कर आने को कहा और फिर नाम श्रवण[1] कराकर शरण मंत्र[2] की दीक्षा दी। दीक्षोपरान्त आचार्यजी ने परमानन्ददासजी को भागवत दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाई और तभी से परमानन्ददासजी ने बाल लीला परक पद रचना प्रारम्भ कर दी। इन्होंने गाया—

१—माई री कमलनैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना।[3]

२—मनि मय आँगन नन्द के खेलत दोऊ भैया॥

अबसे परमानन्ददासजी का यह नित्य का कार्य था कि वे श्री नवनीतप्रिय भगवान के समक्ष बाल लीला के पद बनाकर कीर्तन करते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य इन दिनों श्रीमद्भागवत पर सुबोधिनी नामक टीका लिख रहे थे अतः वे नित्य सुबोधिनी की कथा परमानन्ददासजी को सुनाते थे। सुबोधिनी के उन्हीं प्रसंगों को लेकर परमानन्ददासजी पद रचना कर देते थे।

इस प्रकार कुछ काल अड़ेल में निवास करने के उपरान्त परमानन्ददासजी की व्रज जाने की इच्छा हुई और उन्होंने उनसे व्रज चलने की प्रार्थना की।

---

१ नाम मंत्र-अष्टाक्षर मंत्र जो संप्रदाय में दीक्षित होने के समय पहले दिया जाता है।

२ शरण-मंत्र-पंचाक्षर मंत्र जिसमें प्रभु को सर्व समर्पण कराने को [illegible] का ही नाम लिया है [illegible] ने इसे शरण बताया है।

३ [illegible] परमानन्द सागर [illegible]

४ " "

यह मांगो गोपीजनवल्लभ
मानुस जनम और हरि की सेवा व्रजबसिबो दीजै मोहि सुल्लभ।

महाप्रभु उनकी प्रार्थना पर प्रयाग से व्रज को पधारे। मार्ग में वे परमानन्ददासजी के घर कन्नौज भी पधारे। वहाँ परमानन्ददासजी ने एक हरिलीला विषयक पद[1] गाया। कहते हैं आचार्य श्री इस पद को श्रवण कर तीन दिन तक देहानुसन्धान भूले रहे। उसके उपरान्त आचार्य समस्त शिष्य मंडली सहित व्रज की ओर चले। कन्नौज में परमानन्ददासजी के जितने शिष्य थे उन्हें आचार्य जी ने अपनी शरण में लेकर उन्हें ब्रह्मसम्बन्ध की दीक्षा दी और समस्त शिष्यों सहित व्रज (गोकुल) में पधारे। वहाँ आचार्य जी ने परमानन्ददास को श्री यमुना के आध्यात्मिक स्वरूप का दर्शन कराया और परमानन्ददास ने श्री यमुना विषयक अनेक पदों की रचना की। जैसे—

१—श्री यमुनाजी यह प्रसाद हौं पाऊं॥
२—श्री यमुना जी दान मोहि दीजै॥ आदि।

यहाँ भी परमानन्ददासजी गोकुल सम्बन्धी बाललीला के अनेक पदों की रचना करते रहे। उसके उपरान्त परमानन्ददासजी श्री आचार्य जी के साथ श्रीगोवर्धन पधारे और उन्होंने गिरिराज चरण (श्रीगोवर्धननाथजी) के दर्शन किये। श्रीगिरिराज में निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने अवतार लीला कुंजलीला चरणारविन्द की वंदना स्वरूप सम्बन्धी एवं ठाकुरजी के माहात्म्य सम्बन्धी अनेक पदों की रचना की और अनन्त भगवल्लीलाओं का अनुभव किया। यहीं पर आचार्य महाप्रभुजी ने परमानन्ददास के एक पद[2] के पाठ में परिवर्तन किया जिससे आचार्यजी का व्रज भाषा के प्रति आदर और उनका पाण्डित्य झलकता है।

गिरिराज में निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने अपने समकालीन वैष्णव मंडल से मिलते रहते थे। इनमें सूरदासजी कुंभनदासजी एवं रामदास आदि मुख्य थे। इसी समय उक्त प्रमुख वैष्णवों ने उनसे श्रीमत्स्वरूपजी गोपीजन एवं ग्वाल सखाओं में सर्वाधिक श्रेष्ठ प्रेम किनका है यह प्रश्न किया। इस पर परमानन्ददासजी ने गोपी प्रेम को ही आदर्श प्रेम सिद्ध किया। इस प्रकार वे बहुत समय तक श्री गोवर्धननाथजी की कीर्तन सेवा करते रहे। इसी काल में श्रीगोसाईंजी से वे गोकुल में मिलने के लिये आते जाते रहते थे। इस समय तक विट्ठलनाथजी को आचार्यत्व प्राप्त हो गया था। उनके 'मंगल मंगल व्रजभुवि मंगल के' पद पर परमानन्ददासजी ने अनेक पद बनाए थे।

एक बार जन्माष्टमी के अवसर पर रात्रि को पंचामृत स्नान के उपरान्त और दूसरे दिन नवमी को दधि कांदे के उपरान्त परमानन्ददासजी भगवल्लीला गान करते हुए भाव विभोर हो गए और उन्हें राग के स्वरों का भी अनुसन्धान नहीं रहा। चित्त की इस विशेष स्थिति में वे ऐहिक अनुभूतियों से मुक्त हो गए। वे अपनी कुटिया सुरभि कुण्ड के ऊपर आगए। थोड़ी ही देर में समस्त वैष्णव मंडल उनके चतुर्दिक एकत्र हो गया।

---

१ हरि तेरी लीला की सुधि आवै प [illegible]

१ 'कौन बात खेलिबे की बानि'—आचार्यजी ने परि[illegible] किया—'कौन बान खेलिबे की बानि

परमानन्ददास जी का यह अन्तिम समय था। अपने अन्तिम पदो में वैष्णवों को 'गुरु-भक्ति' का आदेश दिया। तदुपरान्त युगल स्वरूप की लीला में मन को अटका कर वे भगवान् की नित्य लीला में प्रवेश कर गए। उनके अग्नि संस्कार के पश्चात् गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनके विषय में कहा था—जो ये पुष्टि मार्ग में दोउ सागर[1] भए। एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिनको हृदय अगाधरस भगवल्लीला सागर है जहाँ रत्न भरे हैं।[2] आदि

चौरासीवार्ता के वर्णित कथन के आधार पर हम सूत्र रूप में निम्नांकित तथ्यों पर पहुँचते हैं —

१—परमानन्ददास जी कन्नौज के निवासी थे। वे ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे। उन्हें बचपन में अच्छी शिक्षा दीक्षा मिली थी। वे विद्वान् और कवि थे।

२—वे ब्राह्मणों के उस कुल में जन्मे थे जिसमें शिष्य बनाये जाते हैं। वे अपने साथ एक अच्छी खासी मण्डली रखते थे।

३—उन्हें उच्च कोटि के संगीत का ज्ञान था। उनकी संगीत कला से प्रभावित होकर दूर-दूर से लोग उनके गान को श्रवण करने आते थे।

४—कपूर क्षत्रिय के द्वारा उन्हें महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का परिचय मिला और वे उनकी शरण आए तथा अडेल (अर्लकपुर) में दीक्षित हुए।

५—दीक्षित होने के उपरान्त महाप्रभु के पास रहकर कीर्तन सेवा करते रहे। तबसे उन्होंने दूसरों को दीक्षा देना बन्द कर दिया था। और बाललीला परक पदों में 'सुबोधिनी' उनकी आधार शिला थी।

६—वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के साथ ब्रज में पधारे और गोकुल होते हुए श्री गोवर्धन आये तब से वे गिरिराज पर स्थित गोवर्धननाथजी के मन्दिर में निरन्तर कीर्तन सेवा करते रहे।

७—वे गिरिराज में रहते हुए वैष्णवों का सत्संग और कीर्तन करते रहते थे तथा कभी कभी गोकुल कभी नन्दगाँव आदि ब्रज के अन्य स्थानों में घूमने चले जाते थे।

—वैष्णव मण्डली में और अपने समसामयिक सूरदास कुंभनदासादि भक्तों में उनका बड़ा सम्मान था।

९—उन्हें आचार्य से बाल-लीला गान का आदेश मिला था। अतः उनका वर्ण्य विषय भगवान् की बाल-लीला ही था।

१ —वे आचार्य महाप्रभु के नित्य लीला प्रवेश के बाद वर्षों जीवित रहे और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र रहे।

११—ब्रज में उनका निवास स्थान गिरिराज की तलहटी में स्थित सुरभिकुंड पर था। और वहीं उनका देहावसान हुआ।

---

१ प्रात समै उठि करिए श्रीलछमन सुत गान।
अमर भए श्री वल्लभ प्रभु देत भक्ति दान॥

२ ताते ऐसी निश्चय हैंआरति।
मन ऐसी दृढ़मानत करि नन्द सुवन की रूप निहारति।

परमानन्द सागर पद संख्या। १. १ तथा १०१

उपर्युक्त तथ्यो के अतिरिक्त चौरासी वार्ता से परमानन्ददासजी के जन्म सवत् आदि का कुछ भी पता नहीं चल सकता। साथ ही अन्तस्साक्ष्य के आधार पर किये गये तथ्यो से उपर्युक्त तथ्यो का कहीं विरोध भी नहीं पड़ता। अन्तस्साक्ष्य म कवि ने अपने जन्म-स्थान माता पिता अथवा राजकीय अत्याचारो आदि का उल्लेख नहीं किया है। वार्ता से ही कवि का कन्नौज[1] मे उत्पन्न होना तथा अडेल मे दीक्षित होना एव भागवत दशम स्कन्ध के आधार पर भगवान की बाललीला का वर्णन करना पाया जाता है। उसके काव्य म बाललीला परक पद अधिक होने से उक्त बात की पुष्टि अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत रखे जाने वाले पदो के आधार पर भी हो जाती है। वार्ता के इन प्रसगो मे परमानन्ददास जी के जीवन के सम्बन्ध म उपर्युक्त स्थूल तथ्य ही उपलब्ध होते हैं। इनसे उनकी भक्ति भावना दैन्य काव्य प्रतिभा धार्मिक विश्वास गुरुभावना आदि का परिचय ही मिलता है। न किस सवत् मे प्रयाग पहुँचे किस समय दीक्षा प्राप्त हुई कब से व्रजवास प्रारम्भ हुआ आदि प्रश्न हल नहीं होते न सूरदासजी की भाँति अकबर से भेंट आदि अन्य कोई ऐतिहासिक घटना की चर्चा मिलती है हाँ सकेत रूप मे वार्ता म कहीं गोस्वामी विट्ठलनाथजी का 'मगल मगल व्रज भुवि मगल' वाले पद की चर्चा मिलती है वहीं यह आभास अवश्य मिलता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य नित्य लीला मे प्रविष्ट हो गए थे और नवनीत प्रियजी का जो कि आचार्य महाप्रभुजी के सेव्य थे। सेवा भार गोस्वामी विट्ठलनाथजी पर आ गया था। दूसरे, कवि की अवसान वेला मे महाप्रभुजी की उपस्थिति नहीं बल्कि गोस्वामी विट्ठलनाथजी की उपस्थिति बतलाई गई है। जोकि सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थो एव तत्कालीन-प्रमाण ग्रन्थो से भी पुष्ट होती है।

वार्ता साहित्य के अनन्तर दूसरा प्रामाणिक ग्रन्थ जोकि परमानन्ददासजी के विषय मे उल्लेख्य सामग्री देता है वह "भावप्रकाश" है। इसके रचयिता महाप्रभु हरिरायजी हैं।

२—भावप्रकाश—यह वार्ता साहित्य 'पर भावनात्मक टिप्पण" है। श्री हरिरायजी का जन्म सवत् १५४० से १७७२ तक माना जाता है। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश की प्राचीनतम प्रामाणिक प्रति जो सवत् १७२२ की लिखी हुई है सम्प्रदाय मे उपलब्ध है। इस प्रकार यदि इस सवत् को भाव प्रकाश का रचना काल मान भी लें तो जनश्रुति के अनुसार परमानन्ददास के १ २ वर्ष उपरान्त यह लिखा गया है। श्री हरिरायजी ने इसे "तीन जन्म की लीला भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता" नाम से लिखा था। कहा जाता है कि उक्त पुस्तक का सम्पादन भी हरिरायजी के जीवन काल मे ही हो गया था। महाप्रभु हरिराय जी १२५ वर्ष की दीर्घायु वाले हुए थे। ये गोस्वामी गोकुलनाथजी के बड़े भाई गोविन्द रायजी के पौत्र एव कल्याणरायजी के पुत्र थे ये प्रभुचरण गोकुलनाथजी की सेवा और शिष्यत्व मे रहते थे। ये सस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान और व्रजभाषा के मर्मज्ञ कवि थे। अत उन्होंने वार्ता साहित्य का सपादन किया और उस पर भावनात्मक टिप्पण भी लिखा। मूल वार्ता का इतना विस्तृत विवेचन वे किस प्रकार दे सके यह एक आश्चर्यमयी जिज्ञासा है जो एक भावुक वार्ता स्वाध्यायी को भी अपनी ओर बरबस खींचती है। वे स्वय कहते हैं कि 'प्रगट

[1] पदों के कन्नौजी भाषा के शब्दों के यत्र तत्र स्वाभाविक प्रयोग से और पूर्वी शैली से भी उनका पूर्व का होना पुष्ट होता है।

किये रख जाय'। और पंडित निर्भयराम भट्ट की उक्ति में 'रहस्य-भाव सर्वथा गोप्य है' इसके उपरान्त भी भावप्रकाश की रहस्यमयी भावना के किस भाँति लोकगम्य कर सके एक विचारणीय बात है।

परमानन्ददासजी की वार्ता में श्रीहरिरायजी ने उनका 'तोक सखा' के रूप मे प्राकट्य बतलाकर निकुंज लीला में सखी रूप मे उन्हे 'चन्द्रभागा' बतलाया है। और उसके उपरान्त सात वार्ता प्रसंगो में हरिराय जी ने परमानन्ददासजी का जीवन चरित विस्तार से लिखा है। भावप्रकाश मे सभी चौरासी वैष्णवो के तीन जन्मो का परिचय दिया है। अत परमानन्ददास जी के विषय में वे कहते हैं कि वे कन्नौज मे कनौजिया ब्राह्मण के यहाँ जन्मे। जिस दिन उनका जन्म हुआ था पिता को बहुत सा द्रव्य मिला अतः उनका नाम परमानन्द' पड़ गया। यही नाम उनकी जन्म पत्रिका से भी था। वे शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर पद रचना करते थे। एक बार अकाल पड़ने पर राज्य द्वारा उनका सब द्रव्य हरण कर लिया गया। उन्होंने विवाह नहीं किया। वे गान विद्या मे परम चतुर थे। प्रयाग मे कपूर क्षत्री ने उनका गान सुना और वे उन्हे आचार्य के पास लाए तभी वे महाप्रभु के शरणापन्न हुए। शरण से पूर्व भगवद् विरह परक पद बनाते थे। तबसे नवनीतप्रिय जी ने उन्हें अंगीकार किया तब से वे भगवल्लीला गान करने लगे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हे भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई और श्रीभागवत रूपी समग्र आचार्यजी ने परमानन्ददास के हृदय में स्थापित किया। अत. उनका हृदय बाल-*लीला का सागर है और पद भी उन्होंने प्रसन्न बनाये। इनके एक पद श्रवण करने से महाप्रभु* देहानुसंधान भूल गये थे। भगवान् के प्रति पहले इनका दास्यभाव था। बाद मे सख्यभाव हो गया था। इनकी भक्ति का आदर्श गोपी प्रेम था।

भावप्रकाश का तात्पर्य सूत्र रूप मे निम्नांकित है—

१—परमानन्ददासजी कन्नौज के कुलीन ब्राह्मण घराने में उत्पन्न हुए थे। और बचपन में उन्होंने अच्छी शिक्षा पाई थी।

२—प्रयाग में अडेल नामक स्थान पर महाप्रभु वल्लभाचार्य से उन्होंने दीक्षा प्राप्त की थी।

३—महाप्रभु के साथ वे ब्रज मे चले आए और बाललीला परक पदो का कीर्तन करते हुए गोवर्धन के निकट सुरभी कुण्ड पर रहने लगे।

४—उन्होंने सहस्रावधि पद रचे।

———

# अन्य साम्प्रदायिक ग्रंथों में परमानन्ददासजी का वृत्त

वार्ता साहित्य और उसके भावप्रकाश के टिप्पण के उपरान्त निम्नांकित साम्प्रदायिक ग्रन्थों में परमानन्ददासजी का उल्लेख मिलता है —

## ३—वल्लभ दिग्विजय—

इस ग्रन्थ की रचना गोस्वामी विट्ठलनाथजी के छठे पुत्र श्री यदुनाथजी ने संवत् १६५८ में की थी। यदुनाथजी का जन्म संवत् १६१५ में हुआ था। वल्लभकल्पद्रुम में इस ग्रन्थ को भी यदुनाथजी कृत माना गया है। इस ग्रन्थ की पुष्पिका में इसका रचना काल इस प्रकार दिया है —

वसु[८]—बाणे[५]—रसेन्दुमे[१६] तपस्य—सितिके रवौ।
चमत्कारिपुरे पूर्णो ग्रन्थोऽभूत्सोमगा तटे॥

अकाल गणना पद्धति के अनुसार ग्रन्थ का प्रणयन काल संवत् १६५८ ठहरता है। इसमें परमानन्ददासजी की चर्चा इस प्रकार मिलती है— "तत्र संवत् १५७२ द्विसप्तत्युत्तर पञ्चदशशताब्दे महालक्ष्म्यां गोस्वामि श्रीविट्ठलनाथानां प्रादुर्भावः समभवत्। अथ पुनर्व्रजयात्रां कृता तत्र श्रीगोपीनाथ यज्ञोपवीत महोत्सवः समभूत्। ततो जगदीशयात्रायां गङ्गासागर स्नानं कृष्णचैतन्य मिलनम्। रथ यात्रोत्सवो जातः। ततो जगदीशात् प्रत्यागमनं चाभूत्। ततो हरिद्वार यात्रा तत्र पुनरडेलपुरे समागमनमभूत्। तत्र कविराज शिक्षणं कृतम्। कान्यकुब्ज परमानन्दमनुगृह्य श्रीमार्गेऽङ्गीकारितम्।"[१]

अर्थात् 'संवत् १५७२ में महाप्रभुजी की पत्नी महालक्ष्मी के गर्भ से गोस्वामी विट्ठलनाथजी का प्रादुर्भाव हुआ फिर आचार्य जी ने व्रजयात्रा की। उसके उपरान्त श्री गोपीनाथजी का यज्ञोपवीत महोत्सव हुआ। फिर जगदीश यात्रा और गंगासागर का स्नान तथा श्रीकृष्णचैतन्य से मिलन और रथयात्रा का उत्सव पुन वहाँ से लौटना फिर हरिद्वार यात्रा तदनन्तर अडेल में आगमन। वहाँ कविराज को शिक्षा दान और कान्यकुब्ज के परमानन्ददास पर अनुग्रह करना आदि"। यदुनाथ दिग्विजय से परमानन्ददासजी की दीक्षा संवत् का ठीक से पता चल जाता है। उनका दीक्षा संवत् १५७२ ही ठहरता है।

## ४—संस्कृतवार्तामणिमाला—

इसके रचयिता श्रीनाथ भट्ट मटेश हैं। इनका समय १७ वी सदी का उत्तरार्द्ध या १८ वी सदी का पूर्वार्द्ध है।[२] श्री मटेश ने अपने पास की किसी प्राचीन वार्ता प्रति के अनुसार

१ वल्लभदिग्विजय श्रीयदुनाथजी कृत पृष्ठ ५१–५१
२ दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ता भा १ भूमिका पृष्ठ–८

८४ और २५२ वैष्णवों के १२५ प्रसगों का संस्कृत मे अनुवाद किया है। इसमे १७ की वार्ता म परमानन्ददासजी की चर्चा की है। इसम भी उन्हें कन्नौज का कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताया है। प्रयाग मे अनकापुर अड़ेल म महाप्रभु ने उन पर अनुग्रह किया और वे व्रज मे निवास करते हुए भगवान की बाल-लीला का गान करते थे।

५—भक्त सखामृत —

इसके रचयिता श्रीप्राणेश अथवा प्राणनाथ कवि थे जो वृन्दावन मे निवास करते थे। इसकी उक्त पुस्तक सवत् १७६७ की म्होटा मंदिर भूलेश्वर बबई मे मौजूद है। इसमे परमानन्ददासजी विषयक उल्लेख इस प्रकार है —

पुर कनौजिया ब्राह्मनि कान्यकुब्ज जनक निवास।
परमानन्द पुरुष सो श्री परमानन्ददास॥
बाल ब्रिरमचारी भगत ध्यान नाम भण्डार।
करयौ कीरतन हरि सदा स्वामी जस व्यौहार॥
वल्लभ सरनागति गही हरिपद नेह समाय।
स्वामी परमानन्द जू सोचे तरम सुभाय॥
जा सुख लीला पद सुनत वल्लभ भई समाधि।
तीन दीस पाछे उठे, हरि गिरिपति आराधि॥
हरि मनमाने ही रहे सो परमानन्ददास।
जो इन पद सतसंगहिं सो न परै भवपास॥
जाइ जोइ लीला भावते सोइ-सोइ हैं बरसाइ।
हरि लीला परचि रुचिर भए भगत सुखदाइ॥
श्री परमानन्ददास सो श्री विधि करै उपाय।
श्रीगनु तारै प्रभु तरै बैठि पुष्टिपथ नाव॥
स्वामी परमानन्द भरे, व्रज मे परमानन्द।
'प्रान' कवनि बल बल करै, व्रज पति आनन्दकन्द॥
[भक्त सखामृत दोहा—४६—५१]

भक्त सखामृत के लेखक प्राणेश महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के समकालीन थे। वे वृन्दावन मे रहते थे। प्राणेश इस 'सखामृत' के अन्तर्गत अष्टसखामृत चतुर्थ अमृत है। प्रस्तुत पुस्तक के प्रतिलिपिकार गोवर्धन निवासी नारायण वैष्णव थे। इसकी प्रति का संवत् १७६७ है जो म्होटा मंदिर भूलेश्वर मे सुरक्षित है।

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त निम्नांकित साम्प्रदायिक पुस्तकें ऐसी हैं जिनमें परमानन्ददासजी का उल्लेखमात्र मिलता है।

## १—बैठकचरित्र—

इस ग्रन्थ में आचार्य वल्लभ के उन ८४ स्थानों की चर्चा है जहाँ उन्होंने श्रीमद्भागवत पारायण किया और भक्ति का प्रचार किया। महाप्रभुजी ने भारत परिक्रमा और श्रीमद्भागवत पारायण के साथ-साथ अनेक भक्तों को शरण मार्ग में दीक्षित किया। छठे बैठक चरित्र में आया है—

"... "वा समय श्री आचार्यजी आप व्रजयात्रा करिवे पधारे ता समय इतने वैष्णव आपके संग हुते तिनके नाम— (१) वासुदेव छकड़ा (२) माधवेन्द्रदास कुम्हार (३) गोविंद दुबे सांचोरा ब्राह्मण (४) माधवभट्ट काश्मीरी (५) सूरदासजी (६) परमानंददासजी सो इतने वैष्णव श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के संग व्रजयात्रा करिवे गए हुते। इति श्रीआचार्यजी की मधुवन की बैठक को चरित्र समाप्त।"[1]

इस हवाले से केवल इतना ही पता लगता है कि हमारा कवि आचार्य वल्लभ के अन्तरंग परिकर में था और वह विशेष कृपापात्र होने के कारण महाप्रभुजी की यात्रा में साथ रहता था।

## २—प्राकट्य सिद्धान्त—

यह ग्रन्थ गोस्वामी विट्ठलनाथजी के चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथजी के सेवक गोपालदास ब्यावरे वाले का रचित है। इसका समय वि० सं० १७१ के आसपास है। इस ग्रन्थ में भी ८४ और २५२ वैष्णवों का परिचय है। इसमें ७१ वें वैष्णव परमानन्ददासजी का संक्षिप्त परिचय दिया हुआ है। जो वार्ता के ही आधार पर है।

अन्य ग्रन्थ—[ वैष्णवाह्निक पद ]

इसके लेखक अष्टछाप चरित्र और साहित्य के विशेषज्ञ गो० गोपिकालंकारजी भट्टजी महाराज हैं ( जन्म संवत् १८७१ ) जिनका काव्य-नाम 'रसिकदास' प्रसिद्ध है उनके वैष्णवाह्निक पद प्रसिद्ध हैं उसमें उन्होंने परमानन्ददासजी को इस क्रम से रखा है—

सूरदास सिर पाग बिराजे। कृष्णदास मुकुट मनि राजे।
ग्वालपगा परमानन्द भ्राजे। कुम्भनदास कुल्हे सिर छाजे ॥
गोविन्द स्वामी टिपारे साजे चत्रभुजदास दुमाले गाजे ॥
फेंटा नन्द भ्रगन गाजे। सेहरा छीतस्वामी सघन समाजे ॥
नित्यलीला मत हिन गाजे। दरसन अष्ट उपाधी भाजे ॥१॥

---

[1] बैठक चरित्र-हस्त लिखित प्रति-द्वारकादास परीख

एक दूसरा पद इस प्रकार है—

कुम्भनदास महा रसकंद प्रेम भरे निज परमानन्द ॥
छीतस्वामी गावैं सब कोऊ। गावै हरि गुण सूर चतु ॥
कृष्णदास श्री पावन करै। चत्रभुजदास कीर्तन उच्चरै ॥
नन्ददास सदा आनन्द । गुण गावैं स्वामी गोविन्द ॥
"रसिक" यही नयननि राखै। श्रीवल्लभ वाणी मुख भाखै ॥

एक स्थान पर वह कहते हैं—

जो जन अष्टछाप गुन गावत।
चित निरोध होत ताही छिन हरि-लीला दरसावत ॥
सूर सूर सम हृदय प्रकाशत परमानन्द आनन्द बढ़ावत।
छीतस्वामी गोविन्द गुनगन तन पुलकित मन भावत ॥
कुम्भनदास चत्रभुजदास गिरि-लीला प्रगटावत।
तरुण किशोर रसिक नन्द नन्दन पूरन भाव जनावत ॥
नन्ददास कृष्णदास रास रस उमंगित पद पद गावत।
"रसिक" दास जन कहाँ लौं बरनै श्रीवल्लभ मन भावत ॥

श्रीगोकुलनाथजी के स्फुट वचनामृत में भागवत चरित्र सेवकों के नाम लेख बद्ध हुए हैं। यह भक्त नामावली सम्भवतः पुण्यश्लोक भक्तों के प्रातः स्मरण की सुविधा के लिए है। इसमें एक स्थान पर आया है—

ईस्वरोत्तमश्लोकाख्यो राधामाधविनी तथा।
सिहनंदे चासु चतु परमानन्द सूर की ॥ [श्लोक सं० १२]

महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य एवं अष्टछाप के अन्य कवि कृष्णदास "अधिकारी" का वसन्तोत्सव वाला पद परम्परा प्रसिद्ध है। इसमें परमानन्ददासजी की चर्चा मिलती है। इससे कवि के अस्तित्व और उसके समय का ठीक पता चल जाता है। कृष्णदासजी का समय संवत् १५५१ से संवत् १६३६ तक का माना जाता है। अतः परमानन्ददासजी उनके सम सामयिक थे। उनका वसन्त वाला पद इस प्रकार है—

खेलत बसन्त विट्ठलेश राय।
निज सेवक सुख देवन हैं भाय ॥
श्री गिरधर राजा बुलाय।
श्री गोविन्दराय पिचकारी लाय ॥

× × × ×

× × × ×

तहां सूरदास गावत हैं आय ।
परमानन्द ओटें गुलाल लाय ।।
चतुर्भुज केसर माटन भराय ।
छीतस्वामी बुक्का फेंके आय ।।
नन्ददास निरख छबि कही न जाय ।
गावें कुम्भनदास बीणा बजाय ।।
सब गोविन्द बालक छिरकें आय ।

× × × ×

× × × ×

तहाँ कृष्णदास बलिहारी जाय ।
सब अपनो मनोरथ करत जाय ।।

उपर्युक्त पद मे आठो ही महानुभावों के नाम आए हैं इससे समसामयिकता स्पष्ट ध्वनित होता है और गोस्वामी द्वारकेशजी का यह छप्पय तो प्रसिद्ध है ही ।

सूरदास सो कृष्ण तोक परमानन्द जानो ।
कृष्णदास सो रिषभ छीतस्वामी सुबल बखानो ।।
अर्जुन कुम्भनदास चत्रभुजदास विशाला ।
नन्ददास सो भोज स्वामी गोविन्द श्रीदामाला ।।
अष्टछाप आठो सखा द्वारकेश परमान ।
जिनके कृत गुन गान करि होत सुजीवन प्रान ।।

गुसाईंजी के अनन्य सेवक अलीखान पठान ने अपने एक पद में चौरासी वैष्णवों को स्मरण किया है उसमे परमानन्ददासजी का भी उल्लेख है —

नहिं सूर परमानन्द सबल बासुदेव बखाणिये ।
बाबा यु बेणु कृष्ण माधवदास के गुण गाइए ।।[1]

× × × ×

कुम्भनदास महार समेत जिन प्रति प्रभु सौं सखी ।
कृष्णदास ब्यास कहिए जिन की गाहर है बखी ।।

× × × ×

ए भक्त चौरासी भये तब श्याम श्याम गाइए ।
विनती सुनो अलीखान की ब्रजधाम बसबो पाइए ।।

---

१ अलीखान कृत चौरासी वैष्णवों की नामावली नं १

### अष्टसखान की भावना—

यह ग्रन्थ भाव-संग्रह का एक अंश ज्ञात होता है। यह संग्रह द्वारकेशजी द्वारा रचित है। इसका समय संवत् १७५१ से १८   तक माना गया है। इसमें श्री परमानन्ददास सम्बन्धी संक्षिप्त उल्लेख है जो हरिरायजी के भावप्रकाश से मिलता-जुलता है। अपने ग्रन्थ अष्टसखा तथा अष्टदर्शन भावना में वे लिखते हैं—

'अष्टसखा के पद दोहा लिखते—

### प्रभुके श्रीअंग में अष्टसखा—

(१) सूर स्याम वाणी बिलसैं।
कमल नयन गोविन्द बसावैं ।।
श्रवण परमानन्द जु मानै।
चतुर्भुजदास वचन कर गावैं ।।
कुम्भनदास हृदय स्याम मानी।
छीतस्वामी कटिभाग बिराजैं ।।
उदर लीला नन्ददास पोखावैं।
कृष्णदास लीला चरण पहुचावैं ।।
ए लीला कोई पार न पावैं।
पद ललित प्रमत करि गावैं।
श्री द्वारकेश प्रभु बलि जावैं।

भगवत् शृङ्गार मे अष्टसखान की भावना—[श्री द्वारकेशजी कृत]

सूर स्याम सिर पाग बिराजै।
कृष्णदास मुकुट मणि राजै ।।
गोविन्द स्वामी टिप्पारी छाजै।
कुम्भनदास कुल्हह सिर भाजै ।।
चतुर्भुजदास सेहरो सिर राजै।
स्याम पगा परमानन्द बिराजै ।।
पैंडा नन्द धनक बन भाजै।
कुमारी छीत स्वामी बिराजै ।।
नित्य लीला भवन ही बाजै।
वर्णन करत भावरस भाजै ।।
द्वारकेश प्रभु सदा बिराजै।

# (१०) सम्प्रदायेतर अन्य ग्रन्थ

ऊपर जिस सामग्री पर विचार किया गया है वह सब सामग्री संप्रदाय से संबंधित है। उसमें परमानन्ददासजी की चर्चा कहीं थोड़ी विस्तृत और कहीं अत्यन्त संक्षेप में उपलब्ध होती है। अब यहाँ उस सामग्री पर भी विचार किया जायगा जो संप्रदायेतर है और जिसमें परमानन्ददासजी की चर्चा मिल जाती है।

## (क) भक्तमाल—

इस ग्रन्थ की रचना सुप्रसिद्ध भक्त नाभादासजी ने वि. सं. १६६ के आस-पास की थी। इसमें चतु:सम्प्रदायों के भक्तों के नामोल्लेख के अलावा अनेक विशिष्ट भक्तों का भी परिचयोल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ पर भक्तवर प्रियादासजी ने प्रायः १   वर्ष बाद टीका (कवित्त) की है। परमानन्ददासजी का उल्लेख भक्तमाल में इस प्रकार मिलता है—

ब्रज बधू रीति कलियुग बिषै परमानन्द भयौ प्रेमकेत।<br>
पौगंड बाल कैशोर, गोपलीला सब गाई॥<br>
अचरज कहा यह बात हुतो पहिलो जु सखाई।<br>
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैनिदिन॥<br>
गद्‌गद गिरा उदार स्याम सोभा भीज्यौ तन।<br>
सारंग' छाप ताकी भई श्रवन सुनत आवेस देत॥<br>
ब्रजबधू रीति कलियुग बिषै परमानन्द भयौ प्रेमकेत॥

भक्तमाल में इनके अतिरिक्त तीन अन्य परमानन्ददासों की चर्चा और की गई है उनमें एक तो श्रीधर स्वामी के गुरु सन्यासी थे। दूसरे जोशी सिंधाडी थे जिनके द्वार पर धर्म की ध्वजा फहराती थी। तीसरे टीला जी के शिष्य लाहा के पुत्र—परमानन्ददासजी अथवा विख्यात भोगी थे। हमारे परमानन्द सर्व प्रथम परमानन्द हैं बाद के ये तीन भिन्न हैं।

## (ख) भक्तनामावली—

ये ध्रुवदास रचित है। इसमें परमानन्ददासजी के विषय में लिखा है —

परमानन्द और सूर मिल गाई सब ब्रज रीत।<br>
भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीत॥

---

भक्तमाल नवल किशोर प्रेस नवीन संस्करण छप्पय ४०९ पृष्ठ, ५२

## (ग) नागरसमुच्चय—

ये ग्रन्थ कृष्णगढ़ (राजस्थान) नरेश महाराज सावंतसिंह उपनाम—नागरीदासकृत—है। इसमें उन्होंने अत्यन्त भावुकता के साथ अपने पूर्ववर्ती भक्तों की वार्ताएं की हैं। ये वार्ताएं भक्ति-सुलभ-भावुकता के कारण अतिरंजित भी हो गई हैं। परमानन्ददासजी के विषय में उसमें लिखा मिलता है —

'श्रीमद् वल्लभाचार्यजी सों काहू सेवक ने कही जु राज! श्रीवृन्दावन में एक एक वैरागी नाम परमानन्ददास कीर्तन करे हैं। राज [1] [ ताहि ] सुनिएं। तब श्री आचार्य जी गोप्य पधारके परमानन्ददास के कीर्तन सुने। तहां विरह कीर्तन सुनि के आवेश स्थित भए। तहां ते सेवक उठाइ लै प्राण—सात आठ दिन लों प्रसाद लैबे की देहकी कछु सुधि रही नहीं। अतरंग रहे। सो यह पद —

"हरि तेरी लीला की सुधि आवै।" पद प्रसंगमाला पृष्ठ—८१

एक स्थान पर नागरीदासजी ने परमानन्द आदि अष्टछापी भक्तों का बड़े आदर के साथ स्मरण करते हुए उन्हें अपने लिए व्यास सदृश आदर्श रूप माना है—

मेरे मेरे वेद व्यास।
श्री हरिवंश व्यास गदाधर परमानन्ददास॥

नागर समुच्चय में इतना ही उपलब्ध होता है कि परमानन्ददास उच्च कोटि के कीर्तनकार पद रचयिता और भावुक भक्त थे। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वैसे नागरसमुच्चय के अधिकांश वर्णन अतिरंजित हैं इसी प्रकार महाराज रघुराजसिंह कृत "रामरसिकावली' और कवि मियांसिंह कृत भक्तविनोद में परमानन्ददासजी का थोड़ा बहुत उल्लेख मिल जाता है।

## (घ) व्यासवाणी—

यह ग्रन्थ भी हरिरामजी व्यास की रचनाओं का संग्रह है। व्यासजी ओड़छा के निवासी थे। इनका कविता-काल संवत् १६२ के लगभग माना जाता है। इन्होंने अपने पदों में दो तीन स्थानों पर अपने पूर्ववर्ती कवियों का बड़े सम्मान के साथ स्मरण किया है। पदप्रसंग माला में उनके विषय में लिखा मिलता है—

'व्यास जू श्रीवृन्दावन रहे। सो एक समे श्री इकदिन निर्तक वैष्णव रसिकन की अतिसंग रस सुख समाज सब मिटि गयो। भले-भले वैष्णव अन्तरध्यान भए याते बाह्य सुख भगवत सम्बन्धी सब जात रह्यो। केवल भावना में अन्तरंग चित रहे तब लौं ही सुख। फिर बाहर चित आयो पर महा दुख व्याप्यै तब व्यास जू एक नयो पद बनाय वैष्णवन के विरह में मानत रोवत फिरत लागे। कहूं तहाँ कुञ्ज गलीन में ऐसे कितेक दिन विरह दुख में बिताए यह पद प्रसिद्ध भयो सो यह यह पद—[3]

---

१ देखो—नागर समुच्चय पृष्ठ १ ६ ज्ञानसागर प्रेस-बम्बई संस्करण सं. १९५५

२ देखो—राम रसिकावली खेमराज श्री कृष्णदास संवत् १९७१

३ पदप्रसंगमाला—ज्ञान सागर प्रेस बम्बई, संवत् १९५५

"बिहारिहिं स्वामी बिनु को पावै।
बिनु हरिवंसहि राधावल्लभ को रसरीति सुनावै॥
रूप सनातन बिनु को वृन्दावनि माधुरी पावै।
कृष्णदास बिनु, गिरधरजू को को अब लाड़ लड़ावै॥
मीराबाई बिनु, को भक्तनि अब पिता जानि उर लावै।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु, को अब बन्धु कहावै॥
परमानन्ददास बिनु को अब लीला गाइ सुनावै।
सूरदास बिनु पद रचना को कौन कविहिं करि आवै॥

× × ×

'व्यास' दास इन बिन को अब तनकी तपन बुझावै॥'

एक और स्थान पर वे भक्तों के विरह से अभिभूत होकर लिखते हैं—

सीचें साधु सु परमानन्द।
जिन हरिजू सौं हित करि जान्यौ और दुखदन्द।
जाकौं सेवक कबीर धीर अति सुमति सुर सुरानन्द॥
वे रैदास उपासक हरि के सूर-सु परमानन्द।

अपने पूर्ववर्ती भक्तों को अपने ही कुटुम्ब में समाविष्ट करते हुए व्यासजी परमानन्ददास जी को भी उसमें सम्मिलित कर लेते हैं। वे लिखते हैं—

इतनौ है सब कुटुम हमारौ।
सैन धना अरु नामा पीपा और कबीर रैदास चमारो।
रूप सनातन जीव को सेवक मधुकर भट्ट सुधारो॥
सूरदास परमानन्द मेहा मीरा भक्त बिचारो।
× × ×
हरि पद कमल स्याम स्यामा के व्यासहिं थोरी बारहिं तारो।

## (८) भक्तनामावली (भगवतरसिक कृत)

श्रीभगवतरसिक का काल १८ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इनकी भक्तनामावली में परमानन्ददासजी का उल्लेख आया है—

---

१ इसी बाद वाद व्यासजी पृष्ठ १८७

२ वही पृ० ११

हमसौं इन साधुन सो पंगति

× × =

पयदास नामादि सखी मे सबै मार्ने राम सीता को ।
सूर, मदनमोहन नरसी मसि तस्कर नवनीता को ॥
माधौदास गुसाईं तुलसी कृष्णदास परमानन्द ।
बिस्नुपुरी श्रीधर मधुसूदन पीपा गुरु रामानन्द ॥

## निष्कर्ष—

उपर्युक्त ग्रन्थों मे भाई भक्तवर परमानन्ददासजी की चर्चा के आधार पर इतना निश्चयपूर्वक रूप से कहा जा सकता है कि—

१—परमानन्ददासजी कृष्णोपासक एक उच्च कोटि के भक्त हुए थे जिन्होंने अत्यन्त ही सरल मधुर पदों मे भगवान् कृष्ण की बाललीला का गान किया है।

वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य पुष्टिमार्ग के अनुयायी और महाकवि सूरदास के समकालीन थे।

३—उनके पद बाललीला सम्बन्धी हैं। कीर्तन सेवा ही उनका काम था। सगुण भक्ति उनको प्रिय थी।

उपर्युक्त सामग्री पर एक विहगम दृष्टि डालने से हम निम्नांकित निर्भ्रान्त निष्कर्ष पर पहुँचते हैं —

१—परमानन्ददास जी कृष्णोपासक कवि और पुष्टि सम्प्रदायी थे।

२—वे सूर के सम सामयिक और वल्लभाचार्य के शिष्य थ।

३—वे पद रचना किया करते थे और भगवान के समक्ष तन्मय होकर कीर्तन।

## आधुनिक सामग्री—

उक्त सामग्री के अतिरिक्त परमानन्ददास विषयक आधुनिक सामग्री पर जब हम विचार करते हैं तो उसे भी तीन भागों मे सुविधा से बाँट सकते हैं।

१—खोज रिपोर्ट—[ना प्र स ]

२—हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ।

३—अन्य आलोचना निबन्धादि।

यहाँ उक्त तीनों श्रेणियों की आधार सामग्री पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

## (क) खोज रिपोर्ट–

नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित सन् १९२४ १९२५ एवं १९२८ की खोज रिपोर्ट The Twelth report on the search of Hindi Manuscripts में परमानन्ददासजी के विषय में लिखा है—

Parmanand Das wrote Dan Lila and Dadh Lila. He has been noticed before in S. R. 1806 – 08 No 203 He was a disciple of Vallabhacharya and flourished about 1620 A

अर्थात् परमानन्ददासजी ने दानलीला और दधिलीला की रचना की। इनका हवाला १९ ६–८ की खोज रिपोर्टों में मिल जाता है। वे वल्लभाचार्य के शिष्य थे और १६२ के आस पास तक विद्यमान थे।

उक्त खोज रिपोर्ट के अतिरिक्त १९ २ की एक और खोज रिपोर्ट है। जिसमें परमानन्द कृत दानलीला का नाम भर दिया है परन्तु इसके अतिरिक्त उसमें अन्य कोई विवरण नहीं। इस दानलीला का सुरक्षा स्थान दतिया राजकीय पुस्तकालय बतलाया गया है।

दूसरी खोज रिपोर्ट जो १९ ६ तथा १९ ८ की है उसमें परमानन्ददास कृत ध्रुव चरित्र हनुमन्नाटक तथा 'हितहरिवंश की जनमबधाई' आदि ग्रन्थ बताए गए हैं। परन्तु खोज रिपोर्टों में न तो इनके उद्धरण हैं न वहाँ परमानन्ददास का कोई विशेष परिचय है। किन्तु लेखक ने स्वयं दतियाराज पुस्तकालय में जाकर परमानन्ददासजी के नाम पर कही जाने वाली इन पुस्तकों का पता लगाया तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि वहाँ पुष्टिमार्गीय परमानन्द कवि की दानलीला नाम की कोई पुस्तक विद्यमान नहीं है न ऐसे अष्टछापी किसी कवि के किसी ग्रन्थ का संग्रह है।

वस्तुतः दतियाराज वाले परमानन्द और थे। एक परमानन्द अजयगढ़ रियासत वाले हैं जो १९ के आस-पास हुए हैं। इनका हनुमन्नाटक-दीपिका नामक ग्रन्थ है। दूसरे एक और परमानन्द हुए हैं जो पद्माकर वंशी थे। ये दतिया में सं १९१ के आस-पास रहते थे। ये साधारण श्रेणी के कवि माने गए हैं। इनके एक कवित्त का नमूना—

> कार्इ कवि प्रमल जुन्हाई-सी बिछौनन पै
> तापर जुन्हाई जुरी दीपति रही उमग आदि।

इस शैली से हमारे पुष्टिमार्गीय भक्त परमानन्ददासजी का कोई सम्बन्ध नहीं। राजकीय पुस्तकालय की सूची में कहीं पर भी उक्त पुस्तकों का उल्लेख नहीं। अतः उक्त खोज रिपोर्टों का आधार क्या है यह स्वयं खोज का विषय है। फिर नागरी प्रचारिणी सभा की १९२४-२५ की खोज रिपोर्ट में परमानन्ददासजी की उपस्थिति काल का समय भी बड़ा स्थूल और अपूर्ण है। खोज रिपोर्ट के आधार पर परमानन्ददासजी की रचनाओं की

प्रामाणिकता तो आगे चलकर की जायगी। यहाँ तो इतना ही प्रयोजन है कि विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे परमानन्ददासजी का व्यक्तित्व हुआ था और उन्होंने भक्ति-पूर्वक कृष्ण लीला का गान किया था।

## (ख) हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ—

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थो म परमानन्ददासजी का उल्लेख अत्यन्त ही संक्षिप्त और चलता सा हुआ है। प्रामाणिकता के साथ जो तथ्य अपेक्षित है वे किसी भी इतिहास ग्रन्थ म उपलब्ध नहीं। फिर भी परमानन्ददासजी का नाम उल्लेख निम्नांकित हिन्दी साहित्य के इतिहासो मे मिलता है।

(१) सर्व प्रथम फ्रेंच लेखक गार्सी द तासी का इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुए ऐंदुस्तानी' नामक फ्रेंच ग्रन्थ।[1]

(२) शिवसिंह सेंगर लिखित शिवसिंह सरोज।

(३) सर जार्ज ए ग्रियर्सन लिखित—'वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' ये तीन प्राचीन इतिहास ग्रन्थ हैं।

इसके परवर्ती हिन्दी साहित्य के इतिहासों में मिश्रबन्धुओं का मिश्रबन्धुविनोद, स्व॰राम नरेश त्रिपाठी का हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास प रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास डा॰ श्यामसुन्दरदासजी का हिन्दी भाषा और साहित्य। पं अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास श्री ब्रजरत्नदास का हिन्दी साहित्य का इतिहास डा रामकुमार वर्मा का हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास कृष्णशंकर शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास डा हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का हिन्दी साहित्य आदि।

उक्त सभी इतिहास ग्रन्थो मे परमानन्ददासजी के विषय मे अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख मिलते हैं। यहाँ पर प्रमुख इतिहास ग्रन्थो के उल्लेखो के उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

(१) गार्सी द तासी लिखित—इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ए हिन्दुस्तानी[2] मे लिखा है। परमानन्द या परमानन्ददास (स्वामी) ये रचयिता थे। (१) लोकप्रिय धार्मिक गीतो के जो आदि ग्रन्थ चौथा भाग में सम्मिलित हैं और जो निम्नलिखित रचनाओं की भांति हिन्दी में हैं। (२) दधि-माला (दही लीला) कृष्ण द्वारा मथुरा की गोपियों के साथ आगरा (१८६४ १२ छोटे अठ पेजी पृष्ठ) और (बनारस—१८६६ १ १२ पेजी पृष्ठ)

(३) मान-लीला—सर्प लीला—अर्थात् कृष्ण का बंसी सहित सॉप पर रास्ता (बनारस ८ बारह पेजी पृष्ठ)

(४) दान लीला—सतोष देने की माला कृष्ण की अन्य क्रीड़ाएँ (आगरा १८६४, १६ बारह पेजी पृष्ठ) और लाहौर १८६७ केवल ८ पृष्ठ)

१ हिन्दी अनुवाद डा लक्ष्मीसागर कृत प्रकाश वि वि

२ वही

वार्ता में परमानन्ददासजी के न तो जन्म संवत् का न स्थान का पता दिया है। केवल उनकी रचनाओं की चर्चा भर की है और वह भी प्रमाण निरपेक्ष। अतः वार्ता का उल्लेख नितान्त चलता सा और अपर्याप्त है।

(२) सर जार्ज ए. ग्रियर्सन ने अपने इतिहास 'दी मोडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' में कवि परमानन्ददासजी के विषय में लिखा है Parmanand of Braj flourished in 1550 A. D अर्थात् ब्रज के परमानन्द सन् १५५० में हुए। केवल इस एक पंक्ति के अतिरिक्त ग्रियर्सन के इतिहास में कवि के विषय में कुछ अधिक नहीं मिलता। अतः यह नहीं के बराबर है। इससे उसके अस्तित्व का प्रमाण मात्र मिलता है।

(३) शिवसिंह सरोज—यह प्राचीन इतिहास ग्रन्थ है। इसको आधार मानकर हिन्दी साहित्य के सभी परवर्ती लेखक चले हैं। इसमें दो खण्ड हैं। पूर्वार्द्ध में अकारादि क्रम से कवियों के पद अथवा कविताएँ हैं, और उत्तरार्द्ध में कवियों का संक्षिप्त विवरण। पूर्वार्द्ध में परमानन्ददासजी के गंगा विषयक पद को देकर उनकी प्रतिभा का नमूना प्रस्तुत किया गया है।[1]

शिवसिंह सरोज के उत्तरार्द्ध में लिखा है—परमानन्ददास ब्रजवासी थे। वल्लभाचार्य के शिष्य संवत् १६ १ में उपस्थित। आगे लिखा है-इनके पद राग सागरोद्भव में बहुत हैं और और इनकी गिनती अष्टछाप में है।[2]

सरोज का विवरण भी सूची जैसा है। उसमें उन्हें ब्रजवासी लिखा है और समय सं० १६ १ बताया गया है। न रचनाओं की चर्चा है न पद संख्या की बात साथ ही कवि विषयक अन्य कोई भी जिज्ञासा शान्त नहीं होती।

(४) मिश्रबन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा [कवि वर्णन—]

परमानन्द (५४) ये महावन कान्यकुब्ज ब्राह्मण कन्नौज के रहने वाले थे। इनकी भी गणना अष्टछाप में थी। ये महाराज श्री स्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनकी कविता बहुत मनोरंजक बनती थी। आपने बालचरित्र और गोपियों के प्रेम का बहुत वर्णन किया है। इनका एक पद खड़ी बोली में भी हमने देखा है। इनका रचा हुआ एक ग्रन्थ परमानन्दसागर हमारे सुनने में आया है। और इनके स्फुट छन्द बहुत से ब्रज प्रान्त में पाये जाते हैं इनका एक पद सुनकर वल्लभाचार्यजी एक बार ऐसे प्रेमोन्मत्त हो गए कि कई दिन तक देहानुसन्धान रहित

१ [illegible] देवी सुनि भरि [illegible] ।
वामन चरण कमल नख [illegible] तीरथ भारि प्रगटे [illegible]
मंजन धाम करत वे ब्राह्मी विविध ताप दुख भंजे।
तीरथराज प्रयाग प्रकट भयो जब [illegible] जमुना देवी [illegible]
[illegible]
जन अधार हरि भक्ति प्रेम रस जन परमानन्द पायो॥ [शिवसिंह सरोज पृष्ठ १६१ न. कि. प्रेस १८८३]

२ शिवसिंह सरोज नवल किशोर प्रेस [१८८३ संस्करण] पृष्ठ ४४४

रहे। इससे एवं इनके छन्दों के पढ़ने से विदित होता है कि इनमें तल्लीनता का गुण खूब था। इनके बनाये हुए परमानन्ददासजी की पद' और दानलीला' स० १९ २ की खोज मे मे मिले हैं। आपका समय १९२८ के लगभग था। ना प्र० ० प म इनका एक ग्रन्थ ध्रुव-चरित्र और मिला है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता में भी आपका वर्णन किया गया है। इनकी रचना म धाराबाहिता भी है। हम इनको 'तोष' कवि की श्रेणी मे रखेंगे।

उदाहरण—

देखोरी यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर वदन कमल-दल-लोचन-देखत चित्त सताया है॥

तथा

राधेजू हारावलि टूटी।
उरज कमल-दल माल मरगजी बाम कपोल अलक-लट छूटी।

तथा

कहा करौं बैकुण्ठहि जाय।
जहाँ नहि नन्द जहाँ न जसोदा जहँ नहि गोपी-ग्वाल न गाय॥

'मिश्रबन्धु विनोद' अपने पूर्ववर्ती आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहासों के मुकाबले में कुछ ठिकाने पर है। इसे हम हिन्दी साहित्य के इतिहासों में प्रथम और व्यवस्थित इतिहास मान सकते हैं।[1]

अत इस आधार पर उसकी त्रुटियाँ अथवा थोड़ी बहुत अप्रामाणिकता क्षम्य समझी जा सकती है। मिश्रबन्धुओं के विवरण में परमानन्ददासजी का समय गलत दिया गया है। उसी प्रकार 'तोष सखा' के साम्प्रदायिक भावनात्मक रहस्य को न समझ कर उन्हें तोष कवि की श्रेणी मे रखने की बात कह दी गई है। साथ ही ग्रन्थों की प्रामाणिकता की भी ठीक से चर्चा नहीं की गई।

## ५—हिन्दी साहित्य का इतिहास [लेखक—प० रामचन्द्र शुक्ल]

ये परमानन्ददास भी वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे और अष्टछाप में थे। ये संवत् १६ ६ के आस-पास वर्तमान थे। इनका निवास स्थान कन्नौज था। इसी से यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण अनुमान किये जाते हैं। ये अत्यन्त तन्मयता के साथ बड़ी ही सरस कविता करते थे। कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर आचार्य जी कई दिन तक तन-बदन की सुधि भूले रहे। इनके फुटकल पद कृष्ण भक्तों के मुंह से प्राय सुनने में आते हैं। इनके ८३५ पद 'परमानन्द सागर' में हैं। आदि

आचार्य शुक्लजी की गणना व्यवस्थित और प्रामाणिक काम करने वालों में है। उन्होंने सूर की जैसी सरस और व्यवस्थित आलोचना की है वैसी कृष्ण भक्त अन्य किसी कवि की नहीं। परमानन्ददासजी के विषय में सर्व विदित एक दो बातें ही उन्होंने कह कर सन्तोष कर लिया है। उनके समय निर्धारण में उन्होंने अनि परम्परा का ही आधार मान कर काम चला लिया है और उनके ग्रन्थों का कोई उल्लेख नहीं किया।

1 मिश्रबन्धु विनोद हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मंडल १९ पृ० सं० १ १ ७०
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल पृ० १९६—स० १९९०

## ६—हिन्दी भाषा और साहित्य [लेखक—श्यामसुन्दरदास]

यह इतिहास-ग्रन्थ अधिक विस्तृत नहीं परन्तु भाषा और साहित्य का एक संक्षिप्त और क्रमिक विवरण देने के कारण महत्वपूर्ण है। इसमें वल्लभाचार्य के शिष्य अष्टछाप के कवियों के नाम गिना कर सूर काव्य की संक्षिप्त समालोचना की गई है। और अन्य अष्टछापी कवियों के विषय में कहा गया है सरल शृंगारिक रचना करने वाले कृष्णदास अपने पदों से आचार्य वल्लभाचार्य को भाव मग्न करने की क्षमता रखने वाले कन्नौज निवासी परमानन्ददास अकबर के निमन्त्रण और सम्मान की परवाह न करने वाले सन्त कवि कुम्भनदास उनके पुत्र चतुर्भुजदास व्रज भूमि और व्रजेश से अनन्य भाव से प्रभावित छीत स्वामी गोवर्धन पर्वत पर कदम्ब उपवन लगाकर निवास करने वाले गायक गोविन्द स्वामी आदि अष्टछाप के शेष कवि हैं।[१]

अष्टछापी कवियों का यह विवरण कैसा भी है—प्रामाणिक है पर है अत्यन्त संक्षिप्त। इनके साहित्यिक वैभव को देखते हुए जिस प्रकार इनकी चर्चा इन विद्वानों ने की है उसे उपेक्षा पूर्ण ही कहा जायगा। यदि इन इतिहास ग्रन्थों के पूर्वलेखकों से ऐसी उपेक्षा न करी गई होती तो आज मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य पर बहुत काम हो गया होता। और हिन्दी साहित्य अधिक भी सम्पन्न होता। इन इतिहासों के माध्यमों से विद्वानों जिज्ञासुओं के ध्यान आकृष्ट करने का जितना महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए उतना हुआ नहीं ये पूर्ववर्ती आचार्य यदि थोड़ी सावधानी बरतते तो साहित्य का बहुत कुछ कल्याण हो जाता।

## ७—हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास (प्रथम खण्ड)[लेखक अयोध्यासिंह उपाध्याय]

उपाध्यायजी का इतिहास अपने समय का महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थ है। परमानन्ददासजी के विषय में उसमें लिखा है:—

'सरस कविता के लिये इस शताब्दी में अष्टछाप के वैष्णवों का विशेष स्थान है। इनमें से चार महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रमुख शिष्य थे। सूरदास कृष्णदास परमानन्ददास तथा कुम्भनदास। उसी में आगे लिखा है—

'परमानन्दजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनमें भक्ति विषयक तन्मयता बहुत थी। परमानन्दसागर नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है इनका एक पद सिक्खों के एक ग्रन्थ-आदि ग्रन्थ साहब में भी मिलता है।

---

१ देखो—हिन्दी भाषा और साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास पृष्ठ ११६ सं २००४

१ देखो—हिन्दी भाषा साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास पृष्ठ ११ सं २००४

३ तैं नर का पुरान सुनि कीना
अनपावनी भगति नहिं उपजी भूखे दान न दीना ॥
काम न बिसरचो क्रोध न बिसरचो लोभ न छूट्यो देवा।
हिंसा तो मन ते नहिं छूटी विफल भई सब सेवा ॥
बाट पारि घर मूसि बिरानो पेट भरे अपराधी।
जेहि परलोक जाय अपकीरति सोई अविद्या साधी ॥
हिंसा तो मन ते नहिं छूटी जीव दया नहिं पाली
परमानन्द साधु संगति मिलि कथा पुनीत न चाली ॥

हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास पृष्ठ—२६४

## ८—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास [लेखक—डा० रामकुमार वर्मा]

जैसा कि इस ग्रन्थ के नाम से विदित होता है यह आलोचनात्मक इतिहास है इसमें प्रमुख कवियों की भांति सूर पर तो पर्याप्त आलोचना की है पर परमानन्ददास जी के विषय में केवल इतना ही लिखा है —"इनका समय १६०७ के आसपास है। वल्लभाचार्य के प्रिय शिष्यों में से थे। इनकी रचना बड़ी मधुर और सरस हुआ करती थी इनकी कविता का विशेष गुण तन्मयता है। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

१—ध्रुव चरित्र और २—दानलीला। इनके अतिरिक्त इनके पदों का भी एक संग्रह पाया जाता है।"[1]

डा० वर्मा ने भी पूर्व इतिहासकारों के कथन की पुनरावृत्ति मात्र करदी है और और पंडिया के तथा ब्रज के अष्टछापी परमानन्दों को मिलाकर भ्रांति और भी बढ़ादी इतने संक्षिप्त और विगत तथ्य देकर भ्रांति की धारा को पोषण ही किया है स्पष्टता नहीं आ पाई।

## ९—हिन्दी साहित्य—[लेखक—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी]

इसमें द्विवेदीजी ने जहाँ अष्टछाप के कवियों का चर्चा की है वहाँ परमानन्ददास जी का परिचय इस प्रकार दिया है— परमानन्ददासजी बहुत उच्च कोटि के कवि थे। एक बार इनकी एक रचना सुन कर महाप्रभु कई दिन तक बेसुध रहे। इनकी पुस्तक 'परमानन्द सागर' प्रसिद्ध है कहते हैं कि इसमें भी सहस्रावधि पद थे। परन्तु खोज से जो प्रति प्राप्त हुई है उससे ८३५ ही पद हैं इनके पदों में भाषा का लालित्य दर्शनीय है इस प्रकार महाप्रभु वल्लभाचार्य के जिन शिष्यों को अष्टछाप की मर्यादा मिली थी। उन सब में इनका विशिष्ट व्यक्तित्व दिखाई देता है।"[2]

आचार्य द्विवेदीजी ने अपने ग्रन्थ के पाद टिप्पणी में 'परमानन्दसागर' की एक प्रति का संकेत किया है। जो कि श्री रामचन्द्र त्रिवेदी जयपुर वालों के पास है। इसका समय संवत् १६१४ लिखा है उसी प्रकार 'दानलीला' की भी चर्चा की है। इसका स्थान 'इण्डियन प्रेस दिल्ली' समय सन् १९१८ है। इन रचनाओं की प्रामाणिकताओं के विषय में चर्चा आगे की जायगी परन्तु आचार्य द्विवेदीजी ने थोड़ी सावधानियाँ बरती हैं। एक तो वे परमानन्ददासजी के जन्म संवत के पचड़े में नहीं पड़े हैं दूसरे पद संख्या भी उन्होंने नहीं दी है जितनी अबतक अनुमान थी।

## हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार—[लेखक भवानीशंकर शर्मा]

यह नवीनतम इतिहास ग्रन्थ है। इसमें भी परमानन्ददासजी को आचार्य वल्लभ का शिष्य कहा गया है और उनका समय संवत १६०६—७ के लगभग दिया है।[3]

उपर्युक्त इतिहास ग्रन्थों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी के विषय में आलोचनात्मक ग्रन्थ या फुटकर लेख पत्र पत्रिकाएं मिलती हैं वे इस प्रकार हैं —

हि० सा० का आलो० इति० पृ० ६०८ संस्क० ६१
१ देखो हि० सा० —आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० १८०—१८१
१ देखो हमारा हि० सा० और भाषा परिवार पृ० ११६

[ग] आलोचनात्मक ग्रन्थ—

१—अष्टछाप—[संपादक डा॰ धीरेन्द्र वर्मा]

इस पुस्तक के द्वारा डा॰ धीरेन्द्र वर्मा को अष्टछापी कवियों के सर्वप्रथम साहित्यिक अध्ययन करने कराने के श्रीगणेश का श्रेय प्राप्त है। डा॰ वर्मा ने इस पुस्तक को संपादित कर साहित्यकों का ध्यान इस साम्प्रदायिक साहित्य निधियों की ओर आकर्षित किया। इसमें मूल वार्ताओं के आधार पर आठों महानुभावों की जीवनियाँ संग्रहीत की गई हैं। अध्ययन की दृष्टि से साहित्य क्षेत्र में अष्टछाप का प्रथम पदार्पण होने से इसमें कटु मधुर शैली की आलोचना के दर्शन नहीं होते। तथापि आधुनिक समय में जितना भी ब्रज साहित्य सम्बन्धी काम हुआ है वह डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा का इसी प्रारम्भिक प्रेरणा का परिणाम है अतः इसका आभार साहित्यकों को स्वीकार करना ही पड़ता है। परमानन्ददासजी की चर्चा इसमें वार्ता रूप में हो गई है उस पर विशेष महत्त्व नहीं दिया गया।

२—प्राचीन वार्ता रहस्य द्वितीय भाग—यह पुस्तक वि॰ संवत् १९९ में विद्या विभाग कांकरौली द्वारा प्रकाशित की गई है। इसमें अष्टछाप का परिचय भावप्रकाश के टिप्पण सहित दिया गया है। साथ ही ऐतिहासिक विवेचन गुजराती में दिया गया है। संपादक हैं—वार्ता के मर्मज्ञ विद्वान श्रीद्वारकादासजी परीख। इसमें परमानन्ददासजी की वार्ता भावप्रकाश के आधार पर महत्त्वपूर्ण होगई। परन्तु तर्क शैली पर उनके वस्तु मधुर का स्थान सम्बन्धी तथ्य नहीं मिलते। आधार भूमि सर्वतोभावेन 'वार्ता' ही है। विषय विवेचन के लिये थोड़ा बहुत सहारा अन्यत्र से भी लिया गया है। इस पुस्तक के सम्पादन के लिये परीखजी ने पाटन वाली वार्ता की १६५२ वाली प्रति का सहारा लिया है प्रारम्भ में श्री कण्ठमणि शास्त्री द्वारा लिखित वक्तव्य भी बड़ा उपयोगी है।

३—अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण—यह पुस्तक डा॰ दीनदयालु गुप्त की की बतलाई जाती है पर वह देखने में नहीं आई। कहा जाता है उसमें भी परमानन्ददासजी की चर्चा है।

४—अष्टछाप परिचय—[लेखक—श्री परीख एवं मीतल] इसमें परमानन्ददासजी का परिचय ६—१ पृष्ठों में दिया है। और बाद में नमूने के तौर पर उनके १ ४ पद भी दे दिये गए हैं यह वार्ता के आधार पर ही है। इसमें पहली बार थोड़ी आलोचनात्मक शैली को अपनाया गया है। परमानन्ददासजी पर कहीं स्वतन्त्र ग्रन्थ न होने से आवश्यकता की जांच के पचड़े में मीतलजी नहीं पड़े हैं। इसका परिवर्धित संस्करण संवत् २ ९ में प्रकाशित हो चुका है।

५—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय [लेखक डा॰ दीनदयालु गुप्त]

यह ग्रन्थ दो भागों में है। प्रथम भाग में अष्टछाप के प्रत्येक कवि के काव्य की पृष्ठ भूमि दी गई है फिर 'अध्ययन के सूत्र' नामक दूसरे अध्याय में अष्टछाप कवियों की जीवनी तथा रचनाओं के अध्ययन की आधारभूत सामग्री की चर्चा की गई है। इसी अध्याय में अष्टछाप काव्य व कवियों की जीवनी तथा रचना में आत्म विषयक उल्लेख दिये गए हैं।

प्राचीन बाह्य आधार तथा आधुनिक बाह्य आधारो के अन्तर्गत अष्टछाप संबंधी सभी सामग्री की चर्चा है। फिर तृतीय अध्याय म सभी कवियो की जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। चौथे अध्याय मे इन कवियो की रचनाओ पर विचार किया गया है।

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' के द्वितीय भाग मे गुप्त जी ने दार्शनिक विचार संबंधी अष्टछापी कवियों के पद देते हुए उनकी संक्षिप्त आलोचना की है और भक्ति तथा काव्य समीक्षा दी है परन्तु इन समस्त प्रयत्नो म उनका आधार वार्ता और भाव प्रधान ही रहा है।

हाँ इतना अवश्य है कि डा गुप्त ने अपने ग्रन्थ के दोनो खण्डों मे अष्टछाप के सभी कवियो की चर्चा करके आगे आने वाले समानधर्माओ के लिये पथ प्रशस्त अवश्य बना दिया है। इस पुस्तक मे परमानन्ददासजी की चर्चा पहली बार आधुनिक आलोचना पद्धति के मानदण्डानुसार उपलब्ध होती है पर अत्यन्त संक्षेप मे। क्योंकि डा गुप्त को तो आठो ही कवि महानुभावो पर कार्य करना था।

६—अष्टछाप पदावली [लेखक—डा सोमनाथ गुप्त]

इसमे केवल पद ही पद है। परमानन्ददासजी की जीवनी के संबंध म कुछ भी नहीं। पद संख्या लगभग १२१ के है।

निम्नांकित इतिहास पुस्तको म परमानन्ददासजी का उल्लेख मात्र मिलता है—

१—हिन्दी साहित्य की भूमिका आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदी पृष्ठ ९२ पर।

२—हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास-कृष्णशंकर शुक्ल पृष्ठ—१८ पर।

३—हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास—श्रीगुलाबराय पृष्ठ ६३ ६४ संस्करण १४।

४—हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक चर्चा-श्री गयाराम पृष्ठ-५ ।

५—व्रजमाधुरी सार [सम्पादक वियोगी हरि पृष्ठ ११६] परमानन्ददास पर उनका एक अपना छप्पय भी है।[1]

इस प्रकार परमानन्ददासजी पर आज तक कोई स्वतन्त्र पुस्तक अथवा परमानन्दसागर का कोई सुसम्पादित संस्करण प्रकाश मे नहीं आ सका है। जो कुछ भी उपलब्ध होता है उसम अष्टछाप नाम से अन्य सातो कवियो से समन्वित वार्ता के आधार पर चर्चा मिलती है। अतः उनके विषय म तर्कपूर्ण निर्णय और विश्वसनीय निष्कर्षों के साथ एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का अभाव ही बना रहा। और यह अभाव सूर के अतिरिक्त लगभग सभी अष्टछापी कवियो के साथ है।

१ व्रजनिधानन्दन [illegible] कवि पद-रचना बेली
गिरिधारन श्रीनाथ सखा वल्लभ पद प्रेमी ॥
[illegible] मधुरता भूषन
[illegible] आदि [illegible] भूषन ॥
[illegible] प्रेम मैं [illegible] के [illegible]
मुनि अष्टछाप को भक्त कवि श्री परमानन्ददास

२ [illegible] संस्करण [illegible] विद्याविभाग [illegible] संस्करण निकला है जिनमें १४ [illegible] के लगभग पद है।

फुटकल लेख तथा निबन्धादि —

फुटकल लेखो और आलोचनात्मक निबन्धो के रूप मे हमे निम्नांकित सामग्री उपलब्ध होती है।

१—सुधा—पौषी पूर्णिमा स० १९९१ लखनऊ। संपादक दुलारेलाल भार्गव [परमानन्ददास और परमानन्दसागर]

इसमे उनकी संक्षिप्त जीवनी और परमानन्दसागर की प्रतियो का हवाला है।

२—कल्याण-गीता प्रेस गोरखपुर—भक्त-चरितांक' जीवनी भाग-पृष्ठ-१२३-१२४

३—'जसलाम' [मासिक] संपादक कृष्णदास कलकत्ता-संवत् १९८९-९१ इसमे केवल पद मात्र उपलब्ध होते है।

४—ब्रजभूमि सुधा-वर्ष १ भाग १ २, ३ ४ इसमे भी पद संग्रह उपलब्ध होता है।

५—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ [परमानन्दसागर परमानन्ददास] लेखक प्रभुदयाल मित्तल।

इस लेख मे उनकी जीवनी को वार्ता पर ही आधारित है—की गई है। इन समस्त को तर्क सहित निर्णय करने की चेष्टा की गई है परमानन्दसागरो की प्रतियो का परिचय एव पद संकलन का क्रम भी दिया है इसके उपरात पदो का काव्य सौष्ठव दिखाने के लिए ४१ ४२ पद नमूने के तौर पर दिए है।

उपर्युक्त भारतीय विद्वानो के परमानन्ददास विषयक सदर्भों के अतिरिक्त एक दो विदेशी विद्वानो ने भी भारतीय साहित्य की चर्चा करते समय परमानन्ददासजी का नामोल्लेख किया है। उनमे ग्रियर्सन का नाम ऊपर दिया जा चुका है। यहाँ 'एफ ई की' का जिन्होने 'हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर' लिखी है उद्धरण दिया जाता है।

The desciples of V llabhacharya who are included in the Ashtachhap were Surdas Krishnadas Payahari Pa manodDas and Kumbhtandas.

अर्थात् वल्लभाचार्य के शिष्य जो अष्टछाप मे गिने जाते है—सूरदास कृष्णदास परमानन्ददास और कुम्भनदास थे।

यहाँ यह नही भूलना चाहिए कि F E Keay महोदय ने भूल से कृष्णदास पयहारी को भी अष्टछाप मे सम्मिलित कर लिया है। और अष्टछाप वाले कृष्णदास तथा पयहारी कृष्णदास को एक ही समझ लिया है।

## सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री के आधार पर कवि के जीवन वृत्त की रूपरेखा

उपर्युक्त समस्त सदर्भों से परमानन्ददास का अस्तित्व उनका वल्लभाचार्य का शिष्य होना तथा उनका उच्च कोटि का भक्त एवं गायक होना आदि तो निस्संदिग्ध रूप से पुष्ट हो जाता है परन्तु उनका जन्म संवत् दीक्षा काल पद संख्या पद रचना काल तथा गोलोकवास आदि की प्रामाणिक तिथियाँ नही मिलती। न उनके ग्रन्थो के संबंध मे उपर्युक्त सभी उद्धरण एक मत है। अत उनकी जीवनी के प्रामाणिक और निश्चित तथ्यो के

आधार पर उनके चरित्र निर्णय की आवश्यकता बनी रह जाती है। अतः अन्तर्बाह्य साक्ष्यों का समन्वय कर उनके जीवन चरित की रूप रेखा का स्वरूप कुछ इस प्रकार निर्णय किया जा सकेगा।

## १-(क) जाति—

परमानन्ददासजी एक कुलीन अकिंचन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। यद्यपि स्वयं उन्होंने अपनी जाति का कहीं उल्लेख नहीं किया है परन्तु आचार्य की शरण में आने से पूर्व वे सेवक बनाते थे। और दीक्षा देने का अधिकार कुलीन तपस्वी ब्राह्मणों को ही होता है। अतः वे अवश्य उच्च कुलोद्भव ब्राह्मण थे जो शिष्य बनाया करते थे।[1] परन्तु कवि को अपने विप्रत्व अथवा कुलीनत्व पर लेशमात्र अभिमान नहीं था। वह तो भगवद्भक्ति को ही कुलीनता का लक्षण मानता था।[2]

## (ख) नाम—

*कवि का नाम परमानन्द था। बड़े होकर और शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर लेने पर जब* सेवकों को दीक्षा देने लगे तो 'परमानन्द स्वामी' कहलाने लगे।[3] परन्तु इनके काव्य में सर्वत्र परमानन्ददास परमानन्द परमानन्द स्वामी दासपरमानन्द नाम मिलते हैं।

(ग) स्थान—परमानन्ददासजी का स्थान कान्यकुब्ज अथवा 'कन्नौज' है। इस बात की पुष्टि 'वार्ता' से और 'भावप्रकाश' से तथा सभी इतिहास ग्रन्थों से होती है। परमानन्ददासजी यहीं से मकर स्नानार्थ प्रयाग गये थे। कन्नौज से प्रयाग का सीधा मार्ग है भी। यह स्थान प्राचीन काल से विद्वानों का स्थान रहता आया है। नैषधकार श्रीहर्ष यहीं के राज पंडित थे। जैसा कि डा० गुप्त ने अपने ग्रन्थ अष्टछाप वल्लभसम्प्रदाय में लिखा है कि वल्लभाचार्यजी की यहाँ पर बैठक अभी तक विद्यमान है। परन्तु इस बैठक का उल्लेख बैठक चरित्र में नहीं। अतः कन्नौज महाप्रभुजी के विराजने मात्र का ही स्थान रहा है। *बैठक नहीं होगी भी क्यों उन्होंने गन्याह पारायण किये हैं* यह स्थान अथवा परमानन्ददासजी के घर का पता अब नहीं लगता है। इस विषय में डा० हरिहरनाथ टंडन का कथन है कि परमानन्ददासजी का स्थान कन्नौज में एक जैन मुहल्ले में अवस्थित है। और आज भी वहाँ मकरोत्सव के दिन बड़ा उत्सव मनाया जाता है। उनके वंश के लोग वहाँ अब तक विद्यमान हैं परन्तु लेखक को वहाँ पता लगाने पर भी परमानन्ददासजी का निवास स्थान प्रामाणिक रूप से नहीं मिला न उनके किसी वंशज का। फिर भी वार्ता के आधार पर उनका स्थान कन्नौज ही मानना पड़ता है। क्योंकि सम्प्रदाय में भी इनके जन्म स्थान विषयक मान्यताएँ इससे विरुद्ध नहीं।

---

[1] उद्धृत— वार्ता-प्रसंग १-वाके परमानन्ददास ने जो सेवक किये हते तिन सबन को श्री आचार्यजी के पास नाम दिवायो सो महाराज। — — सो यह बात इनके नाम सेवा प्रकार चरित्र पृष्ठ ११

[2] ? कन्नौज रामानन्दजी जो हरि भजु ? बार

[3] श्री महाराज पर तो स्वामी कहा न स्वामी बने हतो। पृष्ठ ११

## (घ) माता पिता तथा कुटुम्ब—

परमानन्ददासजी के माता-पिता का नाम अज्ञात है। कवि ने भी स्वयं उनकी कहीं चर्चा नहीं की है। सम्भवतः कवि जन्म से ही विरक्तमना और भक्त स्वभाव का था। माता-पिता अथवा कुटुम्ब से उसे अनुराग नहीं था। ग्राम निर्धन परिवार के बालक माता-पिता से अनुराग रखते भी नहीं। अतः कवि ने कहीं भी अपने जननी-जनक के प्रति आभार नहीं प्रकट किया है अपितु पिता के धनोपार्जन करने और विवाह करने के आग्रह को सादर ठुकराते हुए कवि ने इन्द्रियों से विराग ही प्रकट किया है।[1] साथ ही आत्मनिवेदन परक एक पद में उसने माता-पिता और कुटुम्ब के प्रति अनास्था प्रकट की है।[2] अतः कवि के भाई बन्धु और कुटुम्बी तो होने ही चाहिए परन्तु उनसे उसे कोई वास्ता नहीं था।

## (ङ) जन्मकाल—

सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार परमानन्ददासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य से १५ वर्ष छोटे थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य का प्रादुर्भाव संवत् १५३५ वैशाख कृष्णा एकादशी को निर्विवाद रूप से मान लिया गया है। अतः परमानन्ददासजी का जन्म संवत् १५५० होना चाहिये। सम्प्रदाय में उनका जन्म मास मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष तथा तिथि सप्तमी सोमवार माना गया है।[3] यह तिथि विद्याविभाग कांकरौली की खोज के अनुसार है। यह मत इससे भी पुष्ट होता है कि परमानन्ददासजी जब महाप्रभु से अडैल में दीक्षित हुए तब वे युवक अथवा वयस्क होंगे क्योंकि सम्प्रदाय में अपनी दीक्षा से पूर्व कन्नौज में शिष्य बनाया करते थे। वे कवित्व में प्रवीणता भी प्राप्त कर चुके थे और उनकी विवाह योग्य अवस्था भी आ चुकी थी। शिष्यों के साथ घर से चले आये थे। यदुनाथ दिग्विजय में आचार्य से उनकी भेंट संवत् १५७७ में बतलायी गई है। १५५० संवत् को यदि उनका जन्म काल मान लिया जाय तो उस समय वे २७ वर्ष के सिद्ध होते हैं। यह समय विवाह, दीक्षा अथवा काव्य रचना सभी के लिये बहुत उचित ठहरता है फिर यह समय आचार्यजी के अडैल निवास का भी सिद्ध हो जाता है। और उनकी भेंट आचार्य जी से अडैल में ही हुई थी। अतः परमानन्ददासजी का जन्म संवत् १५५० के आस पास ही मानना उचित है। हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी इतिहास ग्रन्थों में उनका समय १५९६ या १५९७ दिया गया है। निस्सन्देह यह उनका अष्टछाप में सम्मिलित होने का काल है इस समय वे ब्रज में स्वामी रूप से रह रहे थे। परन्तु १५९६ या १५९७ उनका जन्म संवत् मानना या उनकी उपस्थिति का इतना स्थूल अनुमान देना उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि यह तो निश्चय ही है कि वे आचार्य वल्लभ के शिष्य थे और आचार्यजी का तिरोधान संवत् १५८७ में हो गया था। अतः तिरोधान के वर्षों पश्चात् वे किसी शिष्य को दीक्षा दे यह नितान्त असंगत सा प्रतीत होता है।

---

१ अष्टछाप-कांकरौली पृष्ठ ३४, संवत् १९९७

२ तुम तजि कौन सनेही कीजै

का न कोई अपनो स्वजन है बिना स्वारथ हेत ॥

बन्धु सहोदर मीत न दारा है सब स्वारथ के हेत । [illegible]

३ अष्टछाप में वर्णित है कि परमानन्ददासजी और गुसाईंजी विट्ठलनाथजी के पूर्व [illegible] दोनों का जन्म दिन एक ही था। गोकुलनाथजी का जन्मोत्सव मंडान में मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी को [illegible] रहे [illegible] देखो—अष्टछाप [illegible]।

महाप्रभु जी की बैठक मडस

परमानन्ददासजी का दीक्षा स्थान

ग्रियर्सन[1] सरोजकार,[2] मिश्रबन्धु,[3] आचार्य शुक्लजी[4] डा. रामकुमार वर्मा[5] सभी समवेत स्वर से १६ १ १६ ६ या १६ ७ उनका उपस्थिति काल मानते हैं। इतना स्थूल उपस्थिति काल देने से इन विद्वानों का क्या तात्पर्य हो सकता था ज्ञात नहीं। यदि स्थूल अनुमान से ही काम लेना हो तो उनके लम्बे जीवन काल के किसी भी संवत् का उल्लेख किया जा सकता है। पता नहीं किस भ्रान्त स्रोत ने इस भ्रान्त-परम्परा को जन्म दिया और गतानुगतिकान्यायेन सभी इतिहासकार इन्हीं संवतों की स्थूल चर्चा करते चले गये। जो भी हो हमें विद्याविभाग कांकरोली की खोज से निर्णीत संवत् मान्य है। यही संवत् वार्ता साहित्य के मर्मज्ञ स्वर्गीय द्वारकादास परीख भी स्वीकार करते हैं।

## (च) शैशव—

जन्म के दिन कवि के माता-पिता को बहुत सा द्रव्य मिल चुका था अतः निर्धनता गायब हो चुकी थी। कवि को माता पिता का भरपूर दुलार और प्यार मिला था। वह एक भाग्यवान बालक समझा गया था। जिसके जन्म पर घर में आनन्द वर्षा हुई थी। अतः अनुमान है परमानन्ददासजी का शैशव बड़े चैन से बीता होगा। उनके जातकर्म नामकरण यज्ञोपवीत आदि संस्कार बड़े धूमधाम से हुए थे। पिता ने बड़ा उत्सव किया था।[6]

## (छ) शिक्षा दीक्षा—

कविवर परमानन्ददासजी विद्या सुसम्पन्न थे। भावप्रकाश में लिखा है कि पाछे ये बड़े योग्य भए। यह 'योग्य' शब्द उनकी विद्या बुद्धि शिक्षा-दीक्षा सभी का द्योतक है। व्यवहार-निपुणता काव्य चातुर्य और मुदत्व उनमें सभी गुण था। साथ ही वे उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे। काव्य-रचना-नैपुण्य की चर्चा उनके सभी उल्लेख-कर्ताओं ने स्वीकार की है।[7] उनके पदों के सौष्ठव अभिव्यंजना शैली शब्दावली आदि से उनका संस्कृत हिन्दी और तत्कालीन लोक भाषा के ज्ञान का पता चल जाता है। भावतन्मयता की दृष्टि से उनके अनेक पद तुलसी की विनय पत्रिका की टक्कर के हैं।[8]

---

१ दी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर-कवि संख्या ३
२ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४४८
३ मिश्रबंधु विनोद पृ०-२७१ २७७ २७८
४ हिन्दी साहित्य का इतिहास पं. रामचन्द्र शुक्ल पृ. १९२
५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डा. रामकुमार वर्मा पृ. २६४ [नवीन संस्करण]
६ अष्टछाप कांकरौली सं. २०१८ परमानंददासजी की वार्ता, पृ०-२१
७ सो परमानन्ददास ने अपने पद कीर्तन बहोत सगरे किये। सो गाँव गाँव में प्रसिद्ध भये। परमानन्ददास गान विद्या में परम चतुर हते। अष्टछाप कांकरौली पृ०-६

परमेस्वरी देवी सुनि बन्दे देवि गने।
वामन चरन कमल-धन रंजित-वारि धरे॥
बालन दास करन जे भागी विविध ताप दुख भंगे।
तीरथराज प्रयाग सकल भो जन बसी जमुना देखी संगे॥
अमोरख दास दरस कत नारद वाल्मीक श्रुत गाये।
ता बनाय हरि भक्ति प्रेम रस जन परमानन्द पाये॥ [१ अं ६ ६]

## ब) गृह-त्याग—

यद्यपि परमानन्ददासजी के गृह-त्याग का स्पष्ट उल्लेख नहीं है फिर भी मकर संक्रान्ति पर त्रिवेणी स्नान के लिये जब उन्होंने प्रयाग को प्रस्थान किया तब से कन्नौज उनसे सदैव के लिये स्वत: ही छूट गया और वे प्रयाग में ही रहने लगे थे। और यहीं पर वे सत्संग करते हुये दैन्य परक पदों की रचना किया करते थे।[१]

## (स) गुरु संबंधी उल्लेख—

परमानन्ददासजी ने अपने दीक्षा गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया है —

"श्री वल्लभ रतन जतन करि पायौ। (पद ६६७)

यहाँ 'जतन करि पायौ' से उनकी आध्यात्मिक तीव्र जिज्ञासा और उसके लिये हद प्रयत्नशील का पता चलता है। इस अन्तःसाक्ष्य के अतिरिक्त उनके अन्य किसी विद्यागुरु और उनकी शिक्षा का कैसा भी उल्लेख कहीं नहीं मिलता। अतः अपने जन्म स्थान कन्नौज में ही उन्होंने शिक्षा प्राप्त की होगी। यही अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी काव्य कला और संगीत कला की विदग्धता संगीत-योग्यता एवं कवित्व और भक्ति भावना का सभी ने उल्लेख किया है। अपने मण्डल में वे 'स्वामी' के नाम से पुकारे जाते थे।[२]

## (द) विवाह——

परमानन्ददासजी ने विवाह नहीं किया। घर का संचित द्रव्य राज्य द्वारा हरण कर लिये जाने पर और पिता के द्रव्योपार्जन के लिये आग्रह करने पर उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि मेरे तो ब्याह करनों नाहीं है। और तुमने इतनो द्रव्य कैसो करिकें कहा पुरुषार्थ कियो तुमरो द्रव्य गयौ ही नहीं। अतः वे द्रव्योपार्जन को जीवन का पुरुषार्थ नहीं मानते थे। उन्होंने अपने माता-पिता से कह दिया था कि वे बैठे-बैठे भगवद् भजन करें। वे (परमानन्ददास) उनके भरण पोषण का दायित्व लेते हैं। एक कर्तव्य-निष्ठ पुत्र की भाँति उन्होंने आजीवन अपने माता-पिता को धार्मिक कष्ट नहीं होने दिया। और भगवद्भक्ति की ओट में उन्होंने अपने पुत्र धर्म से पलायन भी नहीं किया। भगवद्भक्ति के प्रभाव से जो धार्मिक सौन्दर्य

मनमान के मर्मज्ञ विद्वान श्रीप्रभुदयालजी का कथन है कि इस समय परमानन्ददासजी ने अपना निवास स्थान मारवाड़ आश्रम के निकट ही बनाया था। और सर्वप्रथम वहीं कभी मथुरा से उनकी भेंट हुई थी। श्री मीतलजी की धारणा का आधार क्या है यह तो विदित नहीं पर सौभाग्यसिंहजी का कथन है कि उस युग में व्रज-मथुरा का संबंध अड़ैल आश्रम से रहा ही था। आज भी वहाँ देखने से भक्तों के आने के चिह्न स्पष्ट परिलक्षित होते हैं।

धर्म का जीवन चरित्र प्रमुख रूप उस पद की पंक्तियों से मेल खाता है। दोनों 'वार्ताओं' में इतना स्पष्ट है कि अन्य अष्टछापी कवियों में नहीं मिलता कि विठ्ठलनाथजी की भक्ति कि समय में वे कोई सागर सभी का परिचय स्पष्ट हो जाता है

१ सो स्वामी कहावते और सेवक हू करते अष्टछाप पृष्ठ ५६

२ अष्टछाप पृ० ८

उन्हें कृपा उन्होंने इसकी यत्र तत्र चर्चा भी की है।[1] परन्तु पिता ने उनकी इस वैराग्य वृत्ति को पसन्द नहीं किया और आगे नाम न चलने की चिन्ता भी प्रकट की। पिता की विरोधिता नहीं छूटी थी।[2] परन्तु परमानन्ददासजी अपने निश्चय पर आजीवन अटल रहे और अविवाहित रहे। अपनी चरम वैराग्य वृत्ति में कवि ने कहीं भी नारी निन्दा नहीं की है। परन्तु संयम में निष्कम्प निष्ठा और विरक्ति में अटूट दृढ़ता उनके जन्मजात गुण थे।

## (ट) सम्प्रदाय में दीक्षा—

एक बार अपने समाज सहित परमानन्ददासजी मकर पर्व पर प्रयाग पधारे। वहाँ उनका नित्य कीर्तन एवं सत्संग क्रम पद गान के साथ चलता रहता था। उच्च कोटि के गायक के रूप में उनकी ख्याति फैल चुकी थी। अतः उनके पदों को श्रवण करने के लिए दूर-दूर से लोग एकत्र हो जाते थे उन्हीं दिनों अड़ैल में महाप्रभु वल्लभाचार्य निवास करते थे उनके असवाबिये क्षत्री कपूर ने जब परमानन्ददासजी के गान की प्रशंसा सुनी तब वे भी उनके कीर्तन को सुनने के लिये लालायित हुए और रात्रि में अवकाश पाने पर पहुँच गये। कपूर क्षत्री कीर्तन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। कीर्तन-श्रवण का उनका यह क्रम कई मास चलता रहा।[3] एक ग्रीष्मकालीन एकादशी को स्वप्न में भगवान् की प्रेरणा जानकर वे अड़ैल आगए। महाप्रभु वल्लभाचार्य के दर्शन कर वे अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्हीं के पास रहने लगे। अब तक वे समवविरह परक पद गाते थे।[4] महाप्रभु ने उन्हें भगवान् की बाल-लीला-गान का

---

१ [क] जाके लिए वधूहि नहीं जाँचे कुच करिहें नहीं काले।
[ख] ताहि निहाल करें परमानन्द मेरु धीर को आवे। प्रति प० सं० ८८
२ अष्टछाप पृ० ५-६
३ अष्टछाप काँकरौली पृ० ९२
४ चौरासी वैष्णव वार्ता सम्पादक श्री द्वारकादास परीख, पृ० ७७१ व ७७०
[क] ब्रज के बिरही लोग बिचारे।
बिनु गोपाल ठगे से ठाढ़े अति दुर्बल तनु हारे।
मात जसोदा पंथ निहारति निरखत साँझ सकारे।
जो कोउ कान्ह कान्ह कहि टेरत अँखियन बहत पनारे।
यह मथुरा काजर की रेखा जो निकसे सो कारे।
परमानन्द स्वामी बिनु ऐसे जैसे चन्द बिना सब तारे। [पद ९१६]
[ख] गोकुल सबै गोपाल उपासी।
[ग] कौन रसिक है इन बातन कौ। [पद ९२०]
[घ] माई को मिलवै नन्दकिसोरै। [पद ९ ७]

उपर्युक्त पदों से स्पष्ट ध्वनित होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के यहाँ शरण में जाने से पूर्व भी वे भगवान् कृष्ण भक्त थे और अत्यन्त विरक्त भाव से तन्मय होकर सद्गुरु की खोज में थे। ब्रजवास की इच्छा और उपासना के लिये गोपी भाव का आदर्श लेकर चलने वाले परमानन्ददास अधिकतर मानसविरहकातर रहा करते थे। "जनम जाम जियत नहीं सूरत क्यों राख्यौ मौरे अवधि में उनकी परम विरहासक्ति झलकती है। साथ ही 'किशोरीकृष्ण मिलौं'। में संसार से पूर्ण वितृष्णा और विरसता झलकती है। पदों में 'माई' तथा सखी आदि शब्द उनके गोपीभाव के द्योतक हैं।

## (ग) गिरिराज पहुँचना–

यहाँ से वे गोवर्धन पधारे और गिरिराज पर भगवान् के दर्शन के लिये गोवर्धननाथजी के दिव्य स्वरूप से आसक्त होकर एक पद¹ गाया। जिसमें अवतार लीला निकुञ्ज लीला चरण वरना स्वरूपवर्णन और माहात्म्य सबका समावेश था। गिरिराज में निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने सहस्रावधि पदों की रचना की। यहाँ आठों दर्शनों में वे कीर्तन किया करते थे। इस प्रकार उनका चित्त वहीं गिरिराज में रम गया। और जैसा कि आगे चलकर विदित होगा उन्होंने अपना स्थायी निवास गिरिराज की तलहटी में सुरभि कुण्ड पर बना लिया था। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के पर्यटन पर चले जाने और अन्त में काशी में सन्यास ले लेने पर भी वे वहीं (ब्रज में) रहे और गोस्वामी विट्ठलनाथजी के आचार्य पद पर अभिषिक्त होने पर वे बराबर उनमें गुरुतुल्य पूज्य बुद्धि रखते हुए भगवत् कीर्तन किया करते रहे। समय-समय पर वे नवनीतप्रियजी के दर्शन के लिये वे गोकुल भी जाया करते थे पर उनका अधिकांश समय सुरभिकुण्ड पर गिरिराज के नीचे श्रीनाथजी के सान्निध्य में ही व्यतीत होता था

## (घ) अष्टछाप में स्थापना–

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने जब श्रीनाथजी की सेवा का प्रबन्ध बड़े विधि विधान से प्रारम्भ किया और नित्य की अष्टदर्शन व्यवस्था में कीर्तन सेवा को महत्व दिया तब संवत् १६ २ में उन्होंने अपने पिता के चार सेवकों को और अपने चार शिष्यों को मिला कर एक अष्ट लीलागायक-मण्डल की स्थापना की। जो 'अष्टसखा' या 'अष्टछापकारे' कहे जाते थे। बाद में ये लोग साहित्य जगत में अष्टछाप तथा और सम्प्रदाय में 'अष्टसखा' अथवा अष्टछाप वारे के नाम से प्रसिद्ध हुए। महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार सेवकों में सूरदास परमानन्ददास कुंभनदास एवं कृष्णदास हैं। सूरदास एवं परमानन्ददासजी तो अपने सहस्रावधि पदों के कारण और भगवल्लीला-सागर को हृदयंगम किये रहने के कारण 'सागर' कहलाये। गोविन्दस्वामी नन्ददास छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास गुसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। ये आठों महानुभाव दिन में प्रत्येक दर्शन पर और कभी कभी अपने-अपने ओसरे पर नित्य नए पद बनाकर कीर्तन सेवा किया करते थे।

## (ङ) गोलोकवास–

साम्प्रदायिक वार्ता ग्रन्थों से पता है कि सूरदासजी के देहावसान के समय परमानन्ददासजी तथा अन्य वैष्णव मण्डल गोस्वामी विट्ठलनाथजी के साथ चन्द्रसरोवर पर उपस्थित थे। सूर का निधन संवत् १६४ सिद्ध हो चुका है। अतः परमानन्ददासजी का निधन संवत् १६४ के उपरान्त ही होना चाहिए। परमानन्ददासजी के निधन काल पर

१ परमानन्ददास कृत
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] (पद १)

गोस्वामी विट्ठलनाथजी की भी उपस्थिति वार्ता तथा उनके चरित्र ग्रन्थों[1] से पुष्ट होती है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी का नित्य लीला प्रवेश संवत् १६४२ में माना जाता है। अतः परमानन्ददासजी का नित्य लीला प्रवेश सं. १६४१ के लगभग निश्चित होना चाहिए।

इन दिनों गोस्वामी विट्ठलनाथजी स्थायी रूप से गोकुल में रहते थे। एक बार जन्माष्टमी के दिन गोस्वामी विट्ठलनाथजी परमानन्ददासजी को लेकर गोकुल आए और वहाँ जन्माष्टमी बड़े समारोह के साथ मनाई गई। श्रीनवनीतप्रियजी के समक्ष उन्होंने बधाई के पद गाए। दूसरे दिन नवमी को भी दधिकांदौं महोत्सव मनाया गया। इस महोत्सव में परमानन्ददासजी अत्यन्त आनन्द विभोर होकर नाचने लगे। प्रेम की इस अति रेकावस्था में उन्हें तनसंस्कार का भी ज्ञान न रहा। उनकी इस अवस्था को देखकर गोसाईंजी ने कहा— 'जो वैसे कुम्भनदास की किशोर लीला में निरोध भयो तैसो बाललीला में परमानन्ददास की निरोध भयौ'।[2] थोड़ी देर बाद उनकी चेतना सावधान हुई। और उसी दिन गुसाईंजी उन्हें लेकर पुनः गोवर्धन चले आए। वह समय राजभोग का था। राजभोग के दर्शन करने पर गोवर्धननाथजी के समक्ष वे पुनः देहानुसंधान भूल कर भाव-मग्न हो गए। कुछ काल पश्चात् मूर्च्छा दूर होने पर वे सुरभीकुण्ड पर अपने स्थान 'श्याम तमाल' पर चले आए और उन्होंने मौन धारण कर लिया। गोस्वामी विट्ठलनाथजी को जब यह पता चला कि परमानन्ददासजी भाव अत्यन्त विकल हैं और बोलते नहीं तो वे राजभोगादि से निवृत्त होकर उनके पास गए। और उनके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा— 'परमानन्ददास! हम तिहारे मनकी जानत हैं जो अब तिहारो दर्शन दुर्लभ भयो।' गुसाईंजी के ये शब्द सुनकर एक क्षण के लिए परमानन्ददासजी ने आँखें खोलीं और गाया—

> प्रीति तौ नन्दनन्दन सौं कीजै।
> सपति विपति परे प्रतिपालै कृपा करैं तो जीजै॥
> परम उदार चतुर चिंतामणि सेवा सुमिरन मानै॥
> चरन कमल की छाया राखे अंतरगति की जानै॥
> वेद पुराण भागवत भाखें दियो भगत को भावै॥
> परमानन्द इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पावै॥ (पद ८६१)

उस समय किसी वैष्णव ने परमानन्ददासजी से पूछा— परमानन्ददासजी! मोकों कछू साधन बताओ सो मैं करों। परमानन्ददासजी ने अत्यन्त संतुष्ट होकर उत्तर दिया

१ श्री गोवर्धनेश का इतिहास तथा गोस्वामी विट्ठलनाथजी का चरित्र पृ. ८।

२ बानी तिहारो कर हुलस गयो।
तुमो तो ज्योंहि तिहारे होन बालक नहु मिलि करयो।
धाक करत वेद मनत मुनि बोलत मतो काक ऐनो॥
निरखि निरखि मुख कमल नैन की आनन्द प्रेम हियो हुलसो॥
नेन अधीन तनन गोपी जन गोकुल बनि आनन्द न री।
परमानन्द मन कर आनन्द सुख अनन्त भयो ज्ञान गयो॥ [पद १२]

३ [illegible] पृ. ११ म [illegible] वही।

४ वही पृ. १९।

आदेश दिया। इस पर जब कवि ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो आचार्य ने उन्हें दीक्षा दी और श्रीमद्भागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाई। बस तभी कवि के हृदय में भगवान् की बाललीला स्फुरित हुई और उन्होंने भी आचार्यजी के समक्ष बाल लीला के पद गाये।[1] और इसके उपरान्त तो उनका हृदय लीला-सागर ही बन गया। एक प्रकार से आचार्यजी ने उनके हृदय में भगवल्लीला का विशाल सागर ही स्थापित कर दिया। जिससे अनन्त पदों का प्रादुर्भाव गिरि-निर्झर की भाँति प्रारम्भ हो गया। इसी को लक्ष्य करके उनके नित्य लीला प्रवेश के उपरान्त गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने उनके लिए आदर कहा था कि "सूरदास और परमानन्ददास ये दोउ सागर भए" आदि।

## (ठ) परमानन्ददासजी का संप्रदाय प्रवेश—

कवि का दीक्षा-समय यदुनाथ दिग्विजय के अनुसार १५७७ ठहरता है। श्रीयदुनाथजीकृत श्री वल्लभदिग्विजय में लिखा है कि संवत् १५७२ में श्रीमहाप्रभुजी की गोद से गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी का प्राकट्य हुआ। फिर व्रज-यात्रा की गई। उसके उपरान्त श्री गोपीनाथजी का यज्ञोपवीत महोत्सव हुआ फिर जगदीश यात्रा में गंगासागर पर पहुँचना फिर हरिद्वार यात्रा फिर अडैल आगमन हुआ। यहीं कान्यकुब्ज वाले परमानन्दजी पर अनुग्रह हुआ। और उन्हें भगवल्लीला का दर्शन कराया।

दीक्षा के उपरान्त कुछ काल तक परमानन्ददासजी अडैल में महाप्रभु की सेवा में रहकर श्री नवनीतप्रियजी के कीर्तन गाते रहे। ये नित्य नये कीर्तन [पद] अधिकांशतः सुबोधिनीजी के आधार पर थे क्योंकि आचार्यजी नित्य श्री सुबोधिनी [टीका] लिखकर परमानन्ददासजी

---

१ माई री कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना।
बाल लीला गावति सब गोकुल की ललना॥

लाल के बसन बरन कमल मन मनि लसि ज्योती॥
कुंचित कच मकराकृति लटि लटकें पग मोती॥
बाल बगुल भरि कमल पानि मेलत मुख मांही।
अपनी प्रतिबिंब देखि पुनि पुनि मुसकाही॥
रानी जसुमति के सुख पुंज निरख निरख लाही।
परमानन्द स्वामी गोपाल सुत सनेह नाही॥ [पद ४५]

२ परमानन्ददासजी के स्तव बाल के इस तथ्य को डॉ. हरवंशलालजी ने भी मान्य किया है। देखो—सूर और उनका साहित्य, पृ-४८।

३ वल्लभ दिग्विजय पृ-२८, २९।

एवं ग्रन्य वैष्णवों के समक्ष उसकी कथा कहा करते थे। इस प्रकार मोक्षारण माहात्म्यादि को जो विशिष्ट प्रसंग महाप्रभु आचार्यजी के मुख से परमानन्ददासजी ने सुने वही प्रसंग परमानन्ददासजी अभिव्यक्त कर देते थे। उदाहरण के लिए उनका 'परमानन्ददास को ठाकुर पिस्ता मायो मेर' सुबोधिनी के आधार पर है।[1]

## (छ) व्रज के लिये प्रस्थान—

अड़ैल में इस प्रकार रहते हुए कुछ काल उपरांत परमानन्ददासजी ने महाप्रभु के समक्ष व्रज बसने की इच्छा प्रकट की।[2] अतः आचार्यजी ने सब सेवकों के साथ प्रस्थान किया। प्रयाग से मथुरा जाते हुए कन्नौज पड़ता था अतः परमानन्ददासजी ने महाप्रभु को अपने घर भी पधराया था। वहीं उन्होंने व्रजलीला विषयक प्रसिद्ध पद[3] आचार्यजी को सुनाया था। कहते हैं इस पद को सुनते ही आचार्यजी प्रेम विभोर होकर देहानुसन्धान भूल गये और तीन दिन उपरांत उनकी चेतना लौटी। तदुपरांत परमानन्ददासजी ने अपने स्वामीपने में जितने सेवक बनाए थे आचार्यजी ने उन सब को दीक्षा देकर सम्प्रदाय में सम्मिलित कर लिया और उनके साथ व्रज की ओर पधारे।[4]

## (ज) गोकुलागमन—

व्रज में आकर सर्वप्रथम आचार्यजी और परमानन्ददासजी की शिष्य मण्डली गोकुल में ठहरी। यहाँ पर परमानन्ददासजी ने भगवान् की गोकुल लीला संबंधी अनेक पदों की रचना की।

---

१ देखो—सुबोधिनी दशम स्कंध-प्रमेय प्रकरण अध्याय १९।

"कृष्ण कालो महिम्नस्य निर्जिताम्भो मयाद् वनम्।" के श्लोक के स्पष्टीकरण में सुबोधिनी में 'च' के प्रयोग पर आचार्यजी लिखते हैं कि "चकारात्मने हरिरात्मबलस्वलीलार्थं गृहीत्वा स्थापो वा" के भाव को ही परमानन्ददासजी ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

लाल की काहे गुड़ मोहि मन मेर।
और भावे काहि सब कमरिया कामो क्या मन हेर।
और भावे काहि वैभव को अग्नी संग सखा सब हेर
परमानन्ददास को ठाकुर पिस्ता मायो मेर ॥ [पद १ १]

२ यह माँगी गोपीजनवल्लभ।
मानुस जन्म और हरि की सेवा व्रज बसिबो मोहि दीजे सुल्लभ।

३ हरि तेरी लीला की सुधि आवै।
कमल नैन मन मोहन मूरति मन मन चित्र बनावै
एक बार जाहि मिलत मया करि सो कैसे बिसरावै।
मुख मुसिक्यान बंक अवलोकनि चाल मनोहर भावै ॥
कबहुँक निविड़ तिमिर आलिंगित कबहुक पिक सुर गावै।
कबहुँक सम्भ्रम क्वासि-क्वासि कहि संगहि उठि धावै ॥
कबहुँक नैन मूंद मूरि अन्तरगति बनि माला पहरावै
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गमावै ॥ [पद ६१ ]

४ वार्ता—वही संस्करण पृ०-८१४

## (ख) गिरिराज पहुँचना–

यहाँ से वे गोवर्धन पधारे और गिरिराज पर भगवान् के दर्शन के लिये गोवर्धननाथजी के दिव्य स्वरूप में आसक्त होकर एक पद[1] गाया। जिसमें अवतार लीला निकुञ्ज लीला अथवा स्वरूपवर्णन और माहात्म्य सबका समावेश था। गिरिराज में निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने सहस्त्रावधि पदों की रचना की। यहाँ आठों दर्शनों में वे कीर्तन सेवा करते थे। इस प्रकार उनका चित्त यहीं गिरिराज में रम गया। और ऐसा कि आगे चलकर विदित होता उन्होंने अपना स्थायी निवास गिरिराज की तलहटी में सुरभि कुण्ड पर बना लिया था। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के पर्यटन पर चले जाने और अन्त में काशी में उन्माद के लेने पर भी वे यहीं (ब्रज में) रहे और गोस्वामी विट्ठलनाथजी के आचार्य पद पर अभिषिक्त होने पर वे बराबर उनमें गुरुतुल्य पूज्य बुद्धि रखते हुए यथावत् कीर्तन सेवा करते रहे। समय-समय पर भी नवनीतप्रियजी के दर्शन के लिये वे गोकुल भी जाया करते थे पर उनका अधिकांश समय सुरभिकुण्ड पर गिरिराज के नीचे श्रीनाथजी के सान्निध्य में ही व्यतीत होता था

## (ग) अष्टछाप में स्थापना–

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने जब श्रीनाथजी की सेवा का सम्मान बड़े विधि विधान से आरम्भ किया और नित्य की अष्टदर्शन व्यवस्था में कीर्तन सेवा को महत्व दिया तब संवत् १६ २ में उन्होंने अपने पिता के चार सेवकों को और अपने चार शिष्यों को मिला कर एक अष्ट लीलात्मक-मंडल की स्थापना की। जो 'अष्टसखा' या 'अष्टकाव्यकारें' कहे जाते थे। बाद में ये लोग साहित्य जगत में अष्टछाप तथा और सम्प्रदाय में 'अष्टसखा' अथवा 'अष्टकाव्य कारें' के नाम से प्रसिद्ध हुए। महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार सेवकों में सूरदास परमानन्ददास कुंभनदास एवं कृष्णदास हैं। सूरदास एवं परमानन्ददासजी तो अपने सहस्त्रावधि पदों के कारण और भगवल्लीला-सागर को हृदयंगम किये रहने के कारण 'सागर' कहलाये। गोविन्दस्वामी नन्ददास छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास गुसाईं विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। ये आठों महानुभाव दिन में प्रत्येक दर्शन पर और कभी कभी अपने-अपने ओसरे पर नित्य नए पद बनाकर कीर्तन सेवा किया करते थे।

## (घ) गोलोकवास–

साम्प्रदायिक चरित ग्रन्थों में आया है कि सूरदासजी के देहावसान के समय परमानन्ददासजी तथा अन्य वैष्णव मंडल गोस्वामी विट्ठलनाथजी के साथ चन्द्रसरोवर पर उपस्थित था। सूर का निधन संवत् १६४ सिद्ध हो चुका है। अतः परमानन्ददासजी का निधन संवत् १६४ के उपरान्त ही होना चाहिए। परमानन्ददासजी के निधन काल पर

१ मोहन-नन्दराय कुमार
ब्रज बसु गिरि व बासहु नहि बिन अनुसार।
अधम चरन सरोज मेरी स्याम घन गोपाल।
नार कुटुम्ब सब बरनि चरन नन सिंगार।
कमलाय नवीन किशोर लीला हेत मथर देन।
परमानन्द प्रभु हरि निरखि लोचन नैन। [पद ५]

गोस्वामी विट्ठलनाथजी की भी उपस्थिति वार्ता तथा उनके चरित्र ग्रन्थों[1] से पुष्ट होती है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी का नित्य लीला प्रवेश संवत् १६४२ में माना जाता है। अतः परमानन्ददासजी का नित्य लीला प्रवेश सं० १६४१ के लगभग निश्चित होना चाहिए।

इन दिनों गोस्वामी विट्ठलनाथजी स्थायी रूप से गोकुल में रहते थे। एक बार जन्माष्टमी के दिन गोस्वामी विट्ठलनाथजी परमानन्ददासजी को लेकर गोकुल आए और वहाँ जन्माष्टमी बड़े समारोह के साथ मनाई गई। श्रीनवनीतप्रियजी के समक्ष उन्होंने बधाई के पद गाए।[2] दूसरे दिन नवमी को भी दधिकांदो महोत्सव मनाया गया। इस महोत्सव में परमानन्ददासजी अत्यन्त आनन्द विभोर होकर नाचने लगे। प्रेम की इस अतिरेकावस्था में उन्हें तालस्वर का भी ज्ञान न रहा। उनकी इस अवस्था को देखकर गोसाईंजी ने कहा— 'जो जैसे कुम्भनदास की किशोर लीला में निरोध भयौ तैसो बाललीला में परमानन्ददास कौ निरोध भयौ'।[3] थोड़ी देर बाद उनकी चेतना सावधान हुई। और उसी दिन गुसांईजी उन्हें लेकर पुनः गोवर्धन चले आए। यह समय राजभोग का था। राजभोग के दर्शन करने पर गोवर्धननाथजी के समक्ष वे पुनः देहानुसंधान भूल कर भाव-मग्न हो गए। कुछ काल पश्चात् मूर्च्छा दूर होने पर वे सुरभीकुण्ड पर अपने स्थान 'श्याम तमाल' पर चले आए और उन्होंने मौन धारण कर लिया। गोस्वामी विट्ठलनाथजी को जब यह पता चला कि परमानन्ददासजी भाव अत्यन्त विकल हैं और बोलते नहीं तो वे राजभोगादि से निवृत्त होकर उनके पास गए। और उनके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा— 'परमानन्ददास! हम तिहारे मनकी जानत हैं जो अब तिहारो रहन दुर्लभ भयौ।' गुसाईंजी के ये शब्द सुनकर एक क्षण के लिए परमानन्ददासजी ने आँखें खोलीं और गाया —

> प्रीति तौ नन्दनन्दन सौं कीजै।
> सम्पति विपति परे प्रतिपालै कृपा करै तो जीजै॥
> परम उदार चतुर चिंतामणि सेवा सुमिरन मानै॥
> चरन कमल की छाया राखै अन्तरगति की जानै॥
> वेद पुरान भागवत भाखै कियौ भक्त कौ भावै॥
> परमानन्द इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पावै॥ (पद ८६१)

उस समय किसी वैष्णव ने परमानन्ददासजी से पूछा— परमानन्ददासजी! मोकों कछु साधन बताओ सो मैं करों। परमानन्ददासजी ने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उत्तर दिया

1 दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, गोस्वामी विट्ठलनाथजी का चरित्र पृ०—८।
2 रानी तिहारो घर सुबस बसो।
जाको हो अनौखा तिहारे ढोटा नन्दा यह निति बरसो।
कोक कहत देव मनन मुनि कोउन नाचो नारद जैसो॥
निरखि निरखि मुख कमल नैन की आनन्द प्रेम पियो तुलसी॥
देन असीस सकल गोपी जन कोउक अति आनन्द लसी।
परमानन्द नन्द घर आनन्द सुख सागर भयौ अनत जसी॥ [पद १२]
3 चौ० वै० वा० पृ० ११ स० द्वारकादास परीख
4 वही पृ० १६।

“या बात को मन लगाय के सुनोगे तो फल-सिद्धि होवेगी। और उन्होंने आचार्यजी श्रीगोस्वामीजी और उनके सातों बालकों की वन्दना का पद गाया।

प्रात काल उठि करिए श्री लछमनसुत गान।
प्रगट भए श्री वल्लभ प्रभु देत भगति को दान॥
श्री विट्ठलेश महाप्रभु रूप ही सुजान॥
श्री गिरिधर श्री गिरिधर उदय भयो भान॥
श्री गोविन्द आनन्दकन्द कहा बरनौ गुन गान।
श्री बालकृष्ण बालकेलि रूप ही सुजान॥
श्री गोकुलनाथ प्रगट कियो मारग बखान॥
श्री रघुनाथलाल देखि मन्मथ हू लजान॥
श्री यदुनाथ महाप्रभु पूरन भगवान।
श्री घनश्याम पूरन काम पोथी में ध्यान[1]॥
पाण्डुरंग विट्ठलेश प्रभु करत वेद गान।
परमानन्द निरखि लीला थके सुर विमान॥ [पद ७१७]

फिर गोसाईं विट्ठलनाथजी के यह पूछने पर कि इस समय उनका मन कहाँ है। उन्होंने अपना अन्तिम पद इस प्रकार गाया—

राधे बैठी तिलक सँवारति।
मृगनैनी कुसुमायुध डरि नन्दसुवन को रूप विचारति।
दरपन हाथ सिंगार बनावति बासर जुग सम डारति॥
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सों हरि संग केलि सम्हारति॥
बासरगत रजनी ब्रज आवत मिलत गोवर्धन धारी।
परमानन्द स्वामी के संगम मुदित भई ब्रजनारी॥[2] (पद २०१)

और इस प्रकार युगल स्वरूप की लीला में मन लगाकर परमानन्ददासजी ने अपना यह पञ्चभूतात्मक नश्वर शरीर छोड़कर नित्य लीला में प्रवेश किया।

---

1 श्री घनश्याम पूरनकाम पोथी में ध्यान पंक्ति से सिद्ध हो जाता है कि श्रीघनश्यामजी का जन्म परमानन्ददासजी के सामने हो गया था। श्री घनश्यामजी का जन्म संवत् १६२८ प्रसिद्ध है। अतः परमानन्ददासजी के निधन के अवसर पर इनकी पोथी [illegible] ११ [illegible] रही होगी।

2 इस प्रकार इनकी मृत्यु का समय भाद्र कृष्ण ६ की संवत् १६४१ आता है। इनका देहावसान संध्या समय होना चाहिए [illegible] "बासरगत रजनी ब्रज आवत मिलत गोवर्धन धारी" यह पंक्ति [illegible] का संकेत देती है और अन्तिम पंक्ति "परमानन्द स्वामी के संगम मुदित भई ब्रजनारी" से इनका गोलोकगमन सिद्ध होता है। गीता में कहा है
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ [गीता ८-६]
के अनुसार अन्त समय [illegible] परमानन्ददासजी का [illegible] जीवन की संध्या तक [illegible] होकर [illegible] था। [illegible] होकर गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने [illegible] की थी।

### (घ) 'सागर' की उपाधि—

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने इनके नित्यलीला में चले जाने पर उन्हें 'सागर' कहकर परमानन्द सागर के साथ कहा था ये दोऊ सागर भए। परमानन्ददासजी की वार्ता से प्रकट होता है कि सूरदासजी और कुम्भनदासजी उनसे पूर्व गोलोकवासी हो चुके थे।

### (ङ) व्यक्तित्व एवं स्वभाव—

वार्ता तथा पदों पर गहरी दृष्टि डालने से परमानन्ददासजी के अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व का आभास मिल जाता है।

उनका अन्तरंग व्यक्तित्व बड़ा गम्भीर भावुक सत्य-निष्ठ एवं कर्तव्य परायण था। उच्च कोटि के भक्त कवि गायक एवं कीर्तनकार होते हुए भी उन्हें गर्व छू तक नहीं गया था।

देह अभिमान सबै मिटि जैहै अरु विषयन कौ सम।

वे भगवद्भक्ति को ही सर्वोपरि समझते थे। उनके सामने विद्या बुद्धि कुल जाति वैभव एवं कलानिपुणता आदि सब व्यर्थ हैं। उनका एक मात्र सिद्धान्त था।

सोई कुलीन दास परमानन्द जो हरि सन्मुख धाई।

कर्तव्य-निष्ठा तो उनकी इसी बात से घोतित होती है कि वे अपने माता-पिता को अपने भरोसे निश्चिन्त भगवद्भजन करने की सलाह देते हैं। वे उस पुत्र की भाँति नहीं जो वैराग्य का ढोंग रच कर कर्तव्य से पलायन कर जाय और अपने दायित्व की पूरता न समझे। कवि अत्यन्त शीलवान भी था। उसके शील स्वभाव और सहिष्णुता का परिचय उनके एक पद से भली भाँति चल जाता है एक स्थान पर वह कहते हैं —

ब्रज बसि बोलि सबन के सहिए।
जो कोउ भली बुरी कहै लाखों नन्दनन्दन रस सहिए॥
अपने गृह मते की बातें काहू सों नहीं कहिए।
परमानन्द प्रभु के गुन गावत आनन्द प्रेम बढ़ैए॥

उपर्युक्त पद से परमानन्दजी की न केवल सहिष्णुता और ऐकान्तिकता का ही परिचय मिलता है अपितु ऐसा भी विदित होता है कि अन्य सम्प्रदायवादी तथा वैष्णवेतर मतावलम्बी उनका उपहास करते थे तथा भली बुरी सुनाते थे। परन्तु भगवद्गुणगान में मस्त परमानन्द को इनकी परवाह नहीं थी और वे मीरां की भाँति लोक बाह्य एकान्त प्रेम के रसिक हो गए थे।

### बाह्य व्यक्तित्व—

वे सुन्दर गौर वर्णन के समझने पद के भारी भरकम होने चाहिए।[1] उनका कण्ठ स्वर तीव्र और मधुर था भव्य और विशाल ललाट पर ऊर्ध्व पुण्ड्र शोभा देता था। दोनों

---

[1] कंठित तन पीन बनि भुजन बरवराद तन भारी। प ख। [पद १ २]
परमानन्द प्रभु ना आरे की भाँति मुँह बारी॥

बन सकता है। क्योंकि सूर और परमानन्द दीक्षा के उपरान्त ही 'सूर और परमानन्द' के रूप में आँके गए हैं। आचार्य वल्लभ के कर स्पर्श से ही वे कंचन हुए अतः अष्टछापिया का और विशेषकर इन दो सागरों का महत्त्व तो संप्रदाय में दीक्षोपरांत ही है। दीक्षा के उपरान्त वार्ता में लीलापरक सहस्रावधि पदों का उल्लेख मिलता है। उनकी रचना की प्रामाणिकता पर तो यथास्थान विचार किया ही जायगा यहाँ तो इतना ही तात्पर्य है कि वे एक उच्च कोटि के भक्त कवि कीर्तनकार और गायक थे। उनके पदों का लालित्य सुगठित शब्द-योजना और भाव प्रवणता देखते ही बनती है।

## (फ) सारंग छाप—

कहा जाता है कि कवि की छाप 'सारंग' थी परन्तु ऐसे पद कदाचित् ही उनके सागर में दिखाई पड़ते हैं। हाँ 'सारंग' राग में उनके अधिकांश पद उपलब्ध होते हैं। इसी से उनकी छाप सारंग समझली गई। परन्तु कवि को सारंग राग प्रिय था। सारंग मध्याह्न का राग होता है जिसमें शान्त रस की प्रधानता होती है। इससे भी परमानन्ददासजी की मनोवृत्ति का अच्छा आभास मिल जाता है। वैसे कवि ने सर्वत्र अपने नाम की ही छाप रखी है। भक्तमाल के 'सारंग' छाप वाली भई से विद्वानों ने यह अनुमान लगा लिया है। वस्तुतः कवि का कीर्तन का ओसरा मध्याह्न में राजभोग के समय पड़ता था। वह समय सारंग राग का होता है। अतः स्वाभाविक है कि कवि के अनेक पद सारंग राग में ही होने चाहिए।

## (ब) ब्रज के प्रति प्रेम—

कवि को ब्रजवास अतिशय प्रिय था। वह कहता है— 'जाइए वह देस जहाँ नंद नंदन भेंटिए।' गाली खाकर भी वह ब्रज नहीं छोड़ना चाहता था। उसका मत है 'ब्रजबसि बोल सबन के सहिए।' कवि को ब्रज के सामने वैकुण्ठ भी तुच्छ लगता है।

कहा करौं वैकुण्ठहि जाय।
जहँ नहीं नन्द जहाँ नहीं जसुदा जहँ नहीं गोपी ग्वाल न गाय।
जहँ नहीं जल जमुना को निर्मल और नहीं कदमन की छाय।
'परमानन्द' प्रभु चतुर ग्वालनी ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय।

इस प्रकार कवि अत्यन्त विनम्र सरल विरक्त और भगवदीय था। उसका भगवदीयत्व अप्रतिम था।

## (भ) वैष्णवों में श्रद्धा—

परमानन्ददासजी वैष्णवों को साक्षात् भगवत्स्वरूप ही मानते थे। इनके समसामयिक भक्त सूरदास कुम्भनदास रामदास आदि वैष्णव समय-समय पर इनसे मिलते रहते थे। एक बार सब वैष्णवों के इनके स्थान पर पहुँचने पर इन्होंने कहा था—

'जो आज मेरो बड़ो भाग्य है जो सब भगवदीय मेरे ऊपर कृपा करिकें पधारे। ये भगवदीय कैसे हैं जो साक्षात् श्री गोवर्धननाथजी को स्वरूप ही हैं। तासों आज मोपर श्रीगोवर्धननाथ ने बड़ी कृपा कीनी है।'[1]

---

१ देखो वार्ता पृ०—८२४ परीख संस्करण।

परमानन्ददासजी का इस प्रकार वैष्णव मण्डल से आतरिक प्रेम झलकता है। इतना ही नहीं वे समय-समय पर उनसे भगवद् चर्चा करते और भक्ति सबंधी विषयों पर वार्तालाप भी। वे कहते हैं—

'आए मेरे नन्दनन्दन के प्यारे।
माला तिलक मनोहर बानो त्रिभुवन के उजियारे।
कहा जानी कौन पुण्य प्रगट भयो मेरे घर जु पधारे।
'परमानन्द प्रभु' करी निछावर बार बार हीं बारे॥—(पद स० २७ )

## (म) भक्ति का आदर्श–

परमानन्ददासजी की भक्ति का आदर्श 'गोपी भाव' है स्वय आचार्यजी ने भक्ति प्रेम म गोपियो को अपना गुरु माना है[1] वही आदर्श परमानन्ददासजी ने अपनी भक्ति-साधना के लिये ग्रहण किया था। एक बार वैष्णवों द्वारा यह प्रश्न किये जाने पर कि सबसे श्रेष्ठ प्रेम किसका है उन्होने गोपियो को प्रेम को श्रेष्ठ कहा था।

## (य) सत्संग प्रेम—

परमानन्ददासजी सन्त समागम से आनन्दित होने वाले सच्चे भक्त थे। सत्सग से उन्हे बडी प्रसन्नता होती थी। वे कहते हैं—

हरि जन सग छिनक जो होई।

इस प्रकार अष्टछाप के द्वितीय सागर और वल्लभ की बाललीला के दिव्य गायक परमानन्ददासजी का जीवन चरित्र अष्टछाप मे अपना एक निराला महत्व रखता है। उनका व्यक्तित्व 'मिष्ठ प्रभुमय' था। अत जो सरलता और सादगी उनमे दिखाई देती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके काव्य की चर्चा और वैज्ञानिक समीक्षा करने से पूर्व हम उनकी रचनाओं के परिमाण और उनकी प्रामाणिकता पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

१ दम्पो-मन्थन निर्णय—मन्थो
२ गोपी प्रेम की कथा—प० भा द म २२।

तृतीय—अध्याय

# परमानन्ददासजी की रचनाएं—

जैसा कि परमानन्ददासजी के जीवन वृत्त से ज्ञात होता है और वार्ता में भी लिखा है कि- "आपने ये बड़े योग्य भए और कवीश्वर हू भये वे अनेक पद बनायके गावते" आदि वाक्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि परमानन्ददासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण में आने के पूर्व से ही काव्य रचना करते चले आ रहे थे। और अडैल में पहुँच कर महाप्रभु वल्लभाचार्य के समक्ष दीक्षा से पूर्व उन्होंने कुछ भगवद्विरह परक पद[1] भी सुनाये थे। भावप्रकाश में लिखा है "तासों विरह के कीर्तन नित्य गावते। महाप्रभु से उनको संवत् १५७७ में साम्प्रदायिक दीक्षा मिली और तबसे अपने गोलोकवास के अन्तिम क्षण तक वे नित्य नए कीर्तनों[2] की रचना करते रहे

अतः उनकी सम्पूर्ण रचनाओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१—दीक्षा से पूर्व के-भगवद्विरह परक पद।

२—अडैल में दीक्षा प्राप्त हो जाने के उपरांत। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका श्रवण कर लेने पर भगवान् कृष्ण की बाल पौगण्ड किशोर लीला विषयक पद।[3]

आचार्यजी द्वारा अनुक्रमणिका श्रवण कर लेने पर परमानन्ददासजी के हृदय में भगवल्लीला सागर लहराने लगा था। उसी लीला रत्नाकर से अनवरत भाव रत्नों की निधि अव्याहत निसृत होती रही।

इन पद रत्नों के संग्रह की क्या व्यवस्था हुई इसका लेखा जोखा देना कठिन है। कीर्तन सेवा के भावनामय क्षणों में भगवती सरस्वती इन भक्त कवियों की जिह्वा पर नर्तन करती ही रहती थी। सूरदासजी की विशाल रचना जिस प्रकार सूरसागर के नाम से पुकारी गयी उसी प्रकार परमानन्दजी की रचना 'परमानन्दसागर' के नाम से पुकारी गई। वस्तुतः कवि के जीवन का लक्ष्य काव्य रचना या साहित्य सर्जना नहीं था।

---

१ देखो इन के वार्ता प्रसंग भावप्रकाश में [illegible]
(क) ब्रज के बिरही लोग बिचारे
(ग) जोहन भरी [illegible]
(घ) कौन रसिक है इन बातन को

२ [illegible] अनेक ब्रजलीला के कीर्तन करे —[illegible]

३ [illegible]

उनका एकमात्र लक्ष्य था—भगवल्लीला गान श्री आचार्य द्वारा शरणापत्ति की तिथि से लेकर गोलोकवास तक के ६२ वर्षों के दीर्घ साहित्य जीवन में लिखे गये कीर्तनों की संख्या कितनी हो गई होगी। उसकी गणना नितान्त असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। यदि सम्प्रदर्शन के हिसाब से नित्य के आठ पदों को भी मान लें। तो केवल एक वर्ष के ही २८८ पद होते हैं। यदि उनका काव्य-काल न्यूनातिन्यून पैंसठ वर्ष का ही मान लिया जाय जोकि अनुमान से उचित ही जान पड़ता है तो इन पैंसठ वर्षों के पदों की संख्या एक लाख से भी ऊपर बैठेगी वार्ता के अनुसार कवि ने लगभग २६ २७ वर्ष की अवस्था में महाप्रभु से दीक्षा ली थी। तब से वे नित्य नये भगवल्लीला परक पद बनाते गये थे। २१ वर्ष के उपरान्त अड़ैल से ब्रज में आकर परमानन्ददासजी स्थायी रूप से ब्रज में बस गये थे और कीर्तन-सेवा के अतिरिक्त उन्होंने कभी कोई जीविका सम्बन्धी कार्य नहीं किया। अत ६५ वर्षों के अपने लम्बे काव्य-काल में उनके लगभग एक लाख सतासी हजार दो सौ पद होते हैं। यदि इनको बहुत अधिक मानकर थोड़ा बहुत इधर-उधर भी कर दिया जाय तो भी सहस्रों की संख्या में उनके पद होने ही चाहिये। और इस अनुमान का आधार वार्ता का 'सहस्रावधि' शब्द नितान्त उचित प्रतीत होता है। जो भी हो परमानन्ददासजी का सम्पूर्ण काव्य आज उपलब्ध होना नितान्त असम्भव सा हो गया है और आज के जिज्ञासु को उनके नाम पर साम्प्रदायिक मन्दिरों के कीर्तन संग्रह में उपलब्ध पदों पर ही संतोष करना पड़ता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि उनका काव्य-काल दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। दीक्षा पूर्व का तथा दीक्षोपरान्त का

दीक्षा से पूर्व के विनय और विरह परक पदों का निर्णय करना कठिन है। वे उनके लीला सागर में निमज्जित हो गये हैं अत परमानन्ददासजी के 'स्वामीपन' वाले पदों का पार्थक्य कठिन है। जैसा कि सूर के साथ हुआ परमानन्ददासजी के दीक्षापूर्व पद भी 'सागर' में ही समा गये।

## दीक्षोपरान्त के पद—

दीक्षोपरान्त पदों का संग्रह 'परमानन्दसागर' है ये ही 'दास परमानन्द' के पद हैं कवीश्वर परमानन्द की नहीं उनके नाम पर निम्नांकित ग्रन्थ और भी कहे जाते हैं।

१—दानलीला
२—उद्धव लीला
३—ध्रुव चरित्र
४—संस्कृत रत्न माला
५—दधि लीला
६—परमानन्ददासजी के पद

वार्ता से तो इतना ही ज्ञात होता है कि परमानन्ददासजी ने सहस्रावधि पद किये और उस विशाल पद समूह को बाद में 'परमानन्दसागर' पुकारा गया। सम्प्रदाय के मंदिरों में कीर्तन सेवा ही मुख्य प्रयोजन है। वहाँ व्यक्ति विशेष अथवा कवि विशेष

की रचना का न तो महत्व है न उसके प्रति आग्रह। जिस अवसर पर जिस कवि का 'ओसरा' होता था वह ऋतु और लीला प्रसंग के अनुसार राग निबद्ध शैली में श्रीनाथजी के समक्ष कीर्तन करता था। पीछे से सम्प्रदाय की यह परिपाटी ही हो गई कि अष्टकीर्तनकारों' अथवा सम्प्रदाय के मुद्राविद कवियों के पद ही श्रीनाथजी का कीर्तन सेवा के लिए स्वीकृत हुए तदतिरिक्त अन्य पद नहीं उसका कारण यही था कि ये भक्त-कवि निरीह लीला गायक थे। लौकिक इच्छा से परे सम्प्रदाय मर्यादा के अनुकूल प्रभु प्रसन्नता ही इनका उद्देश्य था। इसी को लक्ष्य कर सम्प्रदाय-कीर्तन मर्यादा के मर्मज्ञ श्री मगनलाल गणपतिराम शास्त्री ने कहा है —

श्री महाप्रभुजीना अने श्री गुसाईजी ना समय ना कीर्तनकारो ने साक्षात प्रभु दर्शन भगवत्कृपाए थतां तादृश कीर्तन स्वरूप श्री ने तेनु उद्गान प्रभु समक्ष करता। आपणाने तो हवे तेमना प्रसाद भूत कीर्तन नो गान मात्र करवानो अधिकार छे। अर्वाचीन कीर्तनकारो ना कीर्तन प्रभु समक्ष गवाय नहि एवी स्वमार्ग मर्यादा छे अने ते सुयुक्तज छे "

अर्थात् श्री महाप्रभुजी के और श्री गुसाईजी के समय के कीर्तनकारो को जिस प्रकार भगवद्दर्शन भगवत्कृपा से होते थे उसी प्रकार के कीर्तन को तत्काल रचकर उसका गायन वे भगवान के सामने करते थे। हम लोगो को तो अब उनके प्रसादभूत कीर्तन के गान मात्र करने का ही अधिकार है। क्योंकि आधुनिक कीर्तनकारों के कीर्तन भगवान के समक्ष नहीं गाए जाय ऐसी अपने मार्ग की मर्यादा है। और यह मर्यादा उचित ही है।

अत सभी पुष्टिमार्गीय भक्त कवियो एवं अष्टछापियो के नित्य कीर्तन और वर्ष भर के उत्सवो के कीर्तन का विशाल संग्रह एक ही स्थान पर संगृहीत कर लिया गया। और उन कीर्तन संग्रहो में से नित्य और वर्षोत्सव की सेवा के कीर्तन किए जाने लगे। धीरे-धीरे इन संग्रहो को व्यवस्थित किया जाने लगा और नित्य कीर्तन के पद अलग तथा वर्षोत्सवों और 'होली धमार' आदि के कीर्तन सेवा सुविधा की दृष्टि से पृथक कर लिए गए। बाद में अष्टछापी सागरो' का जब महत्व और भी बढ़ा तो सूरसागर' 'परमानन्द सागर' आदि भी पृथक कर लिए गए। कवियो की सरस पूतवाणियाँ न केवल कीर्तन के लिए प्रयुक्त होने लगी अपितु भगवान की दिव्य लीला का रसास्वादन भी इनसे किया जाने लगा। और 'अष्टकाव्य कारे' न केवल कीर्तनकार ही रहे अपितु श्री गोवर्धनधर की नित्य लीला के सखा माने जाकर उनकी वाणियाँ लीला सागर बन गईं और श्रीमद्भागवतके समान समादरणीय और पठनीय बन गईं। सागरो' की इस शोध कथा की पुष्टि सूर साहित्य के विशेषज्ञ प्रोफेसर हरबंशलाल शर्मा के इस कथन से भी होती है —

'सूरसागर के अतिरिक्त अन्य सागरो का जन्म भी इन्हीं संग्रहो (कीर्तन संग्रहो) से हुआ। जैसे कृष्णसागर, परमानन्दसागर, नन्द-सागर आदि।[२]

१ देखो संकीर्तन कौस्तुभ प्रकाशित अने नित्य कीर्तन गुजराती भूमिका भाग पृष्ठ १

२ देखो-सूर और उनका साहित्य पृष्ठ २१ लेखक डा हरबंशलाल शर्मा।

अब परमानन्ददास जी के विशाल पद संग्रह का नाम 'परमानन्द सागर' साम्प्रदायिक भक्तों द्वारा ही दिया हुआ है। और यही उनकी मुख्य रचना है। इसके अतिरिक्त अन्य पाँच ग्रन्थ जो उनके बतलाए जाते हैं उनकी चर्चा हमें 'खोज रिपोर्ट' तथा अन्य इतिहास ग्रन्थों में मिलती तो है परन्तु किसी विशेष विवरण के साथ नहीं। अब यहाँ हम उनके प्रत्येक ग्रन्थ की प्रामाणिकता की चर्चा अलग-अलग करेंगे —

दान लीला—इस ग्रन्थ की चर्चा नागरी प्रचारिणी सभा काशी की १९०२ की खोज रिपोर्ट में हुई है जिसके आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने भी उक्त ग्रन्थ को परमानन्ददास कृत बतलाया है। तासी, मिश्रबन्धु तथा डा० रामकुमार वर्मा ने अपने-अपने ग्रन्थों में दानलीला का नाम तो लिया है परन्तु न उससे कोई उद्धरण दिए हैं न कोई अन्य चर्चा ही की है। परमानन्ददासजी का यह ग्रन्थ दतियाराज पुस्तकालय में सुरक्षित बतलाया गया था। परन्तु लेखक ने स्वयं दतिया जाकर वहाँ के राज-पुस्तकालय में पता लगाया तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्राचीन पुस्तकों में हिन्दी की ११२१ पुस्तकें हैं। दानलीला नामक एक हस्त लिखित ग्रन्थ अवश्य है जिसकी क्रम संख्या १ है। परन्तु अन्तिम पंक्तियों में एक नाम 'राजेन्द्र' दिया हुआ है। कविता की भाषा बुन्देली पुट को लिए हुए है। उक्त ग्रन्थ चौपाई और छन्दों में है। उसकी कतिपय पंक्तियों का उद्धरण यहाँ दिया जाता है —

प्रभु पूरण ब्रह्म अभंग।<br>
जाके रोम कोटि ब्रह्मण्ड॥<br>
जब सगुण ब्रह्म कहाए।<br>
मथुरा धारन धाए॥<br>
जहाँ बैर मोर मुनि जैसे।<br>
तन घोर बनारसी तैसे॥<br>
केशरी गुन नाम बनायो।<br>
वसुदेवहि रूप दिखायो॥<br>
जब गोकुल इच्छा कीनी।<br>
वसुदेवहि आज्ञा दीनी॥<br>
जब नगर नन्द पहुँचाए।<br>
तब नन्द के धाम कहाए॥

छन्द—जब ले लिया वसुदेव ने यह नन्द के बालक भए।<br>
ब्रह्म कोटि ब्रह्मण्ड नाथा पूत नाती श्याम के।<br>
श्रीकृष्ण के सब दान कारिज प्रभु बनावन सब भए।<br>
इनकि भाखे दानलीला गुनहु राजन [illegible] दे॥

चौपाई—सब गृह-गृह की गृम्य नारी।
दधि गोरस बेचन हारी ॥
मिलि जूथ मतो सब कीनो ॥
यमुना तट मारग लीनो ॥
आगे मोहन धेनु चरावे ॥
वृन्दावन बेनु बजावे ॥
जहाँ बाट सघन की सोई।
मुरली सुनि आनन्द होई ॥
तउ बाट ऊपरि चलि आई ॥
पहिचान लिए जदुराई ॥
एक बालक कहत पुकारी।
तोहि पूछत नाहि गवारी ॥

छन्द पूछत नाहि गवारि ग्वालिनि कृष्ण ठाकुर घाट के।
आय काम न करो सीनती मखु है बरत बालक साथ के ॥
सुवम सुन्य पुन हीन ग्वालिनि कृष्ण छाडि कहाँ चली ॥
दान देहु मिबेरि आपनो हरि-भले तुमहू भली ॥

उक्त ग्रन्थ ११ पृष्ठों में है। अन्तिम चौपाइयाँ हैं—
राजेन्द्र कृष्णहि ध्यावै जन्म-जन्म के दुख हरै ॥
जो नर गावै दानलीला। ~ ~
~ । सुनहि और चित लावही ॥
विष्णु लोक सिधावहि। कोटि जन्म फल पावही ॥

यहाँ दो बातें विचारणीय हैं। 'राजेन्द्र' कवि का नाम है किंवा कवि के आश्रयदाता नरेश का। तलाश करने पर दतिया में 'राजेन्द्र' नाम के कोई कवि नहीं हुए। हाँ राजवंश में यह नाम अवश्य मिलता है और सम्भवतः किसी कवि ने अपने आश्रयदाता के लिए उक्त 'दानलीला' मनोरञ्जनार्थ लिखी है। जैसा कि पिछले अध्याय में कहा जा चुका है—दतिया राज में एक परमानन्ददास हुए थे जिनकी चर्चा मिश्रबन्धु विनोद में मिलती है ये बहुत परवर्ती कवि हैं। दानलीला में छन्दोभंग भरे पड़े हैं जो अष्टछापी परमानन्ददास जैसे समर्थ कवि से कभी सम्भव नहीं। फिर भाषा की दृष्टि से दतिया के परमानन्ददास में बुन्देली का पुट मिलता है और भाषा भी टकसाली ब्रज नहीं।

अत दतिया राज पुस्तकालय वाली दानलीला अष्टछापी परमानन्ददास कृत नहीं है। इसके अतिरिक्त एक दान-लीला संग्रह लगभग १ वर्ष पुराना प माधवनाथ शुक्लजी काव्यतीर्थ अलीगढ़ के संग्रहालय में प्राप्त हुआ है। इसमें चार पाँच दान लीलाएँ एकत्र हैं। इसमें सूरदास कुम्भनदास नन्ददास और छीतस्वामी आदि की दान लीलाएँ तो हैं परन्तु परमानन्ददासजी की दानलीला विषयक पद उसमें नहीं [१] इसका तात्पर्य यही है कि

१ उक्त पुस्तक मार ११ श्री हारवल्लभजी शर्मा के संग्रह में छपी गई है

परमानन्ददासजी के बाललीला विषयक पद प्रसंग से नहीं देखने में आये। इस तथ्य की पुष्टि अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय के लेखक डा दीनदयाल गुप्त के इस कथन से भी हो हो जाती है—

'मिलान के देखने में भी यह ग्रन्थ नहीं आया है। परमानन्ददासजी के पद संग्रहों में बाललीला के पद भी आते हैं। संभव है किसी ने इन्हीं पदों को बाललीला का शीर्षक देकर लिख दिया हो। ... ... ... ... ... ... लेखक को बाललीला विषयक कवि का कोई बहुत बड़ा पद उपलब्ध नहीं हुआ। इसलिए इस ग्रन्थ के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह अष्टछापी परमानन्ददास कृत ही है अथवा नहीं।'[1]

उक्त कथन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वस्तुतः परमानन्ददासजी का बाललीला नामक कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं। लीला गान के अन्तर्गत कुछ ऐसे पद अवश्य हैं जिनमें 'बाललीला' प्रसंग की चर्चा आती है। स्वतन्त्र ग्रन्थ निर्माण न तो कवि का लक्ष्य था न आवश्यकता ही थी। जिस प्रकार सूर के भ्रमरगीत मानलीला नागलीला दानलीला आदि प्रसंग सूरसागर में निमज्जित हो जाते हैं उसी प्रकार परमानन्ददास के नाम पर कहे जाने वाले ग्रन्थ 'परमानन्द सागर' में ही लय समझने चाहिये।

उद्धव लीला—उद्धव लीला भी परमानन्ददासजी का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं। वार्ता में अथवा परमानन्ददासजी का सन्दर्भ देने वाले प्रामाणिक ग्रन्थों में उनके नाम से सम्बन्धित ऐसे किसी ग्रन्थ की चर्चा नहीं है। सम्भवतः उद्धव लीला से भ्रमरगीत परक कुछ पदों से तात्पर्य है। भ्रमरगीत के सरस मधुर, भक्ति प्रसंग को सभी कृष्ण भक्त कवियों ने लिखा है। अतः परमानन्ददासजी के भी भ्रमरगीत से सम्बन्धित कुछ पद उद्धवलीला हो सकते हैं ऐसा कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

वतिया राज पुस्तकालय में पुस्तक संख्या ११४० पर एक 'उद्धव लीला' ग्रन्थ लेखक के देखने में आया है। परन्तु यह ग्रन्थ छपा हुआ है और पंडित सुन्दरलाल वैद्य रामदासी कृत है। यह श्याम प्रेस मथुरा का छपा हुआ है। डा गुप्त ने अपने ग्रन्थ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय में इसलिए इसकी चर्चा नहीं की है।

ध्रुव चरित्र—नागरी प्रचारिणी सभा काशी की सन् १९ ९ की रिपोर्ट में परमानन्द दासजी के नाम पर इस पुस्तक की चर्चा पाई जाती है। परन्तु १९२१-२४ की रिपोर्टों में नहीं। साथ ही हिन्दी साहित्य के दो इतिहासों—मिश्रबन्धु विनोद और डा रामकुमार वर्मा के आलोचनात्मक इतिहास में इस ग्रन्थ की परमानन्ददास कृत होने की सूचना मिलती है। संभव है इन दोनों पुस्तकों के उल्लेख का आधार मधुसिकन्दरपुर से प्राप्त की खोज रिपोर्ट रही हो। उसी में इसका सुरक्षा स्थान वतिया राज पुस्तकालय बतलाया गया है। लेखक ने

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृष्ठ १९९।

दतिया राज पुस्तकालय मे पुस्तक संख्या १ ८२ की एक पुस्तक ध्रवलम देखी है। यह हस्त लिखित है परन्तु लेखक के नाम का पता पुस्तक से नही चलता। सूची में बालगोपाल नाम दिया है। एक और ध्रुव चरित्र है जो मदनगोपाल कृत है। खोज रिपोर्ट मे तीन ध्रुव चरित्रो की चर्चा है परन्तु दतिया राज पुस्तकालय मे दो ही ध्रुव चरित्र मिलते हैं। अब इनके परमानंद दास कृत होने का कोई प्रश्न ही नही उठता। इस बात की पुष्टि काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री विश्वनाथप्रसादजी ने भी की है। उन्होंने उक्त ध्रुव चरित्रो को जाँचा है। और किन्ही अन्य कवियों का बतलाया है। परमानन्ददासजी का नही।

उक्त पुस्तक के विषय मे डा गुप्त कहते हैं —"इस प्रकार परमानन्ददास का ध्रुव चरित्र नामक ग्रन्थ भी लेखक के देखने म नही आया। परमानन्ददासजी की उपलब्ध रचनाओ मे ध्रुव चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले पद भी लेखक के देखने मे नही आए।"

उनका अनुमान है कि ध्रुव चरित्र भी दानलीला के समान कोई लम्बा पद मात्र हो रहा हो। परन्तु ऐसा पद भी उनके उपलब्ध पदो मे नही मिलता। डा गुप्त ने कल्पना की है कि हित सम्प्रदाय का बुन्देलखड मे बहुत प्रचार था। सम्भव है हितहरिवंश के शिष्य हितपरमानन्द कृत कोई ध्रुव चरित्र हो। पहले वाले दोनो ध्रुव चरित्र दतिया पुस्तकालय मे रहे हो परन्तु आज तो वहाँ हितपरमानन्द कृत ध्रुव चरित्र भी देखने मे नही आता। और अन्यत्र भी यह ग्रन्थ न कही खोजने से मिला न सुनने म आया।

संस्कृत रत्नमाला—इसकी चर्चा अष्टछाप परिचय' के लेखक श्री प्रभुदयालजी मीतल मे अपनी उक्त पुस्तको मे की है। श्री मीतलजी का आधारसूत्र क्या है—विदित नही परन्तु इस ग्रन्थ का उल्लेख न खोज रिपोर्टो मे है न इतिहास ग्रन्थो मे। पता नही कैसे ये ग्रन्थ परमानन्ददासजी के नाम से जुड गया। अष्टछापी कवियो की जैसी प्रवृत्ति देखने मे आती है, उस दृष्टि से विचार किया जाय तो भक्त कवियो और विशेषकर परमानन्द दासजी जैसे एकान्त भक्ति-साधको के द्वारा ऐसी रचनाएँ नही हो सकती।

दधि लीला—इस ग्रन्थ की चर्चा शास्त्री तथा आचार्य द्विवेदीजी ने की है। शास्त्री ने तो समवत पदो के प्रसगो को स्वतन्त्र ग्रन्थ मानने की भूल की है। और वह नागलीला अर्थात् 'सर्पलीला' आदि एकाध और भी ग्रन्थ मानता है। परन्तु आचार्य द्विवेदीजी ने भी अपनी पाद टिप्पणी मे दधिलीला का नाम दिया है और उसका पता इसकी प्रेस दिल्ली समय सन् १८९८ दिया है। परन्तु इसकी प्रेस की इस दधिलीला का अब कही पता नही चलता न सम्प्रदाय के ग्रन्थो के प्रमख-संग्रह स्थानो मे इस ग्रन्थ की चर्चा है। नाथद्वारा कांकरोली के विद्या विभागो मे भी उक्त पुस्तक की चर्चा नही मिलती। वास्तव मे दधि या माखन चोरी के प्रसगात्मक कुछ पदों के संग्रह को स्वतन्त्र ग्रन्थ नाम देकर भक्त सग्रह कर्ताओ ने परमानन्ददासजी के नाम से अनेक ग्रन्थ बताने की चेष्टा की है जो एक प्रकार से व्यर्थ ही है।

## १—परमानद सागर [प्रथम प्रति]——

बंध सख्या ४५ पु १। इसका नाम "परमानददासजी के कीर्तन" है। इसका साइज ८×६ इच है। इसकी अतिम पुष्पिका नही मिलती। अत पुस्तक अपूर्ण है। इसमे विषय क्रम से पद लिखे गये हैं। विषय क्रम के अतिरिक्त परमानंददासजी के और भी पद इसमे हैं इस पुस्तक के पदो की गणना करने पर लगभग ८५ पद होते हैं।

पुस्तक की लेखन शली—इस पुस्तक के प्रारम्भ मे ७८ पृष्ठ तक के पदो के प्रतीक एव पृष्ठ सख्या लिखी गई है। ग्रन्थ की लिपि सुवाच्य सुन्दर शुद्ध एवं प्राचीन है। राग तथा विषयो के नाम लाल रग मे दिए गये हैं। ग्रन्थ मे अधिकाश रूप से नवीन विषय का प्रारम्भ नवम पत्र से ही हुआ है। जिस विषय के जितने पद मिले हैं उतने ही लिख कर शेष स्थान खाली छोड दिया गया है। और उसके स्थान पर बाद मे परमानददासजी के ही उसी विषय के पद लिखे गये हैं जिनकी लिपि भिन्न है विदित होता है कि यह किसी प्राचीन ग्रन्थ की प्रतिलिपि है और उसके स्थान पर उतने भाग के नष्ट हो जाने पर स्थान छोड दिया गया है। जिसकी पूर्ति किसी अन्य ग्रन्थ से बाद मे की गई है। इस प्रकार छूटे हुए स्थान मे जो कीर्तन लिखे गए हैं उनकी लिपि मे गुजराती अक्षरो का सम्मिलन है। इससे अनुमान होता है कि किसी गुजराती लेखक ने बाद मे ये पद लिखे हैं।

ग्रन्थ का आरम्भ पृष्ठ सख्या १ से होता है और ११४ तक पद लिखे हैं। पुस्तक मे पदो का सकलन विषय-क्रम मे हुआ है। विषय-क्रम पूरा होने तक पद सख्या बराबर चली गई है। दूसरा विषय प्रारम्भ होने पर पुन पद सख्या एक दो से प्रारम्भ हुई है। तात्पर्य यह कि सभी विषयो के पदो की सख्या का योग करने पर एकत्र योग ८५ के लगभग होता है।

लेखन समय—ग्रन्थ का लेखन समय यद्यपि दिया नही गया है पर एक युक्ति से उसका समय निर्धारित किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ मे "श्री गिरिधर लालो विजयते" लिखा है। ये गिरधरलालजी गोस्वामी विट्ठलनाथजी के प्रथम पुत्र हैं। इनका समय स १६१७-१६८ तक माना जाता है। जैसी कि सप्रदाय की परिपाटी है श्री गुसाईजी की विद्यमानता मे उनके पुत्र श्री गिरिधरलालजी का प्राधान्य नही हो सकता। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण वे अपने पिता के उपरान्त ही स १६४२ मे आचार्यत्व पर अभिषिक्त हुए होंगे। अत उनका आचार्यत्व काल १६४२ से १६८ तक हुआ। इन्ही ९ वर्षो के भीतर इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि हुई समझनी चाहिए।

इस कथन की पुष्टि एक गुजराती लेख से भी होती है। जो उसी लेखक का अथवा उसके समकालिक किसी अन्य का होना चाहिए। उसमे लिखा है

"बाबरावरण पुष्करना मौरबी माँ रहता हता बेऐ द्वारका मध्ये श्री आचार्य जी ने श्रीमद्‌ भाष ११ वाई श्रीमद्भागवत सामर्थ्यू तेहुनो टीकरो लक्ष्मीदास श्री गुसाईंजीना सेवक। लक्ष्मीदासजी माता बाई नमी श्री आचार्य जी नी सेवक श्री ब्रजराजीनी द्वारका माँ परचारकी करता ते लक्ष्मीदास मा बेटा हरिजीव तथा दामजी नव (जामनगर) माँ रहे छे।

इस वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि जैसे श्री वल्लभाचार्यजी की तीसरी पीढ़ी में उनके पौत्र श्री गिरिधरलालजी उस समय विद्यमान थे। उसी प्रकार उनके सेवक दामोदरदास के पौत्र (तीसरी पीढ़ी) हरिजीव तथा रामजी लेखक के समय में विद्यमान थे। क्योंकि उनके 'रहे' भी रहे थे' इस प्रकार वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया गया है।

उपर्युक्त उद्धरण से सिद्ध हो जाता है कि ग्रन्थारम्भ में लिए गये गिरधारीलालजी गुसाईंजी के ज्येष्ठ पुत्र ही हैं। इनका प्राचार्यत्व काल सं १६४२ से सं १६८ तक था है। इसी काल के भीतर इस ग्रन्थ का लेखन हुआ है। इस ग्रन्थ में ८४ वार्ता के कुछ वैष्णवों का संक्षिप्त परिचय भी है जो अपूर्ण है। श्री पारीखजी का मत है कि इसमे प्राचीन पुस्तक मिलना कठिन है। अतः परमानन्ददासजी के पदों की यही सर्वाधिक प्रामाणिक एवं प्राचीनतम प्रति है जो उनके गोलोकवास के उपरान्त निकट से निकट काल की उपलब्ध होती है।

इस ग्रन्थ की लिपि बंध संख्या ३७ की परमानन्दसागर की लिपि से बिलकुल मिलती जुलती है। और अक्षरों तथा लेखन शैली में इतना साम्य है कि एक ही लेखक की होने में रंचमात्र भी संदेह नहीं होता। पद संख्या में अवश्य न्यूनाधिकता है और इसका कारण यही है कि प्रस्तुत ग्रन्थ (बंध सं ४५-१) में पद लिखने के बाद खाली बचे हुये स्थान में जैसा कि पहले कहा जा चुका है कुछ समय बाद और भी पद लिखे हुए हैं। जिनकी लिपि भी भिन्न है। परन्तु इस बंध संख्या ३७।४ में खाली स्थान बराबर छूटा रह गया है। इसके बाद में किसी ने पद लिखने की चेष्टा नहीं की। ये दोनों पुस्तकें प्रामाणिक और शुद्ध हैं।

द्वितीय प्रति—बंध संख्या ३७ पु ४—इसका नाम 'परमानन्दसागर' है। इसका साइज १ ×७ इंच है। यह ग्रन्थ पत्र सं १ से प्रारम्भ होकर पत्र १२१ तक लिखा गया है। इसके प्रारम्भ और अन्त के पत्रों में ग्रन्थ कीर्तनों का संग्रह था। यह पुस्तक क्षीण शीर्ण अतिशय प्राचीन है और पानी में भीगी तथा कहीं-कहीं दीमक से खाई हुई है। फिर भी इसकी बंध संख्या बंध में है। प्रस्तुत ग्रन्थ के ऊपर लिखे हुए कीर्तन की दो पंक्तियाँ इसी कारण बिगड़ गई हैं। अतः विषय तथा राग का नाम भी नहीं मिलता।

लेखन शैली—इसका प्रारम्भ श्री गोपीजनवल्लभाय नम राग सारंग' से होता है। प्रत्येक विषय नवीन पत्र से ही प्रारंभ हुआ है। और उस विषय के समाप्त हो जाने पर उतना पत्र खाली छोड़ दिया गया है। प्रारम्भ के पत्र १ पर जन्म प्रसंग के पदों से ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है। और पत्र १२१ पर राम नवमी के पद तक पुस्तक मिलती है। अतः अन्य विषय के कीर्तन जैसे नृसिंह चतुर्दशी वामन जयन्ती आदि के पद और लिखे होने चाहिए।

सम्प्रदाय में कीर्तन प्रणाली के लिखने का क्रम भाद्र पद अष्टमी (जन्माष्टमी) से प्रारम्भ है। और प्रायः वर्ष की भाद्र पद कृष्णा सप्तमी तक होता है अतः इसमें कुछ और पद अवश्य

जिस प्रकार ब्रजमण्डल को राजसहर कहा जाता था उसी प्रकार आगरा को 'नम' कहा जाता था वह 'नगर' का अपभ्रंश रूप है

१ श्री द्वारकादासजी परीख ने वार्ता साहित्य की प्रामाणिकता के लिये इस प्रति को भी एक प्रमाण माना है देखो—वार्ता साहित्य मीमांसा पृ ११ [प्रस्तावना सम्बन्ध]

होने चाहिए। पुस्तक अपूर्ण और खण्डित है। दूसरी बात यह है कि जहाँ विषय क्रम का पूर्ति के बाद उतना पत्र खाली छोड़ा गया है वहाँ बीच में कई पत्र बिलकुल खाली छोड़ दिए गये हैं। यद्यपि उनमें पत्रांक बराबर पड़े हैं। इससे यह अनुमान होता है कि यह भी किसी अन्य ग्रन्थ की प्रतिलिपि है जो अधिकांश नष्ट भ्रष्ट होगया है। और किसी अन्य ग्रन्थ से पूर्ति के लिए स्थान पत्र खाली रख दिये गये हों जिसकी पूर्ति बंध संख्या ५४१ से कर भी गई पर इसमें नहीं की जा सकी होगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ की लिपि सुवाच्य सुन्दर शुद्ध और प्रामाणिक है। स्थान-स्थान पर विशेष राग और विषय के नाम पर खास पेज बनाया गया है। ग्रन्थ लिख जाने के बाद उसी स्थान में पंक्ति बढ़ाई गई है।

लेखन समय—इस लिपि का जैसा पहिले कहा जा चुका है बंध संख्या ४५×१ की लिपि से बिलकुल साम्य है। अतः इसका भी लेखन काल यही सं. १६४२ से १६८ के समय का विदित होता है। इस दृष्टि से पुस्तक प्रामाणिक और प्राचीन है। इन दोनों लिपि-साम्यवाली पुस्तकों में रामकली राग को 'रागनी' लिखा मिलता है।

यह पुस्तक एक असुरक्षित स्थान में रखे हुये संग्रह की है। अतः जल से भीग जाने के कारण कुछ बिगड़ गई है। अब तो सुरक्षित रूप से रखी हुई है। यह पुस्तक अपूर्ण है। अतः अन्तिम पुष्पिका नहीं मिलती है। यद्यपि लेखन समय का अनुमान किया जा चुका है पर लेखक का नाम नहीं मिलता। ग्रन्थ का अधिकांश विषयानुक्रम नष्ट हो जाने से नहीं मिलता पर पृथक विषयों के लिये स्थान छोड़ देने के कारण उनकी सफलता की जा सकती है। इसमें जितने पद लिखे गये हैं उनकी गणना करने से ७२१ हो जाती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें कितने पद रहे होंगे।

बंध संख्या ४५ पु १ तथा इस ग्रन्थ का लिपि साम्य तो है पर उसमें इस ग्रन्थ का नाम परमानन्ददासजी के कीर्तन' लिखा है। और यह बाद में लिखा गया प्रतीत होता है। इस प्रस्तुत पुस्तक में इसका नाम परमानन्दसागर' लिखा हुआ है जिससे यह प्रतीत होता है कि सं १६४५ और सं १६७ के मध्यकाल में लिखी गई। इन पुस्तकों का नाम 'परमानन्दसागर' प्रचलित हो गया था। परमानन्ददासजी के जीवन चरित्र से यह तो स्पष्ट हो ही चुका है कि उनकी उपाधि सागर' थी। अतः उनके बाद यदि उनका ग्रन्थ सूरसागर की भाँति ही परमानन्दसागर कहलाने लगा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

लिपि साम्य वाली ये दोनों पुस्तकें अपूर्ण हैं फिर भी प्रकाशन और मुद्रण दोनों दृष्टियों से बड़ी उपयोगी हैं। ये प्रतियाँ शुद्ध और प्रामाणिक होने के कारण अत्यन्त उपयोगी हैं।

तृतीय प्रति—बंध १७ पु०-२। इस ग्रन्थ का नाम 'परमानन्ददासजी के पद' है। आकार १ ×८ इंच है। पुस्तक गुटका साइज़ लिखी हुई बड़े अक्षरों में है। इस ग्रन्थ में पत्र संख्या १ से १२४ तक है। जिसमें पद लिखे हुए हैं।

लेखन शैली—इस ग्रन्थ में प्रारम्भ से लेकर पद संख्या दी गई है जो पत्र १२१ पर १ १ ६ है और जिसके अन्त में इस प्रकार पुष्पिका लिखी है

इति श्री परमानन्ददासजी के पद संपूर्ण। पोथी वैष्णव हरिदास की है।

इस पुस्तक का प्रारंभ 'चरण कमल बंदौं जगदीश के जे गोधन संग धाए' वाले पद के मंगलाचरण से होता है। यह पुस्तक 'मथुरेश पुस्तकामम' की है।

इसमे समाप्ति के अनन्तर पत्र संख्या १५२ से १५४ तक परमानन्ददासजी के और भी पद लिखे हैं। जिनकी संख्या २ होती है और इस प्रकार कुल मिलाने से १ २१ पद परमानन्ददासजी के इस ग्रन्थ मे लिखे मिलते हैं। पदो की इतनी विशाल संख्या अन्य किसी प्रति मे उपलब्ध नही होती।

ग्रन्थ की लिपि सुवाच्य सुन्दर और शुद्ध होने के साथ-साथ आद्योपान्त एक सी है। इसमे न तो कही संशोधन किया गया है और न कही परिवर्द्धन। राग तथा विषय के नाम लाल स्याही से लिखे गए हैं। हाशिए पर लाल स्याही से रेखाएँ खीची गई हैं।

लेखन समय—पुस्तक का प्रारंभ इस प्रकार होता है— अथ १ ठो परमानन्ददासजी के पद की पोथी। "श्रीस्वामिनी श्री व्रजनाथारामच गोकुलनाथस्येद पुस्तकम्।

पुस्तक के अंत मे हस्ताक्षर गोकुलनाथजी के हैं। जो व्रजनाथात्मज और श्री गुसाई विट्ठलनाथजी के तृतीय पुत्र बालकृष्णजी के वंशज एवं काँकरौली निवासी थे। इन गोकुलनाथजी का समय संवत् १८२१ से १८२६ तक का है। अतः यह उन्ही की पुस्तक है। और संवत् १८२६ के पहिले लिखी गई है। यद्यपि इसमे लेखक का नाम और लेखन काल नही लिखा गया। तथापि हमारे अनुमान से इसका समय संवत् १ ८ के लगभग ही होना चाहिए।

अन्य प्रतियो की भाँति इसमे विषय की समाप्ति पर खाली पत्र नही छोड़े गए हैं और चलती कलम से ही पद लिखे गए हैं। अंक संख्या प्रारंभ से लेकर अन्त तक बराबर मिलती है। पद संख्या के साथ ही साथ पृष्ठो की संख्या भी प्रत्येक पद के साथ दी गई है। विषय क्रम से पदो की संख्या भी प्रत्येक पद के साथ दी गई है। विषय क्रम से पदो की संख्या इसमे नही मिलती। इसमे अन्य प्रन्थो की अपेक्षा विषय भी अधिक है। जैसा कि अधिक पदो के कारण होना भी चाहिए। कुल मिला कर इसमे ७७ विषय हैं जिनका नाम प्रारंभ मे लिखा है।

यद्यपि अन्य प्रतियो की अपेक्षा यह अर्वाचीन है फिर भी शुद्ध और प्रामाणिक होने के साथ विशाल और संग्रहात्मक है। डा० गुप्त का मत है कि परमानन्दसागर की यह प्रति देखने मे सवासौ वर्ष पुरानी जान पड़ता है।

परमानन्दसागर की इस प्रति के पदो की विषयानुसार पद संख्या का विवरण इस प्रकार है।

पद संख्या का विवरण इस प्रकार है।

पुस्तक संख्या ११३ विद्या विभाग काँकरौली परमानन्दसागर

| क्रम संख्या | विषय क्रम | पद संख्या |
|---|---|---|
| १ | मंगलाचरण | १ |
| २ | जन्म समय | २१ |
| ३ | पलना के पद | ६ |
| ४ | छठी के पद | २ |

| क्रम संख्या | विषय क्रम | पद संख्या |
|---|---|---|
| ५ | स्वामिनीजीके जन्म समयके पद | ४ |
| ६ | बाललीला | ८८ |
| ७ | उराहनेके वचन गोपिकाजूको | ३६ |
| ८ | जसोदाजीको बरजिबो प्रत्युत्तर प्रभुजीको | ७ |
| ९ | गोपिकाजूके वचन प्रभुजीके प्रति | १२ |
| १ | प्रभुके वचन जसोदाजीसों | १ |
| ११ | परस्पर हास्य वाक्य | ४ |
| १२ | सखानसों खेल | ४ |
| १३ | असुर मर्दन | ५ |
| १४ | यमुनाजीके तीरकी मिलन | ६ |
| १५ | मेवान्तर वर्णन | ८ |
| १६ | गोदोहन प्रसंग | १२ |
| १७ | व्रज बनलीला | ११ |
| १८ | गोचारण | १८ |
| १९ | दान प्रसंग | १८ |
| २ | द्विजपत्नीको प्रसंग | २ |
| २१ | बनसे व्रजको पांउ धारनो | १ |
| २२ | गोपिकाजूके आसक्ति वचन | ७६ |
| २३ | आसक्तिको वर्णन | १२ |
| २४ | आसक्तिकी अवस्था | ८ |
| २५ | साक्षात् स्वामिनीजूके आसक्तिके वचन | ८ |
| २६ | साक्षात् भक्तकी प्रार्थना प्रभु प्रति | ५ |
| २७ | साक्षात् प्रभुजी के वचन भक्तनके प्रति | २ |
| २८ | प्रभुको स्वरूप वर्णन | ११ |
| २९ | स्वामिनीजूको स्वरूप वर्णन | ७ |
| ३ | पुष्करस वर्णन | ७ |
| ३१ | वस्त्राभरण प्रसंग | |
| ३२ | रास समयके पद | ९ |
| ३३ | अन्तर्ध्यान के पद | ९ |
| ३४ | जलक्रीडा के पद | १२ |
| ३५ | खण्डिता के वचन | १ |
| ३६ | खण्डिता के प्रत्युत्तर | १ |

| क्रम संख्या | विषय क्रम | पद संख्या |
|---|---|---|
| ३७ | मानापनोदन | ६ |
| ३८ | सख्या के वचन | ६ |
| ३९ | प्रभुकूको मनाइबो | २ |
| ४ | प्रभुको मान | १ |
| ४१ | किशोरलीला | ४२ |
| ४२ | फूल मडलीके पद | १ |
| ४३ | दीपमालिका श्री गोवर्धन धारण अन्नकूट | २९ |
| ४४ | प्रबोधिनीके पद | ३ |
| ४५ | बसन्त समय | १ |
| ४६ | धमारके पद | ११ |
| ४७ | श्रीस्वामिनीजी की उत्कंठा | ३ |
| ४८ | सकेत पद | ५ |
| ४९ | व्रजभक्तनीकी महातम | १ |
| ५ | मदिर की शोभा | १ |
| ५१ | व्रजकी महातम | १ |
| ५२ | श्री यमुनाजी के पद | ४ |
| ५३ | अक्षय तृतीया | २ |
| ५४ | रथ-यात्रा | २ |
| ५५ | वर्षा ऋतु | २ |
| ५६ | हिंडोरा | ३ |
| ५७ | पवित्रा | ५ |
| ५ | रक्षाबन्धन | ३ |
| ५९ | दशेरा | ३ |
| ६ | अपनो शीतल प्रभु को महातम तथा बीनती | ४९ |
| ६१ | व्रज समुदाय के पद | ५३ |
| ६२ | मथुरा गमनादि प्रसग | ४ |
| ६३ | गोपिनके विरहके पद | २४७ |
| ६४ | जसोदा तथा नन्दजूके वचन उद्धव प्रति | २ |
| ६५ | उद्धवके वचन प्रभु सो | २ |
| ६६ | जरासधके युद्ध के प्रसग | १ |
| ६७ | द्वारका लीला विरह | २१ |
| ६ | रामोत्सवके पद | ६ |
| ६९ | नृसिंहजीके पद | ४ |
| ७ | वामनजीके पद | ३ |
| | | ११ १ |

चतुर्थ प्रति —[बंध सं १९ पुस्तक ४] इस प्रति का नाम परमानन्ददासजीके कीर्तन है। आकार ८×६ इंच है। इसमे परमानन्ददासजीके कीर्तनोके साथ ही अन्य अष्टछाप के कवियो के कीर्तनोका भी सग्रह है। पत्र सख्या १ से लेकर १७१ तक है।

लेखन शैली—इसमे पदो की सख्या विषय क्रम से चलती है। अर्थात् प्रसग समाप्त हो जाने पर सख्या समाप्त हो जाती है। इस प्रकार गणना करने पर पदो की कुल सख्या ७४१ निकलती है। इसमे मगलाचरण के तीन पद भगवल्लीला के ७२८ और फुटकर १ पद हैं।

लिपि सुन्दर और शुद्ध है फिर भी अक्षर उतने अच्छे नही। इसकी अन्तिम पुष्पिका नही मिलती है। इससे ग्रन्थ का लेखन काल और लेखक का नाम नही मिलता। अत पुस्तक अपूर्ण विदित होती है। इस प्रति म अन्य कोई उल्लेख्य बात नही।

पचम प्रति—[बंध सख्या १९ पुस्तक] इसका नाम परमानन्ददासजी के कीर्तन है। आकार ४×१ इंच है। पुस्तक गुटका साइज मे है। हाशिए पर "परमानन्द" लिखा गया है। जिससे परमानन्ददास के कीर्तन अथवा परमानन्दसागर" दोनो का बोध हो सकता है।

लेखन शैली—ग्रन्थ का प्रारम्भ पत्र १ से होता है। और उसका अन्त भाग १६६ पर है। इस प्रकार इसमे कुल १६४ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र मे १४ पक्तियाँ हैं।

लेखन समय—पुस्तक मे अन्तिम पुष्पिका नही अत लेखक तथा लेखन कालका पता नही चल सकता। वैसे पुस्तक सुन्दर और सुवाच्य है।

इस प्रति मे प्रारंभ से लेकर पदो की सख्या दी गई है। अर्थात् यह विषय क्रमके साथ समाप्त नही होती। और बराबर अन्त तक चलती चली जाती है। गणना करने से पद सख्या १ तक मिलती है। इस क्रम मे यह दूसरी पुस्तक है जिसमे पदो की सख्या एकत्र की गई है। और अधिक से अधिक पदो के सग्रह करने चेष्टा की गई है। इसमे कुल ६१ विषय हैं। यह पुस्तक सपादन और प्रकाशन की दृष्टि से बडी उपयोगी है।

विद्याविभाग काकरौलीके सरस्वती भडार मे उपलब्ध उपर्युक्त पाँच प्रतियो का यहाँ सक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त विद्या विभाग मे 'परमानन्दसागर' की दो प्रतियाँ और भी विभाग मे मिलती हैं। उनका विवरण इस प्रकार है —

प्रति न २१९ 'परमानन्दसागर ग्रन्थ के प्रारम्भ म लिखा मिलता है अथ परमानन्ददास कृत परमानन्दसागर लिख्यते। उसके उपरान्त मगलाचरण प्रारम्भ होता है —

चरन कमल बन्दौं जगदीश जे गोधन के सग धाए।

इसके बाद इसमे पदो के विषयानुसार पद दिए हैं। यह पद सख्या लगभग ८ के पद हैं। पद कृष्ण जन्म से लेकर मकरवीत तक हैं। अन्त मे रामजन्मोत्सव नृसिंह तथा वामन जयन्तियो के पद भी उपलब्ध होते हैं। ऊपर रागो के नाम भी मिलते हैं।

प्रति नं. २।६—इस प्रति में परमानन्ददासजीके विरह के पदों का संग्रह है। पद संख्या लगभग २   के है। तिथि आदि कुछ नहीं मिलती। इसमें सूरदासजीके भी विरह परक पद संगृहीत हैं। प्रति लगभग १ ०–११५ वर्ष की प्राचीन विदित होती है।

उपर्युक्त परमानन्दसागर की सात हस्तलिखित प्रतियों के अतिरिक्त मीनाक्षार के निज पुस्तकालय में पाँच हस्तलिखित प्रतियाँ और संगृहीत हैं उनका विवरण इस प्रकार है —

प्रति नं. ११/१ परमानन्ददासजी के कीर्तन। प्रति में विषयानुसार कीर्तन लिखे हैं। इसमें लगभग ८   पद संगृहीत हैं। सं. १८७१ की लिखी हुई है।

[ प्रति १४। ९ ] परमानन्दसागर—इसमें ८८३ पद हैं। प्रारम्भ से 'चरन कमल बंदौं जगदीश के गोधन के संग धाएँ' वाला मंगलाचरण दिया हुआ है। पदों का क्रम विषयानुसार है। प्रतिलिपि के समय का पता नहीं चलता। अनुमान है कि यह प्रति १५  वर्ष पुरानी होनी चाहिये। इस प्रति के प्रारम्भ में पदों की विषय सूची तथा भिन्न भिन्न समय के कीर्तनों के अनुसार अनुक्रमणिका दी हुई है। इसमें पद संख्या लगभग १    है। वस्तुतः यह प्रति कांकरौली वाली तृतीय प्रति के टक्कर की है। इसमें पदों का विवरण इस प्रकार है —

| क्रम संख्या | विषय | पद संख्या |
|---|---|---|
| १ | मंगलाचरण | १ |
| २ | जन्म समयके पद | १४ |
| ३ | स्वामिनीजीको जन्म | २ |
| ४ | बाल लीला | ७ |
| ५ | यज्ञोपवीत | ७ |
| ६ | ब्याहकी बात | ४ |
| ७ | उराहना यशोदाजूको | २१ |
| ८ | यशोदाजीको प्रत्युत्तर गोपनसों | १७ |
| ९ | यशोदाजी के वचन प्रभुसों | ७ |
| १ | प्रभुके वचन यशोदासों | ११ |
| ११ | गोपिकाके वचन प्रभुसों | ११ |
| १२ | परस्पर हास्य | ४ |
| १३ | सखानसों खेल | ४ |
| १४ | असुर मर्दन | ५ |
| १५ | जमुना तीरको मिलिबे के पद | ६ |
| १६ | मैयान्तर दर्शन | ६ |
| १७ | चीरहरन | १२ |
| १ | बनलीला | १९ |

| क्रम संख्या | विषय क्रम | पद संख्या |
|---|---|---|
| १९ | गोचारण | ९ |
| २ | भोजन | |
| २१ | बाललीला | १७ |
| २२ | विप्रपत्नीको प्रसंग | २ |
| २३ | प्रभुजीको बनतें पाउ धारनो | २१ |
| २४ | वेणुनाद | ५ |
| २५ | मानापनोदन | ६६ |
| २६ | किशोरलीला | २ |
| २७ | प्रभुको स्वरूप दूलरन | |
| २८ | प्रभुको मान मध्या के वचन | |
| २९ | भावाचरण | |
| ३ | भक्तनके आसक्तिके वचन | |
| ३१ | आसक्तिको वर्णन | ११ |
| ३२ | आसक्तिकी अवस्था | ८ |
| ३३ | साक्षात भक्तनकी आसक्तिके वचन | २४५ |
| ३४ | साक्षात् भक्तनकी प्रार्थना | ४ |
| ३५ | प्रभुके वचन भक्तन प्रति | ९ |
| ३६ | प्रभुको स्वरूप वर्णन | २२ |
| ३७ | श्रीस्वामिनीजीको स्वरूप वर्णन | ७ |
| ३८ | शृंगाररस वर्णन | ७ |
| ३९ | रास समय | ६ |
| ४ | अन्तर्धान समय | ६ |
| ४१ | जलक्रीडा समय | ३ |
| ४२ | सुरतान्त समय | ७ |
| ४३ | खंडिता के वचन | ३ |
| ४४ | खंडिताको प्रत्युत्तर | १ |
| ४५ | फूल मण्डली | १ |
| ४६ | दीप मालिका-अन्नकूट | २१ |
| ४७ | वसन्त समय | ३ |
| ४८ | मथुरालीला | १८ |
| ४९ | मथुरागमन | ३ |
| ५ | विरह [ भ्रमर गीत ] | २४१ |

| क्रम संख्या | विषय क्रम | पद संख्या |
|---|---|---|
| २१ | श्रीद्वारका लीला | ११ |
| २२ | व्रजभक्तन की महिमा | ८ |
| २३ | भगवत् मंदिर वर्णन | १ |
| २४ | व्रजको माहात्म्य | १ |
| २५ | श्रीयमुनाजी की प्रार्थना | १ |
| २६ | अक्षय तृतीया | १ |
| २७ | प्रभु प्रति प्रार्थना | १ |
| २८ | भगवत् भक्तन की महिमा | ४ |
| २९ | स्वारस प्रबोध | ३ |
| ३० | रसायनदान | १ |
| ३१ | आरती समय | १ |
| ३२ | पवित्रा समय | २ |
| ३३ | श्री रघुनाथजीको जन्म | २ |
| ३४ | हिंडोरा समय | २ |
| ३५ | प्रभुजी को माहात्म्य भगवी दीनता | ४४ |


श्रीनाथद्वारे की यह प्रति तथा कांकरौली की तीसरी प्रति बड़ी महत्वपूर्ण प्रतियाँ हैं। विदित होता है कि ये दोनो एक ही मूल प्रति की दो प्रतिलिपियाँ हैं। दोनो के प्रसंगो में यत्र तत्र अन्तर अवश्य है पर किन्हीं किन्हीं प्रसंगो की पद संख्या यथावत् मिलती है। सम्पादन की दृष्टि से यह प्रति भी बड़ी उपयोगी है।

प्रति न १४।२ परमानन्दसागर—इसमे लगभग ५ पद हैं। विषयानुसार पदो का संग्रह है। लेखन समय उपलब्ध नही।

प्रति न १४।३ परमानन्ददासजी के कीर्तन इसमें लगभग ८ पद हैं। इसमें भी उपर्युक्त दो प्रतियो के अनुसार ही पदो का विषयवार संकलन है। यह प्रति भी अठारहवीं शताब्दी प्रतीत होती है। इसका भी लेखन काल का पता नहीं चलता।

प्रति न १४।४ परमानन्ददासजी के कीर्तन—इसमे लगभग १ पद हैं। विषयानुसार पदो का क्रम है। लेखन काल का कोई पता नही।

श्रीनाथद्वार एवं कांकरौली की इन ११ १२ हस्तलिखित प्रतियो के अतिरिक्त परमानन्दसागर की तीन प्रतियो की और चर्चा है किन्तु लेखक ने देखने मे नही आई। वे इस प्रकार हैं —

१—परमानन्दसागर—प्राप्तिकर्ता श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी। इसमे लगभग ७ पद बताए जाते हैं। पुस्तक शुद्ध है। चतुर्वेदी जी का कथन है कि यह पुस्तक राधाचार्य मूँदड़ा वात्सल्य पद्धी कलकत्ता की है।

२—परमानन्दसागर—यमनादास कीर्तनियाँ गोकुलवासी के पास बताई जाती है। पर इस प्रति का खोज लगाने पर भी लेखक को पता नहीं चला।

३—परमानन्दसागर की एक प्रति की चर्चा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने हिन्दी साहित्य मे की है।[1] जयपुर के कोई सज्जन रामचन्द्र के नाम हैं। पर अब जयपुर मे पता लगाने पर भी लेखक को उसका पता नही चला।

उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियो के अतिरिक्त परमानन्दसागर की दो और प्राचीन प्रतियां लेखक को देखने को मिली हैं। ये पुस्तकें सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान स्व. श्री द्वारकादासजी परीख के अधिकार मे थी। इन दो पुस्तको मे एक तो प्राचीनता की दृष्टि से विद्याविभाग कांकरौली वाली प्रथम दो प्रतियो के बाद रखी जानी चाहिए दूसरी अनुमानत सबसे पुरानी है ये प्रतियां परीखजी को जूनागढ [गुजरात] से प्राप्त हुई थी।

परमानन्दसागर की पहली प्रति—परीखजी की पास की यह प्रति गुटके के आकार पर ६×४ इंच मे है। पुस्तक के ऊपर के कई पृष्ठ फट अवश्य गए हैं और उपलब्ध प्रथम पृष्ठ माखन चोरी प्रसग के पद सख्या १ से प्रारम्भ है। इसी पृष्ठ पर ऊपर दूसरे प्रकार के अक्षरों मे लिखा है 'आपुस्तक के मालीक सेठ जमनलाल नाथाभाई मु    िया है। दोनो ओर हाशियो के लिए स्थान छूटा है। रागो के नाम और विषयो के नाम पर थोडा सा गेरू लगा है। पद सख्या विषयो के साथ-साथ चली है। नया विषय पुन  न  १ से प्रारम्भ किया गया ह। बचे हुए लगभग १११ पृष्ठ हैं। पदो की गणना करने से २१७ पद होते हैं प्रारम्भ मे कितने पद और पद रहे होगे पता नही चलता।

लेखन काल—इस प्रति के अन्त मे पुष्पिका इस प्रकार दी गई है। श्रीरस्तु। कल्याणमस्तु। पठनार्थ बाबा मथुरादासजी लिखित भट्ट माधवजी ॥ श्री जीर्णदुर्ग मध्ये लपि छे॥ स  १७४१ नाफागुण वदि ७ भोमवासरे लपि छे॥ लेपक पाठकयो शुभं भवतु॥ मगल लेपकानाथ॥ पाठकानाथ मगल॥ मगल सर्व जन्तुना भूमी भूपति मगलम्। ४१॥ पुष्पिका मे जीर्ण दुर्ग अर्थात् जूनागढ ( गुजरात ) इस प्रति का लेखन स्थान निश्चित होता है तथा लेखक कोई माधव भट्ट हैं। लेखन काल स  १७४१ प्रति मे स्पष्ट दिया हुआ है।

प्रति के अक्षर सुन्दर सुवाच्य तथा स्पष्ट है। प्रति मुद्रण प्रकाशन सपादन की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।[2]

परीखजी की परमानन्दसागर की दूसरी प्रति—यह प्रति बाह्य आकार प्रकार से अत्यन्त क्षीण जीर्ण एव प्राचीन है। कही असावधानी से रखी गई थी अत अन्तिम पृष्ठ पानी से भीगा हुआ है प्रति का आकार ? ×४ इच है। इसमे आदि के और अन्त के पृष्ठ कटे हुए हैं। प्रारम्भ के ११२ पद नही हैं। अन्त मे पुष्पिका नही है। अंतिम पद जो उपलब्ध है उसकी सख्या ८१७ दी हुई है। हाशिए पर प्रसग अथवा विषय क्रम लाल स्याही से लिखे हुए हैं। पुस्तक सुन्दर और सुवाच्य है।[3]

---

१ हिन्दी साहित्य पृष्ठ १८७

२ इस प्रति की प्रामाणिकता की जाच अलीगढ विश्वविद्यालय के मन्तून हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा  हरवंशलाल ने की है। उनका मत है कि यह प्रति अवश्य प्रामाणिक और व्यवस्थित लेखन होनी चाहिए। प्रारम्भ के पृष्ठों के न होने से यही प्रति अनुमत होती है

३ १ देखो चौर मं ७—

देखो चौर मं ६—१०—११

इस प्रति के लेखन काल का पता लगाना अवश्य कठिन है क्योंकि अंतिम पुष्पिका नहीं। किन्तु लेखन शैली और लिपि को देखकर मीतलजी का अनुमान था कि यह १७ वीं शताब्दी की होनी चाहिए। वस्तुतः यह प्रति यदि पूर्ण होती तो बड़े उपयोग की होती और संभवतः सबसे अधिक प्रामाणिक होती। और पद संख्या की दृष्टि से भी अधिक पदों के संग्रह का अनुमान होता। क्योंकि ८२६ तथा ८२७ में पद भ्रमर गीत के प्रथम काल पद हैं। इससे इस संग्रह के शीघ्र समाप्त होने का अनुमान नहीं होता। इस प्रकार परमानंद सागर की यह पूर्ण प्रति अपना विशेष महत्व रखती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी इसे स्वयं देखा है और इसकी प्राचीनता स्वीकार की है।

इस प्रकार परमानन्दसागरकी लगभग १३–१४ हस्तलिखित प्रतियाँ प्रकाश में आई हैं। मुद्रित स्वतंत्र प्रति का अभाव तब अभाव रहा। परमानन्ददासजी के कुछ पद अवश्य मुद्रित मिलते हैं। परन्तु या तो वे अन्य अष्टछापी कवियों के साथ हैं या वे संगीत एवं रागों की उपयोगिता की दृष्टि से अन्य वैष्णव कवियों के पदों के साथ हैं।

हस्तलिखित के प्रतियों के देखने से हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं —

१—सभी प्रतियाँ प्रतिलिपियाँ हैं। परमानन्ददासजी की हस्त लिखित मूलप्रति कहीं उपलब्ध नहीं होती न चर्चा ही मिलती है।

२—प्राय: सभी प्रतियों में पद विषय क्रमानुसार हैं।

३—कवि ने सूरसागर की भाँति भागवत के स्कंधात्मक क्रमों के अनुसार पद रचना नहीं की।

४—यदि समस्त उपलब्ध प्रतियां एक स्थान पर एकत्र करके संपादित की जाँय तो लगभग २५ के लगभग पद मिल जायँगे।

५—मुख्य रूप से परमानन्ददासजी वल्लभसम्प्रदाय पर ही केन्द्रित रहे हैं। अन्य स्फुट प्रसंग जैसे राम जयन्ती नृसिंह जयन्ती वामन जयन्ती तथा दीप मालिका प्रसंग तृतीया आदि उत्सवों के पद सम्प्रदाय की परिपाटी के अनुसार ही हैं।

६—उनके पदों का विषय बाल लीला गोपीभाव विरह मान युगल लीला रास आदि हैं।

७—वे भगवान् कृष्ण की रसमयी भावात्मक लीलाओं के अतिरिक्त अन्य विषयों पर पद रचना नहीं करते थे।

—परमानन्ददासजी की शैली प्रधान रूप से पद शैली है।

९—उनके पदों में १-परमानन्ददास प्रभु २—परमानन्दस्वामी ३—परमानन्ददास ४—दासपरमानन्द एवं ५—परमानन्द इस प्रकार पाँच छापें मिलती हैं।

१ —परमानन्दसागर के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाएं अप्राप्य और संदिग्ध हैं। वे पुष्ट प्रमाणों के अभाव में अप्रामाणिक ही ठहरती हैं।

अत परमानन्ददासजी 'परमानन्दसागर' कार हैं। कीर्तन सेवा में तल्लीन भक्त कवि को मति वैभवकी के स्पर्श की न इच्छा थी न आवश्यकता। अपने औसरे पर कीर्तन के समय पीछे बैठे हुए भाव-भाव वादिए एवं भावविज्ञों की कण्ठ-परम्परा से वे पद अनेक दशाब्दियों

प्राय हस्तलिखित प्रतियाँ कुछ नित्य कीर्तन क्रम मे वर्षोत्सव क्रम से कुछ तथा कुछ लीलात्मक क्रम से लिखी जान पड़ती हैं।

नित्य सेवा क्रम मे सम्प्रदाय का अपना क्रम है। उसमें मंगलाएँ महाप्रभुजी तथा गुसाईं जी की यमुनाजी के पद गंगाजी के पद जगायबे के पद मंगला शृंगार पालना न्हवायबे के पद ग्वाल गोदोहन उराहनो राजभोग शीतकाल के पद बीरी झरोखाके के पद, उष्णकालके पद मानके पद उत्थापनके पद, शयन आरती ब्यारूके पद मान आदिके पद आते हैं।

अष्टयाम की नित्य सेवाके सहस्रो पद अष्टछाप के कवियों ने रचे हैं फिर नित्य कीर्तनकार या कवि का अपना योगदान होता था वह नित्य नये पदों की रचना करके भगवान् को रिझाता था। परमानन्ददासजी नित्यप्रति मे रहकर श्रीनाथजीका कीर्तन सेवा करते हुए सहस्रावधि पदो की रचना करते थे। ऐसी कि सम्प्रदाय की प्रणाली थी। प्रत्येक कीर्तनकार के साथ आठ-आठ अनुसरिये रहते थे। जो टेक उठाने का कार्य करते थे। वे स्वयं भी कवि होते थे। परमानन्ददासजीके आठ भीतरिये जोकि उनके अनुगामक कहलाते थे वे थे—(१) पद्मनाभदास (२) गोपालदास (३ आसकरण (४) गदाधरदास (५) सगुनदास (६) हरिजीवनदास (७) माणिकचंद और (८) रसिकबिहारी।

इस क्रम मे परमानन्ददासजी का जितना साहित्य रहा होगा और उसमें से जितना प्रकाश मे आया और जितना अभी प्रकाश मे आने को पड़ा है इस सबका लेखा-जोखा निकालना साहित्य रसिको एव सम्प्रदाय प्रेमियो का कर्तव्य है

वर्षोत्सव का क्रम—वर्षोत्सव का क्रम जन्माष्टमी से प्रारम्भ होकर वर्ष भर चलता है और अगले वर्ष की भाद्रपद वदी ७ मी को समाप्त होता है। वर्षोत्सव के कीर्तनो में जन्माष्टमी बधाई छठी पलना अन्नप्राशन कर्णवेध नामकरण करवट, ढाढ़ी राधाजी की बधाई, बाललीला दानके पद सांझी देवी पूजन मुरली दशेरा रास धनतेरस रूपचौदस दिवारी भाई जिमायबो हटरी अन्नकूट, गोवर्धन पूजा गोवर्धन लीला के पद देव प्रबोधिनी मकरसंक्रान्ति होरी धमार, रामनवमी नरसिंह चतुर्दशी वामन जयन्ती नाव के पद अक्षय तृतीया हिंडोरा तथा पवित्रा आदि के पद आते हैं। परमानन्ददासजी के पद इस क्रम से भी उपलब्ध होते हैं।

लीलात्मक क्रम मे उनके वे सरस मधुर पद आते हैं जो भगवान् की बाललीला पूतना उद्धार के उपरान्त माखन लीला छाक के पद कुंज यमुना तट युगल लीला, वनिता मध्य विप्रपत्नी मुरली रास गोवर्धन आदि भागवत के दशमस्कन्ध के अनुसार उन्होंने रचे हैं।

परमानन्ददासजी की जितनी भी प्रतियाँ हैं उनमे उपर्युक्त तीनो ही क्रम मिले-जुले मिलते हैं। यदि ये प्रतियाँ सर्व सुलभ हो सकें तो इनके व्यवस्थित सम्पादन का कार्य और भी आगे बढ़ाया जा सकता है।

---

चतुर्थ अध्याय

# शुद्धाद्वैत दर्शन और परमानन्ददासजी

अष्टछाप के कवियों का उद्देश्य मुख्य रूप से दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण नहीं था। वे अहर्निश कीर्तन सेवा में आसक्त रहने के कारण भगवल्लीला गान को ही महत्व देते थे। उनके प्रभु जन ताप निवारणार्थ [1] इस भूलोक में अवतीर्ण होते हैं और विविध मानवीय लीला करते हुए भक्तों के चित्तों को अनुरंजित करते हुए दुष्टदलन भी करते हैं। और इस प्रकार लीलामय प्रभु भूभार उतारा करते हैं। भगवान् के कपटमानुष देह रूप इस लीला से कहीं सांसारिक जनों से उनका ईश्वरत्व विस्मृत न कर दिया जाय इस हेतु ये भक्त कवि बीच-बीच में उनका पूर्ण पुरुषोत्तमत्व अथवा पूर्णब्रह्मत्व भी प्रतिपादन करते चलते हैं।

संसार की अनित्यता जीव की अपचासक्ति और अविद्याकृत विवशता भक्ति की पूर्णता और आत्म-निर्भरता माया का मिथ्यात्व आदि का भी उन्हें यथास्थान प्रसंग चलाना पड़ा है। अतः उनके काव्य में दार्शनिक प्रसंगों का प्रासंगिक रूप से यत्र-तत्र आ जाना सहज और स्वाभाविक था। सभी अष्टछाप के कवि सम्प्रदाय के आचार्य वल्लभ तथा गोस्वामी विट्ठलनाथजी के दीक्षित शिष्य थे। अतः सभी के दार्शनिक विचार वल्लभ सिद्धान्तानुसार ही होने चाहिए। अतः परमानन्ददासजी के दार्शनिक विचारों और उनके काव्य में दार्शनिक तत्वों के संकलन से पूर्व महाप्रभु वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों को संक्षेप में समझ लेना उचित होगा। यों तो परमानन्ददासजी मुख्यतः भक्त कवि ही थे। दार्शनिक सिद्धान्तों की जटिल गुत्थियों में वे नहीं उलझे फिर भी इन भक्त कवियों के काव्य में यत्र-तत्र दार्शनिक विचार मिल ही जाते हैं।

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त अथवा ब्रह्मवाद—भारतीय धर्म साधना की प्रारम्भ से ही दो दृष्टियाँ रही हैं –

१—तात्विक अथवा सैद्धान्तिक पक्ष।

२—साधनात्मक अथवा व्यवहार पक्ष।

सैद्धान्तिक दृष्टि से आचार्य वल्लभ का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत अथवा ब्रह्मवाद कहलाता है। इसी को अविकृतपरिणामवाद कहते हैं।

साधनात्मक अथवा व्यवहार दृष्टि से इसे पुष्टिमार्ग या अनुग्रहमार्ग अथवा शरणमार्ग कहा जाता है। और आचार्य वल्लभ ही उसके संस्थापक। [2]

अद्वैत के पूर्व 'शुद्ध' शब्द लगाने का तात्पर्य है 'माया का सम्बन्ध राहित्य है' [3]। आचार्य के मत में 'मायावाद' का निरसन अथवा खण्डन है अतः इसे शुद्धाद्वैतवाद कहा जाता है।

---

१ जन्म धर्यौ जनताप निवारन।
जन दुरजन करषौ अमर कर भगतन की रच्छा के कारन॥
परमानन्ददास द्वारा सम्पादित प० सा० पद सं० २

२ माध्वर मतमार्तण्ड स्वापरो वेद शरण्य। त० स्तो० स्लो०
इयद् शरणं मार्गोऽरेप्या—श्रीमद्वल्लभनिर्दि। श्लो० ,, ११

३ माया सम्बन्ध रहित शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्य कारण रूपं हि शुद्ध ब्रह्म न मायिकम्॥ शु० मा० श्लो०—२०

वाद से तात्पर्य है—शास्त्रार्थ 'यथार्थ मनन' निदिध्यासन द्वारा जो अनुभव रूप है वही 'वाद' है। वाणी से कलह मात्र करना वाद नहीं।[1] यही ब्रह्मवाद है।[2] उनके इस सिद्धान्त से सब कुछ ब्रह्म ही है। जीव ब्रह्म रूप है यह जगत् भी ब्रह्म रूप है और इसलिए जीव और जगत् दोनों सत्य हैं।[3] बुद्धि के विकल्प से भिन्नता प्रतीत होती है स्वरूप से जीव जगत् ब्रह्म एक ही हैं।[4]

यही सिद्धान्त अविकृतपरिणामवाद भी कहलाता है। क्योंकि इसमें मूल कारण [ परम तत्त्व ] नाना कार्यरूप होकर भी कैसे भी विकार को प्राप्त नहीं होता। समस्त अवस्थाओं में कार्य कारण रूप ही रहता है अतः कार्य ( परिणाम ) अविकृत कहलाता है। स्वर्णादि मृत्स्ना स्वर्ण आदि कुण्डल कल्पवृक्ष कामधेनु, चिन्तामणि आदि सब अविकृत परिणामवाद के उदाहरण हैं। इस प्रकार सच्चिदानन्द निर्गुण ब्रह्म ही जगत्रूप में परिणाम पाता है फिर भी उसमें अणुमात्र विकृति नहीं होती। यही अविकृतपरिणामवाद का निष्कर्ष है। ब्रह्म को ही इस सिद्धान्त में जगत् का उपादान तथा निमित्त—दोनों कारण माना गया है। अतः 'सर्वब्रह्म' वाला सिद्धान्त बन जाता है। इसको 'सर्ववाद' भी कहा जाता है।

पुष्टि मार्ग—सिद्धान्त पक्ष में अथवा तत्त्व दृष्टि से जो मार्ग शुद्धाद्वैत कहलाया वही साधना के क्षेत्र में 'पुष्टि' मार्ग कहलाया। पुष्टि शब्द को आचार्य ने भागवत[5] से लिया है। भगवान् के अनुग्रह को ही 'पोषण' या 'पुष्टि' कहते हैं। आचार्य के मत में भगवदनुग्रह ही एकमात्र प्राप्य है। प्रभु के अनुग्रह से ही भक्त के हृदय में भक्ति का उदय होता है। तब भक्त अपने आपको भगवान् का तुच्छ सेवक समझता तथा अपना 'सर्वस्व' भगवान् को समर्पण कर देता है। यह समर्पण अथवा सर्वतोभावेन आत्मनिवेदन ही ब्रह्म सम्बन्ध है। पुष्टि भक्ति में स्थित भक्त भगवान् की कृपा पर ही निर्भर रहता है। कृपा मकरन्द पर निर्भर रहने वाला भक्त लौकिक पुरुषार्थ की कामना ही नहीं करता।[6]

इस पुष्टि का रूप ही 'कृष्णानुग्रह रूपा हि पुष्टि'[7] है। आचार्य ने 'पुष्टि' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है—'कृति साध्यं साधनं ज्ञान भक्ति रूपं शास्त्रेणाबोध्यते ताभ्यां विहिताभ्यां मुक्तिर्मर्यादा तद्रहितानामपि स्वरूप बलेन स्वप्रापणं पुष्टिरित्युच्यते।

[illegible] विवादमात्रे पर [illegible] जीव एक तथा जप [illegible] विचार ॥
१ सर्वं [illegible] ब्रह्मवाद—सुबोधिनी कारिका ॥
२ सर्वं ब्रह्मात्मकं नित्यमित्या बोधयेद् गुरु।
सर्वं तत्त्वेन यावन्ति [illegible] न [illegible] ॥
बोध्यो [illegible] सर्वं हि [illegible] स्वाधनम्
[illegible] न स्यात् [illegible] त द मा १-९
४ ज्ञानात् विकल्प बुद्धिस्तु [illegible] —त दी नि ११
५ स्थिति र्वैकुण्ठ विजयः पोषणं तदनुग्रहः
मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥ भागवत २।१०।४
६ मकरन्द निर्भरे अनुगतो [illegible] रस मि [illegible] ॥
७ [illegible] निबन्ध [illegible] प्रकरण।
अणुभाष्य ४ ४ ४६

अर्थात् वेदाध्ययन यज्ञ दान तप आदि करने से मोक्ष होता है। वेदाध्ययन आदि मोक्ष के साधन हैं, इन साधनों से मुक्ति प्राप्त करना 'मर्यादा' है। परन्तु जहाँ ये साधन नहीं किये जाते और इन साधनों से भी जो भ्रष्ट हैं ऐसे भगवान् के स्वरूप बल से ही जो प्रभु की प्राप्ति होती है उसे 'पुष्टि' कहते हैं।

यह पुष्टिमार्ग वेद शास्त्र और पुराणों से प्रतिपादित है। आचार्य ने इसे प्रमाण चतुष्टय से प्रमाणित किया है। पद्मपुराण में लिखा है —

श्री[1] ब्रह्म[2] रुद्र[3] सनका[4] वैष्णवा क्षितिपावना।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या सम्प्रदाय प्रवर्तकाः ॥

विष्णुस्वामि का सम्प्रदाय रुद्र सम्प्रदाय कहलाया। इसी सम्प्रदाय की आचार्य परंपरा में वल्लभाचार्य को अभिषिक्त किया गया। आचार्य वल्लभ ने अपने साधनमार्ग अथवा धरणमार्ग का नाम पुष्टिमार्ग रखा। यह एक सुगमतम विश्वधर्म है जिसके विषय में कहा जाता है कि इस राजमार्ग पर यदि कोई आँख मींच कर भी दौड़े तो यह मार्ग इतना स्वच्छ और निष्कण्टक है कि इस पर दौड़ने वाला न गिरता है न फिसलता है। भगवान् व्यास कहते हैं कि यह मार्ग अत्यन्त निष्कण्टक और उत्तम है क्योंकि इसमें श्रीहरि की भलीभाँति अर्चा सेवा होती है।[2]

तात्पर्य यह है कि तत्व दृष्टि से अथवा दर्शन के क्षेत्र में जिसे हम शुद्धाद्वैतवाद अथवा ब्रह्मवाद अथवा अविकृतपरिणामवाद पुकारते हैं वही साधना के अथवा भक्ति के क्षेत्र में 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है।

अन्य दर्शनों की भाँति शुद्धाद्वैतदर्शन में भी ब्रह्म जीव जगत् मायादि सभी की अपनी परिभाषा है। और आचार्य ने इन सबकी अपनी विशिष्ट शैली से युक्ति युक्त मीमांसा की है। नीचे आचार्य के मतानुसार ब्रह्म जीव जगत मायादि का स्वरूप बतलाने की चेष्टा की गई है।

वल्लभ के ब्रह्म का स्वरूप—आचार्य वल्लभ का ब्रह्म शंकराचार्य के समान अन्ततोगत्वा निर्गुण निराकार नहीं। वे ब्रह्म के निर्गुणत्व का प्रतिपादन करते हुए इसको सर्वोच्च सत्ता मानते हैं। शंकरके अनुसार ब्रह्मका सगुणत्व उसके निर्गुणत्व की अपेक्षा थोड़ा निम्नत्व लिए हुए है। उनके अनुसार ब्रह्म का सगुणत्व केवल उपासना के लिए है। और यह तभी तक जब तक कि पूर्ण ज्ञान की स्थिति में साधक नहीं आ जाता। ज्ञान-दशा प्राप्त होने पर सगुण की आवश्यकता नहीं रह जाती। वल्लभाचार्य का ब्रह्म केवल एक ही है। वही सगुण भी है और निर्गुण भी। वह निर्गुण इसलिए है कि उसमें जागतिक गुण नहीं वह सगुण इसलिए है कि वह आनन्दादि दिव्यधर्मों वाला है। इसी प्रकार वह निराकार भी है साकार भी। वह आनन्दस्वरूप है।

ब्रह्म को जहाँ अन्य दार्शनिक परमार्थतः अत्यन्त निर्धर्मक निर्विशेष निराकार निर्गुण मानते हैं वहाँ आचार्य वल्लभ उस प्रकार न मानते हुए ब्रह्मसूत्रकार का आश्रय लेकर 'सर्व-धर्मोपपत्तेश्च' सर्वोपेता च तद्दर्शनात् इत्यादि ब्रह्मसूत्रोक्त सिद्धान्तों का अवलम्बन करके ब्रह्म

---

येऽत्र श्री कृष्ण पश्यामि मत्स्याधि वैभवि।
तस्मादि भाषा भागवतप्रमाणं तत्स्तुप्रवम् ॥

२ धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥
एष निष्कण्टकः पन्था यत्र संपूज्यते हरिः।

मुक्त मानकर भी उसमे नित्यत्वादि धर्म मानते हैं। फिर 'ब्रह्म मे इतने ही धर्म हैं।' इस प्रकार का नियत धर्मवाद मानने से ब्रह्म की इयत्ता स्थिर हो जाती है। इसलिए अनियत धर्मवाद का स्वीकार करके ब्रह्म मे सर्वधर्ममत्ता सहज ही है ऐसा ही मानना चाहिए।

जगत् और जीव मे ब्रह्म के कार्य होते हुए भी वे ब्रह्म रूप ही हैं ब्रह्मानन्य हैं ब्रह्माभिन्न हैं फिर भी प्रापंचिक पदार्थों से ब्रह्म विलक्षण है। उसे जब क्रीडा करने की इच्छा होती है तो आनन्दांश तिरोभूत हो जाता है। वस्तुत समस्त जगत् ब्रह्म मे ओत प्रोत है और अव्यक्त रीति से ब्रह्म में लीन है। इस ब्रह्मवाद मे सत्कार्यवाद ही इष्ट है फिर भी द्वैत की भय नही। इसलिए भागवत म कहा है जहाँ जिसके कारण जिससे जिसका जिस लिए, जिस प्रकार जो भी जिस समय होता है वह सब प्रधान पुरुषेश्वर ब्रह्म ही है।[२] अत यह न्यायोपबृंहित सर्व वेदान्त प्रतिपाद्य निखिल धर्म युक्त अनवगाह्य माहात्म्य सर्वभवनसमर्थ है। इस प्रकार का जब उसके माहात्म्य का ज्ञान हो जाता है तो उसके स्वरूप के प्रति सर्वतोधिक स्नेह और भक्ति प्राप्त होती है। और उसी से मुक्ति होती है अन्य से नही।

ब्रह्म का विरुद्धधर्माश्रयत्व—ब्रह्म निर्धर्मक है तथापि सधर्मक है निराकार है, तथापि साकार है निर्विशेष है तथापि सविशेष है निर्गुण है अणु से अणु और महान् से महान् है। अगम्य मूर्ति है तथापि एक और व्यापक है कूटस्थ है तथापि चल है अकर्ता है, कर्ता भी है अविभक्त भी है विभक्त भी है। क्योंकि जब इच्छा होती है तब प्रकट होता है। और तभी विभक्त होता है। वह अगम्य और गम्य दोनो है। वह अदृश्य है फिर भी दृश्य है। नाना विधि सृष्टि करता है फिर भी विषम नही। क्रूर कर्म करता है। परन्तु निर्घृण नहीं। ब्रह्म अनेक रूप है तथापि गाढ घनीभूत सैन्धववत् बाह्याभ्यन्तर सदा सर्वदा एक रस है शुद्ध है। वह बालक है तथापि रसिक मूढ स्य है। स्वतन्त्र है तथापि भक्त पराधीन है। अभीत है परन्तु (भक्त के निकट) भीत है। निरपेक्ष है परन्तु (भक्त के निकट) सापेक्ष। चतुर है परन्तु भक्त के निकट महामुग्ध है। सर्वज्ञ है परन्तु (भक्त के निकट) अज्ञ है। आत्माराम है फिर भी रमण करता है। पूर्णकाम है परन्तु (भक्त के निकट) दीन भी है। परन्तु (भक्त की कामना पूर्ण करने के लिए) कामार्त है। अदीन है किन्तु (भक्त के निकट) दीन है। स्वयं प्रकाश है फिर भी (भक्तातिरिक्त) अप्रकाश है। बहिरूप है परन्तु (भक्त के निकट) अन्तरतम है। पराधीन परवश है और रसिक वश भी है। यह ब्रह्म इन्द्रियातीत अगम्य परन्तु स्वेच्छा से दृश्य होने वाला है और अवतार दशा मे प्राकृत धर्म को अंगीकार करने वाला है अच्युत है और च्युति रहित है। इस प्रकार विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्व का अनुभव कराता हुआ निःसीम अगाध माहात्म्य प्रकट करता है। और तो क्या वह अविकृत है फिर भी कृपापूर्वक परिणामशील भी है।

ब्रह्म का सर्ववत्स्व —वस्तुत ब्रह्म अविकृत है। जगत् मे परिणामशील होता हुआ भी अविकारी है और स्वीय अगाध माहात्म्य प्रदर्शनार्थ ही वह अविकृत निर्गुण

१ [illegible]

२ यद् येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वरः ॥ भा. [illegible] श्लो. [illegible]

ब्रह्म परिणामशील होता है। इसलिए 'जन्माद्यस्य यतः' तथा शास्त्र योनित्वात्' आदि सूत्र ब्रह्मवाद के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। इसलिए निर्गुण अद्वैत सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वतः सहज कर्त्ता है और उसका यह कर्तृत्व स्वाभाविक है मायिक नहीं न आरोपित है। एक ही अद्वितीय ब्रह्म एकाकी रमण नहीं करता तभी वह दूसरे की इच्छा करता है।[1]

अथवा एकोऽहं बहुस्याम्[2] "मैं एक हूँ अनेक हो जाऊँ" ऐसी इच्छा करता हुआ अनन्त अनुग्रह पूर्वक वह स्वयं ही सब कुछ हुआ। और जगद्रूप में आविर्भाव पाकर लीला करता है। संक्षेप में वह अविकृत निर्गुण सच्चिदानन्द ब्रह्म आविर्भाव तिरोभाव के द्वारा अनेक और विचित्र लीलाएँ करता है। इस प्रकार आचार्य के मत में जगत् और ब्रह्म एक तत्व हैं। उन्होंने ब्रह्म के तीन स्वरूप माने हैं:—

१—परब्रह्म—आधिदैविक स्वरूप।
२—अक्षर ब्रह्म—आध्यात्मिक स्वरूप।
३—जगत्—आधिभौतिक स्वरूप।

ये तीनों ही स्वरूप अनन्य हैं और अभिन्न हैं। फिर भी अक्षर ब्रह्म में और पूर्ण ब्रह्म में थोड़ा अन्तर है। इस अन्तर की चर्चा करने से पूर्व कविवर परमानन्ददासजी का ब्रह्म विषयक विवेचन देख लेना चाहिए।

परमानन्ददास का ब्रह्म—वस्तुतः परमानन्ददासजी अकस्मात् भक्त थे दार्शनिक नहीं। अतः उन्होंने दार्शनिक गुत्थियों में उलझने की चेष्टा नहीं की। वे अन्य भक्त कवियों की भाँति कृष्ण लीला गान में ही रत रहे, फिर भी प्रसंग वश उन्होंने भगवान की पूर्ण ब्रह्मत्व की यत्र-तत्र चर्चा की है। इस चर्चा से उनको साम्प्रदायिक दर्शन के बोध का परिचय मिलता है। उनके दार्शनिक सिद्धान्त एवं दर्शन सम्बन्धी मान्यताएं वही हैं जो उनके गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य की हैं। अतः उनको गुरु कृपा पूर्ण ब्रह्म ही कृष्ण हैं। कृष्ण और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं। ब्रह्म ही अवतारी कृष्ण होकर निर्गुण लीला के लिए पृथ्वी पर आया है।[3] वह भक्तों का हितकारी है और उन्हीं के प्रेम से वशीभूत होकर उसे आने की आवश्यकता पड़ती है। वह ब्रह्म मानव स्वरूप है। अतिमानिक है। अनुकामकतार उसकी लीला के लिए है।[4] भागवत के अनुसार परमानन्ददासजी भी यही कहते हैं कि सर्वभूतों में स्थिति करने वाला विष्णु[5] जो बैकुंठ निवासी है। और शंख-चक्र गदा पद्म को धारण करने वाला है वही जगद्गुरु भक्तों की आर्ति को नष्ट करने के लिए अवतार लेकर कृष्ण रूप में इस धरा धाम पर आया है।[6] वह बैकुंठ

---

१ "स एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्
२ तैत्तिरीयोपनिषद् २—६
३ मोहन नंदराय कुमार,
परम पुरुष निर्गुण नायक भक्त हेत अवतार।
४ भक्तन की निधि नन्दकुमार।
परम ब्रह्म नर वेष वपुधरि कर मोहन लीला अवतार
५ निरीक्षे त्वदुरस्थे भवनस्थे भवतांगे [illegible] विष्णु सर्वभूतात्मक ॥ भा० १ [illegible]
६ तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंख गदाद्युदायुधम्।
श्रीवत्स लक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्र पयोद सौभगम्॥
परमानन्ददासजी कहते हैं —
प्रगट भयो जब तात निहारत
चारों भुजा आयुध धरे नारायण कुमार रूपारत ॥

निवासी भी है और व्यापक ब्रह्म भी।[1] वह कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थ[2] सर्वभवन क्षम और कामना भी निर्माता है। फिर क्षीरसागर का भी वासी है। ब्रह्म रुद्र इन्द्रादि उसके अनुचर हैं वही ब्रज मे आकर नंदगृह में बालक बन गया है।[3] वही पुरुषोत्तम है। सबका स्वामी और लीलावतारी है।[4] वेदोंने उसका पार नहीं पाया और ऋषि मुनि गण भी जप तप करके उसकी पूरी खोज नही कर पाये।[5] वही पुरुषोत्तम पूर्णब्रह्म ब्रजभूमि मे अवतीर्ण हुआ है। उसके अवतार के मुख्य तीन हेतु हैं —

१—भूभार उतारना और भक्तो को सुख देना।

२—विविध लीलाओ द्वारा लोकरंजन सहित ऐश्वर्य प्रकट करना।

३—रसात्मक प्रेमलक्षणाभक्ति का आदर्श प्रस्तुत करते हुए गोपीजनोंके साथ निर्द्वंद्व लीला करना।

अतः निगमागम से प्रतिपाद्य पूर्णब्रह्म की चर्चा करते हुए भी परमानन्ददास भूभार उतारने वाले अवतारी विष्णु को नही भूलते। उनका ब्रह्म मत्स्य वराहादि आयुधो को धारण करने वाला विष्णु भी है और वही रसात्मक रसेश श्रीकृष्ण है जो वृन्दावनचारी और जो गोप गोपीजनो मे क्रीडा करने वाला है।[6]

वह अन्तर्यामी सब जगह व्यापक है—

जित देखौं तित कृष्ण मनोहर दूजो दृष्टि ना परै री।
जित सुहावनी छवि अति सुन्दर रोम रोम रस ही भरै री॥
सिव विरंचि जहाँ ढूंढ़त फिरै सो मन मेरे अरै री।
परमानंद सहजी सुख दरसन जित, कारज सबही सरै री॥ [पद संख्या ३७१]

---

१ परमानन्द प्रभु बैकुंठ नाथे ब्रज लीनो अवतार।

२ निगमनाथ महिमा शास्त्र जो बहु सोई करै।
रीतें भरै भरै पुनि ढोरै जो चाहै तो फेर भरै॥

३ सो गोविन्द निहारे ब्रज बालक।
अमर मण घनस्याम मनोहर धरें रूप ब्रजकुल पालक॥
कमलापति त्रिभुवन पतिनायक भुवन चतुर्दश नायक सोई॥
उत्पति प्रलय काल को कर्ता जाके किए सबै कुछ होई॥
सनक सनन्दन ब्रह्मा वर आयो क्षीरसमुद्र को वासी
पशुपति भार उतारन कारन प्रगट भए बैकुंठ निवासी॥
ब्रह्म महादेव इन्द्रादिक विनती करि करि जाय।
परमानन्ददास को ठाकुर नन्द पुण्य फल में प्रगट आय॥

४ ब्रज वह भूमि देखत आयो धरत बिहार
पुरुषोत्तम स्वामी श्री ठाकुर या लीला अवतार॥

५ जा प्रभु को मुनि जप तप खोजत वेदहु पार न पायो।
सो प्रभु धर्यो क्षीरसागर मैंते ब्रज आय बसायो।

६ मत्स्यादिक वाराहिक आदी धरम हेतु धरि धरे।
सोई नन्दजू को पूत कहावै कौतुक छल्यो मेरी माई।
— — — —
सो हरि परमानन्द को ठाकुर ब्रज प्रभु केलि कराई।

वह रमणीय क्रीड़ाप्रिय रसात्मक रस शिरोमणि है फिर भी नन्दनन्दन है—

रसिक सिरोमनि नन्दनन्दन।

स्याम रूप अनूप बिराजत गोप बधू बर सीतल चन्दन॥

जब वह रास क्रीड़ा करता है तब अखिल भुवन मुग्ध हो जाता है—

सरद बिमल निसि चन्द बिराजित क्रीड़ित जमुना कूलें हो।

परमानन्द स्वामी कौतूहल देखत सुर नर भूलें हो॥ [प स ११८]

वह परब्रह्म कृष्ण अनुपम सौन्दर्यशाली कोटि कन्दर्प लावण्यवपुष नराकृति होकर भी वेद पुराण प्रतिपाद्य है—

सुन्दरता गोपालहिं सोहै।

कहत न बनै नैन मन आनन्द जा देखत रति नायक मोहै।

सुन्दर चरन कमल गति सुन्दर गुँजा फल अवतंस।

सुन्दर बन माला उर मंडित सुन्दर गिरा मनो कल हंस

सुन्दर बेनु मुकुट मनि सुन्दर, सुन्दर सब अंग स्याम सरीर।

सुन्दर बदन अवलोकित सुन्दर-सुन्दर ते बलबीर॥

वेद पुराण निरूपत ब्रह्म बिच ब्रह्म नराकृति रूप निवास।

बलि-बलि जाउ मनोहर मूरति हृदय बसौ परमानन्ददास॥ [प सं १११]

"रसो वै स" के अनुसार वह रस स्वरूप है। भागवतादि महापुराणों मे उस रसेश की चर्चा है शुक व्यास आदि मुनि पुंगव उस रसात्मा की ही अहर्निश चर्चा करते हैं। आगम निगम जिसका पार नहीं पाते और अगाध बताकर मौन हो जाते हैं वही यमुना के तट के निकट वशीवट मे राधिका के साथ विहार करता है—

जो रस रसिक और मुनि गायो।

सो रस रटत रहित निस बासर सेस सहस मुख पार न पायो॥

मागवत सिव सारद मुनि नारद कमल कोस ने कौन बतायो।

जदपि रमा रहत चरनन तर निगमनि अगम अगाध बतायो॥

तरनि तनया तट बंसीवट निकट वृन्दावन बीथिन बहायो॥

सो रस रसिक दासपरमानन्द वृषभानु सुता उर माझ समायो॥ [प स ११५]

वह दिव्य रस कर्मठ और ज्ञानियो की पहुँच से बाहर है, यह केवल रसिको को ही सुलभ है और केवल भक्ति-साध्य है। भगवान के अनुग्रह से परमानन्द जैसे भक्तो को किंचिद् उपलब्ध हो जाता है—

आनन्द सिन्धु बढ्यौ हरि तन मे।

ना परस्यौ करमठ अरु ग्यानिनु भटकि रहौ रसिकन के मन मे।

मन्द-मन्द अवगाहत बुधि बल भक्ति हेत प्रगटत छिनु मे

कछुक लहत नन्दसुवन कृपातें सो बिधिवत परमानन्द जन मे॥ [प स ११६]

संक्षेप में परमानन्ददास पूर्णब्रह्मके उपासक हैं। वही पूर्णब्रह्म उनका त्रिभुवन पति परमात्मा श्रीकृष्ण है अवतार धारण करके भक्तो को सुख देने के लिए वह व्रजभूमि मे नाना लीलाएं किया करता है। वह निर्गुण सगुण दोनो है। वह प्राकृत लीला करने के कारण सगुण है। वह लीलावतारी निजेच्छासे नन्द यशोदा व गोप गोपीजनो को सुख देने के लिए ही स्वय अवतीर्ण होता है। वह ब्रह्मा इत्यादि से वन्दनीय आनन्द स्वरूप रस रूप है। सबसे परे और सर्वमय है। वह निगम प्रतिपाद्य होकर भी राधा का जीवनाधार है। उस गोपीनाथ की परमानन्ददास उपासना करते है। कृष्णावतार मे परमानन्ददासजी की सहज प्रीति है [1]

अक्षर ब्रह्म—ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं। उनमे आधिदैविक ब्रह्म भक्तो को ही प्राप्य है। आध्यात्मिक ब्रह्म को ही अक्षर ब्रह्म कहते हैं। यदि मुमुक्षु ज्ञानी भक्ति रहित हो तो उसका अक्षर ब्रह्म मे लय होता है। अर्थात् ज्ञानी को अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जगत् तो ब्रह्म का आधिभौतिक स्वरूप है।

भगवान् जब जिस रूप द्वारा जो कार्य करने की इच्छा करते हैं तब उसी स्वरूप से वे समस्त व्यापार भी करते हैं। अत ज्ञानी को जब ज्ञान द्वारा मोक्षदान करने की इच्छा करते हैं तब वे पुरुषोत्तम के आधार भाग चरण स्थानीय अक्षरब्रह्म के अक्षररूप कालरूप कर्मरूप और स्वभावरूप—चार स्वरूप ग्रहण करते हैं। उस समय प्रकृति और पुरुष इस प्रकार द्विरूप होकर वह अक्षरब्रह्म पुरुषोत्तमपूर्णवत् पूर्णचित्, पूर्ण अक्षरानन्द होता है। परन्तु अक्षर ब्रह्म मे आनन्द का कुछ तिरोभाव होता है इसलिए वह गणितानन्द कहलाता है। यही उसकी विलक्षणता है। [2] मानवीय आनन्द लेकर अक्षरानन्द पर्यन्त आनन्द की इयत्ता है। इसी कारण तैत्तरीयोपनिषद् मे कहा है—

सैषा ऽऽनन्दस्य मीमांसा' ॥

'मुझे इस प्रकार से प्रकट होकर यह लीला करना है।

इस प्रकार जब पुरुषोत्तम को इच्छा मात्र होती है तब अन्त करण मे सत्व का समुत्थान होता है और उससे आनन्दांश तिरोभूतवत् हो जाता है। पुरुषोत्तम वस्तुत लीला की इच्छा मात्र करता है इच्छा मे व्यापृत नहीं होता अत पुरुषोत्तम सदैव अतिरोहितानन्द है और अक्षर ब्रह्म की इच्छा मे व्यापृत होजानेके कारण सत्व के समुद्भूत होने से तिरोहितानन्द हो जाता है।

अक्षरब्रह्म मे आनन्द तिरोहित है फिर भी वह जीव से विलक्षण है। वस्तुत अक्षर ब्रह्म मे इच्छा के प्रविष्ट होने से और कार्य व्यापृति आने से उसमे आनन्द का तिरोभाव कहा जाता है अन्यथा है वह है आनन्दमय ही। इसी को ब्रह्म कूटस्थ निर्विकार अव्यक्त आदि कहाए हैं। [3] अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम शाश्वत है और मूल पुरुषोत्तम के साथ अविच्छिन्न होने से ही इस अक्षरब्रह्म की अवस्थिति है। अक्षरब्रह्म मे सर्वावरण युक्त कोटिश अण्ड हैं यही परमधाम है परमव्योम है और हृदयस्वरूप का पुच्छ है।

---

१ उत्तम लीला लोकलीला मानें। प स २४५
तथा
मोहि भावे देवकि देव। प न ६६७

२ इत्यानन्दमात्—अ भू. ३ २ १४

३ अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहु परमां गतिम्। गीता ८। २१

परमानन्ददास का अक्षरब्रह्म—परमानन्ददासजी मुख्यतः लीलागायक हैं। वे दार्शनिक नहीं। वे आचार्य प्रतिपादित दर्शन पद्धति को स्वीकार करके भी गूढ़ सिद्धान्त की बातों की चर्चा करना पसन्द नहीं करते।[1] फिर भी वे मानते हैं आदि अनादि सनातन अनुपम-अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म लीला के लिए सगुण बन जाता है।[2]

जीवस्वरूप—ब्रह्मवाद का सिद्धान्त है कि जब ब्रह्म को अनेक होकर रमण करने की इच्छा होती है[3] तब पूर्ण आनंद का तिरोभाव करके जीव का स्वरूप ग्रहण करके क्रीड़ा करता है। ब्रह्म अविद्या के कारण जीव रूप में भासता है। ऐसा सिद्धान्त शुद्धाद्वैत वाद का नहीं।

'मैं अनेक होउं उत्पन्न होउं जीव होउं' ऐसी भावना जब ब्रह्म ने की तो उसकी इच्छा मात्र से ही ब्रह्म में से साकार सूक्ष्म परिच्छिन्न चित् प्रधान अणुपरिमाण अंशों का प्रथम सृष्टि के समय निर्गमन हुआ।[4] यह सिद्धान्त ही ब्रह्मवाद को मान्य है।

अतः सम्पूर्ण जीव साकार अणुरूप, उत्पन्न जीव माया से मुक्त होकर उसी प्रकार से ब्रह्म में से व्युच्चरित हुए जिस प्रकार अग्नि में से विस्फुलिंग निर्गमित होते हैं।

इस जीव की स्वरूपबोध और जीवबोध सिद्ध हो ब्रह्म की इस इच्छा से और उसकी कृपा से जीव में से आनन्दांश का तिरोभाव हुआ और उसके ऐश्वर्यादि धर्म भी तिरोहित हुए। ऐश्वर्यके तिरोभाव से दीनत्व पराधीनत्व वीर्य के तिरोभाव से सर्व दुःख सहन यश के तिरोभाव से सर्वहीनत्व श्री के तिरोभाव से जन्मादिके सर्वापद्विषयत्व ज्ञान के तिरोभाव से देहादिमें अहंबुद्धि और विपरीत बुद्धि वैराग्यके तिरोभावसे विषयासक्ति आदि का जीव में आविर्भाव हुआ है। प्रथम चार ऐश्वर्य वीर्य यश श्री के अभाव से जीव को बन्धन तथा अन्तिम दो—ज्ञान और वैराग्यके अभाव से विपर्यय हुआ। यह बन्धन जीवस्वरूप को ही होता है, ब्रह्मस्वरूप को नहीं होता। बन्धनग्रस्त जीव संसार चक्र में फँसता है। इस बन्धन से मुक्ति भजन द्वारा ही हो सकती है। जब जीव में मुक्ति भजन द्वारा ही हो सकती है। जब जीव में पुनः ऐश्वर्यादि षड्धर्म और आनन्दांश का आविर्भाव होता है तो वह संसार बन्धनसे मुक्ति पा जाता है।

ब्रह्मवाद में जीव नित्य है।[5] इसकी उत्पत्ति नहीं होती। इसके साथ साथ उसका असत्यत्व अणोरत्व मिथ्यात्व भी ब्रह्मवादमें नहीं माना गया। शांकर मत में जीव के नित्यत्व की सम्भावना ही नहीं न उसका आना-जाना सम्भव है।

---

१ काहे पुत्र मने की बातें कहूँसौं नहिं कहिए।

२ हैसो गोकुल चन्द के आगे बरनसकत न कोऊ।
निगुन न अव सगुण भरि लील ताहिमन हुए करि आवे॥

३ एकोऽहं बहुस्याम्—तै. ११।

चतुर्णां अवतीनि वीक्षा वत्सभूतानी वरिष्ठा अनस्वल्पात् यस्य भूतांश चेतसा ॥२७॥
गृणयन्ती निर्मेना सर्वे नित्यकार व्यरिच्छना प्र त भी मि २७.२
विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि ४१ प्र त दी नि

४ अजायते म्रियते वा कदाचि न्नायंभूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ श्रीमद्भग २।१९

विस्फुलिंगवत् अणुस्वरूप उत्पत्ति नहीं वह न जन्मता है न मरता है। उसका आविर्भाव होता है। जनन मरण जातकर्मादि औपचारिक धर्म हैं। और शरीर के धर्म हैं। जीव के नहीं। जीव ज्ञाता है ज्ञान उसका धर्म है। जीव धर्मी है। प्रकाशक चैतन्य उसका धर्म है इस कारण जीव तेजोमय ज्योति स्वरूप है विज्ञानमय है और प्रकाशित होता है। सूर्य और उसकी प्रभा मे जिस प्रकार धर्मी और धर्म का अभेद है उसी प्रकार ज्ञाता (जीव) और ज्ञान मे अभेद है।

**जीव का अणुत्व—**

शांकर मत मे जिस प्रकार जीव को विभु माना है उसी प्रकार शुद्धाद्वैत मे उसे अणु माना है। क्योंकि उसमे उत्क्रान्ति गति अगति आदि की योग्यता स्वीकार की गई है। किन्तु शांकर मत मे जीव को अकर्ता अभोक्ता माना है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त मे जिस प्रकार सर्वधर्म विशिष्ट ब्रह्म कर्ता है भोक्ता है तो तदंश जीव भी ब्रह्म के संबंध से कर्ता है भोक्ता है। उसका कर्तृत्व भोक्तृत्व औपचारिक नहीं है। बुद्धि तो कारण मात्र है। जीव सनातन है और ममैवांश है।[1] गीता के इस कथन के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य जीव को ब्रह्म का अंश ही स्वीकार करते हैं। और इस प्रकार निर्धर्मी निरवयव निराकार ब्रह्म सधर्मी सावयव साकार हो जाता है। *और इसलिए अंशांशी भाव के आधार पर ब्रह्मवाद अथवा शुद्धाद्वैत मे ब्रह्म और जीव मे* अभेद माना जाता है।

'तत्त्वमसि' महावाक्य के आधार पर शांकर मत वाले जीव का अणुत्व स्वीकार नहीं करते। भागत्याग लक्षणा के आधार पर जीव और ब्रह्म मे एकत्व स्थापित किया जाता है। और इसी लिए यहाँ शांकर मत वालों का विचार है कि जीव मे अणुत्व कैसा? परन्तु सूत्रकार ने इस आपत्ति को— 'तद्गुणसारत्वात् तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्'[2] कहकर समाप्त कर दिया है। 'तत्त्वमसि' मे जो एकत्व की ओर संकेत है वह उनके गुण को लक्ष्य करके है। ब्रह्म का प्रधान धर्म आनन्द है। जीव मे यह धर्म अप्रत्यक्ष है जब यह प्रत्यक्ष हो जाता है तब जीवब्रह्म हो जाता है। यही 'तत्त्वमसि' का तात्पर्य है। 'यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात्'[3] सूत्र मे यही बात कही गई है।

**परमानन्ददासजीके जीव विषयक विचार—**

परमानन्ददासजी ने अपने लीला प्रधान काव्य मे शुद्धाद्वैत सिद्धान्तके आधार पर जीव की *बहुत लम्बी चौड़ी व्याख्या न करके उन्होंने अंशांशी भाव की बड़ी ही बढ़िया* कल्पना की है।

वे लिखते हैं कि —

*ताते गोविन्द नाम मैं गुण गावो जाहीं।*
*चरण कमल हित प्रीति करि सेवा निरवाहीं ॥*
*जो हौं तुम में मिलि रहौं कछु भेद न पाऊं ॥*
*असे काल के मेघ ज्यों तुम माझ समाऊं ॥*

---

१ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः गीता १५।७
२ ब्रह्मसूत्र—२ ३-२९
३ वही—२ ३-३

जीव ब्रह्म अन्तर नहीं मणि कञ्चन जैसे ॥
घन तरंग प्रतिमा शिला कहियें जो ऐसे ॥
जिन सेवा सुख पाइए पद अम्बुज आशा ॥
सो मूरति मेरे हृदय बसो परमानन्ददासा ॥ [प सं ७२२]

परमानन्ददासजी के मत में जीव की स्थिति इसलिए है कि भगवान की भक्ति करे और लीला गान करे। यदि जीव की सत्ता न हो तो प्रेमलक्षणाभक्ति का आदर्श किस प्रकार निष्पन्न हो सकेगा। भगवच्चरणारविंद से वियुक्त जीव भगवान का नाम स्मरण करके अनन्य प्रेम से उनकी सेवा में तल्लीन रहे, यही उसका आदर्श होना चाहिए।

यदि वह अव्यावस्था ( नाम रूप से रहित ) में रहे तो षडैश्वर्यादि से युक्त भगवान के स्वरूप को कैसे जानेगा और उस परम अगाध भगवद्माहात्म्य से परिचित कैसे होगा। इसलिए उसे पुष्टि जीव के रूप में उस परमात्मा की इच्छा से आविर्भूत अवश्य होना पड़ता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि जीव और ब्रह्म दो भिन्न वस्तु हैं। जीव ब्रह्म में मणि-कञ्चन की भाँति कोई अन्तर नहीं है। घन और उसका तरंग तत्त्वत एक ही हैं केवल षडैश्वर्यादि के अभाव अथवा आनन्दांश के तिरोहित रहने के कारण ही उसकी जीव संज्ञा हुई। आचार्यचरण भक्ति का फल भजनानन्द मानते हैं सायुज्यमोक्ष नहीं। जैसा कि अन्य भक्त्याचार्यों की भक्ति का साध्य है।

जीव का नाम—रूप भजनानन्द की सिद्धि के लिए है। इस नाम रूप के भेद से तात्त्विक अन्तर नहीं होता। शिला और उसकी प्रतिमा में जैसे कोई तात्त्विक अन्तर नहीं होता दोनों ही मूलत एक हैं उसी प्रकार जैसे कटक-कुण्डल और शुद्ध स्वर्ण में कोई तात्त्विक भेद न होकर केवल नाम रूप का भेद है उसी प्रकार जीव ब्रह्म में तात्त्विक अन्तर नहीं। जिस प्रकार सर्प साधारणत सीधा होता है। परन्तु स्वेच्छा से कुंडलाकृति तथा अनेकाकार हो जाता है। उससे यह सिद्ध नहीं कि सर्प अनेक हैं। इसी प्रकार ब्रह्म अनेक विकार (परिवर्तन) अथवा रूपों को धारण करके भी अविकृत और अविशेष दोनों है। वह निराकार भी है साकार भी।[1] यहाँ तक कि ब्रह्म के समस्त धर्म भी ब्रह्म ही हैं। वे उससे भिन्न नहीं।

वस्तुत मायावाद और ब्रह्मवाद दोनों को अद्वैत ब्रह्म ही मान्य है। शांकर मत में अनिर्वचनीय माया अविद्या मिथ्या आदि शब्दों का सहारा लेकर अद्वैत को बोधगम्य कराने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु ब्रह्मवाद या शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में अघटितघटना भगवत्कृपा भगवल्लीला भगवल्लीला भगवदनुग्रह आदि शब्दों के द्वारा उसके सामञ्जस्य के निरूपण की चेष्टा होती है। इस प्रकार परमानन्ददासजी के मत में जीव भी कुण्डल के कटक अथवा प्रतिमा के पाषाण की भाँति तत्त्वत है ब्रह्म ही। घन और तरंग में नाम भेद मात्र है। जीव में षडैश्वर्य का अभाव या आनन्दांश का तिरोभाव उस लीलामय प्रभु की ही इच्छा का परिणाम है।

परमानन्ददासजी ने जीव का ब्रह्मत्व प्रतिपादन करते भी अविद्या को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि—

हरि जू की लीला काहि न भावत।
राम कृष्ण गोविन्द छाँडि मन और को बहुत पावत ॥

---

१ तस्मात् लक्षण विरुद्धानां अनन्तधर्माणां ... परिणामेऽपि निरवद्य—अणुभाष्य

शुद्धाद्वैत दर्शन में जगत्—जगत् भगवद्रूप है और भगवत्स्वरूप है। शुद्धाद्वैतवादी जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म ही को स्वीकार करते हैं। जगत सत् है अत उसकी उपलब्धि होती है। असत् पदार्थ का भाव ही नहीं होता और अभाव में सत् नहीं होता।[१] फिर 'आवेन उपलभ्ते' तथा 'भावे चोपलब्धेः' के अनुसार जब घटकी सत्ता है तभी उसकी उपलब्धि होती है अन्यथा घटाभाव में उसकी उपलब्धि नहीं होती। इसी प्रकार घट भी एक मृत्तिका का प्रकार है। उसी प्रकार जगत् भी ब्रह्म रूप ही है। जिस प्रकार अग्निविस्फुलिंग पुंज से निर्गत होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म के सदंश से जड पदार्थों का निर्गमन हुआ। अग्निविस्फुलिंग की भाँति ब्रह्मके सदंश से आविर्भूत जड भी ब्रह्मरूप ही है।[२] इसलिए जगत सत्य है श्रुति कहती है—सदेव सौम्य इदमग्र आसीत्। यदिदं किंच तत्सत्यमित्याचक्षते। फिर ब्रह्म और जगत में समवाय संबंध भी तभी संभव है जब दोनो सत्य और नित्य हो।[३] ब्रह्म की इच्छा मात्र से आकाशादि पंचतत्वात्मक प्रपंच की उत्पत्ति हुई।[४]

यह जगत् कार्य है और ब्रह्म कारण। वह अपनी इच्छा से अपने सदंश से इसे आविर्भूत कर देता है जिस प्रकार ऊर्णनाभि (मकड़) अपने मे से ही जाल का पसारा कर देती है फिर अपने में उसे समेट लेती है। उसी प्रकार ब्रह्म भी जगत को अपने में लय कर लेता है अत. यह जगत विकार अथवा परिणाम नहीं अपितु अविकृत है। इसीलिए शुद्धाद्वैत सिद्धान्त अविकृत परिणाम वाद को स्वीकार करता है।

जगत और संसार का भेद—प्राय अन्य सिद्धान्तो मे जगत् को संसार और संसार को जगत् मान कर उनमे अभेद भावना मानी है। परन्तु शुद्धाद्वैत सिद्धान्त की यह अपनी विशेषता है कि उसमे जगत और संसार का भेद बहुत ही स्पष्ट रूप से किया गया है। जगत भगवत्कार्य[५] होने के कारण वह सत्य है और भगवद्रूप है परन्तु संसार अहंता ममतात्मक है और जीव ने उसे अविद्या के कारण मान रखा है। यह अविद्या भी विद्या के समान भगवान की ही शक्ति है।[६] संसार का नाश है। ज्ञान से उसका नाश हो जाता है किन्तु जगत् का नाश नहीं—लय है यह लय भी आत्मरमण की इच्छा से भगवान करे तभी होता है इस प्रकार जगत और ब्रह्म मे अद्वैत—भगवत्कार्य है। अविद्या का नहीं परन्तु द्वैत ज्ञान (मैं अलग हूँ यह अलग है) अविद्या का कार्य है। इस अविद्या से जीवन मुक्त होता है। यह अविद्या पंच पर्वा है। अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश। और जीव को क्लेशदायिनी है। अविद्या के अभ्यास से जीव को संसारी बनाती है। अत संसार अविद्या का परिणाम है जगत ब्रह्म का रूप है संसार की स्थिति-ज्ञान न होने तक ही है। तत्वदर्शन और अहंता ममता के चले जाने पर संसार नष्ट हो जाता है। संसार के कारण जीव को सुख-दुःख होते हैं जगत् के कारण नहीं। अत शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में जगत और संसार पृथक-पृथक है।

१ नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत—गीता। २। १६
२ विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि। त० दी० नि० १
३ अतः समवायि स्यात् तदैव निमित्तत्वम्—तत्र। दी० म
४ तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्म पूर्णाद् वेदमा। त० दी० नि० १७
५ अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। गीता
६ विद्याविद्ये हरेः शक्ती मायमैव विनिर्मिते।
ते जीवस्यैव नान्यस्य दुःखित्वं चाप्यनीशता। त० दी० नि० ३५

परमानन्ददासजी के काव्य में जगत् और संसार—

भगवल्लीला मे मस्त रहने वाले भक्तप्रवर परमानन्ददासजी ने जगत और संसार का पृथक रूप से तात्त्विक निरूपण नही किया। उन्होने संसार अथवा भवसागरके तापोकी चर्चा करके उससे पार जाने अथवा उबर जाने के लिए प्रार्थना अवश्य की है। जगत के भगवद्रूप होने का उन्होंने संकेत कर दिया है। वे कहते हैं—

हरि प्रभु भावत होइ सो होई।

× × × × ×

आदि मध्य अवसान विचारत हरि रूप सब ठहरात।

जीव एक अविद्या भासत वेद विदित यह बात॥

जगत ब्रह्म की भाँति आदि मध्य अवसान रहित भगवद्रूप ही है। जीव को बीच मे अविद्या के कारण उसके भगवद्रूप होने की प्रतीति नही होती।

एक और स्थान पर एक गोपी कहती है—

नैननि को ठकुरकु तेरो।

ब्याह गुपाल लाल सब जीवहिं मोहन रूप जगत केरो॥

मुग्धा भक्ता गोपिकाओं को सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देते हैं—

जित देखो तित कृष्ण मनोहर दूजी दृष्टि न परै री॥

इस प्रकार यह दृश्यमान जगत भी कृष्ण रूप ही है। परन्तु परमानन्ददासजी ने संसार या भवताप की चर्चा अवश्य की है। पंच पर्वा [१] अविद्या जनित क्लेशों से युक्त संसार प्रवाह म बहते हुए जीव की कोटि में अपने को रख कर एक स्थान पर वह कहते हैं कि—

"श्री वल्लभ रतन जतन करि पायो।

बूड़ी जात मोहि राख लियो है, पिय संग हाथ गहायो।

× × × × ×

परमानन्द दास को ठाकुर, नैनन प्रगट दिखायो॥

उपर्युक्त पद मे 'संसार प्रवाह' मे पड़े हुए प्रवाही जीव के समान अपनी पूर्व दुर्दशा को 'बूड़ी जात' म व्यक्त करते हुए अपने गुरुदेव वल्लभाचार्य की शरण मे आने से शांति मिल जाने की बात परमानन्ददासजी ने कही है। उन्होंने जीवन नौका के कर्णधार गुरुदेव से पार उतारने और प्रभु से मिलाने की बात को बार-बार दुहराया है। वे कहते हैं—

'खेवटिया वीर अब मोहि क्यों न उतारे पार॥

× × × × ×

× × × × ×

परमानन्द प्रभु सौं मिलाय तोहि देहुँ गरे को हार॥ प स २७६

गुरु के पदाम्बुज भव सागर के तरने के लिए हैं—

'गुरु को निहारि पदांबुज भव सागर तरिबे को हेत'

---

[१] पंच पर्वा त्वविद्येयं यद् बद्धो याति संसृतिम्।
विद्यायामिता याति तु जैस्मुक्तो भविष्यति॥ त दी नि ११

अतः उस प्रीत की प्रेरणा देने वाली केवल भगवान की कृपा रूपी भजन की आवश्यकता है। अतः भगवान की शरण में जाना चाहिए।

"क्यों न जाइ ऐसे के शरण
अति पावे कोऊ भाता क्यों करत भजन भव सागर तरण।
इन चरण भगतों के भव सागर से छुटकारा नहीं।
येहू विचार कहा भी लीजो जेहि भव सागर त छूटे।
परमानन्द भजन बिनु सब कम्मीं अविद्या छूटै।

बिना भजन के पचपची अविद्या जीव को बांध कर लूटती है। अतः भवसागर से तरने के लिए भजन ही एक अमोघ उपाय है।

भगवान् का नाम स्मरण ही भव भजन और भव भजन है।
"सुमिरन नाम भव भव भजन कहा पतित कहा कोट।

भगवान् का नाम कामधेनु है वही संसार रूपी असाध्य व्याधि के लिए औषधि तुल्य है। वे कहते हैं कि —

'कामधेनु हरि नाम लियो।
× × × ×
भव जल व्याधि असाध्य रोग की जप तप तत औषध न लियो।

अतः परमानन्ददासजी उस दिव्य वैद्य से जाने की सम्मति देते हैं जहाँ सांसारिक क्लेशों का आत्यन्ताभाव हो जाता है वहीं जाकर जीव के अविद्या जनित क्लेश और काल ताप नष्ट हो जाते हैं—

जाइए वह वैद्य जहाँ नन्द नन्दन भेटिए।
निरखिए मुख कमल कांति विरह ताप मेटिए।
× × × × × ×
इह अभिलाष अंतरगति भाव काम पूरिए।
सागर करुणा उदार विविध ताप चूरिए। प सं ७११

संक्षेप में लीला रस में मस्त रहने वाले भक्त प्रवर परमानन्ददासजी ने अनेक पदों में माया ममता अहंता जनित संसार क्लेशों की चर्चा तो की है किन्तु प्रसंग से नहीं केवल गुरु कृपा और और भगवद्भजन की महत्ता उत्कृष्टता और जीव के लिए उसकी अनिवार्यता दिखाने के लिए। वस्तुतः दार्शनिक दृष्टि से जगत संसार, माया आदि का स्वतन्त्र निरूपण करना उनका उद्देश्य नहीं था। उनके ऐसे पद देखने में नहीं आते जिनमें परमानन्ददासजी ने स्वतन्त्र रूप से जगत् और संसार आदि की स्वतन्त्र चर्चा की हो।

परन्तु उपर्युक्त पदों के उद्धरणों से उनके जगत संसार विषयक विचार शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के ही अनुकूल मिलते हैं।

माया—श्रुति में कहा गया है कि वे भगवान् एकाकी रमण नहीं करते अतः उसने दूसरे की इच्छा की 'स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् सहैतावानास।" अतः

उसने अपनी शक्ति अथवा माया का आश्रय लिया । भगवान् में सब रूप होनेकी शक्ति है । यह शक्ति अथवा माया भगवान् से भिन्न नहीं । यह शक्तियाँ १२ हैं—

श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ।
विद्ययाविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥

भा १ । ३९ । ५५

जिस प्रकार कोई राजा सेवकों द्वारा समस्त कार्य करता है ठीक उसी प्रकार भगवान् भी अपनी १२ शक्तियों द्वारा समस्त कार्य करते हैं । इनमें माया दो प्रकार की है एक विद्या दूसरी अविद्या । विद्या माया भगवत्साक्षात्कार कराती है और अविद्या जीव को बन्धन ग्रस्त करती है । विद्या माया जो भगवद्शक्ति रूपा है भगवान् की कार्य साधिका है इसलिए आचार्य कहते हैं—"या चमत्कारणमूला भगवच्छक्ति सा योगमाया । [1] यह योगमाया ऐश्वर्यादि षड्धर्मों से युक्त है । किन्तु दूसरी अविद्या अथवा व्यामोहिका माया है । यह जीव को मोह ग्रस्त करने वाली है । इस माया का वर्णन करते हुए भागवत में कहा है कि वास्तव में होने पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा में ( आँख पर उँगली लगाने से जैसे चन्द्रमा दीखते हैं वैसे ) जो मिथ्या प्रतीति होती है अथवा आकाश मण्डल में अन्य नक्षत्रों की भाँति नहीं होती इसे *मेरी माया ही समझना चाहिए ।* [3] *इस माया के कारण बुद्धि यथार्थ* ज्ञान से वंचित रहती है । बुद्धि को यथार्थ ज्ञान हो इसी हेतु से शास्त्रों में नाना उपाय बतलाए गए हैं । श्रवणादि नवधा साधन और सत्यपादि इसी हेतु हैं । अन्यथा यह माया भ्रम को उत्पन्न करती है और ब्रह्म-बुद्धि को आच्छादित कर देती है । इसे विपर्यय अथवा विपरीत ज्ञान कहते हैं । इसमें जो नहीं है उसकी सत्ता का भान होने लगता है और जो है उसका ज्ञान नहीं होता है । इसीलिए इसे व्यामोह कहते हैं । वस्तुतः भगवान् विषय हैं और माया विषयता है । विषयता से जो ज्ञान होता है वह भ्रम है । और विषय से जो ज्ञान होता है वह यथार्थ है । योगमाया भगवान् की लीलोपयोगिनी माया है । यह सर्वात्मभाव का उद्बोध करती है । अतः भक्तों के लिए लीलोपयोगिनी माया ही प्रभु से साक्षात्कार कराने वाली है । देह गेह स्त्री पुत्रादि में आसक्त *कराने वाली व्यामोहिका माया से रक्षण पाने के लिए भक्तों* ने सदैव भगवान् से प्रार्थना की है । वृत्रासुर कहता है—"हे भगवान् जो लोग आपकी माया से देह गेह और स्त्री पुत्रादि में आसक्त हो रहे हैं उनके साथ मेरा किसी प्रकार का संग भी न हो । [4] क्योंकि सांसारिक जनों की बुद्धि माया से अपहृत होकर आसुरी भाव को प्राप्त हो जाती है ।[5] परन्तु जो लोग भगवान् की शरण ग्रहण कर लेते हैं उन्हें यह माया कष्ट नहीं

---

१ देखो टीका—दशमस्कंध—रास-प्रकरण ।

२ दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ गीता ७ । १४

३ ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥ भाग० २ । ९ । ३३

४ ममोत्तमश्लोक जनेषु सख्यम् ।
संसार चक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ॥
त्वन्माययात्मात्मजदारगेहे—
ष्वासक्त चित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ भा० ६ । ११ । २७

५ माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः—गीता

देती न यह उनका नाश ही हरण कर पाती है। इसलिए भक्त गण सर्वत्र प्रभु से यही याचना करते हैं कि उनकी माया उन्हें किसी प्रकार के झमेले में न डाले।[1]

परमानंददासजी के माया विषयक विचार—परमानंददासजी ने अविद्या माया की चर्चा करते हुए उसका प्रभाव ब्रह्मा मार्कण्डेय और शंकर तक पर माना है। उसकी प्रबल मोहिनी शक्ति को करोड़ों उपायों से भी अधिक बलवती ठहराया है। उनका विश्वास है कि यह प्रबल व्यामोहिका माया केवल भगवत्कृपा से ही दूर हो सकती है। अतः वे कहते हैं—

"जाकी कृपा करें कटाच्छ वृन्दावन के नाथ।
साधन हीन अहीरन डोलें मिलि साथ॥
नाभि सरोज बिरंचि की हुती जन्म स्थान।
बच्छ हरण अपराध ते कीन्हीं हुती अपमान॥
मारकंड से को बड़ो मुनी ध्यान प्रवीन।
माया तदपि ता समयें किये मति लीन॥
कहाँ तपस्या कौन करी शंकर की नाईं।
जाते मन सम धन फिरे मोहिनीके ताईं॥
× × ×
जो कोउ कोटिक करे बुद्धि बल जतन।
'परमानंद' प्रभु सांवरो दीनन को वत्सल॥

[प स १७२]

यह प्रभु यदि कृपा करें तो माया व्याप्त नहीं होती। साधनहीन गोप बंधुत्वों भगवत् तत्व समझती हैं परन्तु नाभिसरोज से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजीकी बुद्धि पर मायाका ऐसा भ्रमात्मक परदा पड़ा कि उन्होंने वत्सहरण जैसा अपराध किया। इसी प्रकार ज्ञानी मार्कंडेय मुनि की बुद्धि चकरा गई। शंकर जैसा कौन तपस्वी होगा परन्तु वे भी मोहिनी के पीछे-पीछे भागे फिरे। अतः माया से छुटकारा प्रयत्नसाध्य नहीं कृपा साध्य ही समझना चाहिए।

यदि भगवत्कृपासे भगवद्भक्तिका रंग चढ़ जाय तो देहाभ्यास छूट जाता है। और विषयों में से प्रवृत्ति हट जाती है—

'ऐसे जो श्री वृन्दावन रंग।
देह अभिमान सबै मिटि जैहैं और विषयनको संग।
× × ×
'परमानंदस्वामी' गुण गावत मिटि गये कोटि अनंग॥

इस माया से एकदम छुटकारा पाने की विधि यही है कि गोलोक विहारी से अविचल भगवान् के चरणारविंद का ध्यान करे तो मायाकृत दोष नहीं व्याप्त होते—

---

1. प्रभु की माया से अभिभूत कौशल्या भी भगवान् से यही वरदान माँगती है—
बार-बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि॥ रा च मा बा २०१

'बलिहारी पद कमल की जिन मे भक्तन सच्छन ।
ध्वजा वज्र अंकुर जव रेखा ध्यान करत विचच्छन ॥
× × ×
भक्तधाम कमला निवास माया दुरग बाधक ।
परमानंद ते धन्य जन्म जे सगुन आराधक ॥

भक्त परमानंददासजी सांसारिक भोगों और सिद्धियों को भगवत्मार्ग मे बाधक मानते हुए उनके निराकरण के लिए प्रभु का नामस्मरण ही श्रेष्ठ बतलाते है ।

'जो जन हृदय नाम धरे ।
अष्टसिद्धि नवनिधि को अपुरी लटकत मारि फिरे ॥
ब्रह्मलोक इन्द्रलोक शिवलोक सबहूँ ते ऊपरें ।
जो न परवाह तौ चितवी ग्रबवन टारयौहू न टरें ॥
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन सब दुख दूरि करें ॥
परमानंददास को ठाकुर माया ते न टरें ॥

इस प्रकार परमानन्ददासजी ने बलवती माया की व्यामोहिका शक्ति की ओर यत्र तत्र संकेत करते हुए उससे उबरने के लिए-भगवच्छरण और नामस्मरण-यही दो उपाय बतलाए हैं । इन्ही दो अमोघ अस्त्रो से माया यवनिका जीव के आगे से हट जाती है और उसे यथार्थ ज्ञान हो जाता है । यह भ्रम-तम-पटल ब्रह्मा इत्यादि देवताओं को भी कभी-कभी यथार्थ ज्ञान से वंचित कर देता है । तब प्रभु ही उसका निवारण करते हैं । यह दुरत्यजा हरिमाया भगवत्प्रेरणा पर ही गतिमय होती है । इन्द्रमान भंग के अवसर पर जब ब्रजवासी भय से इन्द्र पूजा करते हैं तब भगवान् ने ब्रजवासियो की बुद्धि फेर कर उन्हें गोवर्धन पूजा की प्रेरणा दी थी ।

'तब हरि कियौ विचार मतो एक नयौ उपायौ ।
इनमें माया फेरि करौ अपनौ मन भायौ ॥
सुनौ तात एक बात हमारी मानौ कोई ।
गिरिवर पूजा कीजिए इनते सब सुख होई ॥

संक्षेप मे परमानन्ददासजी ने माया का पृथक से निरूपण न करके यत्र तत्र उसके निभ्रमत्व की चर्चा की है । और भगवत्कृपा ही उससे छूटने का उपाय बतलाया है ।

मुक्ति—आचार्य वल्लभ ने विद्या के द्वारा अविद्या नाशकी स्थिति को ही जीवन्मुक्ति बतलाई है ।[1] अविद्या से बंधा जीव इस सृष्टि मे जन्म मरण पाता है । इस अविद्या का विद्या से ही नाश होता है । जीव में अविद्याजन्य पाँच अध्यास होते हैं—

१—देहाध्यास
२—इन्द्रियाध्यास
३—प्राणाध्यास
४—अन्तःकरणाध्यास
५—स्वरूपाज्ञान

---

१ पंच पर्वाविद्ययैवं बद्धो याति महाविम् ।
विद्याविद्याघातेन जीवन्मुक्तो भविष्यति । त. दी. नि. ५ १२

देहेन्द्रिय प्राण अन्तःकरणादि जब सब अध्यास रहित होते हैं तभी जीवन्मुक्तता रहते हुए अपूर्ण मन ( निरोध ) श्रीहरि की सेवा से होता है।[1] आगे चल कर आचार्य अविद्या की निवृत्ति से कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति बतलाते हैं।[2] जिस प्रकार अविद्या अस्मिता आदि पंचपर्वा अविद्या है उसी प्रकार विद्या भी पंचपर्वा है—

वैराग्य सांख्य योग तप और भक्ति—ये पंचपर्वा विद्या है।[3] इनसे मुक्त विद्वान् ही भक्ति का अधिकारी होता है। तात्पर्य यह है कि शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में मुक्ति अथवा सच्ची मुक्ति ईश्वर कृपा पर निर्भर है साधना पर नहीं। भक्ति साधना अथवा ज्ञान साधना से जीवन्मुक्त जीव मोक्ष को प्राप्त करता है। लीला का तात्पर्य भगवल्लीलोपयोगी देह पाकर ब्रह्म रस का आनन्द लेना है।[4] यह आनन्द अकर्मकसाध्य है। ज्ञान साधना कष्ट साध्य होने के कारण कलियुग में सम्भव नहीं।[5] लीला में लय होनेकी स्थिति को भक्ति बतलाते हुए आचार्य वल्लभ ने उसे 'सायुज्य अनुरूपा मुक्ति' अवस्था कहा है। शुद्धाद्वैत में सच्ची मुक्ति यही है। वे अन्य साधनों द्वारा सालोक्य सामीप्य सारूप्य और सायुज्यादि मुक्तियों को स्वीकार करते हुए भी भजनानन्द में मग्न रह कर भगवल्लीलानुभव को ही सच्चा मानते हैं। यही सम्प्रदाय की स्वरूपानन्द मुक्ति है। संक्षेप में पुष्टिमार्ग में अन्य कोई मोक्ष स्वीकृत नहीं। भजनानन्द में सब ही मुक्ति है। यही भक्तिमार्गीय सम्मत है।

इस स्वरूपानन्द मुक्ति में साधक भगवान की लोकोत्तर-लीलाका आस्वादानुभव करता है। गोलोककी यह लीला वैकुंठ से भी उत्कृष्ट है।[7] इस लीला (स्वरूपानन्दमुक्ति) से विरहित साधक सालोक्य सामीप्यादि मुक्तियों को भी नहीं चाहता। क्योंकि अक्षरादि अन्य मतों में अज्ञान के आवरण के हटने पर ब्रह्मप्राप्ति की स्थिति आती है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में लीलारस-प्रवेशात्मक सायुज्य मुक्ति स्वीकार की गई है। इसमें रसात्मकता है। आस्वादात्मकता है। अन्य मुक्तियों में सर्वात्मस्थिति होने से लीलारसात्मकता नहीं है। पुष्टिमार्गीय मुक्तिमें द्वैतस्थिति भक्ति की सिद्धि के लिए बनी रहती है। पुष्टिमार्गीय मुक्त जीव को न लोकान्तरों में जाना पड़ता है न प्रारब्धादि कर्म भोगने पड़ते हैं। क्योंकि वह सच्चो मुक्त जीव भगवान् का अनुग्रहपात्र होनेसे भगवान् तत्काल उसके प्रारब्ध कर्मों का नाश करते हैं। और उसे नित्य

---

१ देहेन्द्रियासवः सर्वे निरध्यासा भवन्ति हि।
तथापि न प्रतीयन्ते जीवन्मुक्ततया स्फुटम् ॥ त० दी०—१७

२ ज्ञान-बल हरेर्वापि नित्या वैराग्यकम्।
इन्द्रियाणां तथा स्वस्य ब्रह्मभावात्मनो भवेत् ॥ त० दी०—५२

३ तत्र वाशाभिर्वैराग्यविद्या निवृत्तिरा ॥ त० दी०—५२

४ वैराग्य सांख्य योगोच तपो भक्तिश्च केशवे।
पञ्चपर्वेति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत् ॥ त० दी० नि० ५२

५ अतो ह्यत्रा लौकिक देहादिभिर्वा स्थूल लिंग शरीरे [illegible]
[illegible] सर्वान् कामान् [illegible] । अणु भाष्य ४ अध्याय
पाद सू० १६

६ ज्ञानमार्गो भक्तिमार्गस्तु [illegible] । सुबोधिनी ११

७ [illegible]
[illegible] ॥ त० दी० नि० [illegible]

रसात्मक लीला में ले लेते हैं। नित्यलीला में स्थान पाना ही साधक की अभीष्ट स्थिति या मुक्ति है। श्रीहरिरायजी ने कहा है कि जीवों का भगवान् के साथ सम्बन्ध हो जाना ही भक्तिमार्गीय मुक्ति है।[1] इस मुक्ति में भगवत्कृपा ही एकमात्र कारण है। आचार्य वल्लभ कहते हैं—

"आविर्भूतः कृष्ण एव सेव्यः सायुज्यकाम्यया।"

परमानन्ददासजी के मोक्ष विषयक विचार—

परमानन्ददासजी आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुसार साधक के भगवल्लीलात्मक रसास्वादन को मुक्ति मानते हैं। ऐसी मुक्ति की उपलब्धि भक्ति से ही सम्भव है अतः वे भक्ति को ही महत्व देते हैं चाकरी धर्मती मुक्ति को नहीं। स्थान-स्थान पर उन्होंने ज्ञान द्वारा प्राप्य मुक्ति का तिरस्कार किया है और भगवल्लीला रस को देव-दुर्लभ मानते हुए उसी की साधना पर जोर दिया है। ज्ञान द्वारा मुक्ति का तिरस्कार करते हुए वे कहते हैं

"मेरो मन गह्यो माई मुरली को नाद।
आसन पौन ध्यान नहीं जानौं कौन करे मन बाद विवाद॥
मुक्ति देहु सन्यासिन कौं हरि कामिन देहु काम की रास॥
करमिन देहु करम को मारग मो मन रहे पद अम्बुज पास॥
जो कोउ नहीं जोति सब मानै उपजेहु छिपौ न छिपाओ जोग॥
×       ×       ×       ×
परमानन्द स्याम रसरासी सबै सही मिलि इक रस भोग॥

[ प० स० २११ ]

प्राणायामादि अष्टाङ्ग योग से मिलने वाले मोक्ष को लेकर परमानन्ददासजी की गोपियाँ क्या करेंगी। इसी प्रकार न्याय (वाद-विवाद) शास्त्र के चक्कर में नहीं पड़ना चाहती। मोक्ष तो सन्यासियों को चाहिए, उसीभाँति कर्मकाण्डियों को कर्मवाद और धर्मियों को धर्म चाहिए। यहाँ तो रसेश श्रीकृष्ण से रसात्मक गोपियाँ रस की ही याचना करती हैं। उन्हें शुष्क ज्ञान से उपलब्ध होने वाली मुक्ति की कोई आकांक्षा नहीं। ऐसी मुक्ति की कुत्सी निन्दा परमानन्ददासजी ने अनेक स्थलों पर की है प्रायः गोपियों से करवाई है। स्वरूपानन्द मुक्ति और भगवल्लीलानुभव को भक्तवैकसाध्य और कृपा साध्य बतलाते हुए वे कहते हैं—

"आनन्द सिंधु बढ्यो हरि तन में।
श्री राधा पूरन ससि निरखत उमगि चल्यो ब्रज वृन्दावन में।
उतरै जगो जमुना हत गोपिन कछु यब फैलिपर्यो त्रिभुवन में॥
तहि परस्यो कर्म अरु ग्यानिनु भटकि रहयो रसिकन के मन में॥
मद मद अवगाहन कुबि बस भक्ति हेत प्रगटै छिनु-छिनु में।
वपुष सहत मरजुवन इपावै सो विविमत परमानन्द जन में॥

[ प० स० ८२४ ]

---

१ श्रीतार्थ कृष्णसम्बन्धो भक्तिः स्यात् विमोचनम्
सा हेया श्रीहरिणा स्वकृपयैव ददाति सा ॥ स मु मै १
सर्वविधस्यापकरी तेषु मार्गेषु श्रीगोकुल एवं सम्पन्नो लोक।
अनु भा १ ४ १५ दृष्ट ८१

मीमांसा की ओर संकेत करते हुए एक और स्थान पर वे कहते हैं —

"भाई हौं अपने गुपालहिं गाऊं ।
सुन्दर स्याम कमलदल लोचन देखि देखि सुख पाऊं ॥
जे ग्यानी ते ग्यान बिचारो जे जोगी ते जोग ॥
कर्मठ होई ते कर्म बिचारो जो भोगी ते भोग ॥
कबहुँक स्याम भरत पर प्रभुज कबहुँ बजावत बेनु ॥
कबहुँक नचत नाच वृन्द सग कबहुँ चरावत धेनु ॥
अपने मन की मुकति रची है मानि लिया संसार ॥
'परमानंद' गोकुल मथुरा में न कल्यो यहि बिचार ॥ [प सं १ ५,

कर्मठ और ज्ञानियों को पुष्टिमार्गीय स्वरूपानन्द वाली आत्मविस्मृतकारिणी मुक्ति का बोध भी नहीं होता । यह तो केवल रसिक भक्त जनों को ही अनुभव गम्य है । और यह भी श्रीकृष्ण की कृपा से ही । इस रसात्मक मुक्ति का अधिकारी कोई बिरला जन ही होता है। भजनानन्द के सामने वह भीख अथवा मुक्ति की कामना को अपराध समझता है । परमानंद दासजी की दृष्टि में ऐसा कौन मूर्ख होगा जो इस आनन्द को छोड़ कर औरों की मुक्ति (ज्ञान परक) की कामना करेगा । वह तो दण्डस्वरूप है । जिसे भगवान् दण्ड देना चाहें उसे ही प्रेमलक्षणा से वंचित करते हैं—

किहि अपराध जोग लिखि पठयो प्रेम भजन ते करत उदासी ।
परमानंद वैसी को बिरहिन मांगे मुक्ति पुनरासी ॥

अतः प्रेमासक्ति के सामने सामकार्पीय मुक्ति का कोई मूल्य नहीं । वह तो वृन्दावन-वासियों के चरणों की दासी है—

धनि धनि वृन्दावन के वासी ।
नित्य चरन कमल अनुरागी स्याम स्यामा उपासी ॥
जा रसको को मरम न जाने जाय बसो तो काशी ।
ब्रह्म समान गरै लिख जाको धवत रही उदासी ॥
अष्ट महासिद्धि द्वारे ठाढी मुकुति चरन की दासी ॥
परमानन्द चरन कमल भजि सुन्दर घोष निवासी ॥ [प सं १६]

होली के पद में भी उनकी यही भावना है—

नन्द कुमार खेलत राधा सग जमुना पुलिन सरस रंग होरी ॥
× × × × ×
'परमानन्ददास' यह सुख की चाहत बिमल मुकुतिन चोरी ॥

वह व्यक्ति जो भगवच्चरणारविंद की रति प्रेमलक्षणा भक्ति छोड़कर मुक्ति चाहता है उसके जीवन के लिए धिक्कारयुक्त है । वह शक्ति के प्रभाव को छोड़कर क्यों इधर भटकता फिरता है—

"तब सुख छोड़ि कहौ जिहि काम्ह पियारी ।
करि उज्वल विमल पत नाचे रहे जगत ते न्यारे ॥
तजि पद कमल मुकुति जे चाहैं ताको दिवस अन्ध्यारो ॥

कहत सुनत फिरत हैं भटकत छाँड़ि भगति उजियारी ।
जिन जगदीस हृदै धरि पुरमुख एको छिनु बिचारयौ ॥
बिन भगवन्त भजन परमानन्द जनम जुआ ज्यों हारयौ ॥ [प सं ८९ ]

जब भगवद्भजन से ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है तो ज्ञान साधना अथवा कर्मकाण्ड के पचड़े मे पड़कर यह जीव क्यो अपने शरीर को कष्ट देता है और सुखाता है—

हरि के भजन मे सब बात ।
ग्याम कर्म सौं कठिन करि कत देत हो दुख गात ॥

अत परमानन्ददासजी की तो भगवान् से यही प्रार्थना है कि वे चरणकमल की सेवा चाहे दें और मुक्ति आदि सन्यासियो को अथवा कर्मठो को ।

"माधौ हम सरगागे लोग ।
प्रात समै उठि आऊं चरण चित पाऊं सबै उपभोग ।
दुर्लभ मुकुति तुम्हारे घर की सन्यासिन को दीजै ॥
आपने चरण कमल की सेवा इतनी कृपा मोहि कीजै ॥
जहाँ राखौ तहँ रहौं चरण तर पर्यौ रहौं दरबार ।
जाकी जूठनि खाऊँ मिल दिन ताकी करौं किवार ॥
जहँ पठवौ तहाँ जाऊँ विदा है हुतकारी अधीन ।
परमानन्ददास की जीवनि तुम पानी हम मीन ॥ [ प सं ८७५ ]

भगवच्चरण कमल की सेवा मुक्ति से भी अधिक मीठी है । वे कहते हैं—

'सेवा मदन गोपाल की मुकुति हूते मीठी ।
जाने रसिक उपासिका सुक मुख जिन दीठी ॥
× × × × ×
परमानन्द बिचारि कै परमारथ सोध्यौ ।
राम कृष्ण पद प्रेम बढ़यो लीला रस बाध्यौ ॥ [ प स० ८५१ ]

आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुसार परमानन्ददासजी भी श्री गोकुल अथवा ब्रज से वैकुण्ठादि धामोको हीन और निम्न समझते हैं अत वैकुण्ठ प्राप्ति की सालोक्य मुक्ति की ) भी उनमे लेशमात्र वासना नहीं है ।[1] वे कहते हैं —

कहा करू बैकुण्ठहि जाय ।
जहाँ नहिं नन्द जहाँ न जसोदा नहि गोपी ग्वाल न गाय ।
जहाँ न जल जमुना को निर्मल और नही कदमन की छाय ॥
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय ॥ [प सं० ८११]

तात्पर्य यह है कि गोपी भाव भावित श्रीपरमानन्ददासजी को ज्ञान मार्ग से साध्य सायुज्य सालोक्य सामीप्य सारूप्य आदि मुक्तियो की कामना नहीं उन्हें तो एकमात्र ब्रजानन्द साध्य लीला रस का आस्वादन ही अपेक्षित है । उसके अतिरिक्त कुछ नहीं ।

---

१ प्रकृति चनाचतोरे वैकुण्ठस्वरूपात्रे श्री गोकुल एव मन्नीति दीप
अनुभाष्य अ ४ पा ४ सूत्र १२-पृष्ठ १

उनकी मुक्ति अहर्निश प्रभु के मुखका अवलोकन ही है। इसी भौतिक देह से निरन्तर प्रभु के मुखारविन्दके दर्शन ही मुक्ति (सामीप्य) का आनन्द है —

> 'हौं मन लाल बिना न रहूँ।'[1]
> मनसा वाचा और कर्मणा हित की दोषौं कहूँ।
> लोकचु कहौं छोरि सिर ऊपर छोहौं सर्व सहूँ॥
> सदा समीप रहूँ गिरधर के सुन्दर बदन चहूँ॥
> यह तन अर्पण हरिको कीनो यह सुख कहाँ लहूँ।
> परमानन्द मदन मोहन के चरण सरोज गहूँ।

कविको भक्ति भावनासे ओतप्रोत इसी नर देह से सगुणोपासना करते हुए अपने परमाराध्य का सामीप्य ही चाहिए और कुछ नहीं यह सुख उसके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं। यही उसने अपने गुरु देव महाप्रभु वल्लभाचार्य से जाना व पाया था और कुछ नहीं। अतः परमानन्ददासजी के मुक्ति अथवा मोक्ष विषयक विचार शुद्धाद्वैत सिद्धान्तानुकूल ही हैं। वे भगवल्लीलायोगी जीवन को ही मुक्त जीवन मानते हैं। इस मुक्त जीवनकी निरत प्रवृत्ति 'निरोध' की स्थिति में होती है। पुष्टि सम्प्रदाय में निरोध को बहुत महत्त्व दिया गया है। अत यहाँ निरोध की चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा। 'निरोध' भारतीय दर्शन में अपने अपने ढंग से अन्तिम लक्ष्य माना गया है। योगश्चित्तवृत्तिनिरोध[2] पातंजल योग दर्शन का प्रमुख सूत्र है। ज्ञानियों और योगियों की निरोध स्थिति जो कठोरतम साधनों से साध्य है वह भक्ति भावनामार्गों और विशेषकर पुष्टिमार्ग में कितनी सुगम है किन्तु अपवादरूपा साध्य है। साथ ही अत्यन्त वाञ्छनीय एवं महत्वाश्रित है।

क्योंकि पुष्टिमार्गीय त्रिविध सृष्टियों—प्रवाह, मर्यादा और पुष्टि में प्रवाही सृष्टि कर्मात्मक है और भव-प्रवाह में आकर वह जन्म-मरण के चक्कर में फँसी रहती है। मर्यादा सृष्टि ज्ञानात्मक है उससे अक्षरानन्द या अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। *किन्तु पुष्टि* सृष्टि भक्त्यात्मक है। उसे पूर्ण पुरुषोत्तम की प्राप्ति होती है। भक्ति नित्य है भगवल्लीला भी नित्य है। पुष्टि भक्तों का निरोध भगवल्लीला में होता है। अतः इस निरोध के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है:—

निरोध—निरोध का अभिधेयार्थ रोकना हटाना अथवा प्रतिबन्धित करना है। *मन को विषयों से हटाकर वृत्ति विशेष को अटकाने या जोड़ने का नाम निरोध है।* मन को जोड़ने अथवा विशेषरूप से अटका देने से पातंजल योगसूत्रकारने योग की परिभाषा देते हुए कहा था चित्त का (चंचल) वृत्ति के निरोध करने को ही योग कहते हैं। अत निरोध शब्द से तात्पर्य है मन जहाँ-जहाँ चञ्चलता-वश जाय वहाँ-वहाँ से रोक कर उसे भगवदभिमुख करना। आचार्य वल्लभ ने अपने ग्रन्थ 'निबन्ध' में कहा है कि 'श्री कृष्ण' में मन निरुद्ध कर देने से भक्त लोक मुक्त हो जाते हैं। कृष्ण में मन तभी निरुद्ध होता जब

---

1. [illegible]
2. देखो—पा० [illegible]
3. कृष्णे निरुद्ध [illegible] मुक्ता भवन्ति 'निबंध'।

बाह्य प्रपंचों की सम्पूर्ण विस्मृति होगी। अतः निरोध का स्वरूप है[1] बाह्य प्रपंचों की विस्मृति और भगवान में आसक्ति। यह एक सूक्ष्म दशा है। और भगवद् कृपा गम्य है। आसक्ति अथवा प्रेमभाव हृदय का एक 'गूढभाव' है। यही गूढभाव व्यक्त होने पर प्रेम प्रणय स्नेह, राग अनुराग और व्यसन इन स्थितियों में प्रवाहित होता है। यदि इसे एक लता या वृक्ष का रूपक दें तो अंकुर, तना शाखा पल्लव कलिका पुष्प और फल की तुलना में रखा जा सकता है।

आचार्य ने अपने 'भक्तिवर्धिनी' ग्रन्थ में प्रेम की तीन विकास दशाएँ बतलाई हैं—

१—स्नेह आसक्ति और व्यसन—

व्यावृत्तोऽपिहरौ चित्त श्रवणादौ यतेत् सदा।

ततः प्रेम तथाऽऽसक्तिर्व्यसनं च यदाभवेत्—भ० व० १

आसक्ति बीज रूप में सभी में विद्यमान रहती है। इसको 'बीज' इसलिए कहा गया है कि इसका नाश नहीं होता।[2]

अतः बीजभाव अथवा गूढभाव का मूल रूप प्रेम है। इसी बीज के पूर्ण विकास से रसात्मक श्रीकृष्ण रूपी कल्पद्रुम पल्लवित और फलित होता है। इस 'बीज भाव' की भूमि हृदय है। अतः बीज या 'गूढ भाव' एक मानसभाव है। इस भाव से चित्त की समस्त वृत्तियाँ केन्द्रित हो जाती हैं। भाव की निष्पन्नावस्था निरोध में होती है। निरोध केवल दुर्दमनीय इन्द्रियों की पूर्णतन्मयता है। क्योंकि संसार के सारे अनर्थ इन्द्रियों की चंचलता के ही कारण है। समस्त शास्त्र इन्द्रियों को वश में करने का ही उपदेश देते हैं। इन्द्रियाँ ही समस्त अनर्थ परम्परायों की कारणभूता है। कहीं तो इनके दमन करने का आदेश है कहीं इनकी अशुभ प्रवृत्तियों को शुभ की ओर मोड़ देने की सलाह है। आचार्य वल्लभ ने इन्द्रिय रूपी घोड़े को ढीला न करना परम कर्तव्य कहा है।[3] इसलिए—है सर्वत्र इन्द्रियों को ही वश करने की बात।

सांसारिक यावन्मात्र भोग्य पदार्थ हैं वे प्रभु के हैं उनको भगवान को ही विनियोग कर देना चाहिए। इस हेतु यज्ञों की परम्परा चली थी। इन यज्ञों में सांसारिक द्रव्यों एवं पदार्थों का आहिनियोग हो जाता था। परन्तु कुछ लोगों ने हठयोग द्वारा इन्द्रिय निग्रह का मार्ग सोचा था। हठयोगी इन्द्रियों को बलवान् उपायों से वश में लाने लगे। जो भी हो दान मनन तप स्वाध्याय सभी का उद्देश्य बलवान इन्द्रिय-ग्राम को वश में करना था। यहाँ तक कि गृह त्याग कर वानप्रस्थ संन्यासादि आश्रमों की शरण भी इन्द्रियों के वश करने के उद्देश्य से ही है। यम नियमादि अष्टांग योग हठयोग राजयोग सभी का उद्देश्य वस्तुतः मन एवं इन्द्रियों के वश करने के लिए ही है। परन्तु भक्ति साधन में एक प्रकार का ऐसा उपाय है जिसमें मन एवं इन्द्रियों के साथ बलात्कार नहीं होता।

---

[1] बोद्धुमे बोधिकानां तु मर्दनं प्रकाशनिमात्
यत् तत्र भवति तत्रैव मानसं हि निरोधनम् ॥
निरोधलक्षण १

[2] बीजे तदुच्यते शास्त्रे दृढत्वान्नविनश्यति भ० व०—४

[3] इन्द्रियाश्व शिथिलाना न कार्याःकेनचित् । सर्वे नि० ल० ११

यह एक निसर्ग सिद्ध नियम है कि जहाँ पर जितने जोर का आघात किया जाता है वहाँ उसके विपरीत उतना ही बलवान् प्रत्याघात होता है। अतः हठ या बलप्रयोग का परिणाम अच्छा नहीं होता। अतः इन्द्रियाँ हानिकारिणी नहीं हैं इन्द्रियों की विषयासक्ति हानिकर है। अतः इन्द्रियों का निग्रह बलप्रयोग का विषय नहीं 'प्रेम' का विषय। बलप्रयोग या हठयोग में विश्वास करने वाले इन्द्रिय निग्रह के क्षेत्र में प्रायः असफल हुए हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्द्रियों के वश करने के लिए 'आत्मसमर्पण' का उपदेश दिया है। इससे उत्तरोत्तर धर्म-निष्ठा पुष्ट होगी और भक्ति का उदय होगा।

क्योंकि इन्द्रियों को सांसारिक-पदार्थों से खींचकर फिर उनको किसका आश्रय बनाया जाय? यह प्रश्न तत्काल विचारणीय हो जाता है क्योंकि इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों के बिना रह ही नहीं सकती। उदाहरणार्थ हमारे श्रवण सुनने का कार्य करते हैं उन्हें सांसारिक निन्दा-स्तुति से हटाया तो जा सकता है परन्तु श्रवणों को श्रवण कार्य से विरत नहीं किया जा सकता। अतः उन्हें प्रापंचिक निन्दा-स्तुति आदि से हटा कर प्रभु गुण-गान तथा भजन कीर्तन आदि में लगाना ही उनका ठीक उपयोग है। इसीलिए भारतीय भक्तों एवं सन्तों ने कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को प्रभु अभिमुख करने के लिए इन्द्रियों को आदेश दिया है और प्रभु प्रार्थना की है—

> जिह्वे ! कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरम् ।
> पाणिद्वन्द्व समर्चयाच्युत कथाः श्रोत्रद्वयी त्वं शृणु ॥
> कृष्णं लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयम् ।
> जिघ्र घ्राण ! मुकुन्दपाद तुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम् ॥

[अर्थात्—ओ मेरी जिह्वा मुररिपु केशव का कीर्तन करो ओ चित्त श्रीधर भगवान् का भजन करो मेरे दोनों हाथो ! अच्युत की अर्चना करो दोनों कानो ! तुम भगवान् की कथा सुनो। हे मेरे दोनों नेत्रो ! कृष्ण को देखो और मेरे चरणो ! भगवान् के मन्दिर को ही जाओ नासिके ! तू मधुसूदन के चरणारविन्द की तुलसी का गन्ध ही ग्रहण किया कर और ओ मस्तक अधोक्षज भगवान् के चरणों में ही झुका कर।]

तात्पर्य यही है कि यदि इन्द्रियाँ भगवदभिमुख नहीं होंगी तो अवश्य ही पतन की ओर ले जायेंगी। मूर्ख और विद्वान् सभी बलवान् इन्द्रिय-ग्राम से अभिभूत हो जाते हैं।[3] क्योंकि यत्न करते हुए विद्वान् पुरुषों के मनों को भी इन्द्रियाँ ले जाती हैं।[4] यदि कदाचित् कोई अनशन द्वारा इनको शिथिल बनाकर इनको निर्बल कर भी दे तो भी इनकी सूक्ष्म वासना रहती है। और अपना रसास्वाद नहीं छूटती। इनका लौकिक रसास्वाद तो भगवद्रस से

---

१ गुरुनेत्रा धर्मं इन्द्रियलीन स्वधर्मं प्रभाव ।
रसास्वादेन तथा हृता तस्य भावना भवाः । स सि अ०— १४

२ कुबरोचत्मानसारङ्ग मुकुन्दमाला—श्लो० २१

३ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति भा०

४ यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः । गीता २।६०

ही निवृत्त होता है।[1] अनशनादि से इन्द्रियाँ निर्बल तो हो जायेंगी परन्तु दुःख-निवृत्ति फलरूप पुरुषार्थ नहीं है। पुरुषार्थ है—भजनानन्द की प्राप्ति। यह भजनानन्द इन्द्रियों के प्रभु चरणों में सुविनियोग से ही है।

इन्द्रियों के सुमार्ग में प्रयुक्त होने से साधक को शान्ति मिलना प्रारंभ हो जाता है। अतः सांसारिक विषयों से मन और इन्द्रियों को हटाकर प्रभु की ओर लगाने का ही आदेश महाप्रभु वल्लभाचार्य देते हैं। अपने निरोध लक्षण ग्रन्थ में कहते हैं—

सांसारिक कामों में लगी हुई दुष्ट इन्द्रियों के हित के लिए समस्त वस्तुओं को भी जगदीश्वर भगवान् कृष्णचन्द्र के साथ सम्बद्धकर देना ही सर्वोत्तम है।[2]

"जिनका चित्त निरंतर मुरारी भगवान् के गुणों से आविष्ट है उनको सांसारिक विरह अथवा क्लेश नहीं होते। और वे श्रीहरि के तुल्य सर्वत्र सुखमय रहते हैं।"[3]

"गोविंद के गुणगान से सुख की जैसी प्राप्ति होती है वैसी शुकदेवजी आदिको आत्मसुख से भी नहीं होती तो फिर दूसरों की क्या बात ?"[4]

"इसलिए समस्त वस्तुओं का परित्याग करके सदानन्दपरायण निरुद्ध भक्तोंके साथ प्रभु के गुण सर्वदा गाते रहना चाहिए। उसीसे सत् चित् और आनन्दमयता प्राप्त होती है।[5]

प्रभु गुणगान कीर्तन भक्ति है। अतः कीर्तन भक्ति से प्रभु के प्रेम उनकी महत्ता सतत स्मरण रहती है। इससे वैराग्य से इन्द्रियों को अनायास ही निर्विषयता विषयों से पराङ्मुख हो जाती है। और लोक वेद व्यापारों से साधक की उपरति हो जाती है।[6] यही निरोध का लक्षण है।

## निरोध प्राप्ति का उपाय

निरोध की उपर्युक्त व्याख्या और लक्षण देने के उपरान्त यह बतलाना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि उक्त प्रकार की निरोध सिद्धि किस प्रकार हो। इसका उपाय बतलाते हुए आचार्य ने स्पष्ट कहा है—

जिस इन्द्रिय का भगवत्कार्य अथवा सेवा में उपयोग नहीं होता हो उसका निग्रह करके अवश्य ही उसे भगवत्कार्य में लगाना चाहिये।

---

१ विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ गीता २ २६

२ संसारावेश दुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वै।
कृष्णस्य सर्व वस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् ॥ नि० ल० श्लो० १४

३ गुणेष्वाविष्ट चित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः
संसार विरह क्लेशौ न स्यातां हरिवत् सुखम् ॥ " ११

४ गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविन्दस्य प्रजायते।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः ॥ ६

५ तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः।
सदानन्द परैर्गेयाः सच्चिदानन्दता ततः ॥ १६॥ वही

६ निरोधस्तु लोक वेद व्यापार ... ब्र० सू०

भगवत्कार्य से आचार्य महाप्रभुजी का तात्पर्य 'सेवा' है। इसीलिए स्वमार्ग में आचार्यजी ने सेवा पर बहुत जोर दिया है। 'निरोध' के उपरान्त ही साधक भगवत् सेवा का अधिकारी होता है।[1] सेवा से चित्त स्वयमेव ही भगवान् में रमण करने लगता है। अहोरात्र भावमय भगवान् में घुला रहे-यही सेवा है।[2] सेवा से स्वरूपभावना और लीला भावना दोनों ही उत्पन्न होती हैं। और भगवान् के सिवाय भक्तको दूसरा कोई विचार ही नहीं आता। 'तन्मयता' जो पुष्टि निरोध का लक्ष्य है—सेवा से ही प्राप्त होती है। यह सेवा देह तथा चित्त से निरन्तर करते रहना चाहिये। देह और चित्त द्वारा सेवा करने से आन्तरविक्षेप दूर होते हैं और कर्मेन्द्रियाँ सेवा में व्यस्त रहती हैं और कभी विषयगामी नहीं बनतीं। इसके उपरान्त ही मानसी सेवा सिद्ध होती है।

ऐसे भक्तका मन फिर सांसारिक पदार्थों में नहीं जाता और वह अनासक्त होकर मानसी सेवा का अधिकारी बन जाता है। यह मानसी सेवा ही 'व्यसनावस्था है'। इसकी बाह्य अभिव्यक्ति साधक को लोक वेदातीत बना देती है। व्रज गोपिकाओं की व्यसनावस्था की ही चर्चा अष्टछापी काव्य का प्रधान विषय है।

श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध की श्रीकृष्ण लीलाओं का रहस्य 'निरोध' ही है। इसीलिए आचार्यजी ने अपने दोनों 'सागरों' को भागवत के दशम स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाकर उन्हें लीलासागर बना दिया था।

परमानन्ददासजी और निरोध तत्व—

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने चार शिष्यों में से दो शिष्यों को ही भागवत के दशमस्कन्ध की लीला क्यों सुनाई। फिर संपूर्ण भागवत में से केवल दशमस्कन्ध को सुनाने का क्या रहस्य हो सकता था यदि इस तथ्य पर गहरी दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि महाप्रभु ने जिन पर विशिष्ट और आशु अनुग्रह किया उन्हें निरोध तत्व तक सरल सुगम मार्ग से पहुँचाकर उन्हें संपूर्ण भगवत्लीला के रहस्य का उद्घाटन कर दिया।

दशमस्कन्धीय लीलाओं को श्रवण करने से पूर्व तक ये दोनों भक्त दैन्य और वैराग्यपरक पदों की रचना करते थे। दीक्षापूर्व के इन पदों का पता नहीं चलता जो दो चार पद महाप्रभु के सान्निध्य में गाए गए वे दैन्य परक ही हैं। अतः कि दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाने का कारण स्पष्ट है श्रीमद्भागवत लीला प्रधान और भक्ति रस पूर्ण ग्रन्थ है। उसका प्रयोजन आनन्दस्वरूप भगवान् की रसमिश्र लीलाओं का उद्घाटन है। लीलायें रसस्वरूपा हैं। इसी कारण ज्ञानी भक्त शुकदेवजी और सभी भक्ताचार्य श्रीमद्भागवत के सतत् पारायण पर बल देते हैं। महर्षि वेदव्यास ने लिखा है "पिबत भागवतं रसमालयम्" अर्थात् जीव जब तक परमतत्व में लय न हो जाय तब तक श्रीमद्भागवत रस का पान करता रहे। अतः भक्तों का निरोध पुष्टि मार्ग में सतत भागवत पारायण से होता है।

---

१ [illegible] सदा [illegible] न दृश्यते।
तदा विनिमज्जनात् [illegible] इति [illegible] नि. श्लो. १६
[इसी हेतु से आचार्य ने निरोधलक्षण के उपरान्त ही सेवाफल ग्रन्थ लिखा। —लेखक]

२ चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् ॥ सि. मु. १

श्रीमद्भागवतपारायण भक्तों के लिए निरोध प्राप्ति के लिए सरलतम उपाय है आचार्य श्री कहते हैं—

यथापि धर्ममार्गेण स्थित्वा कृष्णं भजेत्तदा।
श्रीभागवत मार्गेण स कथंचित् तरिष्यति।
त श्री स नि प्र २१

यही एकमात्र साधन है—

पठेच्च नियम कृत्वा श्री भागवतमादरात्।
× × × × × ×
साधन परमेतद्धि श्रीभगवतमादरात्।
पठनीयं प्रयत्नेन निर्हेतुकमदम्भतः॥
त श्री स नि प्र

साधक की गृहासक्ति किसी प्रकार न छूटे तो श्रद्धापूर्वक भागवतपुराण का पाठ निरंतर करता रहे। आचार्य ने दृढ़ता से कहा है—

अथवा सर्वदा शास्त्रं श्रीभागवतमादरात्।
पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतु विवर्जितम्॥ स नि प्र

श्रीमद्भागवत से जीविका न चलावे। वे कहते हैं—

वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कंठगतैरपि।

श्रीमद्भागवतार्थ लौकिक हेतुओं का साधक नहीं। वह भगवत्साक्षात्कार का साधन है। और स्वयं भगवत्स्वरूप है।[1] 'श्रीभागवतमेवात्र परं तस्य हि साधनम्।"

श्रीमद्भागवत का स्वरूप इस प्रकार है—द्वादशस्कंध द्वादशो वै पुरुष श्रुति के इस कथन के अनुसार वह पुरुषाकार है। श्रीनाथजी का शब्द रूप श्रीमद्भागवत है। श्रीनाथजी अपने उठे हुए बाँए हाथ से भक्तों को बुलाते रहते हैं। उसी प्रकार दशविध लीलाओं का रहस्य जानने के लिए भागवत पुराण भी भक्तों का आह्वान करता है।

दशविध लीलाओं की चर्चा श्रीमद्भागवत में इस प्रकार है—

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥ श्रीमद्भाग २-१०-१

अर्थात् इस भागवत पुराण में सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानुकथा निरोध मुक्ति, और आश्रय इन दस विषयों का वर्णन है। यदि प्रथम स्कंध का विषय अधिकारी तथा द्वितीय स्कंध का विषय साधन मान लिया जाय तो तीसरे से बारहवें स्कंध तक स्कंधों के विषय इस प्रकार रहेंगे—

प्रथम स्कंध—अधिकारी
द्वितीय स्कंध—साधन
तृतीय स्कंध—सर्ग—आकाशादि पंच भूतों की उत्पत्ति
चतुर्थ स्कंध—विसर्ग—विभिन्न चराचर सृष्टि का निर्माण

---

[1] देखो भागवतार्थ प्रकरण—
"दशधा द्वादशस्कंधं पुराणं हरिरेव सः प्र भा प्र श्लो १

पंचम स्कंध—स्थान—सृष्टि मर्यादा से विष्णु की श्रेष्ठता
षष्ठ स्कंध—पोषण—भक्तों पर अनुग्रह
सप्तम स्कंध—ऊति—कर्मवासनाएं
अष्टम स्कंध—मन्वन्तर—धर्मानुष्ठान
नवम स्कंध—ईशानुकथा—अवतारकथा
दशम स्कंध—निरोध—मन का लय
एकादश स्कंध—मुक्ति—अनात्मभाव का त्याग और परमात्मा में स्थिति
द्वादश स्कंध—आश्रय—ब्रह्म अथवा परमात्मा

नव प्रकार की लीलाओं का आश्रय ही शुद्ध पुरुषोत्तम है। और दसवीं लीला—आश्रय की सिद्धि के लिए ही इन 'नव विधा' लीलाओं की चर्चा श्रीमद्भागवत में है। कहा गया है—

यस्य लीला नव विधा स शुद्ध पुरुषोत्तमः।
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्॥

तात्पर्य यह है कि दशम स्कंध का विषय 'निरोध' है इसीलिए आचार्यजी ने कृपालु होकर अपने प्रिय शिष्यों को दशम स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाई थी। इसी अनुक्रमणिका को सुनकर सूर और परमानन्ददासजी को 'निरोध' की सिद्धि हुई थी और हृदय में भगवल्लीला का स्फुरण हुआ था। इस लीला स्फूर्ति से सहस्रावधि पद उनके हृदय सागर से स्रवित हुये। इसी कारण से दोनों महानुभाव ही सम्प्रदाय में सागर नाम से विख्यात हुये।

आचार्यजी ने दशमस्कंध की सुबोधिनी के मंगलाचरण की प्रथम कारिका में—

नमामि हृदये शेषे लीला क्षीराब्धिशायिनम्।
लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्॥

यह कह भगवान को प्रणाम किया है। अर्थात् "लीलासागर भगवान जो लक्ष्मी रूपी सहस्रावधि लीलाओं से सेवित हैं उन्हें मैं (वल्लभ) प्रणाम करता हूँ।" तात्पर्य यह है कि दशम स्कंध की आख्यान लीलायें हैं वे निरोध सिद्धि के लिये हैं। इस निरोधवाले स्कंध के पांच मुख्य प्रकरण हैं। महाप्रभुजी ने दशमस्कंध के सम्पूर्ण अध्याय इन पांच प्रकरणों में विभाजित कर दिये हैं—

१—जन्म प्रकरण (अध्याय १—४) कुल ४
२—तामस प्रकरण (अध्याय ५—३२) कुल २८
३—राजस प्रकरण (अध्याय ३३—४९) कुल १७
४—सात्त्विक प्रकरण (अध्याय ५०—७८) कुल २९
५—गुण प्रकरण (अध्याय ७९—८७) कुल ९

इसमें दशम स्कंध के प्रथम अध्याय से ४९ अध्याय पर्यन्त पूर्वार्द्ध लीला तथा ५० से ८७ के अध्याय तक उत्तरार्द्ध लीला कही जाती है। इस प्रकार महाप्रभु वल्लभाचार्य ने दशमस्कंध में कुल ८७ अध्याय माने हैं। बालहरण लीला वाले ३ अध्यायों को वे प्रक्षिप्त मानते हैं। दशमस्कंध के उपर्युक्त प्रकार के प्रकरण विभाजन को आचार्यजी सुबोधिनी में इस प्रकार कहते हैं—

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा।
षड्भिर्विराजते योऽसौ पंचधा हृदये मम॥

अर्थात् "आगम प्रकरण के चार अध्यायोंकी लीलायों से तथा तामस प्रकरणके प्रमाण प्रमेय साधन फलादि चार प्रकरणो से युक्त, राजसके प्रमाण प्रमेयादि चारों प्रकरण तथा सात्विकके प्रमेय साधन और फल सहित ऐश्वर्य वीर्य यशादि छः गुणोंके छः अध्यायों द्वारा पाँच प्रकार से वह भगवान् (ग्रन्थ रूप—श्रीमद्भागवत) मेरे हृदय मे निवास करते हैं।"

दशमस्कन्ध की जो लीलायें आचार्य वल्लभ के हृदयमे विराजती थी उन्ही को उन्होने सूर और परमानन्ददासजी के हृदयमे स्थापित कर दिया। तामस प्रकरण निःसाधन भक्तो के निरोध के लिये है। इस प्रकरण मे पूतना वध से लेकर युगलगीत तक की समस्त लीलाएँ आ जाती हैं। परमानन्ददासजीके सम्पूर्णकाव्य का यही केन्द्र बिन्दु है। यही लीलाएँ उनके पदो का विषय रही हैं।

चौरासीवैष्णवनकी वार्तामें और उस पर हरिरायजीके भावप्रकाश नामक टिप्पण मे स्पष्ट संकेत मिलता है कि परमानन्ददासजी को आचार्यजी से बाललीलागानकी आज्ञा मिली थी और उन्होंने बाललीला परक अनेक पद रच कर आचार्य जी को सुनाये थे। नित्य की श्रीसुबोधिनी की कथा श्रवण कर लेने के उपरान्त वे उस प्रसंग को अपने पदों में पुनः उच्चार देते थे। भगवान का बालस्वरूप और बाललीला का ध्यान ही कवि का 'निरोधस्वरूप' था। इस निरोधस्वरूप को पाकर कवि ने अपनी सम्पूर्ण काव्य प्रतिभाको यहीं केन्द्रित कर दिया और कवि के कोकिल कंठ से अनायास ही फूट पड़ा—

माई री ! कमलनैन स्याममुन्दर भूलत है पलना।
बाललीला गावति सब गोकुल की ललना॥[1]

इस प्रकार के अनंत पदकी सुरसरि कवि के कंठ से नित्य ही प्रवाहित होने लगी। कविके मानस पटल पर नित्य किसी दिव्यलीला-धाम के दर्शन होते रहे। दिशा और काल का व्यवधान हट गया और वह किसी लीला-लोक का साक्षात्कार करने लगा। वहाँ पर उसने अपने आराध्यका कोटि-कन्दर्प-लावण्यमय बालरूप देखा और देखा उसका भगवदैश्वर्य। बस इसी अनुभूति-गोमुख से पद प्रवाह बह चला। कवि देश काल को चीरता हुआ अवतार युग का जीव बन गया और माता यशोदा को बधाई देता हुआ बोल उठा—

जसोदा ! तेरे भाग्य की कहीय न जाई।
जो मूरति ब्रह्मादिक दुर्लभ सो प्रगटे है आई॥
सिव नारद सनकादि महामुनि मिलिबे करत उपाई।
ते नन्दलाल धूरि धूसर वपु रहत कंठ लपटाई॥
रतन जटित पीढ़ाय पालने बदन देखि मुसुकाई।
भूलो मेरे लाल जाऊँ बलिहारी परमानन्द जसगाई॥ [प. सा. ४१]

उसने बाल रूप भगवान् को नन्दालयके मणि कुट्टिम पर घुटनो के बल रेंगते देखा।

---

१ चौरासी वैष्णव की वार्ता पृष्ठ ८०८
प. सा० १६

मनिमै आंगन नन्द के खेलत दोउ भैया।[1]
गौर स्याम जोरी बनी बल कुँवर कन्हैया।।

× × × ×

बाल बिनोद प्रमोद सौं परमानन्द गावै।। [ प सा ७७]

इस प्रकार कवि जीवन भर भगवानके बाल विनोद में संलग्न रहा इसके अतिरिक्त उसे न कोई काम था न व्यापार, न व्यसन।

बाल रूप से मन का निरोध एक मनोवैज्ञानिक तथ्य —यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि एक साधारण से बालक की चेष्टाओं में भी बड़ा आकर्षण होता है—उसकी सरल अबोध की चेष्टाएँ बड़े-बड़े चिन्तकों और वीतरागों को बरबस आकर्षित कर लेती हैं। फिर अलौकिक लीला अनुसारी भगवान के बाल रूप के आकर्षण की तो बात ही क्या हो सकती होगी। भगवान के जिस बाल रूप पर ब्रह्मा इन्द्रादि देवगण भी व्यामोह में फँस जाते हैं। और जिनकी "लरिकाई" से ज्ञानी भक्त काम-बुद्धि भी भी अपना मानसिक विश्राम खो बैठे हैं।[1] उस बालरूप पर अष्टछाप के इन दो सागरों को—विशेषकर परमानन्ददासजी को निरोध सिद्धि होगई तो आश्चर्य ही क्या? इसका कारण शायद यह हो कि अतिशय चंचल मन का निरोध चंचलतम वस्तु से ही करना सरल होगा। "कंटक कंटकेनैव" के अनुसार चंचल मन की औषध बालक की चंचल चेष्टाएँ ही हो सकती हैं। मन-तन सर्वत्र भागने वाला मन यदि कहीं स्थिर होता है तो वह बालक की चंचल चेष्टाओं पर ही। जितना अधिक छोटा शिशु होगा चंचलता उतनी ही अधिक होगी। चंचलता की तीव्रतम गति को देखने और शिशु की स्वच्छन्द क्रीडा के प्रत्येक स्पन्दन के माधुर्य का आस्वादन लेने के लिये मन को कितना सावधान और एकाग्र अथवा निरुद्ध रखना होता होगा यह शिशु क्रीडा देखने वालों से छिपा नहीं है। शिशुक्रीडा में चिर मग्न रहने वाली वात्सल्यमयी जननी अपने बालककी हरकतों के प्रति कितनी जागरूक और सावधान रहती है—यह किसी अनुभवी से छिपा नहीं है। फिर यदि वह एक मात्र दुलारा जीवन और आशा-आकांक्षाओं का आधार हो तो उसकी चेष्टायें उसे कितनी प्रिय होंगी। जीवनाकाश के ऐसे ज्योतिर्मय स्नेहनिधि [illegible]को पाकर किस अभिभावक का मन इधर-उधर भटकेगा। उसको तो अपने प्रिय वत्स का क्षणिक वियोग भी असह्य हो उठेगा और वह तड़प कर पुकार उठेगा।

हरि तेरी लीलाकी सुधि आवै।[2]
कमलनैन मोहन मूरतिकी मन-मन चित्र बनावै।
कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगन कबहुँक पिकसुर गावै।
कबहुँक संभ्रम 'क्वासि क्वासि' कहि संग हिलिमिलि उठि धावै।।
कबहुँक नैन मूँदि अन्तरगति मनिमाला पहिरावै।
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गँवावै [ प सा ११८]

---

१ भोरे लरिकाइ मोहिसम करन लगे मुनि राम
कोटि भाँति समुझाय मन न लहै विश्राम ॥ रा च मा व का दोहा—१११

२ इस पद को सुन कर श्रीमद्‌ वल्लभाचार्य तीन दिन तक देहानुसन्धान भूले रहे थे [ ८४ वार्ता ]

कभी पालनेमें झूलते हुए किलकारी मारते हुए ऐसे दिव्य बालकको जब माँ देखती तो उसकी तृप्ति नहीं होती। अतः उसे कल नहीं पड़ती।

रतन जटित कंचन मनिमय
नंद भवन मधि पालनो।
ता ऊपर गजमोतिन लट लटकत प्रति
तहँ झूलत जसोदा को लालनो॥
किलकि किलकि बिलसत मन ही मन
चितवत नैन बिसालनो।
परमानन्द प्रभु की छबि निरखत लालत
कल न परत ब्रज बालनो॥ [ प सा ४१ ]

मन की इसी स्थिति को लक्ष्य कर महाप्रभुजी ने कहा है—

यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले
गोपिकानां तु यद्दुःखं स्यान्मम क्वचित्॥
गोकुले गोपिकानां तु सर्वेषां व्रजवासिनाम्।
यत् सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति॥

अर्थात् भगवान् कृष्ण के मथुरा चले जाने पर जो विप्रयोग-जन्य दुःख माता यशोदा और नन्दादि गोकुलवासियों को हुआ और जो विरहजन्य दुःख ब्रज गोपिकाओं को हुआ क्या वह दुःख कभी मुझे मिलेगा? क्या वह (स्वरूपानन्द का) सुखानुभव मुझे होगा?

महाप्रभु निरोध लक्षण' में विप्रयोग दुःख और स्वरूपासक्ति जन्य प्रत्यक्ष सुखानुभव दोनोंकी ही याचना करते हैं। परमानन्ददासजी के काव्य में निरोध-सिद्धि तीन प्रकार से मिलती है—

१—लीलापरक निरोध
२—स्वरूपासक्ति जन्य निरोध
३—विप्रयोगजन्य निरोध

लीलापरक निरोध का उदाहरण—व्रजगोपिकाओं में मिलता है। व्रज गोपिकाएं अहर्निश हरिलीला में मस्त रहकर, गृहकार्य करती हुई भी प्रतिक्षण भगवान श्रीकृष्णके ध्यानमें ही रत रहती थी—

हरि लीला गावत गोपीजन आनन्द में निशिदिन जाई।
बालचरित्र विविध मनोहर कमलनैन जसुमत सुखदाई॥
दोहन मथन खंडन लेपन मंडन गृह सुत पति सेवा।
चारियाम अवकाश नहीं पल सुमिरत कृष्ण देवदेवा॥
भवन भवन प्रतिदीप बिराजत कर कंकन नूपुर बाजे।
'परमानन्द' बोध कौतूहल निरखि भांति सुरपति लाजे॥ [प सा ८२]

माताएं तथा व्रजजन क्रीडा रस में रात दिन मस्त रहते हैं—

गावत हरि के नाम विनोद।
देखत श्याम निरखि गति बिहँसत मुदित रोहिनी मात जसोदा ॥

" " " " " ,

" " "

मतिहिं चपल सुखदायक मिलिमिलि रहत केलि रस मोद।
परमानन्द मदन मोहन फिरि-फिरि चितवत निज जन कोद ॥ [प० प ८१]

स्वरूपासक्तिजन्य निरोध—श्याम स्वरूप में अनुरक्त गोपिका दही बेचने निकली है। प्रेम में बेसुध दहीका नाम भूल गई। केवल माधव का नाम ही स्मरण रह गया है। मन उसका श्यामरस में निरुद्ध है। अतः वह कहती है—

कोउ माधौ लेई माधौ लेई बेचत श्याम रस।
दधि को नाम सहज न आवै परी जु प्रेम बस ॥
गोरस बेचन चली वृन्दावन माउँ।
हरि के स्वरूप भ्रमो परी जु भई साउँ ॥
विरह व्याकुल भई बिसरि गए हैं धाम।
'परमानन्द' प्रभु जगत पावन है नाम ॥

श्यामसुन्दर के भुवनमोहन रूपपर मुग्ध होकर कैसी स्थिति हो जाती है इसका वर्णन कवि ने बड़ी सुन्दरता के साथ किया है—

अति रति श्याम सुन्दर सौं बाढ़ी।
देखि स्वरूप गोपाललालको रही ठगी सी ठाढ़ी ॥
घर नाहिं जाइ, पंथ नाहिं रेंगति चलत थकति मति थाकी।
हरि ज्यौं हरि को मधु खोजति काम मुग्ध मति ताकी ॥
नैननि नैन मिले मन अरुझ्यो यह नागरि वह नागर।
'परमानन्द' दीन ह्वै बनमें बात जु भई उजागर ॥ [प सा २११]

स्वरूपासक्ति जन्य निरोधके वर्णन परमानन्ददासजी ने अनेक स्थलों पर किए हैं। उनका अन्तिम पद¹ तो उनकी निज की निरोध-स्थिति का द्योतक है। इसमें भुवनमोहनके साथ संयोग रस का चरमोत्कर्ष दृष्टव्य है।

विप्रयोग जन्य निरोध—महाप्रभु वल्लभाचार्यने अपने ग्रंथ निरोध लक्षण में नंदयशोदादि की विप्रयोग जन्य दुःखानुभूति की व्याख्या की है। अनुभूति को परमानन्द अनुभूति को परमानन्ददासजी ने भी उसी परम्परा की व्याख्या की है—

मेरो मन गोविंद सौं मान्यो ताते और न जिय भावै हो।
जागत सोवत यहै उत्कण्ठा कोउ ब्रजनाथ मिलावै हो ॥
बाढ़ी प्रीति आनि उर अन्तर चरन कमल चित दीनो हो।
कृष्ण विरह गोकुल की गोपी बरहीमें मन भीनो हो ॥

१ राधे बैठी तिलक सँवारति। प सा प सं ४७९
[ कहा जाता है कि यह पद परमानन्ददासजी का अन्तिम पद है—लेखक ]

छाँड़ि अहार देह सुख और न चाहौं काउ।
'परमानन्द' बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ [ प सं १२६ ]

अतः कवि ने अपने आराध्य को सब कुछ समर्पण कर दिया है और वह उस देशमें जाना चाहता है जहाँ नंदनंदन से भेंट हो जाय और उसका विरह ताप मिट जाय।

'जाइए वह देस जहं नंदनंदन भेटिए।
निरखिए मुख कमल कांति विरह ताप मेटिए ॥
× × × × × × ×
× × × × × × ×
छिन-छिन पल कोटि कल्प बीतत अति भारी।
'परमानन्द' प्रभुकृपा तब जीवन दुख हारी ॥ [ प स ८४६]

इस प्रकार क्षण-क्षण पर अपने प्रियतम आराध्यका ध्यान कर विरह गमाने वाले परमानंददासजी के मनोराज्य में विविध भगवल्लीलाओं के सजीव चलचित्रो की सृष्टि चलती रहती थी। सिवाय अपने प्रभुके भक्तका मानस अन्यत्र घूमकर भी आन्दोलित नहीं था। विरह—मिलन की वीथियो मे कभी वह भाव-विह्वल होकर पुकार उठता था "क्वासि क्वासि"। अर्थात् "प्यारे तू कहाँ है तू कहाँ है ? भक्त को एक क्षणका भी विरह सह्य नहीं होता अतः वह कभी अतीत की मधुमय स्मृतियोंमे डूब कर कहता—

वह बात कमल दल नैन की।
बार-बार सुधि आवत सजनी वह दुरि दैनी सैन की ॥
वह लीलारस रास सरद को वह गोरंजनि आवनि।
अब वह ऊंची टेर मनोहर मिस करि मोहि बुलावनि ॥
वे बातें सालें उर अन्तर की अब पीरहि उपजावैं।
'परमानन्द' कहयौ न परै कछु हियो सो कम्प्यौ आवै ॥ [ प स २६ ]

उत्फुल्लमल्लिकावाली उस शरद्यामिनीमे कोटि-कन्दर्प लावण्य-वपु-धारी प्रभु ने अपनी जिस भुवनमोहिनी रासलीला से चराचरको मुग्ध और स्तब्ध कर दिया था वह अब केवल स्मृति-पथ की वस्तु ही रह गई है। और वह स्मृति भक्त के अन्तस् में शल्य की भांति कसक रही है और उसकी वाणी से परे हो गई है। आज उनके विरह मे भक्त गोपिकाएँ कैसे जीवित रह सकती है।

'परमानंद प्रभु सो क्यो जीवै जो पीवी मृदु बैन की।

संक्षेप में हम देखते हैं कि परमानन्ददासजी के बाललीला स्वरूपासक्ति एव विप्रयोग विषयक पदोंमे बड़ी गहन समाधि कल्प अनुभूति है जिनमें देहानुसंधान को विस्मृत करा देने की अनुपम सामर्थ्य है। उनमें तन्मयता की पराकाष्ठा है और है मिलन की उत्कट अभिलाषा। इस अभिलाषा का पर्यवसान प्रियतम की गाढालिंगन में होता है जबकि वक्षस्थल पर पड़े हुए हार का व्यवधान भी अत्यन्त असह्य हो जाता है—"हारो नारोपितो कण्ठेमया विश्लेषभीरुणा।

रस पायी मदनगुपाल की।
सुनि सुन्दरि तोहि नीकी लाग्यो या मोहन अवतारकी ॥
कंठ बाहु धर अधर पान दै प्रमुदित हँसत बिहारकी।
× × × × × × × × ×
गाढ़ आलिंगन दै-दै मिलिबो बीच न राखत हार की ॥
× × × × × × × × ×
परमानन्ददास की जीवनि राख परिग्रह यार की ॥ [प० स० ४ ६]

तात्पर्य यह है कि भक्त प्रवर परमानन्ददासजी की निरोध-भूमि भगवान का बाल और किशोर रूप ही है। जिसमें अनन्त लीला अनन्त सौंदर्य और अनन्त प्रेम का समावेश है उसमें स्वरूप भावना और लीला भावना की ही प्रधानता है। दार्शनिक सिद्धान्त मे वे अधिक नहीं पड़े।

## पञ्चम अध्याय

# परमानन्ददासजी और पुष्टिमार्गीय भक्ति

महाकवि परमानन्ददासजीके जीवन वृत्त और उनकी काव्य रचना से उनके भक्त, दार्शनिक कवि और संगीतज्ञ होने मे कोई सन्देह नहीं रह जाता। वार्ता से ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण मे आने के पूर्व से ही वे कीर्तन-सत्संग किया करते थे और 'स्वामी' नाम से प्रसिद्ध थे। वे सेवक (शिष्य) भी बनाया करते थे। तात्पर्य यह है कि महाप्रभुजी की शरण मे आने से पूर्व परमानन्ददासजी का जीवन एक आध्यात्मिक जिज्ञासु का था परन्तु तब तक वे किस सम्प्रदाय के अनुयायी थे—यह स्पष्ट नहीं होता। उनका गान बहुत अच्छा था और वे कीर्तन बहुत अच्छा करते थे। उनकी कीर्तन की इतनी प्रसिद्धि थी कि जब एक बार मकर-संक्रान्ति के अवसर पर जब वे प्रयागमे संगम पर मत्सव कर रहे थे तो महाप्रभु वल्लभाचार्य के जलघरिया कपूर क्षत्री ने उनकी कीर्तन-गान सम्बन्धी कीर्ति सुनी और वे अवसर पाकर उनसे सुनने पहुँचे। विचारणीय तथ्य है कि परम अनन्यता के पोषक एवं समर्थक महाप्रभु वल्लभाचार्य के सेवक भी अनन्य ही होते थे। अतः कपूरक्षत्री एतन्मार्गातिरिक्त देव-कीर्तन मे सम्मिलित क्यो हुए और यदि केवल संगीत-प्रेम से अभिभूत होकर उनका वहाँ सम्मिलित होना मान भी लें तो एकादशी के रात्रि-जागरण की बात फिर विशेष अर्थ की नहीं रह जाती है।

एकादशी रात्रि का जागरण हरिभक्त वैष्णवो मे ही प्रचलित है। फिर रात्रि के अंतिम प्रहर मे परमानन्ददासजीको श्रीनवनीतप्रियके दर्शन हुए। स्वप्न-विज्ञान के आचार्यों का कहना है कि मन की अन्तर्लीन भावनाएँ ही स्वप्न मे साकार हुआ करती है। अतः परमानन्ददासजीके भी नवनीतप्रियजी के दर्शन करना उनकी साकार भक्ति मे रत रहने का ही प्रमाण है। स्वप्नोपरान्त वे भगवद्दर्शन के लिए व्याकुल हुए होंगे और तभी कपूर क्षत्रिय उन्हे श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन तथा आचार्यजी से मिलन कराने के लिए अडैल ले आए।[1] अडैल में महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रथम दर्शन मे ही उनका भक्ति-भाव उमड़ पड़ा और वे तत्काल उनके सेवक होने का सदुपक्रम कर लेते है। श्रीमहाप्रभु के भगवल्लीला गान की आज्ञा पाकर उन्होंने वहीं तीन चार पदोकी रचना कर डाली।[2] शरणापत्ति के पूर्व के इन पदो में परमानन्ददासजी की आध्यात्मिक भावनाका स्पष्ट संकेत मिल जाता है। उनमे भगवत्-विषयक विरह-भावना भी प्रकट होती है। इस सबसे इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि परमानन्ददासजी महाप्रभुके शरण मे आने से पूर्व भी सगुणोपासक वैष्णव थे और भगवद् गुण-कीर्तन मे ही रत रहते थे।

---

[1] दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तथा [illegible] (परिशिष्ट)

[2] वे पद हैं—१ कौन बेर भई चलेरी गुपालें।
२ जिय की साध जियहि रही री।
३ अब याद [illegible] मेरी।
४ सुधि करत कमल दल नैन की॥ श्री [illegible]

**भक्ति की प्राचीनता**—परमानन्ददासजीकी भक्ति भावना के स्वरूप का विश्लेषण करने से पूर्व यहाँ भारतीय भक्ति-साधना में कृष्ण भक्ति की महत्ता प्राचीनता और उसके विकासकी अत्यन्त संक्षिप्त चर्चा अप्रासंगिक न होगी। श्रीकृष्ण भक्तिकी जिस मनोहारिणी दिव्य भाव-स्थली पर स्थित होकर सूरदासादि अष्टछापके कवियोंने तथा रसखान मीराँ व्यास हित हरिवंश आदि अनेक महात्माओंने भाव-तन्मयता में आत्मविस्मृत होकर जिस *दिव्यसाहित्यका सर्जन किया वह दुर्लभ भक्तियोग भारत की अपनी आन्तरिक प्रधान चेतना* है। यही समस्त वेदों, उपनिषदों दर्शन शास्त्रों पुराणों का सार सर्वस्व है और यही सम्पूर्ण उपासना विधियों का एकमात्र लक्ष्य है। समस्त अध्यात्म साधनाओंमें मुख्यरूपेण भक्ति-साधना कोरा मध्ययुगीन आन्दोलन नहीं है अथवा न यह कोई धर्मान्ध अथवा लौकिक स्वार्थसिद्धि का साधन-भूततत्त्व है। यह तो मानवीय चिरंतन भाव है जो कृतज्ञता की अनुभूति से उद्भूत होकर परमप्रेम का रूप धारणकर लेती है। इसीलिए भारतीय भक्तिसूत्र में इसे परमप्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा कहा है। जिसे पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है अमर *हो जाता है और तृप्त हो जाता है। यह ईश्वर के प्रति जीवकी परा अनुरक्ति है।*[1] इसके मूल तत्त्व अनादिकालसे मानव में और बाद में वैदिक साहित्य में मिलते हैं। कई पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार न तो इसे ईसाइमत की देन मानना चाहिए, न ही 'कृष्ण' शब्द का क्राइस्ट शब्द से भाषा वैज्ञानिक ध्वन्यात्मक सम्बन्ध जोड़कर उससे सम्बद्ध करना चाहिए। यह तो भारतीय साधना का वह चिरंतन सिद्धान्त है जिसकी जीवन-धारा अनादि काल से अक्षुण्ण प्रवाहित होती चली आरही है। वास्तव में वेद तो भक्ति-भावनाके विकसित भावकोश हैं।

वैदिक साहित्यमें भक्ति-सिद्धान्त के अतिरिक्त अन्य कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। जिस प्रकार देह में चैतन्य व्याप्त है उसी प्रकार वैदिक साहित्य में भक्ति सिद्धान्त व्याप्त है। वैदिक श्रुतियाँ भक्ति-सिद्धान्तसे ही ओत प्रोत हैं। सूर्य अग्नि इन्द्र वरुण विष्णु आदि देवताओं के प्रति कही वैदिक ऋचाओं में प्राचीन आर्योंकी भक्ति-भावनाएँ ही तो मिलती हैं। इनमें उनका चरम दैन्य विनय और समर्पण और अनन्यभाव ही समाया हुआ है। वेदों में बहुदेवोपासना नहीं। अपितु एक ही देवकी विभिन्न शक्तियाँ समय-समय पर प्रधानता में आई हैं। "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" के अनुसार एक ही तत्त्व की भिन्न-भिन्न प्रकार से उपासना की गई है। निरुक्तकार महर्षि यास्कने अपने निरुक्तके सातवें अध्याय में स्पष्ट कर दिया है कि वेदों में जुदे-जुदे देवताओंकी प्रार्थना न होकर आत्मा अथवा ब्रह्म की ही प्रार्थना है। यह ब्रह्म ही अग्नि है वही वरुण है वही इन्द्र है इसीलिए इन्द्रादि देवताओंकी पूजा ब्रह्म अथवा आत्मा की ही अर्चना अथवा ब्रह्म पूजा है। और इसीलिए वेद अद्वैत भक्ति भावना का ही प्रतिपादन करते हैं। इसी वैदिक अद्वैत-भावना का जब ह्रास होने लगता है और बहुदेववाद अथवा अन्य कोई भय-मूलक-देव-पूजावाद चल पड़ता है तो विश्वात्मा पुनः एक सर्वात्मवाद अथवा अद्वैत भक्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा करके लोक-भावना का सही परिचालन करती है।

---

१ सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च ॥
यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति, तृप्तो भवति ॥
(ना० भ० सू० २-४)

२ सा परानुरक्तिरीश्वरे (शां० भ० सू० २)

वेदों के उपरान्त उपनिषदों में भी यही अद्वैती भक्ति-भावना विकसित हुई है। उनमें आत्म-तत्व की उपासना पर ही बल दिया गया है। कठोपनिषद् में भगवान् की अनुग्रहैकसाध्य भक्ति की ओर संकेत किया गया है। और स्पष्टतः अनुश्रवण चिंतन एवं वेदपाठादि का तिरस्कार सा कर दिया है।[1] तैत्तरीयोपनिषद् में 'रसो वै स' कहकर उस परब्रह्म को 'रस' या आनन्दस्वरूप बतलाया गया है।

तात्पर्य यह है कि वेदों और उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय भगवद्भक्ति है। "यमेवैष वृणुते तेन लभ्य" में पुष्टि अथवा अनुग्रहतत्व का ही प्रतिपादन है। तैत्तरीय उपनिषद् के "रसो वै स" से रसस्वरूप परब्रह्म ही मानव का चरमप्रमेय माना गया है। 'रस' "आस्वाद्य" है। कथनीय नहीं। इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् के तीसरे अध्याय के १७ वें मंत्र में आया है—

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्॥

में भक्तिमार्गीय शरणागति की चर्चा है। और "शरण" शब्द का स्पष्ट उल्लेख है।

कैवल्योपनिषद् में 'भक्तिध्यान योगादवै' कहा गया है। पाँचवी ऋचा में "भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य" में 'भक्ति' और प्रणति का सम्बन्ध बोध किया गया है। नारायणोपनिषद् में "मकरपतिवमेन नारायण सचम्य सर्वावस्थासु विमाति।" में भक्तितत्व का संकेत है। गोपाल पूर्वतापिन्युपनिषद्में अन्तमें भगवान श्रीकृष्णका ध्यान करने और उन्हीं के भजन करने के लिए कहा गया है—

त रसमेत्। त यजेत्। त भजेत्। इत्यादि।

इस प्रकार उपनिषदों में भी भक्ति तत्व की पर्याप्त चर्चा है। अब देखना है कि श्रीकृष्ण भक्ति की प्राचीनता कब से है। क्योंकि कुछ विद्वानों ने कृष्ण भक्ति के सूत्र वेदों में खोजने का प्रयास किया है। और वैदिक ऋचाओं में कृष्णलीला परक अर्थ लगाए हैं। इस प्रकार वे कृष्ण भक्ति का मूल वैदिक साहित्य में खोजने की चेष्टा करते हैं। इसलिए गोकुलादि स्थानों और भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं की चर्चा वेदों में बतलाते हैं। इस बात का संकेत अणुभाष्य में आचार्य ने व्याससूत्र के चौथे अध्याय के द्वितीय पाद के १५ वें सूत्र[2] की व्याख्या में किया है। वे लिखते हैं—

"ननु हृदि वहिश्चरसात्मक भगवत्प्राकट्य तद्दर्शन चमित्वेनिरहभाव तज्जनित स्वापस्वेन मरणोपस्थितिस्वभिवर्तन तथोत्सद्य तथा प्राकट्य तत पूर्णस्वरूपानंदरसात्मिक लोके क्वचिदपि न दृष्ट श्रुत वा वैकुण्ठेऽपीति "श्रुत इत्यादयनायामाह। तानि तज्जानि वस्तुनि परे प्रकृति कालातीते वैकुण्ठादप्युत्कृष्टे श्री गोकुल एव सन्तीति शेष। तत्र

---

१ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥
कठो अ अ वल्ल २ २३।

२ "तानि परे तथा ह्याह" ब्र सू ४।२।१५—४

और उसीसे साधक परमपद का भागी होता है।[1] ज्ञान और योग के क्षेत्र भी श्रद्धा निर्भर होने के कारण भक्ति विरहित नहीं। तात्पर्य यह है कि आस्था श्रद्धा तथा उसका व्यवहार (भावना) ये भक्ति के ही पूर्व रूप हैं। इस प्रकार किसी भी प्रकार की भारतीय-साधनामें कहीं भी ऐसा स्थान नहीं जो भक्ति-तत्व से रिक्त हो। ज्ञान-मार्ग और योग-मार्ग निर्गुण की आराधना बतलाते हैं। भक्ति-मार्ग सगुण की। निर्गुण-मार्ग साधक के लिए कठिन और क्लेशकारक होता है सगुण मार्ग सुगम और सरल।[2] अत निर्गुण की क्लिष्ट भावना ने ही सगुण भक्तिको परिपुष्ट और पल्लवित किया है।

श्रीमद्‌भागवत पुराण मे भक्ति तत्व—वैदिक काल से चली आने वाली भक्ति की प्रबल धारा पुराण युग तक आते-आते अत्यन्त पीनोन्नत हो गई और भागवत के काल में तो उसका महत्व चरम सीमा पर पहुँच गया। श्रीमद्‌भागवत पुराण मामूल भक्ति-पुराण है और सात्वत श्रुति[3] है। भागवत धर्म का अथवा भक्ति-भाव का प्रतिपादक इससे बढ़कर कोई अन्य ग्रन्थ नहीं है। यही कारण था कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने सिद्धान्त के लिए प्रमाण-चतुष्टय के अन्तर्गत श्रीमद्‌भागवत को स्वीकार किया है।[4] और इसे व्यास देव की 'समाधि भाषा' कह कर अनन्य सम्मान और महत्व दिया है। आचार्य के अनेक ग्रन्थ श्रीमद्‌भागवत पर ही आधारित हैं। पुरुषोत्तम सहस्रनाम तो भागवत का संक्षिप्त संस्करण है इसके अतिरिक्त दशमस्कन्ध अनुक्रमणिका त्रिविधलीलानामावली दशमस्कन्ध के ही संक्षिप्त रूप हैं। तत्वदीपनिबन्ध का श्रीभागवतार्थ प्रकरण श्रीमद्‌भागवत की स्वरूप-साधना को और उसके बहिरंग परिचय को स्पष्ट करता है। श्री सुबोधिनी भागवत के अन्तरंग रहस्य का बोध कराती है। श्रीमद्‌भागवत के प्रति आचार्य की कितनी निष्ठा थी इसका परिचय सर्वनिर्णय प्रकरण के अनेक श्लोकों से मिल जाता है। भागवत के उपक्रम-उपसंहार, अभ्यास अपूर्वता फल अर्थवाद-उपपत्ति सभी का तात्पर्य भक्ति है। सात्वत पति श्रीकृष्ण वासुदेव के प्रति एकतान भक्ति ही उसका लक्ष्य है।[5] यही उसके प्रतिपाद्य है।[6] श्रीमद्‌भागवत के एकान्त अनन्य गौरव के मूल मे उसका भक्ति-प्रतिपादन ही

---

१ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते।
स्वभाव गुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥ भाग ३-२९-७

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ गी अ १२ श्लो ५

३ तथाच समधृतात् भवेता सात्वती श्रुति । त प्र १४-७

४ वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥ त दी नि

५ सर्वे तु वशे धर्मो धर्मो वनोमनिवर्णचेतसे।
भक्तिहीनमिना मनात्मा सम्पद्यति ॥
वासुदेवे भगवति भक्तियोग प्रयोजित ।—भा
जनयत्याशु वैराग्यं च यदहैतुकम् ॥ भक्तिप्रभा १ २९-७

६ तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्य कीर्तितव्यश्च ध्येय पूज्यश्च नित्यदा ॥ भा १ २-२ ।

है। इस ग्रन्थ के माहात्म्य में ही भक्ति की उत्पत्ति और विकास की कथा एक रूपक के आश्रय से बड़े ही मनोहर ढंग से व्यक्त की गई है।

व्रजप्रदेश में ज्ञान और वैराग्य नाम के अपने दोनों मुमूर्षु पुत्रों के पास बैठी हुई भक्ति युवती नारद जी से कहती है कि "मैं द्रविड देश में उत्पन्न हुई कर्णाटक में बढ़ी कहीं-कहीं महाराष्ट्र में सम्मानित हुई हूँ किन्तु गुजरात में मुझे बाढ़क्य ने आ घेरा था। वहाँ घोर कलियुग के प्रभाव से पाखण्डियों ने मुझे अंग-भंग कर दिया। चिरकाल तक यही अवस्था रहने के कारण मैं अपने पुत्रों के साथ घोर शिथिल हो गयी थी। अब जब से मैं वृन्दावन आई हूँ तब से पुनः परम सुन्दरी स्वरूपवती नवयुवती हो गयी हूँ।[1]"

प्रस्तुत रूपक में भक्ति के विकास का बड़ा सुन्दर संकेत मिलता है। एक प्रकार से यह भारतीय भक्ति-भावना के विकास की कहानी है जिसमें न केवल भौगोलिक सीमाओं का संकेत है अपितु काल-क्रम का भी संकेत मिलता है। मानव-मन से उदित भक्ति-भावना वैदिक-साहित्य में पल्लवित हुई और भगवान् बुद्ध (ईस्वी सन् पूर्व छठी शताब्दी) से पूर्व वासुदेव भगवान् ने इस भक्ति-योग का महान् उपदेश किया था। परिणाम स्वरूप वासुदेव धर्मानुमत भक्तिमार्ग का प्रचार हुआ। पाणिनि तथा प्राचीन शिलालेखों में वासुदेव की पूजा के प्रमुख प्रमाण मिल जाते हैं। फिर संहिताओं में पुराणों में तथा ईस्वी सन् की दूसरी तीसरी शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक के संस्कृत-साहित्य में तथा इस काल की वास्तुकला शिलालेखों तथा मंदिरों-मूर्तियों आदि में मध्यकालीन पौराणिक वैष्णव-धर्म के दर्शन होते हैं। यह सारा काल भक्ति-पादप के उद्भव और विकास का मनोहर इतिहास प्रस्तुत करता है। ११ वी शताब्दी से इसमें बड़ी-बड़ी शाखाएँ फूटनी आरम्भ हुईं। भागवत माहात्म्य का आप्त वाक्य— उत्पन्नाद्राविडे साहं ईस्वी सन् की ४थी सदी से ९ वी सदी के भक्ति-आन्दोलन का संकेत देता है। यह काल शासकवर्ग के उदय और अस्त का समय है। चौथी शताब्दी में उत्तर भारत में गुप्त वंश के आश्रय में ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन तो मिला परन्तु बौद्ध और जैन धर्म जोर पकड़े हुए थे। अतः यहाँ वैष्णव धर्म कुछ अधिक उन्नत अवस्था में नहीं था। दक्षिण में बौद्ध और जैन धर्म निराश्रित थे। वहाँ केरल प्रदेश में ब्राह्मण-धर्म को अच्छा अवसर मिला हुआ था। इस प्रकार उत्तर भारत में जबकि ७ वी ८ वी शताब्दी तक बौद्ध और जैन धर्म जोर पर थे दक्षिण में पल्लव और चोल वंशीय नरेश पौराणिक वैष्णव धर्म की उन्नति में पूरा-पूरा योग दे रहे थे। और अनेक भव्य मंदिरों के निर्माण में व्यस्त थे। तात्पर्य इतना ही कि भक्ति आन्दोलन दक्षिण से प्रारम्भ हुआ। और वहाँ शैव और वैष्णव धर्म के आचार्यों ने मिलकर बौद्ध और जैन

---

१ उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥
तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका।
दुर्बलाहं चिरं जाता पुत्राभ्यां सह मन्दताम्॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सम्यक् श्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम्॥

पद्मपुराणान्तर्गत—भाग. माहात्म्य अ. १ श्लो. ४८, ४९, ५०।

और इसीसे साधक परमपद का भागी होता है।[1] ज्ञान और योग के क्षेत्र भी श्रद्धा-निर्भर होने के कारण भक्ति विरहित नहीं। तात्पर्य यह है कि आस्था श्रद्धा तथा उसका व्यवहार (भावना) ये भक्ति के ही पूर्व रूप हैं। इस प्रकार किसी भी प्रकार की भारतीय साधना में कहीं भी ऐसा स्थान नहीं जो भक्ति-तत्त्व से रिक्त हो। ज्ञान-मार्ग और योग-मार्ग निर्गुण की आराधना बतलाते हैं। भक्ति-मार्ग सगुण की। निर्गुण-मार्ग साधक के लिए कठिन और क्लेशकारक होता है सगुण मार्ग सुगम और सरल।[2] अतः निर्गुण की विशिष्ट भावना से ही सगुण भक्तिको परिपुष्ट और पल्लवित किया है।

श्रीमद्भागवत पुराण में भक्ति तत्त्व—वैदिक काल से चली आने वाली भक्ति की सबल धारा पुराण युग तक आते-आते अत्यन्त पीनोन्नत हो गई और भागवत के काल में तो उसका महत्त्व चरम सीमा पर पहुँच गया। श्रीमद्भागवत पुराण प्रमुख भक्ति-पुराण है और सात्वत श्रुति[3] है। भागवत धर्म का अथवा भक्ति-मार्ग का प्रतिपादक इससे बढ़कर कोई अन्य ग्रन्थ नहीं है। यही कारण था कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने सिद्धान्त के लिए प्रमाण चतुष्टय के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत को स्वीकार किया है।[4] और उसे व्यास देव की "समाधि भाषा" कह कर अनन्य सम्मान और महत्त्व दिया है। आचार्य के अनेक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत पर ही आधारित हैं। पुरुषोत्तम सहस्रनाम तो भागवत का संक्षिप्त संस्करण है इसके अतिरिक्त दशमस्कन्ध अनुक्रमणिका त्रिविधलीलानामावली दशमस्कन्ध के ही संक्षिप्त रूप हैं। तत्त्वदीपनिबन्ध का भागवतार्थ प्रकरण श्रीमद्भागवत की स्वरूप-भावना को और उसके बहिरंग परिचय को स्पष्ट करता है। श्री सुबोधिनी भागवत के अन्तरंग रहस्य का बोध कराती है। श्रीमद्भागवत के प्रति आचार्य की कितनी निष्ठा थी इसका परिचय सर्वनिर्णय प्रकरण के अनेक श्लोकों से मिल जाता है। भागवत के उपक्रम-उपसंहार अभ्यास अपूर्वता फल अर्थवाद-उपपत्ति सभी का तात्पर्य भक्ति है। सात्वत पति श्रीकृष्ण वासुदेव के प्रति एकतान भक्ति ही उसका लक्ष्य है।[5] यही उसका प्रतिपाद्य है।[6] श्रीमद्भागवत के एकान्त अनन्य गौरव के मूल में उसका भक्ति-प्रतिपादन ही

---

१ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते।
स्वभाव गुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते॥ भाग ३-२९-७
स्नेहोऽभिनिरस्तैषामन्यासक्त केशवात्
अनन्यता हि या भक्तिः सैवादिभिरच्यते॥ गी॰ भ॰ ११ श्लो॰ ५

२ संवाद समयुक्त यथैषा सात्वती श्रुतिः। भ॰ प॰ २-७
वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥ त॰ दी॰ नि॰

३ सर्वे तु ते वरे क्लेशं मनोनिरोधके।
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्॥
साधने भजनमि भक्तियोग यथोक्त।—ब्र॰
ज्ञानवैराग्य वैराग्य च भक्तियुक्तम्॥ श्रीमद्भाग १ २-७

४ तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥ भा॰ १ २-१ ।

है। इस ग्रन्थ के माहात्म्य में ही भक्ति की उत्पत्ति और विकास की कथा एक रूपक के माध्यम से बड़े ही मनोहर ढंग से व्यक्त की गई है।

कथाप्रसंग में ज्ञान और वैराग्य नाम के अपने दोनों मुमूर्षु पुत्रों के पास बैठी हुई भक्ति युवती नारद जी से कहती है कि "मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई कर्णाटक में बढ़ी कहीं-कहीं महाराष्ट्र में सम्मानित हुई हूँ। किन्तु गुजरात में मुझे बुढ़ापे ने आ घेरा था। वहाँ घोर कलियुग के प्रभाव से पाखण्डियों ने मुझे अंग-भंग कर दिया। चिरकाल तक यही अवस्था रहने के कारण मैं अपने पुत्रों के साथ घोर निस्तेज हो गयी थी। अब जब से मैं वृन्दावन आई हूँ तब से पुनः परम सुन्दरी स्वरूपवती नवयुवती हो गयी हूँ।"[1]

प्रस्तुत रूपक में भक्ति के विकास का बड़ा सुन्दर संकेत मिलता है। इस प्रकार से यह भारतीय भक्ति-भावना के विकास की कहानी है जिसमें न केवल भौगोलिक सीमाओं का संकेत है अपितु काल-क्रम का भी संकेत मिलता है। मानव-मन से उदित भक्ति-भावना वैदिक-साहित्य में पल्लवित हुई और भगवान् बुद्ध (ईस्वी सन् पूर्व छठी शताब्दी) से पूर्व वासुदेव भगवान् ने इस भक्ति-योग का महान् उपदेश दिया था। परिणाम स्वरूप वासुदेव धर्मयुक्त भक्तिमार्ग का प्रचार हुआ। पाणिनि तथा प्राचीन शिलालेखों में वासुदेव की पूजा के प्रभूत प्रमाण मिल जाते हैं। फिर संहिताओं में पुराणों में तथा ईस्वी सन् की दूसरी तीसरी शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक के संस्कृत-साहित्य में तथा इस काल की वास्तुकला शिलालेखों तथा मन्दिरों-मूर्तियों आदि में मध्यकालीन पौराणिक वैष्णव-धर्म के दर्शन होते हैं। यह नया काल भक्ति-धारा के उद्भव और विकास का मनोहर इतिहास प्रस्तुत करता है। ११ वीं शताब्दी से इसमें बड़ी-बड़ी शाखाएँ फूटनी आरम्भ हुईं। भागवत माहात्म्य का प्राप्त वाक्य— उत्पन्ना द्रविडे साहं ईस्वी सन् की ५वीं शती से ९ वीं शती के भक्ति-आन्दोलन का संकेत देता है। यह काल आलवारों के उदय और अस्त का समय है। चौथी शताब्दी में उत्तर भारत में गुप्त वंश के आश्रय में ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन तो मिला परन्तु बौद्ध और जैन धर्म जोर पकड़े हुए थे। अतः यहाँ वैष्णव धर्म कुछ अधिक उन्नत अवस्था में नहीं था। दक्षिण में बौद्ध और जैन धर्म निराश्रित थे। वहाँ केरल प्रदेश में ब्राह्मण-धर्म को अच्छा आश्रय मिला हुआ था। इस प्रकार उत्तर भारत में जबकि ७ वीं ८ वीं शताब्दी तक बौद्ध और जैन धर्म जोर पर थे दक्षिण में पल्लव और चोल वंशीय नरेश पौराणिक वैष्णव धर्म की उन्नति में पूरा-पूरा योग दे रहे थे। और अनेक भव्य मन्दिरों के निर्माण में व्यस्त थे। तात्पर्य इतना ही कि भक्ति आन्दोलन दक्षिण से आरम्भ हुआ। और वहाँ शैव और वैष्णव धर्म के आचार्यों ने मिलकर बौद्ध और जैन

---

१ उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥
तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका।
दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सम्यक् प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥
पद्मपुराणान्तर्गत—भाग. माहात्म्य अ. १ श्लो. ४८ ४९, ५०।

धर्म के समुत्थान के लिए अथक प्रयत्न किया। एक प्रकार से आठवीं से सोलहवीं शताब्दी तक का काल भागवत धर्म का पुनरुत्थान काल है। आचार्य वल्लभ से पूर्व तक भारत में अनेक पौराणिक भक्ति सम्प्रदाय एवं आस्तिक सिद्धांत अस्तित्व में आ चुके थे।

सम्प्रदायों से पूर्व आलवार एवं भागवत धर्मों में वर्ग प्रधान था। तमिल देश में इन्हीं आलवारों से भक्ति पल्लवित हुई। प्रमुख आलवार संख्या में १२ थे। इनमें स्त्री पुरुष जाति पाँति का कोई भेद नहीं था। ये लोग पल्लववंशीय राजाओं के युग में विद्यमान थे। इनका काल ४ थी से ९ वी शताब्दी तक का माना जाता है। शठकोप ( नम्मालवार ) तथा गोदा या आण्डाल इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। श्रीरंगम् में आण्डालमठ एवं मंदिर अद्यावधि वर्तमान है।

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि सम्प्रदायों के अस्तित्व में आने से पौराणिक भक्तिमार्ग बन्द नहीं गया। बल्कि संस्कृत भाषा तथा लोकभाषा द्वारा पुराणों का प्रचार चालू रहने से पौराणिक वैष्णव धर्म की धारा चलती रही। इस प्रकार वैष्णव धर्म के तीन युग स्पष्ट हो जाते हैं—

आदि युग—लगभग ईस्वी सन् ६ पूर्व से लेकर ईस्वी सन् २ –३ तक।

मध्य युग—ईस्वी सन् ३ –४ से ईस्वी सन् १ तक।

तथा अर्वाचीन युग—ईस्वी सन् १ –११ से प्रारम्भ होने वाला साम्प्रदायिक युग।

अर्वाचीन युग के सम्प्रदायों के उद्गम होने में कुछ-कुछ वे ही कारण थे जो आदि युग में भक्ति-भावना के उदय होने में थे। उस युग में भी कर्मकाण्ड की जटिलता और वैदिक आचारों की प्रबलता के कारण अव्यवस्था थी। इसीलिए भगवान् को वासुदेव धर्म का उपदेश करना पड़ा। बाद में बौद्ध एवं जैन धर्म की प्रबलता कारण भूता रही। इस (मध्य) युग में शबर स्वामी कुमारिल भट्ट जैसे मीमांसकों ने कर्ममार्ग का प्रतिपादन करते हुए बौद्ध और जैन धर्म का खण्डन किया। इन्होंने कर्ममार्ग के प्रतिपादन करने के लिए औपनिषदिक ज्ञान मार्ग का भी खण्डन किया। किन्तु यह कर्मवाद भी थोड़े ही समय में बकवाद से बाधा और इसकी प्रतिक्रिया में श्री गौड़पादाचार्य और उनके प्रशिष्य शंकराचार्य ने पुनः कर्ममार्ग का खण्डन किया और पुनः सन्यास प्रधान ज्ञान मार्ग का प्रतिपादन किया। मध्ययुग के साधकों के लिए सन्यास प्रधान ज्ञान ही मोक्ष का साधन बना। वैष्णवाचार्यों को यह बात नहीं रुची और उन्होंने प्रेम प्रधान भक्ति-मार्ग की स्थापना के लिए शंकर के मायावाद के खण्डन करने का प्रयत्न किया।[1]

इस प्रकार भक्ति के आदिकालीन उत्थान और साम्प्रदायिकयुगीन उत्थान में एक मौलिक अन्तर रहा है और वह यह कि आदिकालीन भक्ति-आन्दोलनने अपनी प्रतिभा के बल से अथवा भिन्न दृष्टि से एक नवीन प्रकाश डाला। परन्तु साम्प्रदायिक आचार्यों ने शास्त्र प्रमाणों की अनुकूलता देकर मूल तत्व का ही प्रतिपादन किया है। दूसरे शब्दों में भक्ति का प्राचीन युग स्वप्रकाश है जबकि अर्वाचीन युग पर-प्रकाश है। मध्य युग इन दोनों को जोड़ने वाला सेतु है।

१ देखो—[illegible]

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है सम्प्रदायों का युग १      -११      ई से प्रारम्भ होता है। स्मरण रखना चाहिए कि इन आचार्यों को आलवारों की गहरा भक्ति-भावना विरासत में मिली थी। आलवारों का सर्वाधिक प्रभाव रामानुज पर पड़ा। आलवारों की वाणी का संग्रह-जिसे 'दिव्यप्रबन्धम्' कहा जाता है-परवर्ती आचार्यों की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिकी संपत्ति थी।

सम्प्रदायाचार्यों में सर्वप्रथम रामानुज हुए। इनका समय १ १७ ई से ११ ७ तक का है। आलवारों के 'दिव्य प्रबन्धम्' का सम्पादन सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप में इन्होंने करवाया। इनके उपरान्त निम्बार्काचार्य हुए। इनका समय ११६४ तक है। इन्होंने भी रामानुज की भाँति ब्रह्मसूत्र पर टीका की। इनके उपरान्त मध्वाचार्य हुए। रामानुज एवं निम्बार्क ने अद्वैत को आंशिक प्रश्रय दिया है। किन्तु मध्व ने अद्वैत का बिल्कुल ही तिरस्कार किया है। इनका युग ११९९ ई से १२७८ तक का है।

तात्पर्य यह कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के आविर्भाव के पूर्व अपनी-अपनी पद्धति के अनुरूप भक्तिमार्ग का प्रतिपादन करने वाले ४-५ सम्प्रदाय हुए। इन सब सम्प्रदायों की भक्ति पद्धति के तारतम्य को दृष्टि में रख कर महाप्रभु ने अपने भक्तिमार्ग को सर्वाधिक मधुर बनाने का यत्न किया था।

उपर्युक्त विभिन्न सिद्धान्तों के आचार्य-गण महाप्रभु वल्लभाचार्य के पूर्ववर्ती थे। निम्नांकित कतिपय सम्प्रदाय आचार्य वल्लभ के समसामयिक कहे जा सकते हैं

चैतन्य सम्प्रदाय टट्टी सम्प्रदाय सखी सम्प्रदाय राधावल्लभीय सम्प्रदाय आदि। इन सम्प्रदायों के अतिरिक्त बंगाल तथा महाराष्ट्र में और भी छोटे-मोटे सम्प्रदाय थे। इन सम्प्रदायों के द्वारा प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप उत्तरोत्तर प्रभाव होता गया और भक्ति के रागात्मक पक्ष को विशेष बल मिलता चला गया। और प्रपत्ति अर्थात् शरणागति उसका अङ्ग होता गया। आचार्य वल्लभ की प्रशस्ति में एक विद्वान् का कथन है—

निम्बार्के बिम्बमार्के गतवति शमिते शेष माधवक्षेपे।
मध्वेऽध्वानं न विष्णौ मुखवति मिलिते शङ्कर शङ्करार्में॥
वेदाब्धन्भाषि मग्नागमर करिवृहासस्वरूपेण रक्षन्।
श्री श्रीमद्वल्लभार्यो जगदखिल मुदस्थानमारोहयिस्म॥

तात्पर्य यह कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के आचार्यत्व पर अभिषिक्त होने के समय तक अनेक सम्प्रदाय एवं मत मतान्तर प्रचलित हो चले थे। आचार्य ने तीन बार पृथ्वी पर्यटन किया और भक्ति सुरसरि का भगीरथत्व करके एक बारगी समूचे देश को श्रीकृष्ण भक्ति में आप्लावित कर दिया।

## महाप्रभु वल्लभ के भक्ति विषयक विचार

आचार्य वल्लभने भक्ति की परिभाषा देते हुए कहा है कि "भगवान् के माहात्म्य ज्ञान पूर्वक जो सुदृढ सर्वाधिक स्नेह है वही भक्ति है।"[1] अर्थात् आचार्य के मत में भगवन्माहात्म्य का ज्ञान और उनमें सुदृढ स्नेह यही दो वस्तुएं भक्ति के लिये मुख्यत अपेक्षित हैं। आचार्यजी की परिभाषा शाण्डिल्य एवं नारदीय भक्ति सूत्रों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक है। भगवान् में परम अनुराग होना चाहिए परन्तु यह परम अनुराग हो कैसे ? जब तक जीवको प्रभुके माहात्म्य का ज्ञान नहीं होगा तबतक दृढ अनुराग होना कठिन है। विचार करने की बात है कि आचार्य 'महात्म्य ज्ञान' की बात कहते हैं स्वरूप ज्ञान की नहीं माहात्म्यज्ञान भक्त को अनेक प्रकार से हो सकता है। फिर इस भक्ति में देश और काल की मर्यादा नहीं। न वैदिक विधि निषेधों की चर्चा है। साथ ही स्त्री शूद्रादि सभी के लिए इस भक्तिका द्वार उन्मुक्त है यह ऊपर कहा जा चुका है 'भक्ति' शब्द में भज् धातु का अर्थ सेवा है। और सेवा का अर्थ देते हुए आचार्यजी ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तमुक्तावली में स्पष्ट कहा है कि "चित्त की प्रवणता ही सेवा" है। अत: मानसी-सेवा ही सर्वोत्तम और फलरूपा है।[2] मानसी-सेवा को सर्वोत्तम कहने का कारण भी यही है कि मन ही तो ससार का मूल है। ससार के नश्वर पदार्थों में भटका हुआ यह मन प्रभु की ओर नहीं जाता। यदि यह भगवान की ओर जाय तो उन्ही को अपना प्रियतम मान कर उनमें आसक्त हो जाय। अत मनका ही निरोध सर्व प्रथम अपेक्षित और आवश्यक है। निरोध' की स्थिति भगवदनुग्रह से ही सम्भव है। इसी भगवदनुग्रह को लक्ष करके आचार्य ने कहा था 'पुष्टिमार्ग में एक मात्र अनुग्रह ही नियामक है।'[3] यह अनुग्रह ही पुष्टि भक्ति का मूल है।

इस पुष्टि भक्ति का निरूपण महाप्रभु वल्लभाचार्य ने लगभग अपने सभी ग्रन्थों में किया है। और भक्ति के इसी आदर्श को सभी अष्टछापी भक्तो ने अपनाया है। परमानन्द दासजीके साहित्य में भक्ति तत्त्वको देखने से पूर्व उनके दीक्षा गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य की भक्ति का स्वरूप समझ लेना समीचीन होगा।

### महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की भक्ति का स्वरूप

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने निखिल जगत् के जीवों को त्रिधा विभक्त किया है

१—पुष्टिमार्गीय जीव

२—मर्यादामार्गीय जीव

३—प्रवाहमार्गीय जीव

आचार्य ने इस त्रिधा विभाजन का आधार श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक है—

"द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।

---

१ माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा॥ त दी नि—प्रा प्र श्लो—४६

२ चेतस्तत्प्रवण सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः ससारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्॥ सि मु श्लोक

३ अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थिति।

अर्थात् इस लोक म दो प्रकार की सृष्टि है एक दैवी सृष्टि और दूसरी आसु
सृष्टि।" इस प्रमाण से वर्णाश्रमादि वैदिक धर्मकी मर्यादा मे आबद्ध जीव समुदाय मर्या
मार्गीय और जगत् प्रवाह मे बहने वाला जीवसमाज प्रवाहमार्गीय है।

परन्तु "जो मेरा भक्त है वह मेरा प्यारा है।"[1] इस भगवद्वाक्य के अनुसार
भगवान के भक्त हैं वे उक्त दोनो प्रकार के जीवो से अलग और श्रेष्ठ हैं। ये ही "पुष्टिमार्गी
जीव हैं। इनका सर्वत्र उत्कर्ष रहता है।[2] ये पुष्टिमार्गीय जीव भगवान् की देहसे उत्प
उनका ही अहैतुक अनुग्रह प्राप्त किए होते हैं। इस अनुग्रह के लिए वेद का ज्ञाता होन
तपस्वी दानी अथवा याज्ञिक होना आवश्यक नहीं।[3] इसके लिए तो केवल भगवदनुग्रह
अपेक्षित है। ऐसा अनुगृहीत जीव लोक और वेद म निष्ठा नहीं रखता।[4] इस प्रका
पुष्टिमार्गीय जीवप्रवाह और मर्यादा दोनो स परे है।[5]

ये पुष्टिमार्गीय जीव देह क्रियादि मे गुणो मे अन्य प्रवाही तथा मर्यादा मार्गी
जीवो जैसे ही होते हैं। अर्थात् तीनो प्रकार के जीवो के देहादि बाह्य स्वरूप एकसे ही होते हैं।

पुष्टिमार्गीय जीव दो प्रकार के होते हैं—

१ शुद्ध पुष्टि जीव।
२ मिश्र पुष्टि जीव।

मिश्र पुष्टि जीव तीन प्रकार के होते हैं—

१ प्रवाही मिश्र पुष्टि।
२ मर्यादा मिश्र पुष्टि।
३ पुष्टि मिश्र पुष्टि।

भेदो का कारण—शुद्ध मिश्रादि भेद मे भगवद् इच्छा ही प्रधान एव बलवान् है।
भेदो का रहस्य विविध रस एव भावों के प्रकट करने मे ही है। अत भगवान् जीवों की विवि
विविधताओं को निजेच्छा स अङ्गीकार करते हैं। सक्षेप मे "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्" का
तत्वसूत्र का यही रसिक अभिव्यक्ति है।

शुद्ध और मिश्र पुष्टि भक्तो का साधन दशा मे ही साधारणधर्मों के साथ सबन्ध हो
है। उन्हें प्रावाहिक नियम अथवा मार्यादिक कर्म उपासना ज्ञान विहित भक्ति आदि
नहीं सुहाता। वस्तुत शुद्ध मिश्र भेद भगवद्रस निष्पत्ति के ही लिए है अत शुद्ध पुष्टि भ
एव मिश्र पुष्टि भक्त दोनों का ही रस निष्पत्ति के हेतु समान महत्व है।

---

१ यो मद्भक्त स मे प्रिय—श्रीमद्भगवद् गीता
२ सर्वोत्कर्षे वर्तनात् पुष्टिरस्तीति निश्चय। अ पु म ४
३ नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टु दृष्टवानसि मां यथा॥ गी अ ११ श्लोक ५३
४ यदा यस्यानुगृह्णाति भगवानात्मभावित।
स जहाति मति लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥ श्रीमद्भागवत
५ "भगवद्भेदात् भिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपित।"—अ पु म—श्लोक
६ लोकवेदाप्रसिद्धेन निमित्तेन गुणेन च।
कारणं न स्फुरेत् ये वा तत्क्रियाह वा॥ अ पु म ११
प ता १८

१ प्रवाह मिश्रित पुष्टि भक्त—यह भक्त क्रियात्मक होता है। ब्रज भूमि आदि स्थलों में तीर्थ पर्यटन आदि अनेक क्रियाएँ कराते हुए भगवद्रस प्रकट कराना ही इस भक्त के प्रति भगवदिच्छा हुआ करती है।

२ मर्यादा मिश्रित पुष्टि भक्त—यह भक्त गुणज्ञ होता है। भगवद्धर्म में उसकी रुचि होती है। यह भगवान् के गुणगान करता हुआ कालयापन करता है। भगवान् की इस मर्यादा पुष्टि भक्त के प्रति यही इच्छा होती है।

'तव कथामृत तप्तजीवनम्।
कविभिरीडित कल्मषापहम्।।" गोपीगीत

इस प्रकार मर्यादा पुष्टि जीव अपने भव-ताप-तप्त जीवन को भगवद् मंगल भगवद् कथामृत से शान्त करता हुआ अपने कल्मषों को धोता रहता है। इस प्रकार वह भागवत धर्म का पालन करता है। ऐसे भक्त की कभी भगवान् कथा और कभी मानस स्नान कथा होती है। इत्यलम् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वगुण श्रवण करके ऐसे परम भावुक भक्तजनों को स्वरूपानन्द से प्लावित कर देते हैं।

श्रृण्वन् स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णं प्लावयते जनान्।"

आदि वचनामृतों का यही आशय है। जितने ही इस प्रकार के मर्यादा पुष्टि जीवों का भगवदिच्छा से ही साक्षात् पुरुषोत्तम में सायुज्यत्व होता है। और पुन रमण के अवसर पर भगवान प्रकट होकर इन्हें परिपूर्णता का दान करते हैं। यह भक्त स्वकीय देह प्राण इन्द्रिय अन्तःकरण और इनके धर्म एवं दार आगार पुत्र आप्त वित्त सर्वात्मभाव से समर्पित करके प्रभु विनियोग के हेतु इन सबको अङ्गीकार करता हुआ निरंतर भगवत्सेवा करता है। और भगवान के चरण कमलों का मकरन्द पान करता हुआ कृतार्थ होता है। प्रियतम प्रभु के गुणगान में रत यह भगवदीय निरुपधि कृपाजन्य सुधा का आस्वाद करता है।

पुष्टि विमिश्रित पुष्टि भक्त—यह भक्त सर्वज्ञ होता है। और भगवान् के रसात्मक स्वरूप के समस्त अभिप्रायों का ज्ञाता होता है। स्वयं पुष्टिमार्ग का तत्व ही अत्यन्त सूक्ष्म है और दुर्गम है। फिर यह भक्त तो पुष्टि मर्यादा का अतिक्रमण करके पुष्टि मिश्रित पुष्टि मार्ग में प्रवेश करता है अत जो इसकी स्थिति पर पहुँचता है वही इसकी स्थिति का अनुभव कर सकता है, परन्तु इस स्थिति में पहुँचना अत्यन्त कठिन है। यह भगवान् के अतिशय अनुग्रह के बिना किसी प्रकार सम्भव नहीं। इस मार्ग का उपदेश भी नहीं किया जा सकता। इस स्थिति के भक्त की दो ही दशाएँ होती हैं या तो परम विरह दशा या संयोग दशा। विरह दशा अत्यन्त दु खद होती है। इस दु खद दशा में सर्वभाव का उपमर्दन होता है। अत ऐसी स्थिति में उपदेश सम्भव नहीं। और संयोग दशा में प्रियतम भगवान निकट रहते हैं अत तो भी उपदेश सम्भव नहीं। और इस कोटि के विरल रसिक भगवदीयजन कविचेत् जैसे-तैसे अपने काल को यापन करने के लिए दो अक्षर बोल भी दें तो परदृष्ट अधिकारी को निस्सीम लाभ हो जाता है।

---

१ किन्हीं कर परम भक्त बरन। और
किन्हीं द्रवति भजामहे॥

पुष्टि मिश्रित पुष्ट भक्त को भगवान् एक प्रकार से संन्यस्त बना देते हैं। त्याग तो इस भक्त का पृष्ठ मग्न होता है। यह तो सदैव भाव-भावना में ही डूबा रहता है। विकलता और बेचैनी इसकी सहचरियाँ होती हैं। 'भाव मुरारेस्तस्य एव बलमामस्य बाधका' इस श्लोक में पुष्टि मिश्रित पुष्ट भक्त की दशा का ही वर्णन है। 'स्वस्थता' तो इस भक्त के भाग्य में है ही नहीं।

शुद्ध पुष्टि—शुद्ध पुष्टि पुष्ट भक्त में प्रेम के अतिरिक्त दूसरा कोई तत्व होता ही नहीं है। "शुद्धा प्रेम्णातिदुर्लभा। के अनुसार ऐसा शुद्ध पुष्टि-पुष्ट रसिक भगवदीय अत्यन्त दुर्लभ होता है। इस स्थिति में भक्त "प्रियतम ममसखात्हासयक्क सलिल" में स्नान करता है। प्रिय के चर्वितताबूल का अधिकारी बनकर "करणामृतस्मितावलोक" का भाजन बन जाता है। परमाराध्य के चरणारविन्द में उसकी निस्सीम प्रगति और प्रकृष्ट दैन्य ही उसकी नित्य सन्ध्या बन जाती है। तापक्लेश युक्त प्रगाढ भाव ही उसका नाम-संकीर्तन है। मस्तगन्धसूर्याग्नि में अपने सम्पूर्ण विषय के सुख का विसर्जन ही इसका होम है। और प्रियवार्ता कथन ही ब्रह्मयज्ञ और मनोरथ सिद्धि द्वारा सर्वेन्द्रिय का आप्यायन ही इसका तर्पण है।

"रस" ही इस भक्त का जीवन रस ही प्राण और रस ही इसकी संपत्ति है। निरुपधि स्नेह एवं निर्भर स्थिति के बिना यह एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। तात्पर्य यह है कि 'मेणावत्व हि सहजम्' इसका स्वरूप है और अन्तर्बाह्य रसाविष्टत्व ही इसका स्वाभाविक धर्म है। गोपी गीत का यह वाक्य "त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्" से ही इसकी स्थिति का आभास मिल सकता है। रसात्मक प्राणेश के प्रत्यक्ष दर्शन के बिना एक-एक पल इसे युग जैसा लगता है। भगवान् भी ऐसे भक्त को काम भोग समर्पण करने के लिए क्रीडा करते हैं। और क्रीडा में विजयेच्छा करते हैं। भक्त के साथ प्रेम व्यवहार करते हैं। भक्त को स्वमाहात्म्यादि का द्योतन कराते हुए उसकी स्तुति करते हैं। भक्त को मोद दान देते हुए उसके भक्ति-मदका उपादन करते हैं। और भक्त को उसके 'मुरलीनाद' के दर्शन हो—इस हेतु वे स्वप्न दान भी देते हैं। भक्त की कान्ति बढ़ाते हैं और भक्त के पास ही जा विराजते हैं। दिवो दानाहा दीपनाताहा द्योतनाहा कस्य नो मवतीति वा न देव। इस प्रकार "देव' शब्द का सम्पूर्ण अर्थ [1] इस रसिक भगवदीय को प्रत्यक्ष हो जाता है।

## परमानन्ददासजी की भक्ति का स्वरूप :—

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से भक्ति के सामान्य निरूपण के उपरान्त हम परमानन्द दास जी के भक्ति विषयक विचारों की चर्चा प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि वार्ता में आया है— परमानन्ददासजी ने महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण ग्रहण करने के उपरान्त श्रीमद्भागवत की दशम स्कन्ध की भगवल्लीलाओं के आधार पर पदों की रचना की। उनके उन समस्त पदों को द्विधा विभाजित किया जा सकता है।

१ देव "दिवु" धातु से बना है। दिवु धातु क्रीडा विजेच्छा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति और गति के अर्थ में आता है। "दिवु-क्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति, स्तुति मोद, मद, स्वप्न कान्ति गतिषु।"—धातु पाठ।

१ भगवल्लीला विषयक पद ।
२ स्वरूप-आत्मानुभूति दैन्य एवं आत्मनिवेदनपरक पद ।

उनके लीला विषयक पदों में यत्र-तत्र भागवतधर्म की चर्चा है । पुनः-पुनः पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम का श्रीगुरु भक्त-कृपावत्सल और अवतार धारण करके नरलीला करने की बात है ।

परन्तु दूसरे प्रकार के आत्मनिवेदन अथवा दीनता के पदों में उनकी भक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । उन्होंने भागवत का पूर्ण अनुसरण किया है । "नामूलं लिख्यते किंचित्" के अनुसार वे शास्त्रीयता में पूर्ण आस्थावान् हैं । अतः सामान्य भक्ति-भावना की दृष्टि से वे नवधा भक्ति को उत्तम बतलाते हैं । भागवत में नवधा भक्ति का क्रम इस प्रकार दिया हुआ है —

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥[1]

अर्थात् भगवान के गुणों का श्रवण, उनका कीर्तन, स्मरण, चरण सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य (प्रणति) सखाभाव और आत्म-निवेदन इस प्रकार से नौ प्रकार की भक्ति है । दसवीं प्रेमलक्षणा भक्ति है जो किसी पात्र में ही प्रकाशित होती है ।[2]

परमानन्ददासजी ने भागवतोक्त नवधा भक्ति तथा दसवीं प्रेम लक्षणा भक्ति की इस प्रकार चर्चा की है ।

ताते नवधा भक्ति चली ।[3]
जिन जिन कीनी तिन तिन की गति भेक न अनत चली ॥
श्रवण परीक्षित तरे राजरिषि कीर्तन तें शुकदेव ।
सुमरन तें प्रहलाद निरभै हरि पद कमला सेव ॥
अर्चन पृथु बंदन सुफलकसुत दास भाव हनुमान ।
सख्य भाव अर्जुन बस कीने श्रीपति श्री भगवान ॥
बलि आत्म निवेदन कीनी राखे हरिकों पास ।
प्रेम भक्ति गोपी बस कीनी बलि परमानन्ददास ॥ प. सा. ६६२ ॥

"राजर्षि परीक्षित श्रवण भक्ति से, शुकदेव जी कीर्तन से, भक्तप्रवर प्रह्लाद स्मरण और लक्ष्मीजी पादसेवन से भगवान की आराधना करती हैं । महाराज पृथु अर्चन भक्ति के लिए, अक्रूर वन्दन भक्ति के लिए, श्री हनुमान जी दास्यभाव के लिए, अर्जुन सख्यभाव के लिए एवं महाराजा बलि आत्मनिवेदन के लिए सर्व विदित हैं । परन्तु ब्रज-गोपिकाओं ने प्रेमलक्षणा भक्ति से ही भगवान को वश में किया है । परमानन्ददासजी उन्हीं (गोपियों) पर बलिहारी जाते हैं ।

---

१ भागवत । ५ । २
२ [illegible] वार्ता—भा [illegible] प. ८०-८१
३ ४१४ की वाली हस्तलिखित प्रति में यह पद इस प्रकार मिलता है ।
ताते नवधा भक्ति चली

उपर्युक्त पद में नवधा भक्ति की चर्चा भक्ति के साधन रूप में है। इसकी भक्ति प्रेम लक्षणा अनुग्रहैक साध्य है। और उसकी आदर्श स्वरूपा व्रज-गोपिकाऐं हैं। इसलिए परमानन्द दासजी बार-बार गोपीजनों पर बलिहारी जाते हैं। ये कृष्ण भक्त व्रज गोपिकाएँ भक्ति क्षेत्र में सर्वोच्च आदर्श रूपा ठहरायी गई हैं। इनका भाव लोक अनन्य और इनकी प्रेम पद्धति नितान्त निराली है। अतः गोपी प्रेम अथवा गोपियों की कृष्ण भक्ति का स्वरूप समझ लेने पर परमानन्ददासजी की भक्ति का आदर्श स्वयमेव ही स्पष्ट हो जाता है।

वस्तुतः व्रज गोपिकाएँ रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्तियों की प्रतीक रूपा हैं। और राधा रसात्मक सिद्धि की आधिदैविक स्वरूपा। गोपी प्रेम अनन्य और लोकोत्तर है उसे आधिभौतिक न समझ कर आधिदैविक ही समझना चाहिए।

ये व्रज गोपिकाएँ तीन प्रकार की थी—

१—अन्य पूर्वा [गोपांगना—पुष्टि]

२—अनन्य पूर्वा [गोपी—मर्यादा]

३—सामान्या [व्रजांगना—प्रवाह]

अन्यपूर्वा वे गोपिकाएँ थी जो विवाहिता थी। और जिन्होंने भगवान् के प्रति आत्मनिवेदन 'जार भाव' से किया था। वल्लभ सिद्धान्त का भक्ति आदर्श और समग्रप्रेम की अनन्यता एवं सर्वसमर्पण अथवा सर्वतोभावेन आत्मनिवेदन का लोक वेद से परे का आदर्श इन्हीं में पूरा-पूरा घटित होता है। यही वे गोपिकाएँ हैं जिनमें दारागार पुत्राप्तवित्तादि का निखिल विनियोग प्रभु के चरणों में तुलसी दल के साथ हो जाता है। और साधक अथवा भक्त का "स्व" समाप्त हो जाता है। वहीं यह वचन खरा उतरता है—"तेरा तुझको सौंपते क्या लागै है मोर।

भक्त गोपी भाव के इस सम्पूर्ण समर्पण में इतना निश्चिन्त आत्मतन्मय विस्मृत एवं आश्वस्त हो जाता है कि उसे किसी प्रकार का सांसारिक क्लेश दुःख पीड़ा अथवा अभाव नहीं सताता और आनन्दार्णव में निमज्जन करता हुआ 'निजनाम पुष्ट' की परम अनुभूति में पहुँच जाता है। आत्मा और परमात्मा के मिलन का आध्यात्मिक रूपक भी इसी "अन्यपूर्वा गोपी भाव" में पूरा उतरता है। यह शुद्धपुष्टि की स्थिति है। इसमें माहात्म्य-ज्ञान का अभाव है। माहात्म्य-ज्ञान शून्य भक्त सांसारिक कार्यों को तो निभाता है परन्तु प्रतिक्षण भगवच्चरणारविन्द में ही उसका मन संलग्न रहता है यही 'जारभाव' है। भक्त प्रवर नरसी कहते हैं—

१ गोपीजनानां पुष्टिः। गोपीषु मर्यादा। व्रजांगनासु प्रवाह। या व्रज कुमारिका"" """तासां मर्यादात्मकत्वम्। गोपांगनास्तु पुष्टपुष्टा पुष्ट गृहे उत्पन्ना कामिन्यः स्त्रिया जाताश्चैवेह व्रज पुष्टाः कामिन्यः पुष्टा ..... तेषामपि पुष्टाः पत्यादिक सकल मर्यादायां पुष्टाः कामिन्यः सर्वान् धर्मान्परित्यज्य केवलं पुरुषोत्तममेव भजन्ति तस्मात्तासां पुष्टित्वम्। अत गोपीनां व्रज कुमारिकाणां गोपीजन वल्लभ मनसेव सर्वं ज्ञानम्।" "तस्मात्तासां मर्यादात्वं निरूपम्। अतएव तासां मर्यादा भक्तिः। व्रजांगनानां मातृभावेनैव वर्तमानाः। तासां ईश्वरे पुत्रभावो वर्तते। तस्मात्तासां प्रवाहत्वम् इति त्रिविधा गोप्य श्रीमत्पर टीका

२ "जार भाव" के इस गम्भीर आत्म निवेदनात्मक गीत रहस्य को न समझने के कारण ही जनसाधारण एवं कृष्ण लीला पर आलोचकों की दृष्टि मलीन हो चुकी थी। परन्तु भागवतकार स्पष्ट कहते हैं—

तमेव परमात्मानं जार बुद्ध्यापि संगता।

जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीण बन्धनाः—भागवत—१ ।२६।१५

तथा—हरिदेवि तु जारबाहिन—मा भ०१०—२१

'खातपीतौं हरतौं फरतौं करतौं सगरे काम।
स्वामि नारायण स्वामि नारायण मुख रटिए हरिनाम ॥

अर्थात् खाते-पीते घूमते-फिरते और सम्पूर्ण सांसारिक काम निभाते स्वामी का ध्यान रखो और मुख से उसका नाम लेते रहो।

इस "पुष्टि पुष्ट" भक्ति भाव में प्रेम की सर्वोच्च स्थिति रहती है लोक वेद और मर्यादा का लेशमात्र लगाव नहीं रहता। यह स्थिति प्रवाही मर्यादा एवं पुष्टि भक्ति से भी ऊँची है। जिस प्रकार कोई अन्यासक्त रमणी अपने पतिगृह में रह कर सम्पूर्ण कर्तव्यों को निभाते हुए भी मन को अपने "यार" में लगाए रहती है। उसी प्रकार का यह भक्त है। प्रेम की यह स्थिति उत्कृष्ट कोटि की है। मन की यह स्थिति स्वरूपासक्ति और लीलासक्ति के परिणाम स्वरूप होती है। इस प्रेमासक्ति के प्रबल प्रवाह में विधि-निषेध अथवा लोक-लाज कुल-मर्यादा वेद मर्यादा सभी अनायास बह जाते हैं, बह जाते हैं और भक्त सिवाय अपने प्रियतम के कुछ और जानता ही नहीं। परमानन्ददासजी की भक्ति का आदर्श यही "अन्य पूर्वा" गोपी प्रेम है। इसकी चर्चा आगे चलकर की जायगी।

२ अनन्य पूर्वा—गोपिकाएँ वे थी जो अविवाहिता थी। और कात्यायनी आदि देवी की उपासना करके श्रीकृष्ण को अपने पति रूप में मांगा था। इनमें कुछ तो आजन्म कुमारिकाएँ ही रहीं और कुछ का विवाह श्रीकृष्ण से हो गया था। यह अनन्यपूर्वा भाव भी गोपी भाव है जिसका उद्देश्य यही है कि जप तप व्रत एवं कृष्णातिरिक्त देवी देवताओं के आराधन का एकमात्र लक्ष्य श्रीकृष्ण प्रेम ही हो। यत्रतत्र परमानन्ददासजी ने इस भक्ति की ओर भी संकेत किया है।

३ सामान्या—वे गोपिकाए थीं। जो भगवान् के बाल रूप पर मुग्ध थीं। और उन पर उनका वात्सल्य भाव था। इनमें माता यशोदा एवं अन्य व्रजांगनाएं आ जाती हैं। परमानन्ददासजी ने इस प्रकार के गोपी भाव के भी चित्र प्रस्तुत किये हैं। यहाँ पर हम अलग अलग उनके उपयुक्त गोपी भाव के चित्र प्रस्तुत करते हुए उनके भक्ति के आदर्श के निरूपण की चेष्टा करेंगे।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है परमानन्ददासजी की भक्ति का मूल आदर्श 'गोपी भाव' है अत उनके भक्ति परक पदों में उक्त प्रकार के सभी गोपी भावों का समावेश मिलता। इसके उपरान्त राधा की चर्चा में तो वे शुद्ध पुष्टि वाले गोपी भाव पर आ जाते हैं। उनकी राधा साक्षात् मूर्तिमती रसात्मा ही प्रतीत होने लगती है।

परमानन्ददासजी में अन्यपूर्वा गोपी भाव—यह कहा जा चुका है कि परमानन्ददासजी के काव्य में दो ही प्रमुख तत्व हैं—

१ स्वरूपासक्ति
२ लीलासक्ति

भुवन मोहन नयनाभिराम घनश्याम के अगत कोटि कंदर्प दर्प-दलन सौन्दर्य को देख कर व्याकुल मुग्ध हो गई है। यह मुग्धावस्था मानसिक की सीमा को स्पर्श कर गयी है।

अब गोपी ने कृष्णके दर्शन किए हैं। और उन्हीं के साथ लग गई है उसे उठते बैठते सोते-जागते कृष्ण के सिवाय कुछ नहीं भाता। लोक-लाज की उसे तनिक भी पर्वाह नहीं है—

गोविन्द ग्वालिन ठोरी (ठगोरी) लाई।
बंसीवट जमुना के तट मुरली मधुर बजाई।
रह्यौ न परै बिनु देखे मोहन कलप कलप सचुपाई।
निसदिन मोहन लागी डोलै लाज सबै बिसराई।
उठत बैठत सोवत जागत जपत कन्हाई कन्हाई।
परमानन्द स्वामी मिलबे कौं और न कछू सुहाई ॥२५२॥

गोपी को कृष्ण के स्वरूप को बिना देखे कल नहीं पड़ती और न उसे कुछ अच्छा ही लगता है। सौन्दर्यासक्ति का इससे अधिक और क्या स्वरूप हो सकता है। इस आसक्ति का परिणाम है—उन्माद। आचार्यों ने इस "दिव्योन्माद"¹ की संज्ञा दी है। यह प्रेम की वह चोट है जिसकी गहराई और मर्मभेदिनी तीव्रता को प्रेमी ही जानता है। और "जड़" नहीं जानता।

तैं मेरी लाज गवाई हो खिलौने ढोटा।
देह बिदेही ह्वै गई मिटी घूँघट ओटा॥
नैन छबीले रूप पै भई लोटपोटा॥
श्रीगोपाल तुम चतुर हो हम मति के छोटा॥
परमानन्द सोई जानति है जाहि प्रेम की चोटा ॥२५७॥

यह प्रेम जब मर्म पर जाकर इतना गहरा घाव करता है कि जिस की पीड़ा वाणी का विषय नहीं। वाणी में वर्णन करने की शक्ति किसमें है। अब देहानुसन्धान ही नहीं। अब वह एक क्षण भी माधव के बिना नहीं रह सकती है—

राधा माधो बिनु क्यों रहै।
एक स्यामसुन्दर के कारन और बदनि की निन्दा सहै॥

" "

पियरे पाछे लागी डोलैं बपु करम की बैर करयो।
मन क्रम बचन और मति नाहीं बेद लोक लज्जा तज्यो।
परमानन्द तबहुँ गुरु जान्यो जब तैं पर मनोज भयो ॥२७२॥

वेद मर्यादा लोक—मर्यादा की गोपी को चिन्ता नहीं जब से कृष्ण के मोर मुकुट के चन्द्र पर उसका मन उलझ गया है। अब उसने लोक लाज को कुएँ में पटक दिया है। घर घर पर दुलारी बातें हैं फिर भी उसे तनिक भी अपने मान सम्मान की चिन्ता नहीं।

---

१ [illegible]
[illegible]

जब मैं देख्यो मोर मुकुट को ।

" "

घर-घर डोलत बात चमकारा नाहिन कछु के घट की ।
परमानन्द स्वामी ना छूटै लाज कुमा न पटकी ॥

वास्तव में ठीक भी है। उस भुवन मोहन की मोहिनी के आगे संसार की कौन सी वस्तु टिक सकती है।

मोहन मोहिनी पठि मेली ।
देखत ही तन दसा भुलानी को घर जाइ सहेली ॥
काके मात तात अरु भ्राता काको पति है नवेली ॥
काकी लोक लाज डर कुल व्रत को भ्रमति बन अकेली ॥
ताते कहति सुन सत होसी एक सब मिलि बेला ॥
परमानन्द स्वामी मन मोहन कति मर्यादा पेली ॥१७४॥

इस सर्वतोभावेन चरम निवेदनासक्ति में वेद मर्यादा का कोई स्थान नहीं। माता पिता भाई बन्धु कुटुम्ब पति लोक लाज कुल व्रत आदि का कोई बन्धन नहीं। अबतो केवल परमाराध्य प्रियतम ही है उसे पाकर अब चित कहीं नहीं जाना चाहता है।

माई गोपी जीवन परन ।
कोई करौ कैसे सग न छूटै राखौ स्याम सरन ॥

"

चित नहि चलत चरण गति थाकी मन न जात गृह पास ।
परमानन्द स्वामी उदार तुम छोड़ो बचन उदास ॥१८१॥

रासलीला महोत्सव में प्रवेशपाने वाली १६ प्रकार की गोपियों में यही सम्पूर्ण नायिकाएँ प्रेमलक्षणाभक्ति वाली हैं। इन्हीं को निरोध प्राप्ति होती है।

ये हरि रस ओपी गोप तियनतें न्यारी ॥
कमल नयन गोविन्द चन्द की प्राणन प्यारी ॥
निरमत्सर जे सन्त ताहि चूड़ामनि गोपी ॥
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी ॥
जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावें ॥
क्यों नहि परमानन्द प्रेम भगति सुख पावें ॥ २ १

सम्पूर्ण गोपिकाओं के लोक वेद मर्यादातीत प्रेम के उदाहरण परमानन्ददासजी के अनेक पदों से भरे पड़े हैं। इस गोपी प्रेम को ही आचार्य ने 'पुष्टि पुष्ट भाव' कहा है। इस दिव्य प्रेम की चर्चा ज्ञानी भक्त शुक और व्यास तक करते आए हैं—

हरिसों एक रस रीति रही री ॥
तन मन प्रान समर्पन कीनो अपने नेम व्रत लै निबहीरी ॥
प्रथम भयो अनुराग दृष्टि सौं मानहु रंक निधि लूट लहीरी ॥
कहति सुनति चित्त चोरहि कीनो यह लगन पिय पै उमहीरी ॥
मरजादा औसर जननि की लोक वेद उपहास सही री ॥
परमानन्ददास गोपिन की प्रेम कथा शुक व्यास कही री ॥ २०६॥

"परमानन्द प्रभु प्रेम बानि के ठमकि कछुरी गोसी ॥"

चर्वित ताम्बूल की कामना का उदाहरण —

मदन गोपाल बलैये लैहो ।
परमानन्द प्रभु चाव बदन को चर्वित उगार मुन्ति ह्वै दीहों ।
महारासोत्सव मे सम्मिलित गोपियाँ कान्ताभाव मे लीन है —
गोपाल लाल सो नीके खेलि ।

"                    " ॥

बाहु कम्प परिरम्भन चुम्बन महामहोत्सव रास विलास ।
सुर विमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि परमानन्द दास ॥

"लोक वेद की कानि" से परे का इस परा भक्ति का स्वरूप रास महोत्सव में ही मिलता है। इसे सम्प्रदाय मे प्रेमलक्षणाभक्ति अथवा साध्य भक्ति किंवा फल भक्ति पुकारा गया है। वेणुगीत के द्वारा महारास महोत्सव के माध्यम से भगवान ने चरम रसात्मक भक्ति का दान गोपांगनाओ को ही दिया था।

भागवतकार कहते है कि जो नर पुरुष व्रज युवतियो के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के चिन्मय रास विलास का श्रद्धा के साथ बार-बार श्रवण और कथन करता है। उसे भगवान् के चरणो मे पराभक्ति की प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदय-रोग (काम विकार) से छुटकारा पा जाता है।[1]

अनन्यपूर्वागोपी भाव —अनन्यपूर्वा गोपिकाओ की भक्ति की चर्चा के उपरान्त अनन्य पूर्वा गोपिकाओ की भक्ति का स्वरूप भी परमानन्ददासजी के काव्य मे उपलब्ध होता है। यह कहा ही जा चुका है कि इनमे विवाहिता और अविवाहिता दोनो ही सम्मिलित है। साथ ही वे वेद मर्यादा मे आबद्ध है। परन्तु कृष्ण की कान्त भाव से कामना करती हुई अन्य देवी-देवताओ मे भी कृष्ण भक्ति की ही याचना करती है —

"हरि की भक्ती मनाइए।
मान छाडि उठि चल गहली कहा धौ चलि आइए ॥

धाम नेम व्रत साई कीजै जिहि गोपाल पति पाइए।
परमानन्दस्वामी सौ मिलि कै मानस दुख बिसराइए ॥ १२४ ॥

राधिका ने अच्छी आराधना की है। उसकी आराधना फलवती हो गई है क्योकि पति रूप मे नन्दगोप-सुत को पाने के लिए उसने गौरी से वर-याचना की थी।

---

१ विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ॥
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ भागवत । ११ ।४

परायण राधिका को नीको ।
जाके संग मिले हरि मैनन जो ठाकुर सबही को ।
पूरब नेम कियो सो साचो नन्दनन्दन पति करिहौं ।।

" "

गौर स्याम तन यह गोरी पर बलि परमानन्दगासा ।। २९२ ।।

बड़े पुण्यों से भगवान् के प्रति यह भक्ति भाव मिलता है—

"ऐसी भक्ति मन्द सन्तन की पुन्यन पुंज लह्यो ।

रजनी अधिक भई परमानन्द लोचन नीर बह्यो ।

राधा के भाग्य पर अन्य गोपियाँ सिहाती हैं और कृष्ण की विशिष्ट प्रिया होने का उससे रहस्य भी पूछती हैं —

राधे कौन गौर तें पूजी ।"

" "

परमानन्ददास को ठाकुर तो सम और न दूजो ।।

व्रज गोपिकाएँ कार्तिक स्नान भी इसी आशा से करती हैं कि नन्दगोपसुत (कृष्ण) पति रूप में उन्हें मिलें ।

हरि गुन गावत चली व्रज सुंदरी जमुना नदिया के तीर ।।

" " "

जल प्रवेस करि मज्जन लागी प्रथम हेम के मास ।
हमरे प्रीतम होयँ नन्दसुत तप ठान्यो इहि भास ।।

" " "

परमानन्द प्रभु बर देबे को उद्यम कियो मुरारि ।।

सामान्या गोपी भाव —

तीसरे प्रकार की गोपिकाएँ सामान्या (प्रवाही) हैं । क्योंकि वे कृष्ण को पुत्र भाव से भजती हैं । माता यशोदादि इसी कोटि में आती हैं । पुत्र भाव से गोद में लेकर माता श्रीकृष्ण का मुख देखती हैं परन्तु साथ ही साथ उनके ऐश्वर्य से भी पूर्ण परिचित हैं ।[१]

बदन निहारत है नन्दरानी ।
कोटि काम सतकोटि चन्द्रमा कोटिक रवि कान्ति जिय जानी ।।
सिव विरंचि जाकी पार न पावत सत नन्द मावन रसना की ।।
गोद खिलावत महरि जसोदा परमानन्द जिन बलिहारी ।।

व्रज में रास इत उपरान्त जब व्याप्ति हो जाता है तब गोपिकाएँ उनके माहात्म्य का वर्णन करती हैं —

---

१ तत्रादि म ... नन्द दास दि वृन्दरानी
 ... सा ... ह०–२१

मोहन ब्रज को री रतन।  
एक चरित्र भाव मैं देख्यो पूतना पतन ॥  
तृणावर्त सौं गयो आकाशे ताही को मगन।  
जे जे दुष्ट उपद्रव ठाने तिनहीं को हतन।  
सुनि री यशोदा मा मोहन को रीझन।  
परमानन्ददास को जीवन स्याम है सुत न ॥

वस्तुतः परब्रह्म मे पुत्र भाव रखते हुए भी वे प्रबाही गोपियां उनके महात्म्य को एक क्षण भी भूलती नहीं है।

लीला गान मे वात्सल्य पद् कर वे प्रवाही गोपियां आनन्द से दिवस व्यतीत करती है।

हरि लीला गावत गोपी जन  
आनन्द मे निशिदिन जाईं।  
बाल चरित्र विचित्र मनोहर,  
नमत नैन ब्रजजन सुखदाईं ॥  
मोहन मज्जन अंजन लेपन  
मंडन गृह सुत पति सेवा ॥  
चारि याम प्रवकाश नहीं पल  
सुमिरत कृष्ण देव देवा ॥  
भवन भवन प्रति दीप विराजत  
कर कंकन नूपुर बाजे ॥  
परमानन्द बोध कौतूहल  
निरखि थकित सुरपति लाजे ॥

एक गोपी आकर भगवान को गोद मे ले लेती है और हृदय से चिपका कर प्यार करती है। माता यशोदा उसे मना करती है। ग्वालिन अनमनी होकर चली जाती है। वात्सल्य-निधि कृष्ण उसके अन्तर का प्रेम पहिचानते है। अतः माता यशोदा उसे फिर बुला लाती है —

रहि री ग्वालिन जोबन मद माती।  
मेरे छगन मगन से लालहि कित लै उछंग लगावति छाती ॥  
खीजत ते अबही रावे है न्हानी न्हानी दूध की दाँती ॥  
खेलन दे घर अपने गोकुल काहे को एती इतराती ॥  
उठि चली ग्वालि लाल लगे रोवन तब जसुमति आई चढ़ चांति ॥  
परमानन्द प्रीति अन्तर गति फिरि आई नैननि मुसुकाती ॥

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या—  
तुलना कीजिए—  
पादोऽभेदस्य [illegible]  
[illegible]परितोषाय ।  
[illegible] [illegible] [illegible]  
[illegible]

इस प्रकार गोपी प्रेम के समस्त चित्र परमानन्ददासजी ने प्रस्तुत कर भक्ति का आदर्श गोपी-प्रेम को ही ठहराया है। वे गोपी प्रेम को इतना उत्कृष्ट मानते हैं कि उन्हें प्रेम की ध्वजा बतलाते हैं.—

गोपी प्रेम की धुजा।
जिन जगदीस किए बस अपने उर धरि स्याम भुजा।
सिव बिरंचि प्रससा कीनी ऊधौ सन्त सराही॥
धन्य भाग गोकुल की बनिता अति पुनीत भुव माँही।
कहा बिप्र घर जन्महि पाए हरि सेवा बिधि नाँही॥
तेहि पुनीत दासपरमानन्द जे हरि सम्मुख जाँही॥

इन गोपियों के प्रेम की प्रशंसा शिव ब्रह्मा और उद्धव भी करते हैं अत इनका ही प्रेम धन्य है। गोपी प्रेम के सामने कुलीनता अथवा विप्रता में जन्म का अभिमान आदि सब व्यर्थ है।

गोपी-प्रेम के दिव्य आदर्श की प्रशंसा करते हुए वे अपनी भक्ति का आदर्श भी गोपी भाव बतलाते हैं और उन पर बलिहारी जाते हैं —

प्रेम भक्ति गोपी बस कीनी बलि परमानन्ददास।

वे सखी-भाव की अतिशय प्रशसा करते हैं और उसे बड़े पुण्यो का परिणाम बतलाते हैं—

सबे जो श्री वृन्दावन रंग।
देह अभिमान सबै मिटि जैहै अरु बिषयन को सग।
सखी भाव सहज है होय सजनी पुरुष भाव होय भग॥
श्री राधावर सेवत सुमिरत उपजत लहर तरग॥
मन को मैल सबै छुटि जैहै मनसा होय अपग॥
परमानन्दस्वामी गुन गावत मिट गए कोटि अनग॥

सखी भाव या कान्ता भाव आत्म समर्पण में बड़ा ही सहायक होता है। सेवा और समर्पण भक्ति के अनिवार्य अङ्ग हैं। यह एक तथ्य है कि नारी भक्तात्मा को प्रभु के प्रति अपना प्रियतम मानकर सर्व समर्पण करने में जो स्वाभाविकी सुविधा होती है वह पुरुषो को नहीं होती। पुरुषो को अपने पुरुषत्व का अभिमान आत्मसमर्पण के लिए अत्यन्त बाधक होता है। अत दास्य अथवा सख्यभाव की अपेक्षा कान्तासक्ति को ही नारी भक्तात्मा ने प्राय अधिक अपनाया है। इसलिए बार-बार भक्ति के आदर्श के लिए वे गोपी-प्रेम को ही सर्वोच्च ठहराते हैं। वे कहते हैं यदि गोपी-प्रेम का आदर्श न होता तो इस कलिकाल में औघड़ पथ फैल जाता और श्रद्धा धर्म आदि का लोप हो जाता।

माधौ या घर बहुत धरी।
कहन सुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन की प्रेम न होतौ अरु भागवत पुरान॥
तो सब औघड़ पथहि होतौ कथत पर्मेवा ग्यान॥
बारह बरस को भयौ बिसम्भर ग्यानहीन संन्यासी॥
खान-पान घर-घर बबहिन के भस्म लगाय उदासी॥

पाखंड दंभ बढ्यो कलियुग में श्रद्धा धर्म भयौ लोप ॥
परमानन्ददास वेद पढि बिगरे कापै कीजै कोप ॥

वस्तुतः भक्ति-साधना के क्षेत्र में परमानन्ददासजी आत्म-साधना के एकान्त क्षेत्र में गोपी भाव को ही सर्वोत्तम भक्ति भाव ठहराते हैं। इसी की प्राप्ति के लिए उन्होंने भागवतोक्त नवधा भक्ति का भी प्रतिपादन किया है क्योंकि नवधा भक्ति का अन्तिम सोपान ही प्रेमलक्षणाभक्ति का श्री गणेश है। इस नवधा भक्ति को वैधी भक्ति भी कहा जाता है। इसमें 'राग' का तो अभाव होता है और शास्त्र का अनुशासन ही साधक को भक्ति में प्रवृत्त करता है।[1]

परमानन्ददासजी की वैधी भक्ति—परमानन्ददासजी ने जैसा कि पहले कहा जा चुका है शास्त्रीय वैधी भक्ति के तत्वों को खोजना व्यर्थ है। क्योंकि प्रेम लक्षणा भक्ति का निरूपण करना ही उनका लक्ष्य था। अतः वहाँ उन्होंने गोपी भाव को भक्ति के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ ठहराया है और उसे एकान्त साधना का चरम लक्ष्य माना है। वहाँ शास्त्रीय नवधा भक्ति (वैधी) की भी आनुषंगिक चर्चा की है और उसकी पूर्व भूमिकाओं का भी यत्र-तत्र समावेश किया है। अपने प्रसिद्ध पद "गावे नवधा भक्ति भली" में उन्होंने नौ प्रकार की भक्ति के विभिन्न भावों अथवा उदाहरणों को भी दिया है। परन्तु अपने भक्तिपरक पदों में उन्होंने अवधारणिक की स्वतन्त्र चर्चा करते हुए रागानुगा भक्ति का ही प्रतिपादन करना अपना लक्ष्य समझा था क्योंकि उसके बिना भक्ति की सर्वोच्च सिद्धि असम्भव होती है।

नवधा भक्ति में श्रवण कीर्तन स्मरण पाद सेवन अर्चन वन्दन दास्य सख्य और आत्म निवेदनादि आते हैं उपर्युक्त नवधा भक्तियाँ परमानन्ददासजी में इस प्रकार हैं —

वे एकमात्र भागवत को ही श्रवणीय मानते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में वही भक्ति का एक मात्र ग्रन्थ है—

श्रवण —जब लग जमुना गाय गोवर्धन
जब लग गोकुल गाम गुसाईं।
जब लग श्री भागवत कथा
तब लग कलियुग नाहीं ॥

परमानन्द ताको हरि अभिमत
श्रीवल्लभ चरन रेनु जिन पाई ॥१ प० स० १२१

एक स्थान पर वे प्रभु से याचना करते हैं कि यदि उन्हें काम मिले हैं तो निरन्तर अखण्ड भक्ति मिलती रहे।

बहु मागौं संकरषण बीर।
चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि जमुन को तीर।
जब देही तौ हरि भगतन को वास देहौ श्री जमुना तीर ॥
श्रवणा देहु तौ हरि कथा रस श्याम देहु तौ स्याम सरीर ॥
मन भावना करौ परिपूरन पावन सम्बव सुरसरि नीर ॥
परमानन्ददास को ठाकुर त्रिभुवन नायक गोकुल पति बीर ॥ प० स० १६६

---

१ सा रागात्मिकाभावात् वैधुक्तिप्र शास्त्री
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधीभक्तिरुच्यते हरिभक्तिरसामृत १ लहरी—१

एक और स्थान पर गोपीजनवल्लभ से प्रार्थना है —

"यह मांगों गोपीजनवल्लभ।
मानुष जन्म और हरि सेवा ब्रज बसिबो दीजे मोहि सुल्लभ।

"

श्री भागवत श्रवण सुनि नित इन तजि चित कहूँ अनत न जाऊं ॥
परमानन्ददास यह मांगत नित्य निरखो कबहूँ न अघाऊं ॥ प स १९७

एक और स्थल पर वे कहते हैं —

सेवा मदन गुपाल की मुक्तिहू तें मीठी ॥

" " "

चरन कमल रज मन बसी सब धर्म बहाए ॥
श्रवण कथन चिंतन बढ्यो पावन जस गाए ॥

कीर्तन —कवि को प्रभु यश गान में चरम सुख की प्राप्ति होती थी। उन्हें प्रभु के कीर्तन से आपूर्ण निर्भरता प्राप्त थी। वह कहते हैं —

"हरि जस गावत होई सो होई।
विधि निषेध के बोझ परें हौं जिन अनुभव देखौ कोई ॥

" "

राम कृष्ण अवतार मनोहर भक्त अनुग्रह काज ॥
परमानन्ददास यह मारग बीतत राम के राज ॥

जो कृष्ण कीर्तन नहीं करता परमानन्ददासजी के मत से वह प्राणी व्यर्थ जीता है —

कृष्ण कथा बिन कृष्ण नाम बिन कृष्ण भक्ति बिन दिवस जात।
यह प्रानी काहे को जीवत नहीं मुख बरत कृष्ण की बात ॥

वे एक मात्र अनन्यतापूर्वक अपने आराध्य का ही कीर्तन करना चाहते हैं —

'बहुतें देवी बहुतें देवा कौन कौन को भलो मनाऊं ॥
हौं स्यामसुन्दर को कमल-चरन पावन जसु गाऊं ॥

" " "

हौं बलिहारी दास परमानन्द करना सागर चाहे न जाऊं ॥ प स १८७

कवि के कीर्तन का उद्देश्य यही है कि वह भगवान् के चरण कमल में अहर्निश प्रेम करता हुआ उनकी सेवा का निर्वाह करता रहे।

तातें गोविन्द नाम लै गुन गायो चाहौं।
चरन कमल हित प्रीति करि सेवा निरबाहं ॥

"

जिन सेवा सनकादिक पद अम्बुज आसा।
जो मूरति मेरे हिय बसौ परमानन्ददासा ॥ ७२२॥

स्मरण —कवि का भगवन्नाम में दृढ़ विश्वास था। वह कहता है कि प्रभु का स्मरण जिसने भी किया उसने उच्च से उच्च स्थान पाया —

माधौ तुम्हारी कृपा तें का को न बढ्यौ ।
मन क्रम बचन नाम जिन लीनो ऊँचो पदवी छोई चढ्यौ ॥
तुम ताहि ग्रसत लियौ जग जीवन सो पुराण पुरान पढ्यौ ॥
गनिका व्याध अजामिल गजेन्द्र तिनन कहा हो वेद पढ्यौ ॥
ध्रुव प्रह्लाद भक्त हैं जेते तिनको निशान बज्यौ जिनहीं मढ्यौ ॥
परमानन्दप्रभु भक्त वत्सल हरि बहु आनि जिय नाम रढ्यौ ॥ प. सं. ६६८

भगवन्नाम-स्मरण कामधेनु के समान है —

"कामधेनु हरि नाम लियौ ।
मन क्रम बचन की कौन कहै महा पतित द्विज धर्मी कियौ ॥
कौन नृपति की हुती कुल बधू गणिका को कहा पवित्र हियो ॥
जन्म-कोप तें लियौ महा नृप कौन वेद मत साहु कियौ ॥
दूसर सुता जिन हरि सुमिरै नृपति नमन बपु करि न छियौ ॥
असुर बाल त्रैलोक्य सुमन्त्रि सुत को काहू न पोच कियौ ॥
भव बल व्याधि प्रताप्य रोग की जप तप व्रत औषध न कियौ ॥
गुरु-प्रसाद ताकी सम्पति जन परमानन्द रङ्क कियौ ॥ प. सं. ७१८

एक स्थान पर वे कहते हैं —

हरिजूको नाम सदा सुखदाता ।
करो जु प्रीति निश्चल मेरे मन परमानन्द सुख विधाता ॥
जाके सरन गए भय नाहीं सकल बात को ज्ञाता ॥
परमानन्ददास को ठाकुर, समर्पण को प्राता ॥ प. सं. ६६४

पाद सेवन —पुष्टि सम्प्रदाय में पाद-सेवा का बड़ा भारी महत्त्व है । प्रभु के स्पर्श मात्र से भक्त में तन्मयता आती है और वह आराध्य को सर्वस्व देने के लिए कटिबद्ध हो जाता है । कवि की भगवान् से सीधी सादी मांग है —

यह मांगों जसोदा नन्दनन्दन ।
बदन कमल मेरो मन मधुकर नित प्रति छिन छिन पाऊँ दरसन ॥
चरन कमल की सेवा दीजै होउ जन रावत विपुलता मन ॥
नन्दनन्दन वृषभानु नन्दिनी मेरे सर्वसु प्रान जीवन धन ॥
ब्रज बसि सदा जमुना जल पीऊँ श्री वल्लभ कुल को दास सदा मन ॥
महाप्रसाद खाऊँ हरि गुन गाऊँ परमानन्ददास दासी जन ॥ प. सं. ७११

परमानन्ददासजी ने अपने को जन्मजन्मान्तर जीवों की श्रेणी में माना है अतः वे भगवच्चरणारविंद की सेवा ही मांगते हैं कुछ और नहीं —

माधौ हम दरबारी लोग ।
प्रात समै चांड जाऊँ चरन नित पाऊँ सब उपभोग ॥
दुर्लभ भुक्ति तुम्हारे घर की सन्मानिन को दीजै ॥
अपने चरन कमल की सेवा इतनी कृपा मोहि कीजै ॥

जहँ राखौ तहँ रहूँ चरन तर परयौ रहूँ दरबार ॥
जाकी झूठन खाऊ निसदिन ताकी करौ निबार ॥
जहँ पठवौ तहँ जाऊ बिदा लै हूतकारी मलीन ॥
परमानन्ददास को जीवनि तुम पानी हम मीन ॥ प सं १ २

अर्चन—अर्चा अथवा पूजा भक्ति की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। भक्त को उसमे असीम सतोष मिलता है। भक्तवर परमानन्ददासजी को भगवान् की सेवा मे मुक्ति से भी अधिक मधुरता प्रतीत होती थी—

सेवा मदन गोपाल की मुक्तिहू ते मीठी।
जानै रसिक उपासिका सुक मुख जिन दीठी॥

"

परमानन्द बिचारि कै परमारथ साध्यौ॥
रामकृष्ण पद प्रेम बढ्यौ लीला रस बाध्यौ॥
ताते गोविंद नाम लै तुम गायौ चाहौं॥
चरन कमल हित प्रीति करि निरबाहौं॥

अहर्निश सेवा करने की अभिलाषा ही परमानन्ददासजी की अर्चन भक्ति है।

वन्दन—वन्दन अर्थात् चरणो मे प्रणिपात अथवा साष्टाग प्रणाम दैन्य का प्रथम लक्षण है।

बलिहारी पद कमल की जिन म नवसत लच्छन।
पूजा बज्र अकुस ध्वज रेखा ध्यान करत विचच्छन॥
ते चितवत भव ताप हरत सीतल सुखदायक॥
नखमनि की चद्रिका जोति उज्ज्वल मनदायक॥ प स १८७

भगवच्चरणारविंद मे तन्मय होकर कवि एक स्थल पर कहता है—

तिहार चरन कमल को मधुकर मोहि कबधू करोगे।
कृपारस भगवत गुसाई यह बिनती चित्त धू करोगे॥ प स १२८

गुरु गोविंद मे अभेद बुद्धि वाले परमानन्ददासजी ने एक और अन्य स्थान पर इस प्रकार वरण वदना की है—

श्री वल्लभ रतन जतन करि पायौ। (मरी मैं)
बह्यौ जात मोहि राखि लियौ है दिय मग हाथ गहायौ॥
दुष्ट सब दूरि किए है चरनन सीस नवायौ॥
परमानन्ददास ने ठाकुर मदमन प्रगट दिखायौ॥ प स १२०

दास्य—कृष्ण भक्ति के लिए दास्य-भाव अत्यन्त स्वाभाविक और सुविधा जनक होता है। दास्य भावनापन्न भक्त अपने परिकर्मो की तार्री मे असीम उल्लास का अनुभव

करता है। कवि ने दास्य भाव से भगवान के चरणकमलों का बड़ी भक्ति भाव से स्मरण किया है—

अपने चरण कमल को मधुकर इमहू काहे न करहु जू ॥
कृपावन्त भगवन्त गुसाईं हरि विमती चित धरहु जू ॥ प स० ११२

प्रसन्न वे कहते हैं—

माधौ हम बरपाने सोम।

"

जहाँ राखौ तहँ रहूँ चरन तर पर्‌यो रहूँ दरबार ॥
बाकी झूठन प्राऊ निसदिन ताकी करौ किवार ॥
जहू पठवौ तहू जाउँ बिदा लै हुलकारी प्रवीन ॥
परमानन्ददास को जीवनि तुम पानी हम मीन ॥ प स १ २

और प्रत मे एक पद मे तो भक्तराज परमानन्ददास जी ने अपने को भगवान् का दासानुदास बताया है। अपनी चरम दैन्य भावना और भक्ति भावना मे वे विनय करते हैं—

माधो यह प्रसाद हौं पाऊं।[1]
तव भृत भृत्य परचारक दास को दास कहाऊँ ॥

श्रीमद्भागवत मे पुष्टि-सूत्र को वृत्रासुर चतुःश्लोकी मे मिलता है उसका पूर्ण निर्वाह परमानन्ददासजी मे इस स्थल पर मिल जाता है। वृत्रासुर कहता है—

अहं हरे तवपादैक मूल दासानुदासो भवितास्मिभूयः।
मन स्मरेतासुपतेर्गुणास्ते गृणीत वाक्कर्म करोतुकायः ॥

सख्य—सख्य भाव मे दास्य की अपेक्षा कुछ अधिक संकोच राहित्य रहता है। उसमे विनय और शील का वह गंभीर रूप नही मिलता जो दास्य मे होता है। परन्तु प्रेम की गहराई अवश्य बढ़ जाती है और सतत साहचर्य की निरंतर अभिलाषा बनी रहती है। यहीं से रागानुगा भक्ति का प्रथम सोपान समझना चाहिए। कान्ताभाव में भी गंभीर सख्यत्व का समावेश रहता है।

सखे जो जी वृन्दावन रव।
सखीभाव सहज होय सजनी पुरुष भाव होय मए ॥
श्री राधावर सेवत सुमिरत उपजत लहर तरग ॥
मन के मैल सबै छूटि जैहैं मनसा होय अपग ॥
परमानन्दस्वामी गुन गावत मिटि गए कोटि अनग ॥ प स ७२८

परमानन्ददास भगवान को छोड़कर किसी और को अपना स्नेही अथवा प्रेमास्पद बनाना ही नहीं चाहते। क्योंकि परम उदार प्रियतम भगवान के अतिरिक्त वैसा स्नेह कोई निभा भी नहीं सकता।

इस दिव्य आत्म-निक्षेप की स्थिति में माता पिता घर समाज कुटुम्ब का न तो कोई भय है न ही उसकी चिंता। यहाँ तक कि लोक परलोक की भी परवाह नहीं।

> मरी गुपाल सौं मेरो मन मान्यौं कहा करैगो कोउ री ॥[1]
> अबतौं चरन कमल लपटानी जो भावै सो होउ री ॥
> माई रिसाउ बाप घर मारै, हँसे बटाउ लोग री ॥
> अब तौ जिय ऐसी बनि आई बिधना रच्यौ संजोग री ॥
> बरु ये लोक जाइ किन मेरो अरु परलोक नसाइ री ॥
> नद नंदन हौं तऊ न छाँडौं मिलौं निसान बजाइ री ॥
> बहुरै यह तन धरि का पैहौं बल्लभ भेष मुरारि री ॥
> परमानंद स्वामी के ऊपर सरवसु देहौं वारि री ॥ प सं १ २

आत्म-निक्षेप का इससे उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता है। प्रिय के सौंदर्य से अभिभूत गोपिका को प्रिय का प्रत्येक अंग उसका शृंगार प्रभव मुरली-वादन यहाँ तक कि उसका प्रत्येक स्पंदन आत्म-विस्मृति के लिए पर्याप्त है।

> भावै मोहि मोहन बेनु बजावन।
> मदन गोपाल देखि हौं ही रीझी मोहन की मटकावन।
> कुण्डल लोल कपोल मधुरतम लोचन चारु चलावन ॥
> कुन्तल कुटिल मनोहर आनन मीठे बैनु सुनावन।
> स्याम सुभग तन चन्दन मंडित उर कर अंग नचावन ॥
> परमानन्द ठगी सब अंगन बसन कुन्द मुसकावन।

सौंदर्य की इस दिव्यानुभूति ने ही माधुर्य भावना को जन्म दिया है। और इस माधुर्य ने समस्त लोक लाज को भाड़ भार दी है। परमानन्ददासजी इसी रागानुगा एकान्त भक्ति के प्रबल पोषक हैं। उनके काव्य में पद पद पर सौन्दर्य और माधुर्य के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। परन्तु जहाँ एक ओर वे विधि-निषेध से परे एकान्त भक्ति की दिव्य भूमि में पाठक को घसीट लेजाते हैं वहाँ दूसरी ओर सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों का समन्वय भी करते चलते हैं। उपर्युक्त राग अथवा स्नेह की इस स्थिति में सांसारिक राग अथवा गृहासक्ति का सर्वथा नाश हो जाता है। जिसका निदर्शन परमानन्ददासजी ने पदे-पदे किया है।[1] कृष्ण रति जन्म जीवन की इस कृतार्थता की ओर कवि ने बार-बार संकेत किया है।

> सुन्दरता गोपालहिं सोहै।

> वेद पुराण निरूपत बहुविधि ब्रह्म नराकृति नर निवास।
> बलि बलि जाऊं मनोहर मूरति हृदय बसो परमानन्ददास ॥ प सं ४४६

---

१ 'स्नेहाद्रागविनाशः स्यादासक्त्या स्याद्गृहारुचिः। प्र ४

गृहस्थानां बाधकत्वमनात्मत्वं च भासते ॥
यदा स्यात् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात्तदैव हि ॥ भक्ति-२

इस चरम दैन्य में वे भक्तों को सहिष्णु बनने की सलाह देते हैं —

बज बसि बोल सबन के सहिए।
जो कोउ भली बुरी कहूँ लाखें नन्दनन्दन रस महिए॥

परमानन्द प्रभु के गुन गावत आनन्द प्रेम बढ़ैये॥ प सं १०१

एक स्थान पर वे कहते हैं—

तुम तजि कौन नृपति पै जाउँ।
काकै द्वार पैठि सिर नाउँ परहथ कहा बिकाउँ॥
तुम कमलापति त्रिभुवन नायक विस्वम्भर जाको नाउँ॥

परमानन्द हरि सागर तजि के नदी शरण कत जाउँ॥ प स ६६८

मानमर्षता :—इसमें भक्त अपना अभिमान विसर्जित कर देता है। और दैन्य की स्थिति पुष्ट हो जाती है। जैसे सिवाय भगवच्चरणारविन्द के दूसरा कुछ नहीं सुहाता। परमानन्ददासजी अपनी विह्वल दशा में पुकार उठते हैं —

अपने चरण कमल को मधुकर हमहू काहे न करहु जू॥
कृपावत भगवत गुसाईं इहि बिनती चित धरहु जू॥ प सं १६२

भयदर्शन —चंचल और दुष्ट मन यदि अन्य उपाय से नहीं मानता तो उसके लिए भय दिखाना आवश्यक हो जाता है परमानन्ददासजी ने "बड़ी हानि" का भय एक स्थान पर प्रस्तुत किया है —

"हरि के भजन को कहा चाहियत है
भजत मैन रसना पद पानि॥
जैसी उपति आइ बनी है
जो न भजे ताहि बड़ी हानि॥प स ६७८

भर्त्सना —सही रास्ते पर लाने के लिए "धिक्कृति" भी एक अव्यर्थ उपाय है। भक्त मन को इस उपाय से भी वश मे करते आए हैं। भर्त्सना मे खाली खीज क्षोभ का भाव निहित रहता है.—

"अजहूँ न आइ पापिनी जीहे।
तजि सेवा बैकुण्ठनाथ की नीच लोग के संग रही॥प सं ७१

आश्वासन —कभी-कभी आश्वासन से भी क्रूर अबोध मन मान जाता है प्रभु की असीम शक्ति पर जब भक्त का ध्यान पहुँचता है तो लोभी स्वभाव के मन को भी समझा दिया जाता है परमानन्ददासजी ने भी मन को लालच दिया है.—

"क्यों न जाइ एसे के सरन।
प्रतिपालै पोषै माता ज्यों चरण कमल भव सागर तरन॥प सं० ६७६

एक स्थान पर वे लिखते हैं —

हरि को भक्त मानै डर जाको ।
जाको डर कोई ब्रह्मादिक देवता सब दिन डरपत है जाको ॥ प स १८१

एक और स्थल पर वे कहते हैं —

सब सुख सोई लहै जाहि कान्ह पियारो ।
करि उत्तम विमल यश गावै रहै जगत ते न्यारो ॥ प सं १८४

मनोराज्य —इस स्थिति मे भक्त चिंतनशील अधिक हो जाता है। बाह्य जगत से उसका नाता टूट जाता है और वह आप आपकी सुनता है आप आपकी कहता है। इसी स्थिति मे वह मन के साथ उत्तम भाव निभाता हुआ उसे समझाता रहता है।

चाहि विस्वम्भर स्वामिनी सो काहे न गावै ।
कुमिला ते कमला करी दहि उचितै गावै ॥ प स ११६

वे कहते हैं —

तातें न कबहूँ आपि ही रही जिय जागी ।
मन कल्पित कोटिक करै उदधि लहरि समानी ॥

एक और स्थल पर वे कहते हैं —

चखहु करि हौं जी दया ।
हस्त कमल की छमहु ऊपर फेरि बैठो हया ॥

विचारणा—विचार विवेक का पूर्वज है। विचारणा की स्थिति मे भक्त परम गम्भीर बन जाता है और वह सत्य निष्कर्षों पर पहुँच कर जगत् की वास्तविकता को जान लेता है। अतः उसकी समस्त चंचलताएँ विलीन हो जाती हैं।

माधो ! करि पई सीख सही ।
साची माया स्यामसु दर की जानि अन्त निबही ॥
जाकी राज दिसी सो अविचल भूमि मागौंहि नही ॥"

इत्यादि ।

भक्ति की उपर्युक्त सप्त भूमिकाओं के उपरान्त परमानन्ददासजी में पहुँचिका शरणागति भी उपलब्ध होती है। अब यहाँ शरणापति के स्वरूप की चर्चा करने से पूर्व हमें शरणागति की परिभाषा पर विचार लेना चाहिए। भक्ति और शरणापति अथवा प्रपत्ति में थोड़ा अन्तर है।

## भक्ति और प्रपत्ति का भेद

भक्ति में प्रेम का प्राधान्य है। अतः भक्ति आनन्दस्वरूपा है। इसलिए वह आस्वाद्य है। प्रेम अथवा भक्ति बड़े के प्रति 'श्रद्धा' बन जाती है। बराबर वाले के साथ प्रेम प्रणय और छोटे के प्रति वात्सल्य का रूप ले लेती है। फिर भक्ति अपने विपुल रूप में रस बना है।

और पाचानुसारोंहिका विका नवधा होती हुई इक्यासी प्रकार की और फिर चौरासी प्रकार की होकर पात्रानुकूल अनन्त प्रकार की हो जाती है। परन्तु प्रपत्ति अथवा शरणागति मे दैन्य का प्राधान्य है और निस्साधनता इसका तत्व है। यह तीन प्रकार की है—

१ भगवान् द्वारा भक्त का स्वीकार।

२ भक्त द्वारा भगवान् का स्वीकार।

३ अथवा भक्त और भगवान् दोनो की परस्पर स्वीकृति अर्थात् मिश्र प्रपत्ति।

पुष्टि भक्तो में तीनो ही प्रकार की प्रपत्तियों के उदाहरण मिलते है। गोपियाँ वे भक्ताएँ है जिनका स्वय भागवान् ने स्वीकार किया है।

## प्रथम प्रकार की प्रपत्ति—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिका ।
मामेव दयित प्रेष्ठमात्मानं मनसागता ॥
ये त्यक्त लोक धर्माश्चमदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥ भाग १ ।४६।४

## द्वितीय प्रकार की प्रपत्ति—

इसमे विभीषण अथवा मत्स्वार वृत्रासुरादि आते है—

विभीषण कहते है—

भवन्त सर्व भूतानां शरण्यं शरणं गत ।
परित्यक्ता मया लंका मित्राणि च धनानि च ॥ वा० रा यु १६।२

अर्थात् आप सर्वभूतों के शरण्य है। मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। मैं लंका का अपने मित्रो का और धन का परित्याग करके आया हूँ।"

मिश्रप्रपत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण अर्जुन है। एक स्थान पर अर्जुन स्पष्ट स्वीकार करते है—

"शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम् ॥ गीता

भगवान् भी इसे अनन्य अनुगृहीत भक्त स्वीकार करते है—

न वेद यज्ञाध्ययनैर्न दानैं।
न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ॥
एवं रूप शक्य अहं नृलोके।
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ गी ११।४८

तथा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥ गी १८।६६

अर्थात् हे अर्जुन! न वेद पाठ से न यज्ञ से न दान से न कर्म काण्डादि से न उग्र तप से मुझे इस प्रकार से इस नर लोक मे तेरे अतिरिक्त कोई नही देख सकता। समस्त धर्मो को छोड कर तू मेरी शरण में आजा मैं तुझे समस्तपापो से मुक्त कर दूगा। तू सोच मत कर।

उपर्युक्त दलोकों से पता चलता है कि अर्जुन भगवान् का विशिष्ट कृपा पात्र जीव था। परन्तु उपर्युक्त तीन प्रपत्तियों में से प्रथम दो प्रकार की प्रपत्तियाँ ही मुख्य हैं। जिसमें प्रथम प्रकार की प्रपत्ति अर्थात् भगवान् द्वारा भक्त का स्वीकार पुष्टि मार्गीय प्रपत्ति है। और दूसरे प्रकार की प्रपत्ति मर्यादामार्गीय प्रपत्ति है। परमानन्ददासजी में उक्त दोनों ही प्रकार की प्रपत्तियाँ पाई जाती हैं। गोपी प्रेम में पुष्टिमार्गीय प्रपत्ति का उदाहरण मिलता है। गोपियों के माहात्म्य की चर्चा करते हुए वे कहते हैं।

> गोपी नाम करत सब रस को।
> नंद नंदन चकोरी को जीवन पोषित दाम मान पति सर्वसु को॥
> तिल भर संग तजत नहीं निज जन मान करत मन मोहन बसु को॥
> छिन-छिन प्रीत करत मन भावत परमानन्द सुख सै यह रस को॥प स ७०६

एक और स्थान पर वे लिखते हैं —

> मै हरि रस भोपी सब गोप तियन तै न्यारी॥
> कमल नयन गोविंद चन्द की प्रानपप्यारी॥
> निरमत्सर जे सन्त माँहि चूड़ामनि गोपी॥
> निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी॥प र्स २ १

मर्यादामार्गीय प्रपत्ति के अन्तर्गत छः प्रकार की शरणागति की चर्चा की जाती है—

> आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
> रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा॥
> आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥

अर्थात् प्रभु के प्रति अनुकूलता का संकल्प प्रतिकूलता का त्याग, प्रभु सर्वदा रक्षा करेंगे—यह विश्वास अपने रक्षक रूप में प्रभु का वरण अपने को सर्वथा सौंप देना और दीनता। यही छः प्रकार की शरणागतियाँ हैं। परमानन्ददासजी ने इन प्रपत्तियों की अपने काव्य में यथा स्थान चर्चा की है—

## अनुकूलता का संकल्प—

इस संकल्प के बिना काम ही नहीं चल सकता। इसमें अनन्यता के बीज निहित हैं। यदि भक्त ऐसा संकल्प न करे तो उसकी शरणागति उत्पन्न ही नहीं हो सकती।

> या मन ते कबहूँ न टरौंगी।
> बलवीर बदन बनी रचि सुंदर माखिनो माल करौंगी।प स ७१२

## प्रतिकूलता का विसर्जन—

यह पहली शरणागति की पूरक स्थिति है। इसमें प्रिय के प्रतिकूल आचरण के त्याग की भावना रहता है। अनन्यता की उत्तरोत्तर वृद्धि है।

> अब लाज को मेरी मन आन्यो कहा करैगो कोई री।
> हौं तो चरन कमल अरदासी को भावै सो होय री॥
> सुत, पति मात पिता बान्धव ईबत बदाइ लोग री।प० स १२१

एक स्थान पर वे कहते हैं —

तामैं न कछु मानि, हौं रहो विष खानी ॥

" "

प्राण देय क्यों छैहए बिनरे पै अपकारी ।।प सं ६११

"

छाँडि न देत झूठै मति अभिमान ।
मिलि रस रीति प्रीति करि हरि सौं सुन्दर हैं भगवान ॥
यह जीवन धन ओस वारि को पसरत रंग सो पान ॥ प सं० १४७

रक्षा का विश्वास —इस विश्वास से भक्त को बड़ा भारी मानसिक बल और दृढ़ भरोसा प्राप्त होता है। इससे भक्त मे विघ्नों का सामना करने की शक्ति आती है। परमानन्ददासजी ने प्रभु को ही "सर्व समर्थ" समझ कर निश्चितता प्राप्त की है।

ताते तुम्हरो मोहि भरोसो आवे।
दीन दयाल पतित पावन जस वेद उपनिषद गावै ॥

" "

ऐसो को ठाकुर जे जन कों सुख दै मसो मनावै ।।प स ६११

रक्षक रूपमें प्रभु का वरण—

भगवान को रक्षक के रूप मे वरण करके भक्त एक प्रकार से अभेद्य कवच मे सुरक्षित हो जाता है। उसे किसी प्रकार की धाधि व्याधि नही सताती और निश्चित होकर भक्ति-साधना मे लग जाता है। परमानन्ददासजी ने "कमलापति की ओट' को सर्वोपरि सर्व प्रथम माना है—

बड़ी है कमलापति की ओट।
सरन गये ते पकरि न पाए किमी कृपा की कोट ।।प स ६२४

साचो विश्वास है री कमलनयन ।।प स ७

आत्मनिक्षेप —

आत्म-निक्षेप मे भक्तपूर्ण भगवदवलम्ब लेकर निर्भरता स्थिति पर पहुँच जाता है। यही उसे शाश्वत सुख का आभास मिलने लगता है। और वह भगवान से खुलकर व्यवहार करने लगता है। धीरे-धीरे भगवान से अपना संबंध जोड़ लेता है परमानन्ददासजी ने अपनी सम्पूर्ण निर्भरता का परिचय इस प्रकार दिया है —

तुम तजि कौन नृपति पै जाउं ॥
काके द्वार पैठि सिर नाउ पराय कहा बिकाउं ॥

" " "

परमानन्द हरि आवर तजि कै नहीं धरण सत कार्ड ।।प सं ६८

कार्पण्य—

*मे दैन्य विनय प्रेम उपालम्भ आदि भाव रहते हैं इसमें भाव सबलता रहती है।* प्रभु से प्यार बढ़ जाता है और भक्त उन पर अपना अधिकार सा समझ लेता है—

> "अनुग्रह तौ मानी गोविंद।
> *जाके चरन कमल हिरदयमह वृन्दावन के चंद ॥*
>
> "
>
> अपराधी आदि सबै कोउ हौं अधम नीच मतिमंद॥
> ताकी तुम अधिक पुरुषोत्तम मानत परमानन्द ।।प सं १६६

संक्षेप में परमानन्ददासजी के षड्विधा शरणागति अथवा प्रपत्तिपरक पद भी पर्याप्त रूप हमें मिल जाते हैं।

नारदीयभक्तिसूत्रोक्त आसक्तियाँ और परमानन्ददासजीके भक्ति विचार—

नारदीय भक्ति सूत्र में एकादश आसक्तियों की चर्चा इस प्रकार आई है।

गुण माहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति स्मरणासक्ति दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्ति आत्मनिवेदनासक्ति तन्मयतासक्ति परमविरहासक्ति रूपाएक-धाप्येकादशधा भवति—ना भ ८२

यद्यपि प्रेमलक्षणा भक्ति रसात्मक और अखण्ड है तथापि अपने विशिष्ट प्रकारों में वह ग्यारह प्रकार की हो गई है। यहाँ हम प्रत्येक आसक्ति का अलग-अलग उदाहरण प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे।

१ गुणमाहात्म्यासक्ति —इसमे भक्त को प्रभु के गुण और महात्म्य का ज्ञान रहता है और वही उसकी प्रेम स्वरूपा भक्ति का कारण होता है —

> गोविंद तिहारो स्वरूप निगम नेति नेति गावैं।
> भक्ति हेतु स्यामसुन्दर देह धरैं आवैं॥
> जोगी मुनि ध्यानी ध्यानी सुपने नहिं पावैं॥
> नन्द घरनि बाँधि बाँधि कपि ज्यौं हैं नचावैं॥
>
> " "
>
> परमानन्द प्रेम कथा सबहिन ते न्यारी ॥ प सं ६१

२ स्वरूपासक्ति —परमानन्ददासजी मे स्वरूपासक्ति के अनेक पद हैं। वस्तुतः उनके काव्य के दो ही विषय हैं:—

स्वरूपासक्ति और लीलासक्ति। अतः स्वरूपासक्ति का एक उदाहरण—

> 'सुन्दर मुख की हौं बलि-बलि जाउ॥
> लावननिधि गुननिधि सोभा निधि देखि-देखि जीवत सब गाउँ।
> अंग-अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटत रस रुचिर ठाउँ॥
> ताते मृदु मुसुकानि हरत मन, न्याय कहत कवि मोहन नाउ॥

१ माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़ सर्वतोऽधिक।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा॥ त दी नि—४६

सखा अंस पर वाम बाहु धरे यह छवि को बिनु मोल बिकाउं ॥
परमानन्द नन्दनन्दन को निरखि निरखि उर नैन सिराउं ॥ प सं २९९

तथा

अति रति स्याम सुन्दर सों बाढ़ी ।
देखि स्वरूप गोपाललाल को रही ठगी सी ठाढ़ी ॥ प सं० १९७

## पूजासक्ति

गावे प्रिय चाहै सदा गोवर्धन धारी ।
इन्द्र कोप ते नन्द की आपदा निवारी ॥
जो देवता पराधिन सो हरि के भिखारी ॥
अन्य देव सत सेइए बिसरै पै अपकारी ॥
दुसासन के कोप तै द्रौपदी उबारी ॥
परमानन्द प्रभु सांवरो भगतन हितकारी ॥ प सं ७११

## स्मरणासक्ति

जब ते प्रीति स्याम सों कीनी ।
ता दिन ते मेरे इन नयननि में कबहूं नींद न लीनी ॥
सदा रहति चित चाक चढ़्यो सो धीरे कछू न सुहाय ॥
मन में करत उपाव मिलन को इहै बिचारत जाय ॥
परमानन्द प्रभु पीर प्रेम की अपने तन मन सहिए ॥
जैसे बिथा मूक बालक की अपने तन मन सहिए ॥ प० सं १८

## दास्यासक्ति

मांगी यह प्रसाद हों पाउं ।
तव सुत भृत्य भृत्य परचारक दासको दास कहाउ ॥
यह मन मत मोहि गुरुन बतायो स्याम धाम की पूजा ॥
यह बासना धरे नहिं कबहूं देवन देखौं दूजा ॥
परमानन्ददास तुम ठाकुर यह नातौ जीयत न टूटै ॥
नन्दकुमार यसोदा नन्दन हिलिमिलि प्रीति न छूटै ॥ प सं ७२८

## सख्यासक्ति

जाके टौहि हरि की आनन्द केलि ।
नवल गुपाल निकट कर आए ज्यों चाहै त्यों खेलि ॥
कमल नैन की भुजा मनोहर अपने कंठ लै मेलि ॥
प्रेम बिबस भए सावधान ह्वै छूटी अलक सकेल ॥
तरुन तमाल नन्द के नन्दन लिया कनक की बेली ॥
यह अपठानी दासपरमानन्द मुक्ति चावन सों ठेली ॥ प सं० ८२१

परमविरहासक्ति

जिय की साधि जिय ही रही री ।
बहुरि गोपाल देखन नहीं पाए बिलपति कुंज अहीरी ॥
एक दिन सो जु सखी यह मारग बेचन जात दहीरी ॥
प्रीति के करें दान मिस मोहन मेरी बांह गहीरी ॥
बिनु देखे छिन जात कलप करि बिरहा अनल दहीरी ॥
परमानन्द स्वामी बिनु दरसन नैननि नदी बहीरी ॥ प सं १४

अथवा

वह बात कमल दल नैन की ।
बार बार सुधि आवत सजनी वह धुरि देनी सैन की ॥
वह लीला वह रास सरद की मोहन रचित भावनी ॥
अब वह ऊँची टेर मनोहर मिस करि मोहि बुलावनी ॥
वे बातें सालति उर अंतर, जो पर पीरहिं पावैं ॥
परमानन्द कह्यौ न परै कछु हियो सो रूध्यो आवै ॥ प सं १११

एक अन्य स्थल पर

सुधि करत कमल दल नैन की ।
भरि भरि लेत नीर अति आतुर, रचि वृन्दावन चैन की ॥
वे वे पाछे भाजिबन मिलती पुंज लता द्रुम ऐन की ॥
वे बातें कैसे के बिसरति बांह उसीसे सैन की ॥
अति निपुन रस रास बिलास अथवा बजाई बैन की ॥
परमानन्द प्रभु सो क्यों जीवहिं जो पोखी मृदु बैन की ॥ प सं ११८

हरि तेरी लीला की सुधि आवै ।
कमल नैन मन मोहन मूरति मन मन चित्र बनावै ॥
एक बार जाहि मिलत मया करि, सो कैसे बिसरावै ॥
मुख मुसकान बंक अवलोकनि चाल मनोहर भावै ॥
कबहु निविड़ तिमिर आलिंगन कबहुक पिक सुर गावै ॥ प स ११९
कबहुँक सम्भ्रम क्वासि क्वासि कहि मौनहि उठि धावै ॥
कबहुँक नैन मूंदि अंतरगति मनिमाला पहिरावै ॥
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गँवावै ॥

नारदीय भक्ति सूत्रोक्त उपर्युक्त एकादश आसक्तियों के उदाहरणों के उपरान्त यहाँ परमानन्ददासजी के भक्ति विषयक सामान्य विचारों पर विचार किया जायगा ।

परमानन्ददास जी जहाँ एक ओर भक्ति के लिए एकान्त "गोपी भाव" की भक्ति को आदर्श रूप में स्वीकार करते हैं दूसरी ओर वे भक्ति के मर्यादा रूप अथवा उसके लोकपक्ष के निर्वाह की भी उपेक्षा नहीं करते । वे भक्ति के सामान्य साधन जैसे—नाम—माहात्म्य गुरु महिमा अनन्यता भगवान के प्रति आस्था सुमिरन में अनाथ विश्वास सत्संग और वरण

अनन्यता—भक्ति साधना में अनन्यता बीज तत्व है अतः इसका बड़ा भारी महत्व है। गीता में इसी को अव्यभिचारिणी भक्ति[1] कहा है। भगवान कहते हैं जो लोग मेरा अनन्य भाव से भजन करते हैं उनको मैं सुलभ हो जाता हूँ।[2]

महाप्रभु वल्लभाचार्य विवेकधैर्याश्रय ग्रन्थ में कहते हैं—

> अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
> प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् ॥ वि० धै० आ० १४

अर्थात् भक्तिपथ में और विशेष कर पुष्टिमार्ग में अन्य का भजन अथवा कामना और सिद्धि के लिए प्रार्थना आदि वर्जित है। अतः आचार्य के शिष्य परमानन्ददासजी ने भी संप्रदाय की परम्परा के अनुकूल अनन्यता पर बहुत ही बल दिया है क्योंकि बिना अनन्यता के तन्मयता प्राप्त नहीं होती। साधना के तीनों पक्ष साधक साधन और साध्य तीनों की एकता का ही नाम तन्मयता है। अतः परमानन्ददासजी कहते हैं—

> १ प्रीति तौ एक ही ठौर भली।
> यह जु कहा मति करत कमल तजि फिरैं जु गली गली ॥

तथा

> मोहि भावै देवाधि देवा।
>
> तीन मुख्य देवता ब्रह्मा विष्णु अरु महादेवा ॥
> सब कह सारत चराचर रूप अनुमत आनन्दकंदा ॥ पं० स०—१९७
> गोपीनाथ राधिका वल्लभ ताहि उपासै परमानन्दा ॥

वस्तुतः तथ्य तो यह है कि भक्ति की गाड़ी अनन्यता और समर्पण के दो पहियों पर ही चलती है। अतः परमानन्ददासजी ने भी भक्ति साधना में समर्पण और अनन्यता की अनेक स्थलों पर चर्चा की है। अष्टछाप में अनन्यता का बड़ा महत्व है। वहाँ श्रीकृष्ण भगवान् के अतिरिक्त किसी अन्य का स्वामी और रक्षक रूप में वरण ही नहीं है।

सम्प्रदाय के प्रति आस्था—भक्ति साधना में किसी परिपाटी किंवा विशिष्ट सम्प्रदाय का अनुयायी होना आवश्यक है। यों तो सभी मार्ग उसी एक आराध्य की प्राप्ति के लिए हैं। परन्तु स्वल्प जीवन वाला मानव एक ही मार्ग का पथिक बन कर लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अतः वल्लभ कुल के प्रति परमानन्ददासजी ने अपना गहरी निष्ठा प्रकट की है। वे कहते हैं—

> हरि प्रभु साधन होइ सो होई। प० स० —११९
> परमानन्ददास यह मारग बीतत राम के गाज ॥

---

१ मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्त देश सेवित्वमरतिर्जन संसदि। गी० १३।

२ अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः ॥ ८।१४

एक और स्थान पर वे कहते हैं—

यह मांगो जसोदा नन्द नन्दन।
बदन कमल मेरो मन मधुकर निति प्रति छिन-छिन चाऊँ दरसन।

" " "

नन्द नन्दन वृषभान नंदिनी मेरे सर्वस प्राण जीवन धन।
ब्रज बसि यह जमुना जल पीऊँ बल्लभ कुल को दास मैं ही मन॥
महाप्रसाद पाऊँ हरि गुण गाऊँ परमानन्द दास दासी जन।

एक और स्थान पर वे कहते हैं —

यह मांगौ गोपी जन बल्लभ।[1]
मानुष जन्म और हरि सेवा ब्रज बसिबो दीजे मोहि सुल्लभ॥
श्री बल्लभ को होऊ चेरो बैष्णव जन को दास कहाऊं॥

" "

परमानन्ददास यह मांगत नित निरखौं कबहूं न अघाऊं॥ प सं २२७

सत्संग के प्रति श्रद्धा —

कवि ने सत्संग को भगवद् भक्ति का अनिवार्य साधन माना है। अतः भक्तों के संग के लिए वह भगवान से प्रार्थना करता है —

यह मांगो संकर्षण बीर।[2]
चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि भक्तन की भीर॥
संग देहो तो हरि भक्तन को बास देहो तो जमुना तीर॥ प सं २२६

एक स्थान पर वह कहता है —

श्रीजमुना यह प्रसाद हौं पाऊं।[3]
तुम्हरे निकट रहौं निसि बासर कृष्ण नाम गुन गाऊ॥

" "

बिनती करौ यहै वर मांगौं और जन बिसराऊं॥ प सं ७२१

भागवत के प्रति श्रद्धा —

सम्प्रदाय में भागवत का बहुत बड़ा महत्त्व है। आचार्य ने अपने सिद्धान्त की प्रामाणिकता के लिए भागवत को प्रमाण चतुष्टय के अन्तर्गत रखा है।

वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैवहि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।[4]

---

१ परमानन्द सागर में पद संख्या २२७
२ " " २२६
३ " ७२१

[4] तत्त्वदीपनिबन्ध श्लोक नं ७

अर्थात् वेद (उपनिषद्) गीता ब्रह्मसूत्र तथा भागवत ये चारों ही प्रमाण चतुष्ट
के अन्तर्गत हैं।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने तो भागवत को अपने इष्टदेव भगवान् श्रीनाथजी का स्वरू
ही माना था। भूमण्डल की परिक्रमा के अवसर पर उन्होंने सभी प्रमुख तीर्थों में जाक
भागवत के पारायण किये थे। अपने अष्टछापी दो सेवकों को भागवत और विशेष क
दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका को सुनाया था। जिन दो महानुभावों ने आचार्य से दशमस्क
की अनुक्रमणिका का श्रवण किया था वे लीला-रस के सागर कहलाए। बाद में उन दोनों
सागरों ने भागवत के लीला प्रसंगों का किस प्रकार अनुसरण किया था यह तो आगे चलक
लीला के प्रसंगों में बतलाया जायगा। किन्तु इन दोनों महानुभावों ने अपने पदों में भागवत
का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। परमानन्ददासजी ने अनेक स्थलों में भागवत और
उसके रसिक 'कीर मुनि' (शुकदेव जी) को सादर स्मरण भी किया है।

वे कहते हैं —

१ जब लग जमुना गाय गोवर्धन जब गोकुल गाम गुसाईं।
जब लग श्री भागवत कथा' तब लग कलियुग नाहीं ॥

२ माधौ या घर बहुत धरी।
कहन सुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी ॥
जो गोपिन के प्रेम न होते तो कब भागवत पुरान ॥

३ माधौ करि गई लीक खरी।
साची छाया स्याम सुन्दर की आदि अन्त निबही ॥
जाकौ राज दियौ सो अविचल मुनि भागौति कही ॥

४ सेवा मदन गुपाल की मुक्ति हू ते मीठी।
जाने रसिक उपासिका शुक मुख जिन दीठी ॥

५ गिरवर धुर ठाडी है जु ईश।

"

यह लीला ब्रह्मा शिव गाईं नारदादि मुनि ग्यानी ॥
परमानन्द बहुत सुख पायौ कह शुक व्यास बखानी ॥

६ जो रस रसिक कीर मुनि पायो।
सो रस रतन रटन शिव शारद सेष सहस्र मुख पार न पायो ॥

तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भागवत और ज्ञानी मुनि शुकदेव को परमानन्ददासजी ने
भक्ति भाव से बार-बार इसीलिए स्मरण किया है कि भागवत के वक्ता भी शुक भक्ति के अवत
और हैं। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ तो भक्ति का सागर ही है। समस्त दर्शनों विशेष कर ज्ञान
और योग के सम्पूर्ण सिद्धान्तों के ऊपर भक्ति मार्ग को शीर्ष स्थानीय बनाने का सम्पूर्ण श्रेय
श्रीमद्भागवत ग्रन्थ को ही है। स्वयं श्रीमद्भागवत पुराण को समझने के लिए और
उसका रहस्य जानने के लिए विद्वत्ता की उतनी अपेक्षा नहीं जितनी भक्ति की। "भक्त्या
भागवतं ग्राह्यम्" का यही तात्पर्य है। इसी कारण समस्त धर्मों शास्त्रों सम्प्रदायों एवं
भक्ति ग्रन्थों पर श्रीमद्भागवत का पूरा-पूरा प्रभाव है। श्रीमद्भागवत साक्षात् भक्ति स्रोत

है इसीलिए संपूर्ण अष्टछापी एवं कृष्ण भक्तों ने भक्तिरूप महान् फल के लिए इस अनुपम ग्रन्थ को भक्ति भाव से स्मरण किया है।

सेवा :—सेवा और भक्ति में अन्योन्याश्रय है। सेवा से प्रेम (रसमयता) का उदय होता है। और उसी प्रेम के कारण सेवा बनती है। पुष्टि सम्प्रदाय सेवा पर बहुत ही महत्त्व देता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सेवा पर बहुत जोर दिया है। सम्प्रदाय का व्यवहार पक्ष जो "पुष्टि मार्ग" के नाम से अभिहित किया जाता है सर्वोपाश्रय सेवा पर ही निर्भर है। सेवा भक्ति के प्रथम सोपान—प्रेम की जननी है। और चित्त को केन्द्रित करने वाली है। महाप्रभु जी कहते हैं —

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।[1]
ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्म बोधनम् ॥

अर्थात् "चित्त को प्रभु में पिरोना" अथवा तल्लीन कर देना ही सेवा है। और उसकी सिद्धि के लिए तनुजा (शरीर से) वित्तजा (स्वोपार्जित द्रव्य से) मन लगाकर करनी चाहिए। ऐसा करने से संसार के दुःखों से छुटकारा हो जाता है और "ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप जानने में आता है।"

*हरिरायजी कहते हैं—'सेवा तु स्वामिनो यत्समये यदपेक्षन्ते तदेव समर्पणीयम्'* अर्थात् जिस समय प्रिय आराध्यको जो चाहिए वही समर्पण करना सेवा है। [भक्तवल्लभा-वर्णनम्]

वस्तुतः सेवा धर्म परम महान् है। और योगियों के लिए भी अगम्य है। सेवा की इसी कठिनाई और जीव की असमर्थता की ओर लक्ष्य करके महाप्रभु जी ने स्पष्ट कहा है कि — अपने गुरुदेव की आज्ञानुसार सेवा करते रहना चाहिए, भगवदिच्छा से यदि उसमें कभी बाधा आ पड़े तो चिन्ता न करे और सर्वदा चित्त को सेवा परायण रखकर सुख पूर्वक रहे।"[2]

सम्प्रदाय के सेव्य स्वरूप —

महाप्रभु आचार्यजी स्वयं भगवान नवनीतप्रियजी के सेवक थे और भागवत के सतत स्वाध्यायी। उनके जीवन के दो कार्य थे—श्री नवनीतप्रियजी की सेवा और श्रीमद्-भागवत का चिंतन। उनके ये दो कार्य गंगा की अजस्र धारा के समान अहर्निश चला करते थे। उनका सिद्धान्त था कि इन दो में से यदि एक भी अनवरत रूप से चलता रहे तो उस जीव की जीवन भर भगवान में दृढ़ आसक्ति रहती है और वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता।[3] इस सिद्धान्त के अनुसार आगे चलकर आचार्य जी के पुत्र गुसाईं जी ने भी श्रीनवनीत-प्रियजी के अतिरिक्त अपने सातों पुत्रों को भगवत् सेवार्थ सात स्वरूप विरासत में दिए थे। जो आज भी उनके घराने के सेव्य रूप में चले आ रहे हैं। इन सात स्वरूपों के अतिरिक्त श्रीनाथजी का स्वरूप सभी का सेव्य है। इस प्रकार कुल मिलाकर ६ स्वरूप हुए। जिनका विवरण इस प्रकार है —

---

१ सिद्धान्तमुक्तावली श्लोक सं० २
२ सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया
अतः सेवा परं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्। नवरत्न श्लोक ७
३ सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत्
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम ॥ भ० व० १

१ श्रीमहाप्रभु जी के सेव्य—श्रीनाथ जी अथवा गोवर्धननाथजी वर्तमान में नाथद्वार में।
२ श्रीमहाप्रभु जी के एवं श्रीगुसाईं जी के सेव्य श्रीनवनीत प्रियजी श्रीनाथद्वार में।
३ श्रीमथुरेशजी श्री गिरिधर जी के सेव्य कतीपुरा में (पहले कोटा में थे)
४ श्रीविट्ठलनाथजी श्रीगोविंदराय के सेव्य श्रीनाथद्वार में।
५ श्रीद्वारकाधीशजी श्री बालकृष्णजी के सेव्य काकरोली में।
६ श्रीगोकुलनाथजी श्री गोकुलनाथ जी के सेव्य गोकुल में।
७ श्रीगोकुलचन्द्रमा जी श्री रघुनाथ जी के सेव्य कामवन में।
८ श्रीबालकृष्ण जी श्रीयदुनाथ जी के सेव्य सूरत में।
९ श्री मदनमोहनजी श्रीघनश्याम जी के सेव्य कामवन में।

इन नौ स्वरूपों की सेवा महाप्रभु वल्लभाचार्य के समय से आज तक अबाध रूप में चली आ रही है। महाप्रभु जी के द्वितीय पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने सेवा का बहुत ही सुन्दर क्रम निर्धारित किया था। उनके विषय में तो प्रसिद्ध है कि —

सेवा की अद्भुत रीत।
श्री विट्ठलेश सौं राखे प्रीत।। (सूर-सेवाफल)

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सेवा के तीन क्रम रखे थे—राग भोग और शृङ्गार। साथ ही नित्य सेवा-क्रम और वार्षिक उत्सव सेवा-क्रम। नित्य सेवा क्रम में आठ दर्शनों की व्यवस्था की गई है। वे अष्ट दर्शन इस प्रकार है —

१ मंगला प्रातः ५ बजे से ७ तक।
२ शृङ्गार प्रात ७ से ८ तक।
३ ग्वाल प्रात ८ से ९ तक।
४ राजभोग प्रात ९ से १२ तक मध्याह्न।
५ उत्थापन—मध्याह्नोत्तर ३ ४ तक।
६ भोग—सायं ५ तक।
७ सन्ध्या‌ति सायं ६ बजे से ६ तक।
८ शयन सायं ६।। से ८ तक।

आठों दर्शन के साथ राग अथवा कीर्तन की व्यवस्था भी की गई है। अष्टसखा अपना कीर्तन सेवा के लिए प्रसिद्ध है ही। इनमें भी विशिष्ट समय पर एक-एक सखा का चौपरा होता था। उसी समय पर वह मंदिर में पहुँच कर कीर्तन सेवा करता था।

ये आठों दर्शन सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा 'मन पूत' सिद्धान्त पर निर्धारित नहीं किए गए है। अपितु इनका आधार भावनानुसारी लीला भावना है। यहाँ संक्षेप में हम इन अष्ट-दर्शन की आधार भूमि लीला-भावना का संकेत मात्र करेंगे।

१ मंगला दर्शन —

प्रातः तीन चार घटा बाद किया जाता है। जिसका घटा बाद में त्रिगुण (सत रज तम) का संकेत है। त्रिगुणातीत परब्रह्म को निज भक्तों के कारण सगुण अनुसारी है इसे

परमानन्ददासजी ने नित्य सेवा परक अनेक पदों की रचना की है। साथ ही उनकी कीर्तन सेवा का विशिष्ट 'ओसरा' प्रातःकाल मंगला तथा राज भोग रहता था। फिर भी नित्य सेवा के उनके कतिपय कीर्तन इस प्रकार हैं—

१ महाप्रभु वल्लभ स्मरण—

प्रात समय उठि करिए श्री लक्ष्मण सुत गान।

२ यमुना जी के पद—

परमानन्ददासजी ने यमुनाजी पर अनेक पद लिखे हैं।[1]

३ मंगल मंगल का अनुसरण—

१—मंगल माधो नाम उचार।
२—मंगल मंगल व्रज भुवि मंगल॥

४ जगावने के पद
५ कलेऊ के पद।
६ खण्डिता के पद।
७ शृंगार के पद।
८ ग्वाल के पद।
९. पनघट के पद।

१ राजभोग के पद—उष्ण काल और शीतकाल के समय-भोजन। भोग सरवे के पद बीरी के पद छाक-व्यारी के पद।

११ आरता के पद।
१२ अनोसर और उत्थापन के पद।
१३ आवनी के पद।
१४ भोग (छाक) के पद बीरी के पद धूप (दीवा) के पद।
१५. पौढ़ायवे के पद शयन समय के पद कहानी के पद।

नित्य सेवा विषयक कीर्तन सेवा में अनवरत सावधान रहकर परमानन्ददासजी ने सेवा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसे मुक्ति से भी अधिक मधुर बतलाया है

१ सेवा मदन गुपाल की मुक्ति हू ते मीठी—प० सं० ७२१
२ ताते गोविंद नाम लै मुख मांगी चाही।

× × ×

चरण कमल हित प्रीति करि सेवा निरबाहीं।
१ मह मांगी यशोदानन्दन। १

× × ×

चरण कमल की सेवा दीजै गोकुल राजन विपुलमता धन॥

१ द्रष्टव्य—परमानन्द सागर 'नित्य सेवा पदों' का क्रम—गोवर्धननाथ द्वारा प्रकाशित।

परमानन्ददासजी में हमें भागवतोक्त षड्‌विध सेवा-साधना भी मिलती है। श्रीमद्भागवत में सेवा के छः अंग इस प्रकार बतलाये गये हैं —

तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्म पूजा
कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ॥
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किम्
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ भागवत ७।९।५

अर्थात् हे पूज्य भगवान्! आपकी सेवा के छः अंग हैं।

१ नमस्कार
२ स्तुति
३ समस्त कर्मों का समर्पण
४ सेवा-पूजा
५ चरण कमलों का चिन्तन
६ लीला कथा का श्रवण

परमानन्ददासजी के काव्य में उपर्युक्त के षड्‌विध सेवा निम्नलिखित प्रकार से आई है—

१ नमस्कार —परसु कमल वन्दौ जगदीश के जे गोधन संग धाए।
२ स्तुति —परम बरनौं जन ताप निवारन।
३ समस्त कर्मों का समर्पण

हौं मन लाल बिना न रहूँ।
× × ×
मनसा वाचा और कर्मणा हित की सोसौं कहूँ।
यह मन अर्पन हरि कों कीनों यह सुख कहाँ लहूँ॥
परमानन्द मदन मोहन के चरन सरोज गहूँ॥

४ सेवा पूजा —

यह माँगो गोपी जन वल्लभ।
मानुष जनम और हरि सेवा ब्रज बसिबो मोहि दीजै सुल्लभ॥

५. चरन कमलों का चिन्तन :—

यह माँगों संकरषण बीर।
चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि भवन की भीर॥

६ लीला कथा का श्रवण —

श्री भागवत श्रवण सुनि नित
इन तजि चित कहूँ अनत न लाऊँ।

उपर्युक्त षड्‌विध-सेवा-साधना के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने भक्ति-वृद्धि के लिए कभी साधन उपायों का प्रयत्न किया है। उन्होंने यमुनास्तुति व्रजास्तुति और गंगास्नान में बड़ी आस्था प्रदर्शित की है। वे कहते हैं कि —

१ परमानन्द सागर पै—पद संख्या ७११।

५ अनोसर और उत्थापन— इसे अनोसर ( अनवसर ) अर्थात् न अन्यस्य अवसर=अनवसर कहा जाता है। वास्तव में यह अन्तरंग सखाओं का ही समय होता है। यह ठाकुरजी के मध्याह्न-विश्राम का समय है—

क्वचित् पल्लव तल्पेषु नियुद्ध श्रमकर्षित ।
वृक्ष मूलाश्रय शेते गोपोत्सगोपवर्हण ।।
पाद संवाहन चक्रु केचित्तस्य महात्मन ।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनै समवीजयन् ।।

१ ।१५।१६ १

६ भोग—यह सन्ध्याकालीन भगवान् का भोजन है। इसमें फलादि भी रहते हैं—

श्रीदामा नाम गोपालो राम केशवयो सखा।
सुबल स्तोक कृष्णाद्या गोपा प्रेम्णेदमब्रुवन् ।।

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च ।।
भवतान्फलान्यावद् मनुष्या गतसाध्वसा ।

१ ।१५।२१-४१

तदनन्तर

जग्मुपहूतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ।।

१ ।१५।४६

७ सन्ध्यार्ति—यह समय प्रभु के वन से पधारने का होता है।

त गोरजश्छुरित कुन्तल बद्ध बर्हं।
वन्य प्रसून रुचिरेक्षण चारुहासम् ।।
वेणु क्वणन्तमनुगैरनुगीत कीर्तिम्।
गोप्योदिदृक्षित दृशोऽभ्यगमन् समेता ।।

१ ।१५।४२

८ शयन सन्ध्यार्ति के उपरान्त प्रभु सुखद शैया पर पौढा दिये जाते हैं—

संविश्य वर शैयाया सुख सुषुपतुर्व्रजे ।।

१ ।१५।४६

भागवत के आधार पर उपर्युक्त सेवा-क्रम पुष्टि सम्प्रदाय में प्रचलित है। पुष्टिमार्ग में नन्दगोप सुत ही परमाराध्य और सेव्य हैं। उन्हीं का यह सेवा-क्रम है। व्रजभूमि में नित्यलीला करने वाले कृष्ण की यही 'यथा देहे तथा देवे' सेवा है। अत सम्प्रदाय के सेवक विशेषकर अष्टछापी सखागण इसी सेवा क्रम को लक्ष्य में रखकर नित्य नये अनन्त पदों की रचना करते थे। उनके पद नित्य सेवा क्रम से भी हैं और वर्षोत्सव क्रम से भी।

नित्य सेवा के पदों में—अवसरानुकूल-सेवा परक पदों के साथ प्रभु की राग सेवा ही इन कवियों का वरदान था।

परमानन्ददासजी ने नित्य सेवा परक अनेक पदों की रचना की है। साथ ही उनकी कीर्तन सेवा का विशिष्ट 'भोसरा' प्रात काल मंगला तथा राज भोग रहता था। फिर भी नित्य सेवा के उनके कतिपय कीर्तन इस प्रकार है—

१ महाप्रभु वल्लभ स्मरण—

प्रात समय उठि करिए श्री लक्ष्मण सुत गान।

२ यमुना जी के पद—

परमानन्ददासजी ने यमुनाजी पर अनेक पद लिखे है।[1]

३ मगल मगल का अनुसरण—

१—मगल माधो नाम उचार।
२—मगल मगल व्रज भुवि मगल॥

४ जगायबे के पद
५ कलेऊ के पद।
६ खण्डिता के पद।
७ शृगार के पद।
८ ग्वाल के पद।
९ पनघट के पद।

१ राजभोग के पद —उष्ण काल और शीतकाल के मंगल-मगन। भोग सरवे के पद बीरी के पद फल-फलारी के पद।

११ आरती के पद।
१२ मनोहर और उत्थापन के पद।
१३ भावनी के पद।
१४ भोग (व्यारू) के पद बीरी के पद दूध (शैया) के पद।
१५ पौढ़ायबे के पद, शयन समय के पद बहाली के पद।

नित्य सेवा विषयक कीर्तन सेवा मे अनवरत सावधान रहकर परमानन्ददासजी ने सेवा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसे मुक्ति से भी अधिक मधुर बतलाया है

१ सेवा मदन गुपाल की मुकति हू ते मीठी—प स ७२२
२ ताते गोविंद नाम लै पुन्न भाभी नाहीं।

× × ×

चरण कमल हित प्रीति करि सेवा निरवाहीं।
१ बहू भावी बलोदालम्बन। ३

× × ×

चरण कमल की सेवा दीजे कोउ बन राजत निपुणता बन॥

---

१ देखो-परमानन्द सागर 'नित्य सेवा क्रमों का क्रम—कैटक द्वारा सम्पादित।

परमानन्ददासजी मे हमें भागवतोक्त षडंग सेवा-साधना भी मिलती है। श्रीमद्भागवत में सेवा के छः अंग इस प्रकार बतलाये गये हैं —

> तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्म पूजा
> कर्म स्मृतिश्चरणयो श्रवणं कथायाम् ॥
> संसेवया त्वयि विनेति षडंगया किम्
> भक्ति जन परमहंसगती लभेत ॥ भागवत ७।९।५०

अर्थात् हे पूज्य भगवान् ! आपकी सेवा के छः अंग हैं।

१ नमस्कार
२ स्तुति
३ समस्त कर्मों का समर्पण
४ सेवा-पूजा
५ चरण कमलों का चिन्तन
६ लीला कथा का श्रवण

परमानन्ददासजी के काव्य में उपर्युक्त के षडंग सेवा निम्नलिखित प्रकार से आई है—

१ नमस्कार —चरण कमल बन्दौ जगदीस के जे गोधन संग धाए।
२ स्तुति —परम कृपाी जन ताप निवारन।
३ समस्त कर्मों का समर्पण

> हौं नन्द लाल बिना न रहूं।
>
> × × ×
>
> मनसा वाचा और कर्मणा हित की तोसौं कहूँ।
> यह तन अर्पन हरि कौं कीनौं यह सुख कहाँ लहूँ॥
> परमानन्द मदन मोहन के चरण सरोज गहूँ॥

४ सेवा पूजा —

> यह मांगौं गोपी जन वल्लभ।
> मानुष जनम और हरि सेवा ब्रज बसिबो मोहि दीजै सुल्लभ॥

५ चरन कमलों का चिन्तन :—

> यह मांगौं संकरषन बीर।
> चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि भजन की भीर॥

६ लीला कथा का श्रवण —

> श्री भागवत श्रवण सुनि नित
> इन तजि चित कहूँ अनत न लावैं।

उपर्युक्त षडंग-सेवा-साधना के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने भक्ति-वृद्धि के लिए अभी सहज उपायों का अवलंब लिया है। उन्होंने यमुनास्तुति गंगास्तुति और ब्रजास्नान मे बड़ी आस्था प्रदर्शित की है। वे कहते हैं कि —

१ परमानन्द सागर से—पद संख्या ८४२।

पंचामृत छीरन प्रवाह मज्जन के भावन ।
मन कामना करो परिपूरन पावन मज्जन सुरसरि नीर ॥

यद्यपि संप्रदाय में यमुना की मान्यता बहुत अधिक है फिर भी यमुना के वर्णन से सम्प्रदाय में गंगा का भी महत्व माना गया है। इसीलिये 'गंगा दशहरा' का त्यौहार मनाया जाता है। इसी प्रकार उन्होंने सभी भगवद् भक्तों का आदर स्मरण किया है। अपने प्रसिद्ध पद 'जाके मनवा बसि भक्ति भली" में परीक्षित 'शुकदेव' व्यास प्रह्लाद पृथु, अक्रूर हनुमानजी अर्जुन बलि सभी का स्मरण करके व्रज गोपिकाओं को सर्वोपरि माना है। उनको तो प्रेम की ध्वजा ही कह दिया है। और अन्त में सहज प्रीति को ही आदर्श मानकर उसे ही प्रमुखता दी है। यह 'सहज प्रीति' भक्ति का बीज भाव है। वे कहते हैं :—

सहज प्रीति गोपालै भावै ।
मुख देखें सुख होय सखीरी प्रीतम नैन मिलावै ॥
सहज प्रीति कमल रवि मानें सहज प्रीति कमोदिनी अरु चन्द ॥
सहज प्रीति कोकिला बसंत सहज प्रीति राधा नन्द नन्द ॥
सहज प्रीति चातक अरु स्वाति सहज प्रीति कृष्ण अवतारै ॥
मन क्रम वचन दास परमानन्द सहज प्रीति कृष्ण अवतारै ॥ प सं २८६

जिस अनन्यता की चर्चा गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने चातक प्रेम में की है वही अनन्य प्रेम का आदर्श परमानन्ददासजी का भी है। यह वैधी भक्ति से आगे का सोपान है जिसमें लोक-वेद मर्यादा की सीमाओं का तिरोधान हो जाता है। और आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण अथवा आत्मनिवेदन होकर पराशक्ति की स्थिति आ जाती है। इसी पराशक्ति को लक्ष्य कर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने कहा था —

नातः परतरो मंत्रो नातः परतरः स्तवः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात्परम् ॥ (निरोध-२ )

अर्थात् इस पराभक्ति से बढ़कर न तो कोई मंत्र है न कोई स्तोत्र ही है। न कोई विद्या है। और न कोई तीर्थ ही है। इन परमानन्ददासजी भक्ति के माहात्म्य के विषय में पुकार कर कहते हैं :—

कमल नयन कमलापति त्रिभुवन के नाथ ।
एक प्रेम ते सब बने को कछु और हाथ ॥
सकल लोक की सम्पदा का आगे धरिए ।
भक्ति बिना मानें नहि जो कोटिक करिए ।
दान यज्ञादिक नेम है जोगी जिन करिए ।
परमानन्द प्रभु साँवरो पैयत बड़भाग । प सं ६६१

ऐसे ही वात्सल्य भाव हृदय को लक्ष्य कर किसी ने कहा है —

पुत्र पवित्र जननी हमारी
अनुचरा पुत्रवती च तेन ॥

बेनु बजावत गावत गावत यह विनोद सुख सार को।
परमानन्ददास की जीवनि रास परिग्रह सार को।

कृष्ण भक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण कवि के काव्य में मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि पुष्टि भक्ति के क्रमिक विकास का इतिहास ही परमानन्ददासजी के पदों का रहस्य है जिससे उनकी पुष्टिमार्गीय भक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

सत्य तो यह है कि परमानन्ददासजी भक्त पहले हैं बाद में और कुछ। दर्शन उन जैसे भक्तों का क्षेत्र नहीं था अतः उनमें दार्शनिक तत्वों का सांगोपांग निरूपण खोजना व्यर्थ होगा। काव्य रचना भी उनका उद्देश्य नहीं था। एकान्त भक्ति की भावुकता विह्वलता और प्रेमोन्माद में उनके मुख से जो भी निकला वही काव्य बन गया। वह सब भक्ति प्रधान है। उनके भक्ति भाव परक पदों में संगीत और काव्य गुण तो पांडित्यानुसारी भूषणों की भाँति पीछे लग चले आए हैं। उनमें न तो सूर जैसी सर्वांग-पूर्णता है न तुलसी जैसा मर्यादा-पालन न नन्ददास जैसा दर्शन-प्रेम। उनमें मीरा जैसा गोपी भाव है जो माधुर्य भाव से ओत प्रोत है। जिसकी तुलना अन्यत्र करना कठिन है। अतः अपने में तन्मय रहने वाले परमानन्ददासजी एकान्त भावुक भक्तों की अग्रतम कोटि में ही रखे जा सकते हैं।

---

# भगवल्लीला और परमानन्ददासजी

वार्ता में आया है कि दीक्षा के उपरान्त महाप्रभु वल्लभाचार्य ने परमानन्ददासजी को दशमस्कन्धकी अनुक्रमणिका का श्रवण कराया था। जिसे सुनकर उनके हृदय में भगवल्लीलाका स्फुरण हुआ था।[1] इसी भगवल्लीला को लेकर वे नित्य नये पद बनाते थे। अत विचारणीय है कि यह भगवल्लीला है क्या? जिसके महत्त्व में सूर परमानन्ददास आदि अष्टछाप के कवियों ने सहस्रावधि और लक्षावधि पदों की रचना कर डाली थी और फिर भी लीलारस का माधुर्य वाचातीत और अकथनीय ही रहा।

इस लीला-रहस्य की ओर संकेत करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक मार्मिक बात कही है। वे लिखते हैं —

"लीला भारतीय भक्तों की सबसे ऊँची कल्पना है। हम जानते हैं कि भगवान् अगम हैं अगोचर हैं अलख हैं, अनीह हैं। हम यह भी जानते हैं कि वे अनुभवैकगम्य हैं। साधक उन्हें अपने स्वरूप से ही समझ सकता है। वे बुद्धि के बुद्ध हैं अनिर्वचनीय हैं पर ये सब ज्ञान की बातें हैं।

भगवान ज्ञान से अगम्य हैं। क्योंकि ज्ञान बुद्धि का विषय है और बुद्धि हमारी सीमा को बतलाकर ही रुक जाती। बुद्धि से बढ़कर जो है वह आत्मा है—बुद्धेरात्मा महान्परः। भगवान का स्वरूप आत्मा से जाना जाता है अथवा अनुभव किया जाता है। भगवान् सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। आनन्द से ही उन्होंने सृष्टि रची है। वह स्वयं आनन्द रूप हैं अमृत रूप हैं— रसोवैस। और फिर भी रहस्य यह है कि वे रस पाकर ही आनन्दी होते हैं। ऐसा क्यों होता है रसस्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' ऐसा क्यों? क्योंकि यह सब मधुर लीलाधर का लीला की लीला है। लीला ही लीला का कारण है। लीला ही लीला का लक्ष्य। केवल भगवत्साक्षात्कार बड़ी बात नहीं है लीला बड़ी बात है। और भगवान का प्रेम।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण का तात्पर्य है —

---

1 "तब आचार्य जी ने आपु परमानन्ददास सों कहे जो परमानन्ददास बैठो। तब परमानन्ददास जी ... को ... ... बैठे ... श्री आचार्य जी आपु ... ... ... के परमानन्ददास ... सुनाइके श्रीसुबोधिनीजी को ... हृदय ... ... ... ... ... जो ... श्री भागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाय तब परमानन्ददासजी ने श्री ... ... ... ... के ... (श्री ... की वार्ता परीख ... पृष्ठ ... ४)

2 मध्यकालीन धर्म साधना—पृष्ठ १३१-१३२

१ लीला रसात्मक है आनन्दात्मक है।
लीला प्रयत्न में पूर्ण निरपेक्ष और स्वतन्त्र है।
३ लीला का कोई विम्ब कारण नहीं। वह नितान्त प्रभु इच्छा है।

४ लीला और भक्ति अथवा प्रेम में परस्पर गहरा सम्बन्ध है। अर्थात् लीला में चरम-आसक्ति ही चरम प्रेम है। लीला रस और भक्ति अपने अंतिम बिन्दु पर एक हैं। आगे चलकर आचार्य द्विवेदी 'लीला' के हेतु की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं :—

"यद्यपि अवतार का हेतु एक यह भी है कि धर्म की ग्लानि और अधर्म के अभ्युत्थान को भगवान् स्वयं आविर्भूत होकर दूर कर परन्तु मुख्य कारण तो भक्तों के लिए लीला का का विस्तार ही है।[१]

आचार्य द्विवेदी जी के कथन की पुष्टि करते हुए हम सम्प्रदाय के मार्मिक विद्वान् श्रीनीमनलाल शास्त्री का मत भी उद्धृत करते हैं — प्रभु गोस्वामी लीला भक्तोंने माटे करेछे। आ प्रमेय मार्ग छे। कृपा-साध्य मार्ग मां प्रभु पोताना भक्त ने तामस राजस सात्विक भाव दूर करी निर्गुण कैवी रीते करेछे तेते विचारिए। निर्गुणत्व पछीज फल मलेछे।

अर्थात् भगवान अपनी लीला भक्तों के लिए ही करते हैं। यह प्रमेय मार्ग है। अनुग्रह साध्य मार्ग में भगवान् अपने भक्त के तामस राजस सात्विक भाव दूर करके उसको निर्गुण कैसे बना देते हैं इसका विचार करिए। क्योंकि निर्गुणत्व प्राप्त होने पर ही फल मिलता है।"

उपर्युक्त दोनों विद्वानों के कथनों का तात्पर्य यही है कि लीला भक्तों के लिए है। और भक्तों में भी भक्ति के एकान्त-रागानुगा स्वरूप के स्थिरीकरण के लिए है। लीला का और कोई लक्ष्य नहीं है। न कोई अन्य प्रयोजन।

लीला की परिभाषा देते हुए श्रीसुबोध रत्नाकरकार ने लिखा है कि बिना आयास के स्वभाव से की गई चेष्टा का नाम लीला है।[२] एक दूसरे स्थान पर लीला को "कैवल्य" का स्वरूप बतलाया गया है।

लीला वस्तुतः भक्तों को लय करने के लिए है। इसका रस लय पर्यन्त पान करने योग्य है पिबत भागवत रसमालयम्। पहिले कहा जा चुका है कि श्रीमद्भागवत के १२ स्कन्धों के विषय क्रमशः विषय अधिकारी तथा सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वन्तर ईशानुकथा। निरोध मुक्ति तथा आश्रय है। इस क्रम से भगवल्लीला वाला दशम स्कन्ध "निरोध" विषयक है। इसका तात्पर्य है कि "भगवल्लीला" का उद्देश्य भक्तों का निरोध है। "निरोध" वाले दशम स्कन्ध के ० अध्याय (क्योंकि चीर हरण वाले तीन अध्याय महाप्रभु वल्लभाचार्य प्रक्षिप्त मानते हैं) पांच प्रकरणों में विभाजित है। उनमें भी प्रारम्भ के १ वें अध्याय से १२ वें अध्याय तक अर्थात् कुल ९ अध्याय तामस प्रकरण के हैं

---

१ बुद्धि मनोवैज्ञानिक रूप ११
२ "अनायासेन लोकिकस्मया चेष्टा या सा लीला श्री सुबोध रत्नाकर कारिका भाष्य [पृष्ठ—]
३ "कैवल्यं देशकर।

इन अध्यायों को तामस प्रकरण इसलिए कहा गया है कि उनमें व्रजलीला के अन्तर्गत निस्साधन भक्तों को नित्य लीला में ग्रहण किया है। निःसाधन व्रज भक्तों का निरोध दशमस्कन्धीय लीलाओं में हुआ है।[1] तात्पर्य यह है कि भगवान् ने जन्म से लेकर द्वारकागमन तक की संपूर्ण लीलाएँ व्रज भक्तों के आनन्द अथवा निरोध-प्राप्ति के लिए ही की हैं। उनमें भी व्रज लीलाएँ विशिष्ट भक्तों के लिए की थी। आचार्य वल्लभ ने यशोदोत्संगलालित" कृष्ण को ही सेव्य बताकर उन्हीं की सेवा अर्चा लाड़-प्यार और अष्टदर्शन की सेवा पद्धति से बाल-भाव की उपासना पर विशेष बल दिया था। उनके अष्टछापी चारों शिष्यों सूरदास परमानन्ददास कुम्भनदास और कृष्णदासादि का संपूर्ण काव्य इसी व्रजलीला (गोकुल लीला) में केन्द्रित है। इन कवि महानुभावों ने भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर मथुरागमन तक के अनेक प्रसंगों को लेकर 'सहस्रावधि" तथा 'लक्षावधि" पदों का "भावरत्नाकर" प्रस्तुत कर दिया था। और इसीलिए ये लोग सम्प्रदाय में "सागर" के नाम से विख्यात हुए। यह तो कहा ही जा चुका है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने केवल दो को दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाई थी। अतः इन दोनों महानुभावों का भगवल्लीला विषयक दृष्टिकोण वही था जो आचार्यश्री का। अतः पहिले आचार्य का लीला विषयक दृष्टिकोण और उसका वर्गीकरण समझ लेना चाहिए। तभी इन दोनों महानुभावों का लीला निरूपण बुद्धिगम्य हो सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध का तात्पर्य निरोध-लीला है। अर्थात् भगवान् प्रपन्न होकर भक्तों का निरोध करते हैं। इसीलिए प्रभु ने अनेक लीलाएँ की हैं। अतः आचार्य ने संपूर्ण दशमस्कन्ध को पाँच प्रकरणों में विभाजित किया है—

१ जन्म प्रकरण
२ तामस प्रकरण
३ राजस प्रकरण
४ सात्विक प्रकरण
५. गुण प्रकरण

इनमें तामस प्रकरण में वर्णित निरोध-लीला के चार प्रकरण हैं—

१ स्नेह
२. आसक्ति
३ व्यसन
४ फल

आचार्य ने अपने भक्तिवर्धिनी ग्रन्थ में प्रेम की तीन अवस्थाएँ बताई हैं —

व्यावृत्तोपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा।
ततः प्रेम तथासक्तिर्व्यसनञ्च यदा भवेत्॥

---

१ ये जन्माः स्कन्धे रचिताः स्फीतः तामस वर्णिताः।
तेषु सुखात्मा कृष्णः लीलानन्द निरोधनः॥
तेषां निरोधकः ह्यत्र लीलादि निरूपितम्॥
तैषामावरणं हरेन कदाचित् वर्ण्यते॥
सुबोधिनी दशमस्कन्ध अ. १—कारिका

तामसप्रकरण की लीलाएँ भी इसी प्रकार विभक्त हैं —

१ प्रेमलीला [प्रमाण] :—अध्याय ५ से ११ तक :—नन्द-महोत्सव पूतनावध शकटासुर, तृणावर्तवध मृद्भक्षणलीला यमलार्जुनउद्धार, वत्सासुर—बकासुरउद्धार।

२ आसक्ति लीला [प्रमेय] —अध्याय १२ से १८ तक :—धेनुकासुर-वध कालीनागमर्दन दावानलपान प्रलम्बासुरवध वेणुवादन।

[वस्त्रहरण के १६, २ २१ अध्याय महाप्रभु जी के मत से प्रक्षिप्त हैं]

३ व्यसन लीला [साधन] :—अध्याय २२ से २५ तक अथवा २८ तक — यज्ञपत्नीलीला विप्रपत्नियों पर अनुग्रह, गोवर्धनलीला वरुणलोक से नन्दराय जी का प्रत्यानयन गोपियों को वैकुण्ठ दर्शन।

४ फल लीला —अध्याय २९ से ३२ अथवा ३३ तक रास लीला से युगल गीत तक के प्रसंग इन्हीं चारों प्रकरणों को प्रमाण प्रमेय साधन और फल भी कहा जाता है।

## तामस प्रकरण के नामकरण का कारण —

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सुबोधिनी के ऊपर अपना टिप्पण देते हुए विशेष प्रकाश डाला है। उनका तात्पर्य है कि भक्ति-मार्ग का मुख्य सिद्धान्त है कि भगवान् पुरुषोत्तम ही एकमात्र फल हैं। उन्हीके संबंध से अन्यत्र भी फल प्राप्ति की बात कही गई है। यह पुरुषोत्तम रूपी फल प्राप्ति 'भाव' से ही होती है। उस भाव के लिए भावानुसार ही कार्य होते हैं अतः विविध जीवो मे जो सात्विक जीव हैं वे ज्ञान मार्ग की ओर झुके हुए होते हैं। अतः ज्ञान विहित मार्ग मे रुचि रखते हैं। उनमे स्नेह का प्रभाव होता है। राजस प्रकृति वाले कर्मो की ओर रुचि रखते हुए लौकिक कर्मों मे भी आसक्ति रखते हैं। अतः उनके चित्त मे विक्षेप बना रहता है। और चित्त मे स्थिरता नहीं होती। किन्तु जो तामस भक्त हैं उनमे ज्ञानादि का प्रभाव रहता है। वे एक प्रकार के मुग्ध होते हैं। लौकिक मे वे मूढ होते हैं अपनी बात के आग्रह के सिवाय वे कुछ समझते ही नहीं। अतः ऐसे तामस भक्तों के हृदय मे भगवान के लिए सहज स्नेह होता है। उन पर बाह्य प्रभाव नहीं होता। ज्ञानियो की भाँति उनके चित्त मे चंचलता भी नहीं होती। न कर्मी भाँति वे तर्क-वितर्क के भ्रम में पड़े होते हैं। अतः उनके भाव सरल सहज और पुष्ट होते हैं। ऐसे भक्तों को निरोध सिद्धि एकदम हो जाती है। वे अपने परमाराध्य प्रियतम के बिना और कुछ जानते नहीं। अत अपने हृदय का निखिल प्रेमो-भाव प्रभु के चरणों मे उँडेलकर वे निश्चिन्त हो जाते हैं। उनके निरोध मार्ग मे कोई अन्तराय नहीं आता है। यदिचैव् किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित हो भी जाय तो वह भगवद् इच्छा से स्वयमेव दब जाता है। और उन्हे निरोध-सिद्धि मे कोई कठिनाई नहीं होती।

व्रज भक्त तामस भक्त थे। उनके भाव इतने दृढ थे कि सिवाय भगवान् के उन्हें अन्य कोई बात सुहाती ही न थी। प्रभु ही उनका धर्म प्रभु ही उनका अर्थ प्रभु ही उनका काम और प्रभु ही उनका मोक्ष था। प्रभु के अतिरिक्त उन्हें न स्वर्ग की कामना थी न

तोष की न किसी अन्य ऐश्वर्य की । मुक्ति की तो उन्होंने पद-पद पर निन्दा की है । "मुकुति निरादरि भगति लुभाने" वाले सिद्धान्त वादी वे भक्त-स्वर्ग अपवर्ग और मुक्ति को भगवत्प्रेम के आगे तुच्छ गिनते थे ।[१] ये सब भक्त निर्गुण और निस्साधन थे । पुष्टिमार्ग मे साधन होते भी नहीं । मर्यादा मार्ग मे साधनो का बल होता है । अत श्रीमद्भागवत की तामस प्रकरण की लीला निर्गुणमार्ग की पुष्टि भक्ति की लीला है । यही समझना चाहिए ।

लीला रहस्य —आचार्य ने भगवल्लीला के पूतनाबधादि समस्त प्रकरणो के आध्यात्मिक रहस्यो को भी स्पष्ट किया है । जैसे पूतना को आपने 'अविद्या'[२] का नाम दिया है । अत भगवान् का प्राकट्य ही भक्तो को आनन्द देने के लिए और निरोध भक्तो की सिद्धि के लिए ही है । आनन्द का दान तथा निरोध पञ्चपर्वा अविद्या की निवृत्ति के बिना संभव नहीं अत सब प्रथम अविद्या रूप पूतना का ही उन्होने प्राण हरण किया था ।[३]

यह निरोध भी तीन प्रकार का है—[४]

१ वाचिक

२ कायिक

३ मानसिक

पूतनाबध वाचिक निरोध है । शकटासुर बध कायिक और तृणावर्त-बध मानसिक निरोध है ।[५]

इसी प्रकार भगवान ने मृत्तिका भक्षण द्वारा स्वमाहात्म्यज्ञान कराते हुए माता का मोह-नाश उलूखल लीला द्वारा मदनाश वत्सासुर बध द्वारा आसुर भाव का समूलोच्छेदन करते हुए लोभ तथा अहत्व का नाश किया है ।[६]

तात्पर्य यह कि समस्त दशमस्कंधीय लीलाओं का लक्ष्य निरोध सिद्धि और आनन्द सिद्धि के ही लिए है । यही भगवल्लीला रहस्य है । ये समस्त लीलाएँ क्रिया विभक्त हैं । स्नेह लीलाओं के उपरान्त आसक्ति लीलाएँ और उसके उपरान्त व्यसन लीलाएँ आती हैं । प्रारम्भ में भगवान् के प्रति वात्सल्यभाव तदुपरान्त सख्य भाव फिर माधुर्य भाव अथवा कान्ताभाव । यही भाव भक्ति का फल है । पुरुषोत्तम प्राप्ति ही फल है । अत कान्ताभाव ही उत्तोमोत्तम

---

१ न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥ [भाग ६।११।२५]

२ अविद्या पूतना प्रोक्ता पञ्चपर्वा निरोधिका । [illegible]

३ भगवान्भक्तानामानन्ददानाय निरोधार्थं च प्रकट इत्युक्तमपि पञ्चपर्वाविद्यानिवृत्तिं विना तद् संभवतीति प्रथममविद्यारूपा पूतनैव मारिता [टीका-त्रिविध नामावली]

४ वाचिकं कायिकं चोक्तं मानसं तृणवर्तहा-सुबोधिनी कारिका [illegible]

५ शकट भञ्जनं कायिकं [illegible] ।
गोकुलं [illegible] [illegible] वृन्दावन गमने सति [illegible] भगवद्दर्शनेन मनो [illegible] निरोधोपुक्त ।

६ [illegible] ॥ टी०—त्रिविध नामावली पृष्ठ ११

भाव है। अष्टछाप के कवियों में इसी कान्ताभाव तक प्रायः अपने काव्य को केन्द्रित रखा। उत्तरोत्तर भाव-वृद्धि इस बात की द्योतक है कि उनका लक्ष्य इस कान्ताभाव की ओर ही था।

## परमानन्ददासजीके लीला विषयक पद:—

आचार्य से दशमस्कन्धीय अनुक्रमणिका सुनने के उपरान्त परमानन्ददासजी ने उन्हीं लीलाप्रसंगों को लेकर जो पद रचना की और इस प्रकार "सहस्रावधि" पद बनाकर उन्होंने क्रमशः नवनीतप्रियजी और तदुपरान्त श्री गोवर्धननाथजी की कीर्तन सेवा की। अतः उन्होंने अपने लीलापरकपदोंमें श्रीमद्भागवत का और विशेष कर दशमस्कंध का ही अनुसरण किया है। सूरदासजी की भाँति परमानन्ददासजी के परमानन्दसागर का स्कंधात्मक अनुसरण उपलब्ध नहीं होता। मुख्य रूप से वे दशमस्कंध और उसमें भी पूर्वार्ध तक ही सीमित रहे हैं। अतः परमानन्ददासजी का व्रजलीला वर्णन उद्देश्य "निरोध सिद्धि" ही था। अन्य कुछ नहीं। उन्होंने परब्रह्म के अवतार का हेतु भक्त कल्याण ही माना है परन्तु लोक कल्याण को भी उन्होंने महत्व दिया है त्रिभुवन नायक कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ कमलापति विष्णु जो और अनुग्रहकारी हैं वही पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्मा इत्यादि देवताओं की प्रार्थना पर व्रज में वसुधा भार उतारने के लिए अवतीर्ण हुआ है —

"जो गोविन्द तिहारे कारन। १
.... .... .. ..
.. .. ..
ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ आये।
परमानन्ददास को ठाकुर बहुत पुण्य तप के फल पाये। प० सं० ७

तात्पर्य यह कि परमानन्ददासजी के आराध्य-नायक पूर्ण पुरुषोत्तम लीला-नायक परब्रह्म हैं। जो व्यापि वैकुण्ठवासी शेषशायी और अनुग्रहकारी भी हैं और विष्णु के अवतारी भी हैं। जो अपने चारों कर कमलों में शंख चक्र गदा पद्म धारण किये हुए हैं—

पद्म धर्यो कर ताप निवारन।
.. .... ....
.... .. ....
दीनानाथ दयाल जगत गुरु आरति हरत भक्त चिंतामनि।
परमानन्ददास को मधुर मौडर मो छाड़ो जिन। प० सं० ११

कवि ने यहाँ उस चतुर्भुज विष्णु भगवानकी ओर संकेत किया है जिसने कारागार में वसुदेव देवकीको दर्शन दिए थे भागवतकार लिखते हैं—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं।
चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्॥
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभम्।
पीताम्बरं सान्द्र पयोदसौभगम्॥ भाग० १ ।३।९

परमानन्ददासजी उस अवतारी भगवान् का गुण गान करते हैं जो परमतः ब्रह्म होकर भी नराकृति धारण करके जगत् को मोहित करने के लिए लीलावतारी है—

आनंद की निधि नंदकुमार।[१]

वही गोवर्धन गोप गोपीजन नंद यशोदा को आनन्द देने के लिए अवतीर्ण हुआ है। वही गोचारण मुरलीवादन करते हुए वृन्दावन में खेलता और खाता फिरता है। वही कवि का परमाराध्य है। इसी अवतारी ब्रह्म को लेकर कवि ने अपने लीला विषयक पदों का विस्तार किया है। और अपनी मौलिक उद्भावनाओं को रखते हुए भी भागवत के मूलाधार से न कहीं च्युत होता है, न विचलित।

अवतार का हेतु और अवतारी कृष्ण का स्वरूप स्पष्ट करने के उपरान्त परमानन्ददास जी ने पूतनाउद्धार, शकटभंजन, तृणावर्तउद्धार, नामकरणबाललीला, उलूखलबंधन यमलार्जुनउद्धार, वत्सासुर बकासुर उद्धार, अघासुर उद्धार आदि के साथ-साथ बाललीला दानलीला गोचारण मथुरा गमन कंसउद्धार उद्धव-गोपी-संवाद आदि प्रसंगों पर अनेक पदों की रचना की है। अतः जन्म से लेकर मथुरा गमन और गोपी-संवाद उद्धव-संवाद तक ही भक्त कवि की लीलागान सीमा है। उसके उपरान्त वे विनय दीनता और भक्ति-माहात्म्य से अपने 'सागर' का उपसंहार कर देते हैं।

तात्पर्य यह है कि अपने भगवल्लीला विषयक पदों के क्षेत्र में परमानन्ददासजी ने तत्परता के साथ श्रीमद्भागवत का अनुसरण किया है। उतना किसी अन्य कवि ने कदाचित् ही किया है। यहाँ हम उनके लीला विषयक पदों में श्रीमद्भागवत का अनुसरण देखने की चेष्टा करेंगे। क्योंकि कविने अनन्य 'कीर मुनि' और भागवत की महत्वपूर्ण चर्चा की है।

## श्रीमद्भागवतोक्त कृष्णलीला और परमानन्ददासजी

सूर के समान परमानन्ददास जी का 'सागर' भागवत की स्कन्धात्मक पद्धति पर नहीं। न वे भागवत के कृष्ण लीलातिरिक्त प्रसंगों का स्पर्श ही करते हैं। अतः उनका 'सागर' श्रीमद्भागवत का अनुवाद नहीं कहा जा सकता है। श्रीमद्भागवत की सर्व विलक्षण लीलाओं को न लेकर वे केवल श्याम स्वरूप की मनोभावना रूपी बाल पौगण्ड किशोर लीला को ही अपना काव्य लक्ष्य बनाते हैं। उनका उद्देश्य केवल मनोरथ सिद्धि था। परन्तु जहाँ उनका काव्य भागवल्लीला के लिए श्रीमद्भागवत पर निर्भर है वहाँ अभिव्यक्ति और उक्ति में पूर्ण स्वतन्त्र मौलिक और निरपेक्ष है। जहाँ जो लीलाएँ अधिक प्रिय और लोकमंगलकारिणी लगीं उन्हींमें उनका मन अधिक रमा। शेष प्रसंग केवल चरित-विकास मात्र की दृष्टि से है। उदाहरण के लिए जन्म और बधाई पर उनके अनेक पद हैं परन्तु इसी पूतना वधना पर बहुत थोड़े हैं। इसी प्रकार अन्यप्रायः बकासुर अघासुर आदि असुरों एवं शकट तृणावर्त देहली लंघन मृत्तिकाभक्षण आदि प्रसंगों की चर्चा मात्र है। परन्तु दान-लीला दधि-लीला माखन-लीला गोवर्धनलीला आदि प्रसंगों पर अनेक और लम्बे-लम्बे पद हैं।

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या २२

कमला कंत दियो हुँकारो यमुना पार दयो।

-- ---

परमानन्द दास को ठाकुर गोकुल प्रगट भयो।

श्रीमद्भागवत —

यदि कंसाद्बिभेषि त्वर्हिमा गोकुल नय। १४। ३। ४६
मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा।
गम्भीर तोयौघ जवोर्मि फेनिला॥
भयानकावर्त शताकुला नदी।
मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियःपतेः। १ ३। ५१

परमानन्दसागर

जनम लियो शुभ लगन विचार।

---

मुदित भए वसुदेव देवकी परमानन्द दास बलिहार। प सं ११

श्रीमद्भागवत

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंख गदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीताम्बरसान्द्र पयोद सौभगम्। १ ।३।९

परमानन्दसागर

घर-घर तें नर नारी मुदित चलि पूजन आयो है
गोप लोग समाज सब ब्रज राज पै धायो है। [पद सं ६]

श्रीमद्भागवत

गोपाः समाययू राजन् नानोपायन पाणयः। १ ।५।८

परमानन्दसागर

पूछे ग्वाला मानो रस भीते आनन्द पूछे काम।
हरद दूधि दधि गोरोचन छिरके मच्यो मदैया धाम॥

श्रीमद्भागवत

हरिद्रा चूर्ण तैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः।
गोपा परस्परं हृष्टा दधि क्षीर घृताम्बुभिः।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः। १ ।५।१४

परमानन्दसागर

दई मुकुन्द नन्द है मैया नन्द बढ़ायो स्वाप।
पूजो मनन बडी जन मानन पायो अपनो काम। पद सं २

श्रीमद्भागवत

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलंकृते।
नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकार गोधनम्।

सूत मागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ।।
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ।। १० । ५ । १५

परमानन्दसागर

हरि लीला गावत गोपीजन आनन्द में निसिदिन जाई ।
बाल चरित विविध मनोहर कमल नयन व्रज जन सुखदाई ।
दोहन मथन खंडन लेपन मंजन गृह सुत पति सेवा ।
चारि याम अवकाश नहीं पल सुमिरत कृष्ण देवदेवा ।

श्रीमद्भागवत

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप ।
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो ।
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयाना ।। १० । ४४ । १५

परमानन्दसागर

जसोदा बदन चूमि बार-बार नैन वारे ।
मधुपति की भांति वर्णौं मदन सुकुमारे ।
जो सुख ब्रह्मादिक को कबहूँ न दीनो ।
धरा द्रोण वसुआदिदर्शन दरस कीनो ।।

श्रीमद्भागवत

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ।
करिष्यमाण आदेशान् ब्रह्मणस्तमुवाच ह । १० । ८ । ४८

परमानन्दसागर

मात जसोदा दही बिलोवै प्रमुदित बाल गोपाल जस गावै ।

श्रीमद्भागवत

यानि यानीह गीतानि तद् बाल चरितानि च ।
दधि निर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत । १० । ९ । २

परमानन्दसागर

कश्यप पिता अदिति माता प्रकटे वामन रूप ।
आयो मास सुभग सुदी द्वादसी कीनो रूप अनूप ।

श्रीमद्भागवत

श्रोणायां श्रवण द्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः । ८ । १८ । ५

परमानन्दसागर

दधि मथति ग्वालि गर्वीली री ।
रुनक झुनक कर कंकन बाजे बांह डुलावति ढीली री ।
— — —
परमानन्द नन्दनन्दन को सर्वसु दियो है छबीली री ।

श्रीमद्भागवत

रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च ।
स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्मथन्त्य ॥
तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरि. ।
गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ॥ १ । ६ । १-४

परमानन्दसागर

चंचल भ्रमपल भुज हारावली बेणी बस लक्षित कुसुमाकर ।

श्रीमद्भागवत

स्विन्नं वक्त्रं कबर विगल न्मालती निमथन्त्य । [वही]

परमानन्दसागर

ऐसे लरिका कहूँ न देखे बाट मुबासिनाऊ की माई ।
माखन चोरत भाजन फोरत उगटि मारि दै भुरि मुसुकाई ।

श्रीमद्भागवत

मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डंभिनत्ति ।
द्रव्यालाभे सगृह कुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ १ । ८ । २९

परमानंदसागर

तेरे री लाल मेरो माखन खायो ।
भरी दुपहरी सब सूनोघर ढंढोरा अब ही उठि आयो ।

....

छींके ते काढ़ि खाट चढ़ि मोहन कछु खायो भू ढरकायो ।

.... ..

लरका साथ लाल सब बीनै रोकै रहत खाकरी खोरि ।

श्रीमद्भागवत

वृष्णस्या चितचमानुदिचि हीघु समागता ।

...

.... ... ..

ध्वान्तागारे धृत मणिगण स्वाङ्गमर्थ प्रदीपम् । १ । ८ । ३०

परमानंदसागर

द्वार उघारि खोल सबै बगरत बेगट गैयो चुरवाई ।

श्रीमद्भागवत

वत्सान् मुंचन् क्वचिदसमये क्रोशसंजात हास ॥

इस प्रकार बाल लीला प्रसंगों की भागवत में जहाँ गुम्फन चर्चा है वहाँ परमानंददास जी ने अनेक पदों में भगवान की बहुत लीलाओं का मार्मिक सरस हृदयग्राही वर्णन किया है ।

दधिमाखन छोड़कर ग्वालबालों पर दही छिड़क कर भाग जाना गोपों के वस्त्रों को यमुना में खोल देना बन्दरों को माखन खिला देना आदि अनेक सरस मधुर प्रसंग तो उन्होंने अनेक बार उठाये हैं। ऐसा विदित होता है कि प्रभु की इन ब्रज-लीलाओं में आनन्दित परमानन्ददासजी और अधिक आगे बढ़ना ही नहीं चाहते।

परमानंदसागर

काधारोहन माँगि सखीरी नन्द नन्दन सौं मैं कीनी ढीठी।

श्रीमद्भागवत

एवमुक्त: प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति।
ततश्चान्तर्दधे कृष्ण: सा वधूरन्वतप्यत। १ । ३ । ३८

परमानंदसागर

रास विलास गहे कर पल्लव इक इक भुजा ग्रीवा मेली।
द्वै द्वै गोपी बिच बिच माधौ निरतत संग सहेली।
ब्रज वनिता मधि रसिक राधिका बनी सरद की राति हो।
इक इक गोपी बिच बिच माधौ बनी अनुपम भाँति हो॥
—— —
निरखति क्यों ससि आइ सीस पर क्यों हूं न होत प्रभात हो।

श्रीमद्भागवत

रासोत्सव: सम्प्रवृत्तो गोपी मण्डल मण्डित:।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयो:। १ । ३३ । २

तथा

एवं शशांकांशु विराजिता निशा। १ । ३३ । २६

गोवर्धन लीला प्रसंग में तो परमानन्ददासजी ने अपनी मौलिकता और भागवत के आधार का इतना विचित्र समन्वय प्रस्तुत किया है कि पाठक मुग्ध होकर उनकी अभिव्यंजना शक्ति की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

परमानन्दसागर

यह विस्मय चित मोहि कौन की करति पुजाई।
जाकी सत है महा नहीं तुम ब्रजपति राई।
नाम कहा या देव को कौन लोक को राज।
इतनो बलि यह बात है हमारे कहा काज।

श्रीमद्भागवत

कथ्यतां मे पित: कोऽयं सम्भ्रमो व उपागत:।
किं फलं कस्य चोद्देश: केन वा साध्यते मख:। १ । २४ । ३

इसी प्रकार चीर-लीला में भी श्रीमद्भागवत का दृढ़ अनुसरण किया गया है।

परमानन्दसागर

परमानन्द प्रभु प्रेम चालि कै तमकि कंचुकी खोली।

श्रीमद्भागवत

पार्श्वस्थाच्युत हस्ताब्जं श्रान्ताधात्स्तनयोः शिवम्। १०। ३३। १४

परमानन्दसागर

कंठ बाहु धरि अधर पान दै प्रमुदित लेत बिहार को।

अन्यत्र

बाहु कंध परिरंभन चुम्बन महा महोत्सव रास बिलास।
सुर बिमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि परमानन्ददास।

श्रीमद्भागवत

अधाह बाहुना स्कंधं स्तब्ध इव मल्लिका।
कस्याश्चिन्नाट्य विक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितम्।
गण्डं गण्डे सन्दधत्या अदात्ताम्बूल चर्वितम्। १। ३३। १३

परमानन्दसागर

चंदन मिश्रित सरस कर चंदन देखत मदन महीपति भूल।
बाहु कंध परिरम्भन चुम्बन महामहोत्सव रास बिलास॥

श्रीमद्भागवत

चंदनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह। १। ३३। १२

वस्तुतः परमानन्ददासजी के लीला पदों की सीमा भगवान् के ६ ठ वर्ष तक ही सीमित है। ५ वें से ७ वें वर्ष तक की लीलाओं की तो इतनी पुनरावृत्ति मिलती है कि जिसके कारण इन्हें बाल और पौगण्ड अवस्था का श्रेष्ठ कवि माना जाता है। भक्तवर नाभादास जी ने इन्हें बाल और पौगण्ड अवस्था का विशेष कवि कह कर ही अपने भक्तमाल में प्रस्ताव किया है —

ब्रजबधू रीति कलियुग बिषे परमानन्द भयो प्रेम केत।
पौगण्ड बाल किशोर गोप लीला सब जाईं।
ब्रज बधू रीति कलियुग बिषै परमानन्द भयौ प्रेम केत। भ म प्र०–५५१

तात्पर्य यह कि पौगण्ड। बाल और किशोर लीला के अनन्य गायक परमानन्ददासजी ने श्रीमद्भागवत के इन श्लोक-सूत्रों के आधार पर अपने लीलासागर-परमानन्दसागर में अगत पदों की उद्भावना [भले ही वे आज उपलब्ध न हों] की है। आज कुछ ही प्रतिनिधि-पदों के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनका काव्य विषय ही ब्रजलीला था। उनका ब्रज-नित्य ब्रज है। गोवर्धन नित्य गोवर्धन है। लीला नित्य लीला है। जिसे वे आजीवन गाते रहे। वियोगी हरि के शब्दों में वे ब्रजलीला प्रेमी थे—

ब्रज लीलामृत रसिक रुचिर पद रचना नेमी।
गिरिधारन श्रीनाथ सखा वल्लभ पद प्रेमी।

पहले कहा जा चुका है कि परमानन्ददासजी ने अपने आराध्यकी लीला का गान बाल पौगण्ड और किशोर अवस्था तक ही सीमित रखा है। अतः उनके लीला विषयक पद निम्न विभाजित किये जा सकते हैं।

१ बाललीला विषयक पद।

२ पौगण्ड-लीला विषयक पद।

३ किशोरलीला विषयक पद।

किशोर लीला-पदों के अन्तर्गत राधा के प्रणय विषयक पद दानलीला मानलीला आदि वर्णन आते हैं। इसके उपरान्त मथुरागमन तथा ब्रज में उद्धवागमन उनके लीला-वर्णन के प्रसंग हैं। इसके उपरान्त दीनता और भक्ति विषयक पद हैं इन सभी पदों में वे श्रीमद्भागवत का पल्ला दृढ़ता से पकड़े हुए हैं। ऊपर बाललीला विषयक पदोंमें भागवत से साम्य प्रस्तुत किया जा चुका है। पौगण्डलीला के अन्तर्गत चीरहरण एवं गोवर्धन धारण आदि प्रसंग आते हैं। ये प्रसंग श्रीमद्भागवत से अधिक साम्य रखते हैं। उदाहरण के लिए —

परमानन्दसागर

मागरी मान मेरो कह्यो

... ... ...

प्रथम हेमन्त मास व्रत आचरि कत यमुना जल सीत सह्यो।
नन्द गोप सुत आनि कही बर माग अपनेई जु मह्यो।

श्रीमद्भागवत

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्द व्रज कुमारिका।

...

... ... ...

नन्दगोपसुतं देव पतिं मे कुरु ते नमः। श्रीमद् १ । २२। १-४

परमानन्दसागर

चिति दै रस पी रसिक बर।

... ... ...

... ... ...

गोवर्धन आपि उमीरी नन्द नन्दन सौं मैं कीनी डीठी।
जुवति बोलि को भावन अनुभव नाहि कछु करौं मीठी।

बाल पौगण्ड किशोर लीलाओं के अतिरिक्त कतिपय ऐसे तथ्य भी हैं। जिन्हें परमानन्ददासजी ने भागवत के ही आधार पर लिख लिए हैं। वसुदेव तथा नन्दादि गोप कंस को वार्षिक कर देने थे। इसकी चर्चा भागवत में भी मिलती है।

परमानन्दसागर

नन्दादिक सब ग्वाल बुलाए अपनी वार्षिक देन।

श्रीमद्भागवत
करो मे वार्षिको दत्तो राज्ञे इष्टा यर्थं च यः ।

भागवत से निरपेक्षता—उपर्युक्त कतिपय उद्धरणों में परमानन्दसागर और श्रीमद्भागवत में परस्पर लीला-साम्य दिखलाया गया है। परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि परमानन्दसागर श्रीमद्भागवत की छाया मात्र है। परमानन्दसागर मे तीनों ही प्रकार की लीलाओं-बाल किशोर और पौगण्ड मे कवि की अनेक मौलिक कल्पनाएँ भी हैं। इसके अतिरिक्त राधाअष्टमी के पद दानलीला घटाओं के पद माघ के पद पलिका राखी बधाई दशहरा धनतेरस रूपचतुर्दशी देवोत्थापिनी भोगी सक्रान्ति मकरसंक्रान्ति बसन्तोत्सव होरी धमार चाचर संवत्सर, रामनवमी अक्षय तृतीया स्नान यात्रा फूलमंडली आदि प्रसंगों के पद उनकी मौलिक उद्भावनाओं के उत्तम उदाहरण हैं। भागवत मे उक्त प्रसंगों की चर्चा नहीं। ये अन्य पुराणसंहितादि के आधार पर हैं।

इसके अतिरिक्त महाप्रभु वल्लभाचार्य का स्मरण गुसाईंजी की बधाई आत्मनिवेदन राम भोग शृङ्गार ग्वाल संडिता हिलग आदि के पद भी उनके स्वतंत्र प्रसंग हैं।

मथुरागमन कंस-वध उद्धवागमन आदि यद्यपि श्रीमद्भागवत के ही प्रसंग हैं तथापि इनमे कवि की मौलिक कल्पना देखने योग्य है। सूर की भाँति भक्तवर परमानन्ददासजी ने भ्रमरगीत तथा स्त्रीय दैन्य परक पदों मे हृदय निकाल कर रख दिया। यद्यपि परमानन्ददासजी का भ्रमरगीत सूर की अपेक्षा अत्यन्त संक्षिप्त है।[1] फिर भी विरह की चरम अनुभूति मे जो निर्वेद पूर्ण दयनीय दशा हो जाती है उसकी अभिव्यक्ति मे उच्चकोटि का कौशल दिखलाया गया है। तात्पर्य यह कि परमानन्ददासजी ने यद्यपि भागवत का अनुसरण किया है तथापि अपनी मौलिकता उन्होंने सर्वत्र सुरक्षित रखी है। सूर की भाँति वे अपने काव्यक्षेत्र मे पूर्ण स्वतंत्र एवं निरपेक्ष रहे हैं। वस्तु का उन्होंने कविसुलभ-मौलिक-अधिकार के साथ उपयोग किया है।

परमानन्ददासजी के भ्रमरगीत परक पदों से भागवत का साम्य प्रायः नहीं के बराबर है इसके अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने पुष्टिमार्गीय परंपरानुसार राधा को स्वकीया माना है। राधा की उन्होंने स्थान-स्थान पर चर्चा की है। किन्तु श्रीमद्भागवत में राधा की स्पष्ट चर्चा उपलब्ध नहीं होती।

अनयाराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नोविहाय गोविन्द प्रीतो यामनयद् रहः ॥ भा १०।३०।२८

विद्वानों ने इस श्लोक से भागवत मे राधिका के दर्शन की कल्पना करली है। परन्तु वस्तुतः राधा का स्पष्ट उल्लेख भागवत में नहीं है। परमानन्ददासजी ने राधाको भगवान् की आद्या

1 [भक्त परमानन्ददासजी विप्रलम्भ की अपेक्षा संयोग—शृङ्गार के ही मुख्य कवि हैं जब कि सूर विप्रलंभ के—लेखक]

भक्ति अथवा ह्लादिनी शक्ति के रूप में ग्रहण कर उनके जन्मोत्सव से लेकर विवाह और प्रथमसमागम तक की चर्चा कर डाली है। यह सब उन्होंने भी सुबोधिनीजी के आधार पर किया है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी में राधा के स्वरूप की अवधारणा की है और इसीलिए संयोग-रसरसिक परमानन्ददासजी ने अपने सागर में 'राधा-प्रकरण' को महत्त्व दिया है। वस्तुतः आचार्य वल्लभ यदि सूत्रात्मक हैं तो सूर—परमानन्द भाष्यात्मक। इसी प्रकार चीरहरण प्रसंग में कवि ने गोपियों की कृष्णासक्ति ही दिखलाई है। भागवत में जो उपदेशात्मक अंश है उसे कवि की सरस प्रेमाभिव्यक्ता ने दबा दिया है। पूतना-वध शकट-भंजन तृणावर्तउद्धार, बकासुर-अघासुरमर्दन कालीनाग विध्वंसन का कवि ने मार्मिक चर्चाएँ भर करदी हैं। भागवत की भाँति इन्हें सुव्यवस्थित रूप में नहीं दिए। न इनके प्रति कवि का आध्यात्मिक धर्म का मोह ही दिखाई देता है।

कवि ने दोही प्रसंगों पर अधिक महत्ता दी है। रासक्रीडा तथा गोवर्धन धारण। रासक्रीडा गोपी प्रेम का परमोत्कर्ष है। अतः कवि ने इसे बड़ी सरसता से वर्णित किया है। गोपी प्रेम कवि की भक्ति का आदर्श था ही। दूसरा जो लम्बा प्रसंग कवि ने लिया है। वह है गोवर्धन-पूजा का। गोवर्धन पूजा का दार्शनिक दृष्टिकोण जो भागवतकार ने लिया है उसे परमानन्ददासजी ने नहीं लिया। न ही वे भगवान् कृष्ण द्वारा प्रस्तुत कर्म आर्य वाले तर्क को प्रश्रय देते हैं। कवि को तो गोवर्धन पूजा प्रसंग निःताप इन्द्रमान-मर्दन और लोकरक्षण विशेषकर व्रज और व्रज भक्तों के रक्षण के कारण ही प्रिय था। इसलिए उन्होंने इस प्रसंग को उठाया और विकसित किया। अपने परमाराध्य श्री वल्लभजी और गुरुदेव वल्लभाचार्य के इष्टदेव श्रीनाथजी की लीला भूमि होने के कारण गोवर्धन के प्रति कवि की प्रगाढ़ पूज्य बुद्धि रही है। अतः 'शैलोऽस्मि'[1] कह कर जिस पर्वतकी स्वयं भगवानने अपना विग्रह स्वीकार किया है उसकी महत्ता से अभिभूत होकर कवि ने इस प्रसंग को पर्याप्त बढ़ाया है व्रजवासियों को देवयज्ञ करते देख कर भगवान् ने प्रश्न किया है और नन्द उसका उत्तर देते हैं आगे चलकर भगवान् अपनी योग माया से उनकी बुद्धि फेर कर उन्हें गोवर्धन पूजा के लिए राजी कर लेते हैं। भागवत में भी नन्द और श्रीकृष्ण का यही प्रश्नोत्तर है। किन्तु योगमाया से बुद्धि फेरने की चर्चा वहां नहीं। वहां श्रीकृष्ण कर्म वाद पर ही बल देते हैं कर्मैव गुरुरीश्वर ।[2] कर्मवाद की इस प्रधानता को परमानन्ददासजीने नहीं लिया। इसी प्रकार भागवत में भगवान् श्रीकृष्ण योगेश्वर कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थ सर्वशक्तिमान के रूप में चित्रित हुए हैं। किन्तु परमानन्ददासजीने अपने आराध्य को रसिक शिरोमणि बहुनायक भक्त पराधीन राधा-सर्वस्व व्रज वत्सल विलास-लीलानायक ही चित्रित किया है।

१ देवतासुभावन तनु प्राप्नोत्युचितं सर्वदा
तापुर्दिवद्ब्राह्मी यदैव गुरुमित्र । श्रीमद्भागवत १ । १९।१२

२ श्रीमद्भागवत—१ १०।१२

रसात्मा रसेश श्रीकृष्ण की सहचरियों एवं स्वामिनियों—ललिता चंद्रावलि राधा आदि की चर्चा उन्होने भागवत से पूरा स्वतन्त्र होकर की है। इसी प्रकार खंडिता आदि के पद दानलीला के पद परमानन्ददासजी मौलिक उद्भावनाएँ हैं। इनमे परमानन्ददासजी की भाव प्रवणता सरसता तथा आध्यात्मिकता का अच्छा परिचय मिलता है। गोपी-प्रेम तो कवि का सर्वस्व और उसकी अपनी ही वस्तु है। सर्वत्र वही स्वरूपासक्ति वही आत्म समर्पण भावना और वही आराध्य के प्रति पूर्ण विनियोग। परमानन्दसागर मे राधा-कृष्ण प्रेम के सरस मधुर प्रसग इतने लौकिक पुट मे चित्रित हुए हैं कि उन्हे लोक-दृष्टि भक्ति क्षेत्र मे ले जाते हुए संकोच खाती है और अश्लीलता का आरोप करती है परन्तु यह कवि की एकान्त भावना और सम्प्रदाय का कठोर भक्ति पद्धति का अनुसरण है।

परमानन्ददासजी ने भागवत के बहुत से प्रसगो का ग्रहण नही किया है। जैसे मन्त्र हरण वस्त्रहरण यज्ञपुरुष आदि के प्रसग। वेणु अथवा मुरली को कवि ने सूर की भाँति स्वतत्र रूप से लिया है। किन्तु सूर की तरह न तो उसे सौतिया रूप दिया है न ही उसे नाद ब्रह्म का प्रतीक माना है। वेणु अथवा मुरली प्रसग मे भी गोपी-प्रेम की उत्कृष्टता और कृष्ण का भुवन मोहन रूप का ही प्रतिपादन कवि का लक्ष्य रहा है।

रास हिंडोले आदि के प्रसगो म भी परमानन्ददासजी के स्वतन्त्र प्रसग हैं। यह प्रसंग इतने सरस मधुर और जन-मानस के लिए मोहक हैं कि पाठक भाव-विभोर होकर कुछ क्षणों के लिए उनका परब्रह्ममाहात्म्य भूल जाता है।

परमानन्दसागर का मथुरा-गमन प्रसग तथा व्रज मे उद्धवागमन भागवत के अनुसार होकर भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। यह प्रसग परमानन्ददासजीने सक्षिप्त ही रखा है। बस इसके उपरान्त कवि के उपलब्ध सागर म दशमस्कध के उत्तरार्ध की लीलाएँ नहीं मिलती।

तात्पर्य इतना ही कि यदि परमानन्ददासागर और श्रीमद्भागवत की तुलना की जाय तो हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं —

१ परमानन्दसागर स्वतन्त्र भागवत निरपेक्ष गेयशैली मे लिखा हुआ होकर भी दशमस्कध की लीला प्रधान वस्तु पर आधारित है।

२ उसमे कथात्मक पद्धति का अभाव है।

३ परमानन्दसागर मे श्रीकृष्ण की बाल पौगण्ड किशोर लीलाओ की चर्चा है।

४ इसमें अन्य पुराणो का श्रीकृष्णाख्यान तो है पर अन्य कथाओं का अभाव है।

५. परमानन्दसागर में जो यत्किंचित् प्रबन्धात्मकता है वह श्रीकृष्ण लीलाओं को लेकर ही है।

सप्तम अध्याय

# परमानन्दसागर में श्रीकृष्ण, राधा, गोपियाँ, राम, मुरली और यमुना

श्रीकृष्ण—

परमानन्ददासजी का सम्पूर्ण काव्य पुष्टि संप्रदाय की परम मर्यादा लिए हुए है। आचार्य वल्लभसे दीक्षा लेने के उपरान्त वे संप्रदायसे इतने अभिभूत होगये थे कि उस पथमार्गको छोड़कर वे एक इंच भी इधर-उधर नही हटना चाहते थे। अतः कृष्ण राधा गोपी राम मुरली आदि सभी के विषय में उनकी सम्प्रदायानुसारिणी मान्यताएं हैं।

गोपालतापिनी उपनिषद् में 'कृष्ण' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है —

कृषिर्भू सत्ता वाचक णश्च निर्वृति वाचकः।
तयोरैक्यं परंब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥

इसी श्लोकको 'श्रीकृष्ण शब्दार्थ निरूपण' ग्रन्थ में श्रीहरिरायजीने भी उद्धृत किया है। इसका तात्पर्य है कि 'कृष्' धातु सत्ता वाचक है और 'ण' आनन्द वाचक है। ये दोनों मिलकर 'कृष्ण' बनते हैं जो परब्रह्म के वाचक हैं।[1] अब प्रश्न है कि यह सत्ता किसकी? उत्तर में हरिरायजी आगे कहते हैं कि यह सत्ता रस की समझनी चाहिये।[2] गोपीजनों के हृदय में विराजने वाली रससत्ता का ही नाम 'कृष्ण' है।[3] इस रससत्ता से जो आनन्दरूप प्रगट होता है वही 'कृष्ण' है। यह संदानन्द स्वरूप है। 'कृष्ण' श्रुति स्मृति प्रतिपादित परमानन्द का ही नाम है। यह परमानन्द अथवा परमतत्त्व भूतमात्र के अन्तःकरण में स्थित है। और सर्वव्यापी घट-घटमें निवास करने वाला है। वे कहते हैं (१) "यह जगत् जो भगवान् का प्रपंच कार्यरूप है नित्य है और भगवद्रूप है वही सर्व वेदान्तवेद्य है इसके अन्तःस्थित कूटस्थ सच्चिदानन्द और अव्यक्त होते हुए भी वह व्यक्त आनन्दरूप भगवान् है। यह जगत् इसका चरण रूप लोक अथवा उसका निवास स्थान अथवा आधार रूप ब्रह्म है। इससे स्थितिकरनेवाला लोक और वेद से परे पुरुषोत्तम रसात्मा है इसीलिए उसे प्रकार रस रूप सभी ने माना है।[4]

---

१ कृषिम् वाचक शब्द इति मुर्त्यन्तरेण च। सदानन्दो हि भगवान् पूर्ण कृष्णो निरूपित
श्रीकृष्ण शब्दार्थ श्लोक—१।

२ सत्ता सदानन्द इति निरूर्ण नैव युज्यते।
रसरूपत्वरसात्मात्वोच्यते अति वही श्लोक २

३ तत् कृष्ण सदानन्द स्वामिनी हृदयाश्रिता।

४ यतो अयत्नाबलथा नित्यलीलात्मकः
सत्र वेदान्त वेद्योऽपि तत्र स्थितिरक्षया ॥१॥
कूटस्थः सच्चिदानन्दरूपमव्यक्तो व्यक्त तथाप्य।
पुरुषोत्तम रूपापि तत्स्वोऽन्तरस्य चात्मनः। २
यतस्तस्यो लोके वेदेऽपि च पुरुषोत्तमः।
न लोकवेदयोरस्य अक्षर सत्यस्य ॥३॥
सर्वात्मनो सर्वान्तरः निरूपणम्।

यह रसात्मा सिद्ध पुरुषोत्तम रूपवान होकर भी अनन्त शक्ति सम्पन्न अप्राकृत चिदानन्द रूप लोक-वेदातीत अपने व्यूहो से युक्त होकर वसुदेवके घर मे उत्पन्न हुआ। यह रसैक श्रीकृष्ण लौकिक इन्द्रियादिकों से गम्य नही। इसे प्रत्यक्ष करनेवाली इन्द्रियाँ अलौकिक होनी चाहिये। अत व्रज सीमान्तिनियो अथवा गोपीजनो मे भगवान् के साथ जो रसात्मक संयोग किया वह भावात्मक संयोग है। श्रीकृष्ण अन्त स्थित रस स्वरूप है। इस प्रकार संप्रदाय मे श्रीकृष्ण साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम के तीन रूप हैं।

१ आधिभौतिक-नारायण लक्ष्मीपति (क्षरस्वरूप)।

२ आध्यात्मिक-अक्षर ब्रह्म।

३ आधिदैविक-पुरुषोत्तम।

भगवान् श्रीकृष्ण विषयक साम्प्रदायिक मान्यता के आधार पर यदि हम परमानन्द दासजीके वर्णित श्रीकृष्ण पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि उनके श्रीकृष्ण सम्प्रदाया-नुकूल रसात्मा रसैक भावनिधि परम कारुणिक लोकवेदातीत शृंगाररूप गोपीजन वल्लभ भक्तप्रिय आनन्दरूप भावात्मा कृष्ण हैं जो पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं और नित्यलीला नायक हैं :—

१ सो गोविंद तिहारे बालक।
प्रकट भए घनस्याम मनोहर धरे रूप अनुकूल कायक।
कमलापति त्रिभुवन नायक भुवन चतुर्दस पति है सोई।
जगपति प्रकट काज को करता जाके किये सब कछु होई।
सुनो नन्द उपनन्द तथा यह आयो छीर समुद्र को वासी।
वसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म वैकुण्ठ निवासी।
ब्रह्म महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ आये।
परमानन्ददास को ठाकुर बहुत पुन्य तप कै तुम पाये।

प्रस्तुत पद मे परमानन्ददासजीने उसी परब्रह्म भुवन चतुर्दस नायक क्षीरसागर में निवासी की चर्चा की है जो वैकुण्ठ मे भी रहता है। यही भूभार उतारने के लिए व्रज मे अवतरित हुआ है। परमानन्ददास का ठाकुर यही है

"प्रकट भए हरि श्रीगोकुल मे।
परमानन्ददास को ठाकुर प्रगटे नन्द जसोदा के गृह में'

अवतार लेकर भी यह अजन्मा है।

नन्द महोत्सव हो बड़ कीजै।

.... .... ..

बाजो बाजो करो बधाई अजनम जनम हरि लीनों।
यह अवतार बाल लीला रस परमानन्द ही दीनो।

श्रीकृष्ण विषयक साम्प्रदायिक भावना का यह अपूर्व निर्वाह भागवत में चित्रित श्रीकृष्ण के अनुसार ही है। अत भागवत के अवतारी कृष्ण और पुष्टि संप्रदाय मे मान्य लीलानायक कृष्ण मे कोई तात्विक अथवा मौलिक अन्तर नहीं।

आचार्य ने स्पष्ट कहा है जो यमुना में ब्रज में यशोदा गृह में गोवर्धन वन तथा वृन्दावन में जो पुष्टि स्वरूप है वह सर्वथा पूर्ण है।[1] नन्द के घर में जो मर्यादा पुष्टि स्वरूप है वह षडावरण युक्त होता है।[2] इसका आभास पूतना वध लीला में मिल जाता है। ऊपर कहा जा चुका है—सम्प्रदाय में लक्ष्मीपति नारायण पुरुषोत्तम का आधिभौतिक स्वरूप है। इसीलिए इन अष्टछापी भक्तों ने अपने पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण के साथ उनके नारायणत्व की भी चर्चा की है। परमानन्ददासजी कहते हैं—

> अब यह नाम तुम्हारे सुत को सुनि चित दे नन्द।
> कृष्ण नाम केशव नारायन है हरि परमानन्द॥
> पद्मनाभ माधो मधुसूदन वासुदेव भगवान्।
> और अनन्त नाम इनके हैं कहाँ कहाँ लौं गान॥ प. सा. पद २९

तात्पर्य यह कि परमानन्ददास जी के कृष्ण रसात्मा लीलात्मक निकुंजविहारी होकर भी भवभयहारी दुष्ट संहारक हैं। इसीलिए कवि भगवान के लोकमंगलकारीस्वरूप को भी कभी नहीं भूला है। और इसी कारण गोवर्धनलीला से वे अत्यन्त प्रभावित थे। जल-वर्षा की विभीषिका की कल्पना करके अपने प्रिय व्रजभक्तों की रक्षा के लिए भगवान् का गोवर्धन को उठाने का यह कार्य भक्तकवि को अतिशय प्रिय लगा था। अत सभी भक्त कवियोंने और विशेष कर परमानन्ददासजीने इस लीला की बार-बार महिमा गाई है। इसीलिए श्रीकृष्ण के लोकमंगलस्वरूप गोवर्धनधरण का विग्रह—श्रीनाथ स्वरूप—उनका परमाराध्य था। इस लीला को उन्होंने बड़ा विस्तार दिया है।

तात्पर्य इतना ही कि परमानन्ददासजी के कृष्ण परब्रह्म पुरुषोत्तम वैकुंठ निवासी क्षीरसमुद्रवासी निकुंज नायक पुरुषोत्तम लीला अवतारी हैं। जिनके लिए श्रुतियाँ नेति नेति कहती हैं वे भक्तों के लिए नर लीला करते हैं और गोपीजनों के साथ क्रीडा की। लीला वर्णन में परमानन्ददासजी अपने कृष्ण को लोकोत्तर नहीं बना बैठे। वे भक्तों की पीड़ा का अनुभव करते हैं साथ ही गोपियों के मनोभावों को भी जानते हैं।

## श्रीराधा—

परमानन्ददासजी ने कृष्ण जन्म की बधाई की ही भाँति राधा अष्टमी (भाद्र शुक्ल अष्टमी) की बधाई भी गाई है। राधाके जन्म महोत्सव से लेकर उनके श्रीकृष्ण के साथ विवाह पर्यन्त अनेक पद परमानन्दसागर में उपलब्ध होते हैं। अत इन्होंने श्रीराधा को अत्यन्त महत्व दिया है। अत विचारणीय है कि कवि ने राधा तत्व का समावेश कहाँ से किया। क्योंकि कवि लीलागान में कठोर भागवतानुसारी है। और श्रीमद्भागवत में श्रीराधा की चर्चा स्पष्ट रूप से कहीं भी उपलब्ध नहीं होती। 'अनयाराधितोनूनम्' में 'राधा' की खींचतान को इतना-निर्णयकारिणी कल्पना ग्रहण करने को प्रस्तुत नहीं होती। अत स्पष्ट

---

१ गोकुले तु ये ये गोवर्धने तथा अपि वृन्दावने चैव पुष्टि स्वरूपं भवति स पूर्णस्तु सर्वेश। सुबोधिनीटीका।

२ "नन्द गेहस्थितो मर्यादा पुष्टिस्वरूपं भवति तस्य सर्वावरणे षडावरण युक्तं भवति। प्रथमावरणे-पूतना। [illegible] वायु [illegible] प्रथमावरणं [illegible] अष्टौ। [illegible] इत्यादि [illegible] सर्वावरण युक्त भगवान् षडावरणोपेत।" सुबोधिनीटिप्पण।

है कि राधा के संबंध मे कवि ने ब्रह्मवैवर्त पद्मपुराणादि का समागम किया है। उधर सूर साम्य के प्रचेताओं ने सूर की राधा विषयक कल्पना उनकी अपनी विशेषता बतलाई है। पाश्चात्य विद्वानों ने राधा विषयक कल्पना ईस्वी शताब्दी के बाद की बतलाई है। क्योंकि वेदो तक राधा का नाम घसीटना अनेक विद्वानों को मान्य नही। इस विषय में डा हरवंशलाल शर्मा लिखते हैं— यद्यपि पौराणिक पंडित राधा का संबंध वेदो से लगाते हैं परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव में कृष्ण की प्रेमिका राधिका को वेदो तक घसीटना असंगत ही प्रतीत होता है। गोपाल कृष्ण की कथाओ से पूर्ण भागवत हरिवंश और विष्णुपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों मे राधा का अनुल्लेख अनेक प्रकार के सन्देहो को जन्म देता है। गोपालतापिनी नारद पंचरात्र तथा कपिल पंचरात्र आदि ग्रन्थ इस विषय मे प्रामाणिक नही कहे जा सकते। क्योंकि वे बहुत बाद की रचनाएं हैं। राधा कृष्ण का उल्लेख हाल की गाथा सप्तशती में है। पद्मपुराण मे भी राधा का उल्लेख है। [1] आदि। ईस प्रकार डा शर्मा राधा की कल्पना को बहुत परवर्ती मानते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण के उत्तर खण्ड मे राधा का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

डा हजारीप्रसाद द्विवेदी ने राधा को भागवत सम्प्रदायके पुनरुत्थान युग १४ वी शताब्दी की कल्पना मानकर उनकी भावात्मक सत्ता मानी है। डा शर्मा का निष्कर्ष है कि राधा की भावात्मक सत्ता ब्रह्मवैवर्त से पहिले से चली आरही थी और ब्रह्मवैवर्त पुराण तक आते-आते उस पर धार्मिक छाप लगादी गई।[2] सूर से पूर्व राधाके स्रोत—डा शर्मा ने ब्रह्मवैवर्तपुराण और जयदेव का गीतगोविंद को ही माने हैं इसके अतिरिक्त विद्यापति चण्डीदास पर वे गीत गोविंद का प्रभाव मानते हैं। रूप गोस्वामी—जिन्होने राधा के शास्त्रीय रूप पर बल दिया है—सूरके समसामयिक कहे जाते हैं। निम्बार्क सम्प्रदायके भट्टजी का युगलशतक सं १३५२ का है अतः जयदेव से सूर के काल तक राधा विषयक अनेक ग्रन्थों के प्रणयन का अनुमान करके भी डा शर्मा ने सूर की राधा का स्रोत ब्रह्मवैवर्तपुराण ही माना है। और कतिपय मौलिक कल्पनाओं के साथ सूर पर जयदेव विद्यापति और चण्डीदास के प्रभाव को माना है।

वस्तुत यहाँ राधा का मूल स्रोत बताना मेरा प्रकृत विषय नही परन्तु इतना अवश्य है कि श्रीमद्भागवत पुराण अपने विषय की दृष्टि से पुरातन सनातन होकर भी वर्तमान रूप की दृष्टि से ८ वीं ६ वी शती से पूर्व नहीं जाता। अन्य सभी पुराण उससे पूर्ववर्ती हैं। सभी प्रमुख पुराणो का उल्लेख श्रीमद्भागवत मे मिल जाता है। अतः पुराणो का प्रणयन काल उपनिषद् और स्मृति काल से लेकर श्रीमद्भागवत के काल अर्थात् ८ वीं शती तक तो माना ही जा सकता है। यदि भागवतान्तर्गत पुराणो की सूची[3] को कालक्रमानुसार मानें तो पद्मपुराण ब्रह्मपुराण के अपरान्त दूसरे नम्बर पर आता है। पद्मपुराण का काल ८ वीं शताब्दी से कई शताब्दी पूर्व होना ही चाहिए। पद्मपुराण के तृतीय ब्रह्मखण्ड के ७ वें अध्याय में राधा-जन्माष्टमी की महिमा वर्णित है। इस प्रकार राधा की न केवल भावात्मक सत्ता ही अपितु ऐतिहासिक सत्ता नवीं शताब्दी से कई शताब्दियों पूर्व भी है। श्रीमद्भागवत में राधा के उल्लेख न होने के कई कारण हैं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि "राधा

१ सूर और उनका साहित्य। पृ १६२
 वही
२ श्रीमद्भागवत—१२ १३ ४—६

## परमानन्ददासजी की राधा का स्वरूप —

प्रारम्भ से ही कवि ने अपने 'सागर' में कृष्ण की भाँति राधाजन्म महोत्सव पर बधाई लिखी है। रसिकिनी राधा भी पालने में झूल रही है —

"रसिकिनी राधा पलना झूले।
देखि-देखि गोपीजन फूलें॥

आगे चलकर लाडिली किशोरी राधा के चरणों को कवि ने 'सुरतसागरतरन'' कह कर नमस्कार किया है —

जय जय लाडिली के चरन।
नन्द-सुत-मन मोदकारी 'सुरतसागर तरन' ॥

इसी से कवि का रसात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। कवि ने तो 'स्याम ताकी सरन'' कहकर राधा को श्याम से अधिक महत्त्व दे दिया है। आगे चलकर राधा भोरी सयानी होती है और वे हिण्डोले में झूलती हैं। उनके दिव्य सौंदर्य पर उमा-रमा और रति न्यौछावर करने योग्य हैं। अखिल भुवनपतिने उन्हें अपने हाथ से सवारा है।[1] वे साक्षात् नव निकुञ्ज की शृंगार रूपा हैं।

"अबयलो नव कुञ्जकी सिंगार।"

क्रमशः राधा और बड़ी होती हैं। गोपिकाओं के साथ यमुना पर जल भरने जाती हैं। दधि बिलोती हैं। अचानक उन्होंने एक दिन यमुना-स्नान करने के उपरान्त कृष्ण को देख लिया है। बस उन लावण्य-निधि पर वे सदैव के लिए निछावर हो गईं। राधा माधव की हो गईं, और माधव राधा के। क्रमशः रति परिपक्व हो कर क्रमशः व्यसनरूपा हो गई। और अब एक पल भी एक दूसरे के बिना रहा नहीं जाता।

"राधा माधव सों रति बाढ़ी।
..
चाहति मिल्यो प्राण प्यारे को परमानन्द गुन गाढ़ी॥

मुग्धा राधा अहर्निश श्यामसुन्दर का ही चिन्तन करती है। यह पुरातन प्रीति है। एकाकी नहीं है। रसिक शिरोमणि गोपालको भी राधा बहुत ही भाती है।

"राधा रसिक गोपालहि भावै।"

इधर राधा भी माधव के बिना नहीं रह सकती।

राधा माधव बिनु क्यों रहे।"

लोक वेद से परे का यह अनुराग अपनी चरम प्रणयावस्था में परिपक्व होकर परिणय में परिवर्तित हो गया। और देवोत्थापिनी एकादशी के दिन राधा माधव का विवाह भी हो गया :—

"ब्याह की बात चलावत मैया।
बरसाने वृषभानु गोपके लाल की भई सगैया॥"

विवाह हुआ हारचार हुआ और वर-वधू एक घर में आये। वर-वधू के मिलन का समय आ गया।

[1] परमानन्दसागर पद संख्या—१७७

आचार्य बल्लभ ने अपने संन्यासनिर्णय में इन्हें भक्तिमार्ग का गुरु ठहराया है।
कौण्डिन्यो गोपिका प्रोक्ता गुरवः साधनं च तद्।"
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते ।।सं नि०—८

उन्होंने गोपियों की विरहजन्य पीड़ा की प्राप्ति के लिए भगवान् से कामना की है—

"गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम् । यत्सुखं समभूत्तन्मे भगवान् किं विधास्यति ।।२

आचार्य ने गोपियों में प्रेम की पराकाष्ठा मानी है—

'पराकाष्ठा प्रेम्णा पशुपतरुणीनां क्षितिभुजाम् ।' परि श्लोक १

उनके शब्दों में भक्तिमार्गीय सन्यास की ये उच्चतम उदाहरण स्वरूपा हैं —

"भक्तिमार्गीय संन्यासस्तु साक्षात्पुष्टि-पुष्टि श्रुति रूपाणां रासमंडल मंडनानां स्वयमेवोक्तम्—सैषम्य सर्वं विषयास्तवपादमूलं प्राप्ता इति । [यामली भाष्य ]

सर्वस्व त्यागकर रास-क्रीडा में सम्मिलित होने वाली श्रुतिरूपा गोपिकाएँ भक्ति मार्गीय सन्यास का उत्तम उदाहरण हैं। इसीलिए नारदीय भक्ति सूत्र में उनके अनुराग को आदर्श माना है—

'यथा व्रजगोपिकानाम्—ना भ सू —२१

क्योंकि समस्त कर्मों को अर्पण करना और भगवत् विस्मृति में परम व्याकुल हो जाना'[1]—व्रजगोपिकाओं का ही स्वभाव है।

गोपियाँ रस की समर्थक रूपा शक्तियाँ हैं। वस्तुतः प्रेम रस में मग्न हुए भक्तों का नाम ही 'गोपी' है। गोपी अर्थात् स्त्री नहीं स्त्रीभाव वाले भक्त। इस माधुर्य तत्व का नाम 'स्त्री' है। अतः पूर्ण स्त्रीभाव" ही गोपी भाव" है। गीता में इसी को "परमभाव" का नाम दिया गया है।

परमभावमजानन्तो "[२]

इसी का दृष्टान्त है—"गोपाङ्गनादिव प्रियम् ।"

गोपियों के इस 'परमभाव' की ओर लक्ष्य करके ही एक लेखक ने लिखा है—

When beings are perfected they reach the plane of Krishna, which is beyond the seven fold plane of the cosmic ego. The Gopis are such perfected beings."

अर्थात् "जो प्राणी पूर्णता की भूमि पर पहुँचे हुए होते हैं वही कृष्ण तक पहुँचे हुए होते हैं। वे इस प्रपंच के सप्तावरण को भेद कर पूर्णता प्राप्त प्राणी हैं।

अतः गोपीभाव अर्थात्-सर्वात्मभावसमर्पण-अथवा "सहजभाव"। इस प्रेम में वेद-शास्त्र विधि-निषेध विवेक आदि की सत्ता नहीं रहती। न संयोग न विप्रयोग। प्रेम की इस उत्कृष्ट स्थिति का नाम ही 'गोपी भाव' है।

समस्त व्रज गोपिकाओं को आचार्य जी ने तीन वर्गों में विभक्त किया है।

१ गोपाङ्गनाएँ —

जो वेद मार्ग की चिन्ता न करके श्रीकृष्ण को ही अपना पति मानती थीं। वे विवाहित गोपिकाएँ हैं। इन्हें 'अन्यपूर्वा' भी कहा जाता है।

---

१ तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् [ना भ सू०—१६]... तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति [ना भ सू०—१९]

२ गीता

महाप्रभु जी इन्हें लक्ष्य करके कहते हैं।

"गोपीमनासुपुष्टि" श्रीमद्वल्लभीठिका।

२ गोपी-अथवा अनन्यपूर्वा वे कुमारिकाएँ हैं। जो 'नन्दगोप सुत' को पति भाव से वरण करना चाहती हैं।

गोपीषु मर्यादा—श्रीमद्वल्लभीठिका।

३ व्रजांगना —इन्हें सामान्या भी कहा जाता है। ये कृष्ण में पुत्र-भाव रखती हैं।

धर्मांगनासु प्रवाह"। श्रीमद्वल्लभीठिका।

परमानन्ददास जी ने उक्त तीनों ही प्रकार की गोपिकाओं का चित्रण किया है।

१ कृष्ण जन्म पर बधाई लेकर आने वाली गोपियाँ तथा माता यशोदादि सामान्या अथवा व्रजांगनाएँ हैं।

सुनोरी आज नंदन जायो है —
घर-घर तें नर-नारी मुदित हरि पूजन आयो है।

२ व्रतचर्या अथवा हेमन्त मे कात्यायनी दुर्गा आदि की पूजा करने वाली गोपिया अनन्यपूर्वा अथवा मर्यादावाली व्रजकुमारिकाएँ हैं।

'मान री मान मेरो कह्यो।
...
नन्द गोप सुत माँगि मनो बरदान आपनेहै पु लह्यो।

३ लोक वेद मर्यादा का त्याग कर प्रभु मे अहर्निश अनुरक्त रहने वाली वे गोपिया अन्यपूर्वा हैं। ये ही पुष्टि पुष्टि गोपियाँ हैं। इन्हीं को लक्ष्य कर परमानन्ददासजी ने कहा है—

ये हरि रस ओपी गोपी सब तीय तियन ते न्यारी।
...
जो ऐसे मरयाद मेटि मोहन गुन गावै।
क्यो नहिं परमानन्द प्रेम भगति सुख पावै।

तात्पर्य यह है कि 'गोपीभाव' की चर्चा परमानन्ददासजी ने अपने संपूर्ण काव्य मे सर्वाधिक की है। वस्तुत. उनके जीवन का लक्ष्य इसी भाव को पूर्ण रूप में प्राप्त करना था। अत एकान्त प्रेम की ये भाव-दशाएँ जो लौकिक जगत् में मर्यादा पूर्ण नहीं कही जा सकतीं परमानन्ददासजी ने निःसंकोच इन्हें अपने काव्य का विषय बनाया था। उनकी गोपियाँ मानवी होती हुई भी इस धरा से दूर किसी अनिर्वचनीय लोक के लोकोत्तर प्रेम की दिव्य आदर्श बना हैं। जिनका प्रेम नितान्त अलौकिक और एकान्तिक है।

वेणु अथवा मुरली —

मुरली का स्रोत भी अन्य प्रसंगों की भाँति श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्भागवत का वेणु-गीत अत्यन्त प्रसिद्ध प्रसंग है। वेणु को प्रेमलक्षणाभक्ति का प्रतीक मानते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी दशमस्कंध की कारिका में उसे ब्रह्मानन्द से भी ऊपर बतलाया है।[1] यह वेणु ही उनका जगदीशत्व उपाहित करती है और सांसारिक विषयों से विमुख

---
१ श्रोमर्षेण ता हि सर्वेषां जगदीशत्वं सदावयति। ब्रह्मानन्देन ता मध्य एकीभूता ब्रह्मानन्दतारतम्यभिन्न आनन्द तारतम्यता ता न कदाचित् तावन्ता मापयते तदा। सुबो दशमस्कंध १ श्लोक ५

करके जीव को भगवदभिमुख करती है। क्योंकि वेणु रव से ही भगवान् का लीला विशिष्ट स्वरूप प्रत्यक्ष होता है।[1]

वेणु रव तारतम्य से रस 'भगवद्रस'-का विकास करता हुआ गोपियों को भगवदभिमुख करता है। वेणु के सप्त छिद्रों को सुधारस से पूरित करने के लिए भगवान् उसे अपने अधरों पर रखते हैं और उससे नाद (ब्रह्म) की उत्पत्ति होती है। यह वैधी भक्ति से ऊपर परमफल प्राप्ति की स्थिति है। यह मुखारविंद की भक्ति है, चरणों की नहीं। वैधी अथवा शीतला भक्ति में लगी गोपिकाएँ मुख की उष्ण भक्ति[2] का रहस्य जानकर भी वेणु से ईर्ष्या करती हैं। आगे चलकर व्रज सीमन्तिनियों को भगवान् ने रास क्रीड़ा में इसी उष्ण भक्ति का रूपा पात्र बनाया था।[3] यह मुख्य भक्ति 'तापात्मक भक्ति' कहलाती है। इसमें भक्त को अत्यन्त ताप रहता है। कबीर की विरहिणी भी इसी में झुरझुर मरती है। जायसी की विरहिणी भी इसी विरह से अपने हाड़ों को किंगरी बनाती है। मीरां भी इसी उष्ण भक्ति में रैन दिन व्याकुल रहती है। पपीहा चातक मृग पतंगादि इसी उष्ण भक्ति के उदाहरण हैं। सूर ने वेणु-रव से विद्ध गोपियों का जो मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है वह भी उष्ण भक्ति का रहस्य है। इसी कारण जब मुरली ध्वनि को सुनकर सिद्धों की समाधि टल जाती है यमुना का जल स्थिर हो जाता है और पाषाण द्रवीभूत हो जाते हैं। और देव-विमान स्तम्भित हो जाते हैं।

व्रज गोपिकाएँ जब इस मुरली-रव को सुनते ही विदेह हो जाती हैं। और चित्र लिखी सी हो जाती हैं।[4] मुरली के दिव्य प्रभाव से अभिभूत एक गोपी तो भोजन तक नहीं बना सकती क्योंकि चूल्हा ईंधन सरस और गीला हो जाता है और चूल्हा बुझ जाता है।

मुधर ? रचय समये मा कुरु मुरली रव मधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम्। गीत गो

---

१ तदयं भावः प्रकटितस्तम् ... गुणलीला विशिष्टस्वरूप रसात्मकं स्वरूपं सर्वेन्द्रिय ... श्रीवेणु ... । दशम स्कन्ध २१ श्लोक २

२ अभिनिविष्टा ... ।
प्रथमा शीतला भक्तिर्वैधी ... । ... निरूपण
तथा ... मुख्या ... ।
द्वितीया ... ।

३ ... ।
... —हरिरायजी कृत भक्ति द्वैविध्य निरूपण श्लोक ३

४ मेरे सांवरे जब मुरली अधर धरी।
सुनि ध्वनि सिद्ध समाधि टरी
सुनि थके देव विमान। सुर-बधु चित्र समान।
— — —
... —सूरसागर दशमस्कंध
और भी—श्रवननि की सुधि भूल गई।
श्याम अधर मधु मधुर मुरलिका ... नारि गई।
तथा—मुरली सुनत अचल चले।
थके चर जल झरत पाषाण विफल वृक्ष फले॥

भागवत का प्रतिपाद्य विषय है। आचार्य वल्लभ का यही मन्तव्य है। मुरलीतत्व वह दिव्य तत्व है जो निरोध अथवा समाधि का सुलभ माध्यम है। सभी अष्टछापी भक्त कवियों ने मुरली के इसी अलौकिकत्व एवं दिव्यत्व की ओर संकेत किया है।

## परमानन्ददास जी का मुरली प्रसंग—

आचार्य वल्लभ के तात्पर्यानुसार परमानंददासजी ने भी मुरली में वही आधिदैविकत्व आरोप किया है। मुरली रव की उसी समाधि-दायी शक्ति की उन्होंने भी चर्चा की है जो अन्य सूर आदि अष्टछाप के कवियों में मिलती है। मुरली नाद पर गोपिकाएँ कुरंगिनी की भाँति मुग्ध हैं। जिस प्रकार मृगी प्राणेन्द्रिय अन्तःकरणादि को विस्मृत कर नाद-मुग्धा हो जाती है उसी प्रकार परमानंददास जी की गोपिकाएँ भी नटवर कृष्ण के मुरली-नाद पर आत्म विस्मृत हैं।

आवत मदन गोपाल त्रिभंगी।

—— ——

चपल दृगाल सुरति सबु भूली सुनि बन मुरली नाद कुरंगी।

इतना ही नहीं वे पाषाणवत की स्थिति को पहुँच गयी हैं। बछड़े दूध पीना छोड़ देते हैं। पशु-पक्षी-सरिताएं सभी अचल हो गयी हैं और केवट की नौका नहीं चल पाती है। यह मुरली स्वभाव से ही रसस्वरूपा है।

आजु नीको बन्यौ राग आसावरी।
मदन गोपाल वेणु नीको बाजत मोहन नाद सुनत भई बावरी।

...                ....

परमानंद स्वामी रतिनायक या मुरली रस रूप सुधावरी। प सा २१

परमानंददासजी को *अष्टांग योग-यम नियम आसन प्राणायाम-मुरली के आगे व्यर्थ* प्रतीत होते हैं। भुक्ति-मुक्ति वर्णाचरण योगाभ्यास आदि सब इस मुरली रव के आगे व्यर्थ हैं।

मेरो मन वाही माई मुरली को नाद।
आसन पौन ध्यान नहिं जानो कौन करै यह बाद बिवाद।

....        ....
..        ....

परमानंद स्याम रंग राती सबै छाँड़ियनि मन भोग।

*स्याम के हाथ में मुरली देते ही गोपिका छुड़ स्याम घर बन की ओर चल देती है।* यह दिव्य वेणु नाद "दारागार पुत्राप्त वित्तादि" का मोह छुड़ाने का एक दिव्य साधन है।

घर नहिं अधर धरी मुरली।

....        ...
...

जाकी नंद सुनत वृद्ध ग्राम्यो प्रचुर बयो तब मदन बली।

जाके मात पिता अरु भ्राता के पति है कौन अकेली।
डारी लोक लाज कर कुल बन को बन प्रवनि अकेला।

नहीं पा सकते कि उसकी भगिनी यमुना के पुत्र हैं अर्थात् भानजे हैं। और अपने भानजों को कोई भी मामा कष्ट नहीं पहुँचाता।[1] [और यदि पहुँचावे तो कंस की भाँति विनाश को प्राप्त होवे।] अत यमुना भक्त हित सम्पादिनी दो स्वरूपों में विराजती है। एक तो भगवान् की पत्नी रूप में दूसरे चतुर्थ यूथ की स्वामिनी के रूप में। यह उनका आधिदैविक रूप है। दूसरा जल प्रवाह रूप। यह रूप आधिभौतिक है और प्रत्यक्ष है। इस जल रूप आधिभौतिक रूप को भी हरिराय जी ने द्रवीभूत रसात्मक स्वरूप बतलाया है।[2] अत विविध लीलोपयोगिनी कालिन्दी की स्तुति आचार्यवर्य ने इसलिए की है कि भगवान् ने उन्हें अष्ट-विधि ऐश्वर्य दिया है। इसीलिए आचार्य ने आठ श्लोकों से उनकी स्तुति की है।[3]

यमुना का श्रीकृष्ण-प्रिया रूपमें वर्णन स्कंदपुराण[4] एवं गर्ग संहिता[5] में पर्याप्त रूप से मिलता है। स्कंदपुराण में तो यहाँ तक मिलता है कि श्रीराधा की नित्य सेवा करने के कारण ही श्री यमुनाजी को श्रीकृष्णका विरह नहीं होता। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की श्री यमुना के प्रति अनुगुण्यमान्यता के कारण सभी अष्टछापी कवियों ने यमुना को भगवान् की प्रियाके रूप में ही स्मरण किया है। नित्य सेवा में तो भगवन्मन्दिर में सेवक यमुना का स्मरण करके ही सेवा का अधिकारी होता है। अत महाप्रभुजीकी इस गहरी मान्यता के कारण सभी संप्रदायी कवियों ने यमुनाजी विषयक पद गाए हैं।

परमानन्ददासजी ने भी श्री यमुना विषयक अनेक पद लिखे हैं और उनसे कृष्ण प्रेमकी याचना की है।

> श्री यमुना यह प्रसाद हौं पाउँ।
>
> तुम्हरे निकट रहौं निसिवासर राम कृष्ण गुन गाउँ।
>
> ... ...
>
> विनती करौं यही वर मांगौं अधमन संग बिसराऊँ ॥

परमानंददासजी ने भी यमुनाजी के आधिदैविक और आधिभौतिक दोनों ही स्वरूपों की भावना की है। उन्होंने यह भी स्पष्ट स्वीकार किया है कि यमुना माहात्म्य उन्होंने जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य से ज्ञात किया है —

---

१ यमुनाष्टक श्लोक सं —१
२ यद्गुणो भगवात्मा भगवान् "रसो वैस इति श्रुते।
तथा स्वरूपतावेवोऽपि तथा। तथा श्री यमुनाऽपि द्रवीभूत रसात्मक तत्तत्स्वरूपेण ॥ श्री हरिराय कृत टिप्पणम्।
३ भगवतामष्टविधैश्वर्यं कालिन्दी दत्तमिति तत्प्रकार अष्टाभि श्लोकैः स्तुवन्ति। श्री हरिराय कृत टिप्पणम्।
४ आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।
तस्या दास्य प्रभावेण विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत् स्क पु वै भा श्लो २
५ कृष्णे स्वयमानन्द कृष्णमेव पतिम्बरे पतिमेतस्य करी।
कर्मोहमें कृष्णकी तया है निरो निरो भाति गोविंद देव। गर्गसंहिता माधुर्यखण्ड यमुनास्तोत्र श्लो २

यह यमुना गोपालहि भावै ।

यमुना नाम उच्चारत धर्मराज ताकी न बसावै ।१

... ...

तीन माहात्म्य कब कथत शुक श्री परमानंददास कही ।[1]

यमुना के कृष्ण प्रियात्व की ओर भी उन्होंने संकेत किया है:—

यमुना सुखकारिनी प्रानपति के ।

.. .. .. ...

पिय संग गान करे पति रस उमहि भरि देत करतारी मेत मटकै ।

......

यमुना के साथ संग फिरत हैं नाथ ।

औरभी

यमुने पियको बस तुम कीने ।

संक्षेप मे इतना ही कि परमानन्ददासजी की यमुना विषयक सभी मान्यताएँ संप्रदायानुकूल एवं आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुसार है ।

रास—

श्रीमद्भागवत में रास लीला प्रसंग पर पाँच अध्याय हैं । इन्हें ही रास पंचाध्यायीके नाम से पुकारा जाता है । वैष्णव सम्प्रदायों में रास पंचाध्यायी को भागवत का हृदय पुकारा जाता है । यदि सम्पूर्ण भागवत को देह मानें तो रास पंचाध्यायी को इस महापुराण को हृदय मानना चाहिए । यों भी पीठिका भावना में भी गोपेश्वरजी लिखते हैं—

'धम्मात्मनो भगवान् विरचये भावनातरे चारित । प्रथम द्वितीय स्कंधौ चरणौ तृतीय चतुर्थौ करौ उर दक्षिण श्री हस्तः स्तनमध्यो । हृदयम् दिट नाम दोहस्त अमेत । इसके अनुसार दशमस्कन्ध हृदय है । दूसरे शब्दों मे सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत का तात्पर्य इसी स्कन्ध में है । अध्याय २९ से ३३ तक का (आचार्य वल्लभ के अनुसार अध्याय २६ से ३ तक क्योंकि वस्त्रहरण लीला प्रक्षिप्त है) यह भाग तामस फल प्रकरण के नाम से पुकारा गया है । इसमें तामस (नि साधन) भक्तों के निरोध का वर्णन है और यह अत्यन्त गुप्त होने से फल प्रकरण कहलाता है ।

रास की व्याख्या किन्हीं सज्जनों ने "रसानां समूहो रासः" कहकर की है किसी ने इसे "चार क्रीड़ा" बतलाया है । परन्तु आचार्य वल्लभ ने "रास" की व्याख्या करते हुए कहा है—"बहु नर्तकी युक्तो नृत्य विशेषो रासः । अर्थात् बहुत सी नर्तकियों से युक्त नृत्य विशेष का नाम "रास" है [सुबो ] इस रास का उन्होंने आध्यात्मिक अर्थ बताया है । उन्होंने रास पंचाध्यायीके आरम्भ में ही सुबोधिनी में स्पष्ट कर दिया है कि "ब्रह्मानंद रूपी हृदय सरोवर से निकल गोपीजनों का उद्धार करके उनको भजनानंद दान करने के लिए ही प्रभु

ने रास क्रीडा की है।[१] इस रास लीला के नायक श्रीकृष्ण हैं। 'कृष्ण' का अर्थ ही सदानंद है। वह आनन्द-रूप-रस स्वरूप है गोपिकाएँ इस स्वरूप की शक्तियाँ हैं। भगवान का स्वरूप भावात्मक है। भक्त उन्हें जिस भाव से भजता है वे उससे उसी भाव से मिलते हैं।[२] रासलीला भक्तों के भावों की अभिव्यक्ति है। दूसरे रसात्मक ब्रह्म का स्वशक्तियों के साथ रमण ही 'रासलीला' है। जिसे भागवतकार ने इतना सरस हृदयग्राही और मनोज्ञ बना दिया है।

रासलीला दिव्य है। इसका एकमात्र उद्देश्य कन्दर्प का दर्प दलन है। भागवत गूढार्थ दीपिका के लेखक ने अपनी टीका में स्पष्ट लिखा है कि 'इस ब्रह्मा आदि के विजय में क्या विशेषता है। ब्रह्मादिक को जय करके काम को बड़ा दर्प हो गया था अत उसी काम को भगवान् ने पराजित कर दिया। इसलिये भागवत का लक्ष्य रासक्रीडा वर्णन है।[३]

श्रीजीव गोस्वामी भी रास क्रीडाका यही तात्पर्य बतलाते हैं। वे कहते हैं "अथ ब्रह्म मार्गिन् वरुणादीना दर्पं शमयित्वा कन्दर्पस्य दर्प शमयितु युगपदनेक रमणी कदम्ब सवलित रासात्मना कस्यमारिप्सुमर्मवानैकया स्वयोगवैभव प्रादुश्चकार।[४] अर्थात् ब्रह्मा, इन्द्र अग्नि आदि का दर्प दमन करके भगवान् ने कामदेव का दर्प दूर करने के लिए ही अनेक रमणियों से सवलित होकर रास नाम की क्रीडा को किया। भगवान् श्रीकृष्णने इस लीला में कामका भी मथन कर डाला है। इसलिए भागवतकार ने स्तुति करते हुए उन्हें 'साक्षात्मन्मथमन्मथ:" कहा है।

आचार्य वल्लभने सुबोधिनी की कारिकाओं में स्पष्ट कर दिया है कि समस्त क्रियाएँ वही की वही (काम क्रीडा जैसी) होने पर भी उसमें काम का लेश नहीं। यहाँ इन गोपियों के कामकी निवृत्ति निष्काम (भगवान) से हुई है। यदि 'काम' की 'काम' से ही पूर्ति होती तो उससे संसार की उत्पत्ति होती। काम का अभाव करके पूर्ण काम भगवान् सतत निष्काम ही बने रहे इसमें कोई संशय नहीं है। यहा किसी प्रकार मर्यादा का भंग भी नहीं है। उल्टा वह सायुज्य मोक्षरूपी फल को देने वाला है। इसी कारण इस लीला को श्रवण करने वाले लोग निष्काम होते हैं। क्योंकि भगवान् का रास लीला चरित्र सर्वथा निष्काम है। उसमें काम का लेशमात्र उद्बोध नहीं। इसके लिए महात्मा शुकदेवका वचन यहाँ स्पष्ट है।[५]

१ भगवानपि ता रात्रीः शारदोत्फुल्लमल्लिकाः। [illegible] मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

लीला वा [illegible] सम्यक् ता [illegible] विविधमन्दे ॥ [illegible] दशम स्कन्ध अध्याय २९ का १

२ ये यथा मां प्रपद्यन्ते। गीता ।४

३ ... [illegible] जित्वा कि विजयम् ? ब्रह्मादि जय सत्वाचरे कामोऽपि भगवता पराजितः। इति ख्यापनाय [illegible] इयं रास क्रीडा वर्णनीया [illegible]—गूढार्थदीपिका [illegible] ।

४ श्रीजीवगोस्वामी कृत वृहत्क्रम सन्दर्भ।

५ क्रिया सर्वापि सैवात्र परं कामो न विद्यते।
तासां कामस्य संपूर्तिर्निष्कामेनेति [illegible] ॥
कामेन पूरितः कामः संसारं जनयेत्स्फुटम्।
तस्मात्कामेन पूर्णस्तु निष्कामः स्यान्न संशयः।
[illegible] न कापि मर्यादा भग्ना मोक्षफलापि च ॥
[illegible] निष्काम सर्वथा भवेत्।

— — — —

यथा अमरस्य [illegible] ॥

आचार्य वल्लभ एवं श्रीगोस्वामी आदि भगवदीयजन जो श्रीमद्भागवत के तात्पर्य के अनन्य मर्मज्ञ हैं रासलीला रहस्य के विषय में एक स्वर और एकमत हैं। संप्रदाय के सभी अन्य ब्रज भाषी-कवियों ने एवं अष्टछाप के कवियों ने रास लीला प्रसंग को बड़े उत्साह और समारोह के साथ उठाया है। और इसे लौकिक पद्धति से वर्णन करके भी उसके मूल प्रयोजन को नहीं ओझल होने दिया है। सूर और नन्ददासजी के रासलीला प्रसंग तो भक्तों के सर्वस्व हैं। नन्ददासजी की रास-पंचाध्यायी हिन्दी साहित्य में मणि की भाँति उद्दीप्त और मूर्धन्य है। इन सभी भक्तों ने रास लीला के आध्यात्मिक अथवा अलौकिक तात्पर्य को दृष्टि-पथ में रखा है।

## परमानन्ददासजीके रास लीला विषयक पद

परमानन्ददासजी ने रास लीला का वर्णन श्रीमद्भागवत के आधार पर किया है। उन्होंने भी रास के अलौकिकत्व की चर्चा की है।

रास मंडल में बनी भामी
गति में मति उपजावै हो।

....

सरद विमल निसि चंद विराजित
क्रीडत जमुना कूले हो।
परमानंद स्वामी कौतूहल
देखत सुर नर भूले हो।

भागवत के 'भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिका"[1] आदि वातावरणको ही परमानन्ददासजी अपने पदों में ज्यों अपने पदों में ले ही ले आये हैं किन्तु आकाश में स्थित देवों के विस्मय को भी चित्रित करना वे नहीं भूले हैं। महारास में एक एक गोपी के साथ एक एक कृष्ण हो गये हैं —

मंडल जोरि सबै एकत्र भए निर्तत रसिक सिरोमनी।
मुकुट धरे सिर पीतपट कटितट बाँधे ताल भेद बनी ठनी।
एक एक हरि बीची ब्रज बनिता अब सोई बनी बनी।
चढि विमान सुर जुवति विरंचि कै कहैं परस्पर गिरिधर धनी।

...

ब्रज वनिता मध्य रसिक राधिका बनी सरद की राति हो।

... .. ..

एक एक गोपी बिच बिच माधौ बनी अनूपम भांति हो।।

रास में आलिंगन चुम्बन परिरंभण की चर्चा श्रीमद्भागवत के ही अनुसार है—

रास रच्यो ब्रज कुंवर किसोरी।

आलिंगन चुम्बन परिरंभन परमानंद डारत तृन तोरी।।

---

१ श्रीमद्भागवत—१ ।२९ १

यह रात्रि जैसा कि श्रीमद्भागवतमें आया है ब्रह्मरात्रि थी जोकि मानवीयमान से कल्पों के बराबर थी।[1]

लम्बी ताल भरसक राखे सरद चाँदिनी राति।

—

रच टेकि रवि हर रहूँ श्री सिर पर होत नहीं परभाति।
मन में कामदेव तक उस रस में आत्मविस्मृत हो जाता है।
गोपाल लाल सों नीके खेलि।
विकल भई सम्भार न तन की सुन्दरि छूटे बार सकेलि।
चंदन मिटत सरस उर चंदन देखत मदन महीपति भूल।

—

बाहु कच परिरम्भन-चुम्बन महामहोत्सव रास विलास।
सुर बिमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि परमानंददास।[2]

अकस्मात् भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं। और गोपियाँ विरहगीत ( गोपी गीत ) गाती हुई डाल-डाल पात-पात से पूछती फिरती हैं।

माई री डार डार पात पात बूझत बन राजी।[3]

कृष्ण एक सखी को लेकर तिरोहित हुए हैं। वह थक गई है अतः उसे कंधे पर चढ़ा लेते हैं। उसे गर्व होता है, अत कृष्ण उसे भी छोड़ जाते हैं और वह अपनी भूल पर पछताती है।[4]

"कांधारोहन मांगि सखीरी नंद नंदन सों मैं कीनी ढीठी।

— —

अब अभिमान करौं नहिं कबहूँ तेरे हाथ देउ लिखि चीठी।

१—परमानंददासजी का रास भागवतानुसारी मुख्यतः शरद् रास है। उन्होंने नन्ददास और सूर की भाँति वसन्तरास और शरद्रास को मिला नहीं दिया है। उन्होंने भागवत के अनुसार उसे शरद्रास ही रखा है।[5] इस प्रकार अन्य सभी प्रसंगों की भाँति परमानंददासजी रास लीला प्रसंग में भी श्रीमद्भागवत और आचार्य वल्लभ के वचनों पर कट्टरता से आश्रित हैं। संक्षेप में यदि हम परमानंददासजी के लीला विषयक पदों पर विचार करें तो हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं:—

परमानंददासजीकी लीला भावना सम्पूर्ण आनंद भावना है। लीला आनंदात्मक है। उसका रहस्य भक्तों को सुख देता है। लीला पूर्ण निरपेक्ष और स्वतन्त्र है। लीला और भक्ति में कोई अन्तर नहीं उन्होंने अपने सभी लीला विषयक पदों में से अपनी स्वाभाविक कल्पना और मौलिकता के साथ श्रीमद्भागवत महाप्रभु वल्लभाचार्य की सुबोधिनी-इन्हीं दो ग्रन्थों का अत्यधिक समागम किया है। इसके अतिरिक्त वे अपने समसामयिक

१ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः। १०।३३।३९
२ श्रीमद्भागवत—१०।३३।२५ २६
३ श्रीमद्भागवत—१०।३०।४-६
४ श्रीमद्भागवत—१०।३०।३६।४
५ वही १०।२९।१९

अन्य अष्टछापी कवि सूरदास कुम्भनदास आदि की समर्पणी का भी अवलंबन लिए हुए हैं। वे अपने काव्य में लीला के आध्यात्मिक तात्पर्य को अत्यधिक प्रबल नहीं होने देते। इससे भगवल्लीलाओं का सहज माधुर्य अक्षुण्ण बना रहा है। इसी प्रकार वे भागवत के अन्य स्थलों की कथाओं के चक्कर में नहीं पड़े हैं। उन्होंने भागवत लीलाओं को ही अपनी काव्योपयोगिनी बनाया है। उनकी वृत्ति भगवान् की बाल से लेकर किशोर लीलाओं तक ही रमी है। आगे नहीं।

कवि ने महाप्रभुजी के वचनों का सर्वाधिक अनुसरण किया है। राधा गोपी मुरली यमुना रास गोकुल वृन्दावन आदि उनके विषय में उनकी वे ही मान्यताएँ हैं जो महाप्रभु जी की थीं। इसी प्रकार उनके लीला गान में विस्तार की अपेक्षा गहनता अधिक है। लीला विशिष्ट पदों में सरलता सुकुमारता माधुर्य और स्वाभाविकता कूट कूट कर भरी हुई है। यदि सूर अपनी मानलीला के लिए और नन्ददास अपनी रास पंचाध्यायी के लिए अद्वितीय हैं तो परमानन्ददासजी अपनी बाल लीलाओं के लिए अप्रतिम हैं। संक्षेप में लीला गान के वे अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं। भागवत तथा महाप्रभुजी के वचनों का इतना अधिक सटीक अनुसरण शायद ही किसी अन्य अष्टछापी कवि में मिलता हो।

———

# अष्टम अध्याय

## परमानंददासजीका काव्य पक्ष

यह तो कहा जा चुका है कि अष्टछाप के कवियो का ध्येय केवल कोरी काव्य रचना करना नहीं था। वे मुख्यत भक्त थे और श्रीगोवर्धननाथजी के मंदिर मे कीर्तन सेवा करना ही उनका नित्य का प्रिय कार्य था। वे अपने मानव जन्म का विनियोग अपने आराध्य के चरणों मे कर चुके थे। अत उनके काव्यो मे भक्ति-तत्व मुख्य है और काव्य-तत्व गौण। इसी प्रकार परमानंददासजी भी मुख्य रूप से भक्त पहिले हैं कवि अथवा कीर्तनकार उसके उपरांत। सभी अष्टछापी कवियो को हम तीन रूप में देख सकते हैं।

१—भक्त

२—कवि

३—लीला गायक अथवा कीर्तनकार

इसके अतिरिक्त इन भक्ति-कवियो मे दार्शनिकता ढूंढना व्यर्थ है। प्रसंगवश यदि इन कवियों से दार्शनिक तत्वो—ब्रह्म जीव जगत् मायादि—की चर्चा आ गई है तो उसके आधार पर इन्हे दार्शनिक नही कहाजा सकता। इसी प्रकार इन्हें कोरा कवि समझ कर इनके काव्यों का अनुशीलन करके उसमे काव्य शास्त्रीय गुण दोष ढूंढना और उनकी समीक्षा करना इनका एकांगी अध्ययन ही होगा। फिर भी इनका काव्य सौष्ठव गौण नही। वार्ता में तो सूरदास और परमानंददास को 'सागर' कहा गया है। यद्यपि भगवल्लीला गायक होने के नाते इन्हें 'सागर' की उपाधि से विभूषित किया गया है तथापि पदों की बहुसंख्यकता भी उसमे एक कारण है। यद्यपि सूरदास की भांति परमानंददासजी ने भागवत के सभी स्कंधों की कथा को अपने पदों मे वर्णन नहीं किया है न उनकी भांति अन्य पौराणिक आख्यानों को ही लिया है फिर भी उनके श्रीकृष्णलीला विषयक पदो की संख्या बहुत बड़ी है और उनकी वैज्ञानिक शैली से समीक्षा होनी ही चाहिये। परमानंददास भी सम्प्रदाय में सूर के समकक्ष ठहराये गये हैं। अत यह आश्चर्य की बात है कि जहाँ सूर के काव्य पर अनेक समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे गये हैं वहाँ परमानंददासजी पर अद्यावधि एक भी स्वतन्त्र समीक्षात्मक ग्रंथ उपलब्ध नहीं। जितनी थोड़ी बहुत चर्चा उनकी हुई है वह अन्य अष्टछापी कवियों के साथ ही। अत उन पर स्वतन्त्र समीक्षात्मक ग्रंथ की आवश्यकता बनी रह जाती है।

## परमानंददासजीका काव्य विषय

परमानंददास जी मुख्यत लीला-गायक हैं उसमें भी उन्होंने बाल लीला को ही अधिक प्रधानता दी है। महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षा लेने के उपरान्त उन्होंने भागवत के दशमस्कंध की अनुक्रमणिका श्रवण की और उनमें सूर की भांति हरि-लीला का स्फुरण हुआ। तब से महाप्रभु जी के साथ रह कर नित्य सुबोधिनी का अनुसरण करते हुए लीला परक पदों की रचना करने लगे। कहा जाता है कि अडैल में निवास करते हुये वे महाप्रभुजी के नित्य संपर्क में रहतेहुए उनके श्रीमुख से जो भी सुबोधिनी श्रवण करते उसे ही बाद में पदों में ग्रथित कर देते थे।

१९ गोपियों का विरह।
१ उद्धव का ब्रज में आगमन भ्रमरगीत।
२१ ब्रज का महात्म्य ब्रज भक्तों का माहात्म्य।
२२ यमुना का माहात्म्य गंगाजीका माहात्म्य भगवान् और भगवन्नाम का माहात्म्य। भक्ति का माहात्म्य गुरु महिमा।
२३ स्व-समर्पण दैन्य विनय आत्मप्रबोध।
२४ महाप्रभु वल्लभाचार्य गोस्वामी विट्ठलनाथजी तथा उनके सात पुत्रों की बधाई।
२५. नृसिंह जयन्ती वामन जयन्ती रामनवमी के पद।

उपर्युक्त पदों की सूची में वर्ष भर के उत्सव तथा नित्यसेवा के पद दोनों का ही समावेश इस सूची से स्पष्ट है। परमानंददासजी का काव्य विषय दशमस्कंध उसमें भी विशेषकर पूर्वार्द्ध तक का ही लीलागान है। इन्हीं सरस कोमल रमणीय प्रसंगों को लेकर कवि अपने काव्य जगत् में रमता रहा।

## परमानंददासजी की शैली

कृष्ण काव्य के सरस प्रसंगों के आधार के कारण और कवि की कोमल ललित प्रणय वृत्ति के कारण उनकी शैली सहज ही समीतात्मक अथवा गेय बन गई है। सभी पद गेय और स्वतन्त्र मुक्तक हैं। इनमे भागवत के श्रीकृष्ण लीला—कथानकों की गहरी छाया है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के प्रसंगो को लेकर कवि ने अपनी दिव्य प्रतिभा और कल्पना के कारण 'गागर में सागर' भर देने का सफल प्रयास किया है।

गेयपद शैली कहीं तो सत्वरगामिनी और कहीं प्रसंग की सरसता मनोरमता के कारण मन्थर गम्भीर और व्यञ्जक होती है। कहीं तो उसमे गतिशील प्रवाहात्मकता और कहीं प्रबन्ध की मधुरता और भाव-गहनता आजाती है। गेयपद शैली मे भाव-सौंदर्य के साथ कोमल कान्त पदावली संगीतात्मकता और संक्षिप्ता भी रहती है। वस्तुतः अनन्त परम मधुर कृष्ण चरित गेयपद शैली के अत्यन्त ही अनुकूल पड़ता है। भुवन सुन्दर नयनाभिराम श्रीकृष्ण का चरित इतना मनोज्ञ और अभिराम है कि उससे भावोन्माद और संगीत की सृष्टि स्वयमेव हो जाती है। यदि रामचरित के गान से किसी भावात्मक मनोवृत्ति का कवि होना सहज सम्भव हो जाता है तो कृष्ण चरित भी किसी को सहज ही भावुक भक्त बना सकता है। इसी कारण अधिकतर ब्रज लगभग सभी कृष्ण चरित-गायक मुक्तककार सहज ही भक्त कवि बन गए हैं। इसकी एक लम्बी परंपरा के विषय मे चर्चा करते हुये 'सूर और उनका साहित्य' के विद्वान् लेखक ने लिखा है—"वास्तव में यह कोई नई चली नहीं थी अपितु भारतीय साहित्य मे युग युगान्तर से चली आती हुई एक परम्परा थी जिसमें विशेष विभूतियों द्वारा समय समय पर परिवर्तन परिवर्द्धन और संशोधन होते रहे हैं। इस गीत शैली का उद्भव कब हुआ यह निर्णय करना अत्यन्त दुष्कर है किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गीतों का इतिहास इतना ही पुराना है जितना स्वयं भाषा का। भाषा के मूल तत्वों में गीत के भी मूल तत्व निहित मिल जाते हैं।

वस्तुतः गीत मानव जीवन के आदिम युग से ही चले आ रहे हैं। वेदों में भी गीत शैली के दर्शन होते हैं। उसके उपरान्त लौकिक संस्कृत तो गीतों से भरपूर है। स्तोत्रों स्तुतियों, अष्टकों की तो लौकिक संस्कृत साहित्य मे कमी नहीं। उसके उपरान्त प्राकृत

साहित्य के तीन प्रमुख ग्रंथों—गोरा ग्रंथ पडरिया ग्रंथ एवं गेयपद ग्रंथ में पश्चिम गेयपद तब नहीं गीत शैली की परम्परा है। हां गेय पदों का अपभ्रंश साहित्य अधिक नहीं।[1] यही परम्परा जीवित रह कर आगे बढ़ी और आगे चल कर हिन्दी साहित्य में खूब पल्लवित हुई। यही परम्परा अष्टछाप के कवियों को अपनी भक्ति-भावना व्यक्त करने के लिये पूर्ण विकसित रूप में प्राप्त हुई थी। यह शैली ब्रज के अष्टछापी कवियों के हाथ में पड़ कर इतनी निखरी कि इस काल का गीति-काव्य इस शैली का चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है। इस शैली का साम्राज्य इतना बढ़ा कि ब्रज भाषा में प्रबंध काव्य लिखने का किसी को साहस ही न हुआ। इसी को लक्ष्य करके आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष धारा जो काल की कठोरता में दब गई थी अवकाश पाते ही लोक भाषा की सरलता में परिणत हो कर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैले मुरझाये मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ भी कृष्ण की मधुर-लीला का कीर्तन करने उठीं"।[2]

गीति शैली की परम्परा के विवेचन से और संक्षिप्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि गीति शैली की एक सुदीर्घ परम्परा थी जो संस्कृत और उस से पूर्व वैदिक साहित्य से चली आ रही थी। और कृष्ण भक्त कवियों में आकर इस शैली का चरमोत्कर्ष हुआ। इसलिये आचार्य शुक्लजी ने तो सूरसागर को एक बड़ी लम्बी चली आती परम्परा का विकसिततम परिणाम माना है।

वे लिखते हैं—"सूरसागर किसी पहले से चली आती हुई परम्परा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास सा जान पड़ता है," आगे चलनेवाली परम्परा का (प्रथम) रूप नहीं।

और जब परमानन्दसागर सूरसागर के टक्कर का कहा जाता है तब निश्चय ही यह भी गीति परम्परा का एक विकसिततम रूप है। दोनों सागरों में अन्तर केवल इतना ही है कि सूरसागर में भागवत के सभी स्कन्धों के कथानकों का—चाहे संक्षेप में ही सही—थोड़ा बहुत समावेश है परन्तु परमानन्दसागर जिस रूप में आज उपलब्ध है—मुक्तक बद्धप्रबंध और उसमें भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित रहा है। परन्तु अपनी सरसता संगीतात्मकता और विषय की अनुकूलता की दृष्टि से उसमें उत्तम गेयपद शैली के पूर्ण दर्शन होते हैं।

## परमानन्ददासजी के गेय पदों का वर्गीकरण:—

परमानन्दसागर में मुख्यतः दो शैलियों के दर्शन होते हैं.—

१—कथात्मक गेय पद शैली।

२—भावात्मक गेय पद शैली।

१—कथात्मक गेय पद के अन्तर्गत वे पद आते हैं जो श्रीमद्भागवत के काव्य-प्रसंगों की ओर संकेत देते हुए प्रसंग को आगे बढ़ाते हैं। जैसे—जन्म बधाई छठी पालने के पद, अन्न

१ हि. सा. साहित्य का इतिहास—डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. ११।
२ भ्रमरगीत —भूमिका पृ. १ २
३ वही पृ. ११

माखन करबट, अक्षयनवमी गोचारण दानलीला गोवर्धन लीला आदि। इनमें भगवान की महिमा की बार बार पुनरावृत्ति संस्कारो के नाम भोजन सामग्री के नाम जो वस्तु-परिगणन शैली के आधार पर हैं—आते हैं। इन पदों में थोड़ी सत्वरगामिता है।

२—प्रसंगात्मक गेय पद —ये वे पद हैं जो किसी एक सरस कोमल प्रसंग को उठा कर लिखे गये हैं और जिनमें भावों का उन्माद कल्पना की रमणीयता भावो की सरसता और कोमलता के साथ कारुणिकता एवं विविध व्यंजना के साथ चरम भाव-सौंदर्य के दर्शन होते हैं इसके साथ ही इन पदो के अर्न्तगत स्वस्थासक्ति सौन्दर्यानुभूति हृदय के विविध भावों मनोदशाओ मनोवैज्ञानिक तथ्यो के दर्शन होते हैं। ,इसमे इतनी तन्मयता होती है कि एक एक पद में पाठक भाव-विभोर होकर उसकी पुनरावृत्ति करता हुआ भी कभी तृप्त नहीं होता। ऐसे ही पद 'चिर वासन' कराने वाले पदों की कोटि में आते हैं। इनमें संयोग-विप्रयोग की विविध मनोदशाओ का चित्रण होता है। भक्ति दैन्य आत्म-समर्पण विश्वास धैर्य स्थिरमतित्व दृढ़ता कातरता गाम्भीर्य भावुकता कोमलता और मुग्धता आदि तत्वों का इन पदो मे समावेश होता है। सरलतम शब्दों मे महत्तम अनुभूति इन पदों की अपनी विशेषता होती है। परमानन्ददासजी के बाललीला रूपसौन्दर्य भक्ति-भाव दैन्य संयोग-विप्रयोग आदि प्रसंगो पर जो पद हैं वे इसी प्रकार के हैं।

उपर्युक्त दो शैलियो के अतिरिक्त परमानन्ददासजी मे किसी अन्य शैली के दर्शन नहीं होते। सूर की दृष्ट-कूट पद शैली का इनमे प्राय अभाव है। क्लिष्टता तो उन्हें छू तक नहीं गई है। साथ ही पाण्डित्य-प्रदर्शन अथवा अभिव्यक्ति मे घुमाव फिराव उन्हे पसंद नहीं। सीधी सादी सरस अभिव्यक्ति और हृदय से निर्गत सरस प्रेम का प्रवाह ही उनके काव्य का निखिल सौंदर्य सँभाले हुये है और इसी मे उनका पूर्ण विश्वास भी है। परन्तु वस्तु की दृष्टि से उनकी उभय शैलियों को आँका जाय तो वह अपनी अनुभूति की गहनता और दृष्टिकोण की एकांतिकता की प्रधानता के कारण वह आत्म प्रधान (Subjective) ठहरेगी विषय प्रधान (Objective) नहीं। क्योंकि वे वस्तु वर्णन को उतनी प्रधानता नही देते जितना भाव-चित्रण को। इसी कारण उनके पद एक राशि अथवा एक समूह के रूप मे मिलते हैं जिसे भाव राशि कहना चाहिए और जिसका उद्गम स्थल उनका मानस है। एकांत-समाधि के उन सरस क्षणों मे—जब कि वे भगवल्लीला का साक्षात्कार अपनी भावस्थली में कल्पना के नैनों से किया करते थे तब तो सरस पदों की सुरसरि धारा वेगमय होकर फूटकर बहती थी। जिसके लिये किसी प्रकार का समीक्षक विभाजन या काव्य-शास्त्रीय नियमो के विधि निषेध का बाँध नहीं बंध सकता था। अपनी स्वच्छन्द गति मे बहती हुई उनकी काव्य धारा कल्पना के उभय कूलों मे कभी इधर के सैकत-तट को स्पर्श करती है तो कभी उधर के। उनका यह भाव-क्षेत्र प्रेम तत्व से नितान्त ओत-प्रोत था। इसके अतिरिक्त उनके काव्य मे कोई अन्य तत्व नहीं। सूर तो श्रीमद्भागवत के अन्य प्रसंगों मे उलझे हैं परन्तु परमानन्ददास को सरस लीला वर्णन के अतिरिक्त किसी अन्य प्रसंग के लिए अवकाश ही नहीं। प्रेम और शृङ्गार की प्रबल एकान्त-भावना के कारण परमानन्ददासजी के काव्य पर यह आक्षेप किया जाता है कि उसमे समाज मर्यादा की अवहेलना की गई है किन्तु वस्तुत यह आरोप अविचार पूर्ण ही ठहरता है क्योंकि

१ परमानन्ददासजी का केवल एक ही कूट पद लेखक को प्राप्त हुआ है। देखो—परमानन्दसागर का ११२ संख्यात्मक पद। लेखक द्वारा सम्पादित संस्करण।

श्रीमद्भागवत और सुबोधिनी के रहस्यों को जानने और सम्प्रदाय की पद्धति पर कठोर दृष्टि रखने के उपरान्त उनके काव्य में मर्यादा कहीं रह ही नहीं जाती। वस्तुतः उनका काव्य प्रेम-काव्य है। जिसमें रागानुगा प्रेम-लक्षणा भक्ति की ही पुष्टि है जिसको लोक-वेद-मर्यादा की कोई अपेक्षा नहीं। परमानन्ददासजी के काव्य में चित्रित प्रेम के सहज स्वरूप को समझने के लिये साधारण लोक-बुद्धि या तथाकथित मर्यादा-दृष्टि से काम न लेकर साम्प्रदायिक भाव पद्धति को समझना चाहिए जिसमें मन की अखिल वृत्तियाँ भगवदभिमुख हो जाती हैं। संक्षेप में परमानन्ददास की अथवा अन्य अष्टछापी कवियों में लोकमंगल की भावना का ताना स्थूल स्वरूप न होकर वह व्यष्टि-साधना के माध्यम से मिलेगा। इन कवियों ने पूर्वोक्त 'स्वान्तः सुखाय' मिलकर भी लोक कल्याण की अवहेलना नहीं की है। हाँ तुलसी की भाँति इन कवियों का लोक कल्याण सीधा (Direct) अथवा प्रत्यक्ष नहीं है। उसमें सूक्ष्म अप्रत्यक्ष लोक-मंगल का भाव ही दृष्टिगोचर हो सका है। यहाँ सूक्ष्म अथवा अप्रत्यक्ष लोकमंगल से मेरा तात्पर्य इन लीलागायक कृष्ण भक्त कवियों की लोक पावनी अनन्य भक्ति से है जिसमें लोक-हित अथवा भूत-कल्याण भावना स्वयमेव आगई है। यही कारण है परमानन्ददास जी ने गोवर्द्धन लीला को अपने काव्य में विशेष महत्व दिया। कृष्ण माखन चोर हैं गोपी चित चोर हैं किन्तु आराध्य के इन लोक रंजक स्वरूपों की इतनी पुनरावृत्ति नहीं जितनी पूतना-वध शकट संहार, तृणावर्त-वध कालीय-मर्दन यमलार्जुन उद्धार आदि प्रसंगों की। दानव-संहार पर बार-बार कवि ने प्रसन्नता प्रकट की है। भगवान के इस लोक रक्षक रूप की बार बार चर्चा करने और पाठकों के सामने उनके प्राणि-हित पूर्ण कार्यों को लाने में कवि को परमस्य प्रसन्नता और गौरव है। उसका उद्देश्य भगवान के लोक-मंगल रूप का उद्घाटन करना ही है। कवि को वे ही प्रसंग बार बार प्रिय हैं जिनमें भगवान ने मानव के कल्याण का अप्रकट सम्पादन किया है। परमानन्ददासजी और सभी अष्टछापी कवियों की अप्रत्यक्ष रूप से यही काव्य में लोक मंगल-भावना है। तुलसी जैसे लोकमंगल के पक्षपाती कवि सीधे सादे मानवावतार का वह रूप दुष्ट-दलन असुर-संहार करवाकर धर्म-राज्य की स्थापना के लिए प्रबन्ध-काव्य का वह रूप स्थिर कर लेते हैं। किन्तु इन भक्तों के परमाराध्य श्रीकृष्ण दुष्ट-दलन और असुर-संहार तो करते ही हैं अपनी अलौकिक मधुर लीलाओं से भक्तों के मन का निरोध भी करते हैं। कर्तव्य-सौन्दर्य और आनन्द का अद्भुत सामंजस्य ही कृष्ण चरित्र की विचित्र विशेषता है। लोकचित्त मुग्धकारिणी लीलाएँ मुख्यतः मनके निरोध के लिए ही हैं। फिर भी कवि ने कहीं कहीं लोकमंगल-भावना का स्पष्ट भी उल्लेख किया है—

> देवदिवारी शुभ एकादशी हरि प्रबोध कीजै हो भाव।
> मिटा उठो है गोविन्द सकल विश्व हित काज॥"

अस्तु परमानन्ददास जी के काव्य की उपर्युक्त त्रिविध शैली पर आधुनिक समीक्षा प्रणाली की दृष्टि से विचार किया जायगा। काव्य के दो पक्ष हैं—

१—भाव पक्ष।
२—कला पक्ष।

१—भाव पक्ष में वस्तुगत भाव कल्पना रसानुभूति आदि पर विचार किया जायगा।
२—कलापक्ष के अन्तर्गत अलंकार छन्द, भाषा आदि पर।

## परमानन्ददास में भाव-व्यञ्जना—

मानव हृदय भावों का सागर है। भाव ही हृदय का निज स्वभाव है। भाव के अभाव में हृदय सत्ता नहीं रहती। पवनान्दोलन से जिस प्रकार समुद्र प्रतिक्षण तरंगायित रहता है उसी प्रकार हृदय भी अपने चतुर्दिक जगत् से भावमय बना रहता है। मानव की निखिल अनुभूतियां भाव-जन्य ही तो हैं। जिस प्रकार वायु के झोंकों से सागर-जल पर प्रतिक्रिया होती है ठीक उसी प्रकार हमारे हृदय पर भी बाह्य जगत् की क्रियाओं घटनाओं एवं परिस्थितियो से प्रतिक्रिया होती है। अन्यथा हृदय के अनन्त भाव सुप्तावस्था में ही रहते हैं। बाह्य प्रभाव उन्हें जाग्रत कर देते हैं। जिन बाह्य प्रभावों से वे उद्बुद्ध अथवा अभिव्यक्त होते हैं उन्हे 'विभाव' कहा जाता है ये विभाव दो प्रकार के हैं—

१—आलम्बन।

२—उद्दीपन।

१ आलंबन विभाव—आश्रय अथवा दृष्टा के सुप्त भावों को जागरित करते हैं और

२. उद्दीपन विभाव—आश्रय अथवा दृष्टा के उद्बुद्ध अथवा जागरित भावो को उद्दीप्त अथवा तीव्र करते रहते हैं।

आश्रय अथवा दृष्टा के हृदय मे जो प्रधान भाव आलम्बन के कारण उद्बुद्ध होता है उसे ही स्थायी भाव संज्ञा दी जाती है तथा जो वीचिवत् छोटे-छोटे अन्य भाव आश्रय के हृदय मे उद्बुद्ध होकर मुख्य भाव को परिपुष्ट करके विकसित किया करते हैं उन्हें संचारी भाव कहा जाता है। आश्रय अथवा दृष्टा अपने उद्बुद्ध स्थायी भाव से प्रेरित होकर जो चेष्टाएं किया करता है उन्हें अनुभाव पुकारा जाता है। यह तीनों—विभाव अनुभाव और संचारी भाव-मिलकर आश्रय अथवा दृष्टा हृदय मे स्थित स्थायी भाव को परिपुष्ट करके उसे रस मे परिणत कर देते हैं अथवा रस दशा मे पहुँचा देते हैं। तात्पर्य यह कि 'रस' भाव की निष्पन्न अथवा परिपक्व स्थिति का ही नाम है। रस की कच्ची दशा ही भाव-दशा है। यह भाव दशा ही विभावानुभाव संचारियों से परिपक्व होकर रस दशा कहलाती है। आचार्य भरत ने हृदय के अन्तर्गत भावो में से मुख्य आठ माने हैं। रति हास शोक क्रोध उत्साह भय जुगुप्सा और विस्मय।

मम्मट ने इनका इस प्रकार उल्लेख किया है —

"रतिर्हासश्चशोकश्च क्रोधोत्साहौ भय तथा।

जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायि भावा प्रकीर्तिता॥"

मम्मट ने निर्वेद को भी एक स्थायि भाव मानते हुए शान्तरस को भी नवम रस माना है।

"निर्वेदो स्थायि भावोस्ति शान्तोपि नवमो रस॥"

परमानंददास की अपनी बाललीला और किशोरलीला के लिए प्रसिद्ध हैं। अतः उनमें वात्सल्य और शृङ्गार-संयोग और विप्रयोग इन दो रसों का सुन्दर परिपाक मिलता है। सूर की भांति शृङ्गार का रसराजत्व परमानंददासजी ने भी चरम सिद्ध कर दिखलाया है। परमानंददासजी मुख्य रूप से प्रेम-तत्त्व के कवि (Poet of love) हैं। उन्होंने सूर की भांति भगवान् की शील शक्ति और सौंदर्य की तीन विभूतियों मे से सौंदर्य को ही अपने काव्य के लिए चुना है।

कवि के काव्य में बाल जीवन और किशोर लीलाओं का चित्रण मिलने के कारण जीवन की सम-विषम-विविध परिस्थितियों का भले ही चित्रण नहीं है न उन्हें प्रत्यक्ष लोक मंगल की चिन्ता है। वे तो राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं के एकान्त गायक गोपी-भाव के अनन्य उपासक व्रज लीलाओं के माधुर्य में तन्मय रहने वाले साम्प्रदायिक जीव थे। उनके काव्य में भगवान कृष्ण की यही बाल सुलभ चपलता माखन-चोरी गोपी प्रेम गोदोहन गोचारण राधा-मिलन यशोदा के वात्सल्य आदि प्रसंगों के साथ वेणु रास यमुना वृन्दावन निकुञ्ज-लीला आदि के वर्णन मिलते हैं। दुष्टों के दमन श्रीकृष्ण के हाथों से होता अवश्य है परन्तु इन अष्टछापी कवियों की मनोवृत्ति भगवान के उस दुष्ट-संहारी लोक मंगल स्वरूप के ऊपर अधिक नहीं टिकी। क्योंकि दुष्टदलन कार्य को वे भगवान का अनिवार्य कर्तव्य सा समझते हैं। क्योंकि भक्तरक्षण उनकी प्रतिज्ञा है।

दूसरे भगवान की इन लीलाओं का आध्यात्मिक पक्ष भी इन कवियों को स्पष्ट था। अतः वे रागानुगा प्रेम लक्षणा भक्ति की तन्मयता में विभोर रहने वाले भक्त थे। दुष्टों के वध जैसे कठोर प्रसंगों के चित्रण में इनकी कोमल वृत्ति कैसे रमती। साथ ही अष्टछाप के कवि और विशेषकर परमानन्ददासजी भगवान् कृष्ण के बाल स्वरूप के उपासक हैं। उनके आराध्य यशोदोत्संग-लालित हैं। अत उनकी मनोवृत्ति में उग्र प्रसंग प्रवेश नहीं पाते। इसीलिए उनका वात्सल्य चित्रण अत्यन्त सरस हुआ है।

## परमानंददासजी में वात्सल्य भाव—

परमानन्ददासजी ने पालने से लेकर पौगण्ड अवस्था तक के पदों में वात्सल्य भाव की बड़ी मधुर धारा बहाई है।

माईरी कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत है पलना।

— — — — — —

लाल अंगूठा गहि कमल पानि मेलत मुख माहीं।
अपनो प्रतिबिंब देखि पुनि पुनि मुसकाहीं॥

यह स्वाभाविक होता है कि पालने में पड़ा हुआ बालक अँगूठा पीता रहता है। परन्तु केवल इतने चित्रण से ही कवि तृप्त नहीं हुआ वह कहता है कि शिशु अपने अँगूठे का प्रतिबिंब भी देख रहा है। और इसी कारण वह मुस्कुरा रहा है।

शिशु के सौंदर्य पर भी परमानन्ददासजी की दृष्टि जाती है। देखने वाले के हृदय में यही शिशु-सौंदर्य वात्सल्यभाव की वृद्धि करता हुआ उसे रसकोटि तक पहुँचा देता है—

झुलावें सुत को महरि पलना कर लिए नवनीत।
नैन अंजन भाल मसिबिंदुका तन ओढ़े पट पीत॥

पालने के शिशु में कुछ स्वाभाविक चेष्टाएँ भी होती हैं—

वेणु देखत मन हरत है कबहुँ होत भयभीत।
दे करतार बजावत गोपी गावत मधुरे गीत॥

सौंदर्य निधान कृष्ण न केवल यशोदा ही के प्यारे हैं, अपितु गोकुल की गोपी मात्र के दुलारे हैं। गोपियाँ काम काज करते दिन में दो चार बार कृष्ण को देख अवश्य जाती हैं। इससे उनको बड़ी देखने में लाभ होता है।

मुख देखन कौं हौं आई लाल को ।
काल्ह मुख देखि गई दधि बेचन जाति ही दधि गयो बिकाई ।
दिन तें दूनौं लाभ भयो घर काजर बछिया जाई ।
आई हौं धाय धाम की मोहन देहौं बधाई ॥
सुन प्रिय बचन बिहँस उठि बैठे नागर निकटि बुलाई ।
परमानंद स्वामी ग्वालिन सैन संकेत बुलाई ॥

वात्सल्य और स्नेह भरे ऐसे अनुपम चित्र परमानंददास के काव्य में भरे पड़े हैं ।

कृष्ण थोड़े समय में ही घुटनों चलने लगे हैं । अतः मदन-निकेतमणि की निराली शोभा है:—

मनि मय आंगन नंदराय के बाल गोपाल करें तहाँ रंगना ।
गिरि गिरि उठत घुटरुवन टेकत जानुपानि मेरे छंगना ॥

इन लौकिक लीलाओं के बीच भी परमानंददासजी अलौकिक भगवदैश्वर्य को भूलते नहीं । वे तुलसी की भाँति उसकी पुनरावृत्ति करते चलते हैं । सूर इतनी जल्दी भगवदैश्वर्य की पुनरावृत्ति नहीं करते । परमानंददासजी की इन पुनरावृत्तियों में पौराणिक गाथाओं का पुट है । इसी कारण कहीं कहीं वात्सल्य में अद्भुत रस का किंचित समावेश हो गया है ।

वात्सल्य के वे अलौकिक चित्र स्वाभाविकता के इतने निकट आगए हैं कि पाठक की कल्पना सजीव हो उठती है और गृह वातावरण का एक जीता जागता चित्र सामने आ जाता है । कृष्ण को माखन चोरी के अपराध में माता ने बाँध दिया है और बालक कृष्ण करुणा भरी दृष्टि से इधर उधर देख रहे हैं । किसी गोपी ने उन्हें देख लिया है अतः वह यशोदा को झिड़क रही है । —

गोविंद बार बार मुख जोवै ।
कमल नयन हरि हिचकनि रोवत बंधन छोरि यह सौवै ।

... ...

कहा भयो जो घर के लरिका चोरी माखन खायो ॥
गई मटुकिया सही बयायो देव न पूजन पायो ॥
तिहिं घर देव पितर काहे के जिहिं घर कान्ह रुवायो ।

कवि ने 'हिचकनि' से बालक के रोने का जो स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है उससे दृष्टा श्रोता एवं पाठक की कल्पना के सामने वात्सल्य भाव का एक मनोरम चित्र उपस्थित हो जाता है । इन पदों में रोते कलपते हिचकियां लेते कृष्ण आलम्बन हैं माता और माता के साथ वाली सखी की झिड़की उद्दीपन के अन्तर्गत तथा रोष क्षोभ निर्वेद, आन्तरिक स्नेह आदि अनुभाव हैं । वात्सल्य भाव के ऐसे प्रसंग कवि की सजीव कल्पना शक्ति एवं निरुपम शैली से रस कोटि तक पहुँच गया है ।

उपर्युक्त पदों में वात्सल्य भाव के सफल चित्रण की चर्चा की गई है अब शिशु-सौन्दर्य के भी कुछ चित्र हैं जो पाठक को एक दिव्य भाव-लोक में डुबो देते हैं ।

सुन्दर भाल तंदुल के मुक्ता मैनमिर्यां ।
कटि पर काछनी अति भीनो भीतर झलकत तनियां ।
लाल गोपाल लाडले मेरे डोलत चरन पैंजनियां ।
परमानन्ददास के प्रभु की यह छवि कहत न बनिया ।

वात्सल्य का चरम विकास माता के इन शब्दों में मिलता है—

जा दिन कन्हैया मोसों मैया मैया कहि बोलैगो ।
ता दिन अति आनन्द बिलोरी माई, स्नेह पुलक तन चलिन पै डोलैगो ।
प्रात ही खिरक धाम दुहिबे को, धाइ कवन बछरवा के डोलैगो ॥
परमानन्द प्रभु नवल कुमर मेरो ग्वालिन के संग बन में किलोलैगो ॥

पुष्ट पुलकित मन और बालक के नंगे पूतने के बहुत से स्वाभाविक वर्णन परमानन्ददासजी ने किये हैं—

जसोदा तेरे भाग्य की कही न जाय ।

.... .... ..

ते नंद लाल धूर धूसर वपु रहत गोद लपटाय ।

...

माई तेरो कान्ह कौन ढंग पाग लाग्यो ।
मेरी पीठ पर मेलि ककरा नहीं देख भाज है भाग्यो ॥
पांच बरस को स्याम मनोहर ब्रज में डोलत नांगो ।
परमानन्ददास को ठाकुर काहे परयो न तागो ।

यज्ञोपवीत की अवस्था से पूर्व की लीलाओं में परमानन्ददास जी की चित्तवृत्ति अत्यधिक रमी है ।

*सूर की भांति उनके कृष्ण भी मणि-खम्भों में अपना प्रतिबिम्ब पकड़ने दौड़ते हैं ।*

बाल विनोद खरे जिय भावत ।
मुख प्रतिबिंब पकरिबेको हरि हुलसि घुटरुअन धावत ।

इसी प्रकार कृष्ण का पैंजनी पहिन कर घुंघरू की ताल पर नाचना दूध के दो दांतों की किलकारी बछिया की पूंछ पकड़ना आदि मनोहर प्रसंग परमानन्ददासजी को अत्यन्त ही भाये हैं । साथ ही ये स्वाभाविक दृश्य वातावरण की सृष्टि करने में भी अत्यन्त पटु हैं । कोई गोपी प्रेम के आवेश में यशोदा के यहां चली आई है । कृष्ण को अपने वक्षस्थल से लगाना चाहती है । माता ने अभी अभी बालक को किसी प्रकार फुसलाकर के सुलाया है । माता यशोदा गोपी को कृष्ण को उठाने के लिए मना कर रही है । निराश गोपी जाना ही चाहती है कि कृष्ण उठ पड़े और रोने लगे गोपी के मन की साध पूरी हुई । ऐसे स्वाभाविक वात्सल्यमय प्रसंग हमें प्रायः नित्य घरों में देखने को मिल जाते हैं । वात्सल्य का इससे अधिक स्वाभाविक चित्रण क्या हो सकेगा । कल्पना की यह दिव्य उड़ान देखने योग्य है—

रहि री ग्वालिन तू मदमाती ।
मेरे ललन मगन है नाचहि चित्त में उपजत जपावत जाती ।

खीझत ते अब ही राखे हैं म्हानी म्हानी दूध की दाँती।
देखत है वर अपने कोसठ काहे की ऐसी इतराती॥
उठि चली ग्वालि लाल लगे रोवन तब जसुमति माई बहुपाती।
परमानन्द प्रीति अतरगति फिर आई मैंगन मुसकाती।

इस प्रकार बाल-हठ से चन्द्र खिलौना माँगना माता का खीझ भरा प्रेम उसकी अभिलाषा भविष्य की सुन्दर कामनाएं ज्योतिषियों को हाथ दिखाना गोचारण जाने के लिये विचार ब्याह की बात चलना साथियों के साथ क्रीड़ाएँ, माता के पास शिकायतें आना जीवन के ऐसे सरस स्वाभाविक प्रसंग हैं जो हम नित्य अनुभव करते हैं। परमानन्ददासजी ने इन्हें प्रस्तुत कर अपनी जिस दिव्य कल्पना शक्ति का और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है वह देखने योग्य है। इसी को लक्ष्य कर उनका 'सागर' सूरसागर की टक्कर का कहा जाता है।

पौगण्ड लीला में भी परमानंददासजी की भावाभिव्यक्ति देखने योग्य है। बालकों के समूह और उनकी क्रीडा के कितने ही सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किए हैं—

गुडी उड़ावन लागे लाल।
सुन्दर पतंग बाँधि मन मोहन नाचत है मोरन की ताल।
कोऊ पकरत कोऊ ऊ चत है, कोऊ देखत नैन विशाल॥
कोऊ नाचत कोऊ करत कुलाहल कोऊ बजावत तारी करताल॥
कोऊ गुड़ी सो गुडी उरझावत आपुन खैंचत डोर रसाल।
परमानंददास स्वामी मन मोहन रीझि रहत एक ही काल॥

पतंग के पेंच लड़ाने बालकों के अपने अपने क्रीडा संबंधी अनेक कार्य भेद खेलने में होड़ घोड़े पर दौड़ आदि अनेक रसमय प्रसंग परमानंददासजी की विशेषता है। उनमें एक रसता (Monotony) का आरोप नहीं किया जा सकता। इन सब क्रीड़ाओं और लीलाओं के भीतर एक अखण्ड स्वच्छ भावशक्ति की अबाध धारा उनके काव्य में बहती रहती है। जो उनके सौन्दर्य-तत्व के प्रति सावधानी की द्योतक है। साथ ही जिसका चरम विकास किशोर लीला में राधा के प्रथम मिलन में हुआ है।

पालने में शिशु की विविध चेष्टाएँ नन्द-निकेतन की क्रीड़ाएँ माता के हृदय की विविध अनुभूतियों और इसी प्रकार ब्रज लीलाओं के वर्णन में परमानंददासजी सूर के समकक्ष आजाते हैं।

कृष्ण बड़े हो गए हैं। गोदोहन सीखने की जिज्ञासा है।

बाबा जू मोहि दुहन सिखायो।
मात एक धौरी सी मिलवों ही है दुहीं बलदाऊ दुहायो।

गोदोहन की कला आजाने पर अब चोरी शरारत भी सीख गए हैं। गोपियों की दोहनी छिपा देते हैं। कभी खिड़क का दरवाजा खोल देते हैं जिससे बछड़े दूध पी जाते हैं और ग्वालों की चोरी हो जाती है।

ढोटा मेरी दोहनी दुराई ।
औरों तें लीनी खेलन को यह भी कौन बड़ाई ।
— — — — — — —

द्वार कवार खोल दिए बछरा देखत मैया दुरवाई ।

कभी कभी बड़े भैया की शिकायत रोहिणी मैय्या से की जाती है ।

मैया मिलत दुरे बलदाऊ ।
कहत है बन बड़ो तमासो सब लरिका जुरि आऊ ।
मोहूँ को चुचकार चले ले जहाँ बहुत बनो बन झाऊ ॥
वाहीं ते कहि छाँड़ि चले सब काटि कारे हाऊ ।
डरप्यो काँप के उठि ठाढ़ो भयो कोऊ न धीर धराऊ ॥
परि परि गयो चरण्यो नहीं वे जाके बात प्रभाऊ ।
मोसों कहत मोल को लीन्हो आप कहावत साऊ ॥
परमानन्द बलराम चबाई, तबैई मिले सबाऊ ॥

प्रस्तुत पद में कितनी स्वाभाविकता व्यंजकता एवं भाव सुन्दरता है । कृष्ण की दीन उपालम्भ भरी देखने योग्य है । दाऊ स्वभाव का और उसकी सीधी साधी शिकायत का एक और मार्मिक चित्र—

देख री रोहिणी मैया कैसे हैं बलदाऊ भैया ।
जमुना के तीर मोहि झुनझुना बतायो री ॥
सुबल श्रीदामा साथ हँसि-हँसि बूझें बात ।
आप डरपे और मोहि डरपावी री ॥

कितना स्वाभाविक चित्र है । बाल भाव का जैसा सरल मोहक चित्रण परमानन्ददासजी ने किया है वैसा दूसरी जगह दुर्लभ है । साथ ही कवि ने वस्तु के अनुरूप ही सरलतम भाषा का प्रयोग किया है । बालक कृष्ण को सखा काला-काला कह कर खिजाते हैं और बड़े भैया उनका पक्ष नहीं करते इससे अधिक दुख की क्या बात हो सकती है ।

कारी कहि कहि मोहि खिजावत ।
नाहिं बरजत बस अधिक अनैरो ॥

प्रायः बच्चे अनाप शनाप खाकर पेट भर लेते हैं । न भोजन की परवाह है न किसी प्रकार की अन्य चिंता । खेल में मस्त साथ ही कभी कभी वह कुत्ते के पिल्ले पकड़ लेते हैं और उन्हीं के साथ खेलते हैं कितना स्वाभाविक बालभाव है । परमानंददासजी की सूक्ष्म दृष्टि बच्चों की इस चपल वृत्ति पर भी जा टिकी है वे लिखते हैं—

लाल को भावे गुड़ मीठे बन बेर ।
और भावे बाहु छेद अचरिया लाको बना बन हेर ॥
और भावे बाहु गैयन में खरिको घेर सखा सब टेर ।
परमानन्ददास को ठाकुर खिल्ला लाखी बेर ॥

प्रस्तुत पद इतना स्वाभाविक है कि सम्भवतः ऐसा चित्रण शायद ही किसी कवि ने किया हो। चिल्ला पकड़ना प्रायः पौगंड अवस्था में ही होता है। पौगंड से छोटी अवस्था का बालक चिल्ले से डरता है। पौगंड अवस्था से बड़ी अवस्था का बालक चिल्ले से खेलना पसंद नहीं करता, अतः परमानंददासजी को बच्चों की चिल्ले पकड़ने की यथार्थ अवस्था का पूरा पूरा ज्ञान था। यही कवि की उच्च कोटि की सूक्ष्म दृष्टि है। भोजन का समय हो गया है। माता पिता को चिंता हुई बालक कहाँ गया या तो ग्वालों के साथ होगा या खिड़क में बछड़ों के साथ खेलता होगा।

देखो री गोपाल कहाँ है खेलत।
कै गैयन संग गए चराऊ कै खिरक बछरन संग खेलत ॥
× × × × × × × ×
ऐसी प्रीति पिता माता की पलक ओट नहिं कीजै ॥

इतने में कृष्ण आ गए हैं। यशोदा मैया सखाओं सहित उन्हें भोजन कराती है। कभी माता को चिन्ता होती है कि सबेरे का गया हुआ श्याम भूखा होगा आज उसे प्रातराश (कलेवा) भी नहीं मिला है। और उसकी याद भी बड़ी देर में आई—

नैक गोपालै लीजो टेर।
आज सबारे कियो न कलेऊ सुरत भई अति बेर।
ढूंढ़त फिरत जसोदा मैय्या कहाँ कहाँ हो खेलत ॥

वात्सल्यमयी माता पलक ओट नहीं करना चाहती और भोजन में विलंब भी सहन नहीं कर सकती—

प्रेम मगन जोवत नंदरानी।
× × × × × × × ×
भोजन बार अबार जानि जिय सुरत भई आतुर अकुलानी।
ढूंढ घर घर आँगन लौं तन की दसा हिरानी ॥

दधि बिलोने और माता को खिझाने तथा गोपियों के उपालम्भ के पदों में परमानन्ददासजी तथा सूर में बहुत साम्य है। जिस प्रकार मृत्तिका भक्षण में सूर भगवदैश्वर्य का वर्णन किए बिना नहीं रह सके हैं उसी प्रकार दधि-मंथन-लीला में मथानी पकड़ने में वे समुद्र मंथन वाली पौराणिक गाथा को घसीटे बिना नहीं रह सके। सूर के प्रसिद्ध पद—'जब मोहन कर गही मथानी' में सूरदासजी ने एक वातावरण प्रस्तुत किया है, किन्तु परमानन्ददास जी उस कथा को बड़े अनायास ढंग से ले आए हैं—

गोविन्द दधि न बिलोवन देहीं।
बार बार पाँय परत जसोदा माँगत कलेऊ लेहीं ॥

..

एक एकने होय देव-दैत्य तब मथत-मंदराचल जानो।
देखत देव सकल कंपी जब गही गोपाल मथानी ॥

सूर के समुद्र मंथन वाले पद को पढ़ने से पाठक का एक लोकोत्तर घटना की कल्पना होने लगती है और वह दधि-मंथन के साधारण से मानवमय वातावरण से ले जाकर पाठक को एक माहात्म्यमय आतंकपूर्ण मनोराज्य की स्थिति में पहुँचा देते हैं जहाँ मनौकिकता अथवा मौतिकता से परे की स्थिति का भाव होने लगता है परन्तु परमानंददासजी ने ऐसा नहीं किया है। भगवान् का ऐश्वर्यद्योतन भाव का संकेत करना उनका मूल उद्देश्य है और कुछ नहीं। इस प्रकार बाल भाव के विविध चित्र जो हम सूर में पाते हैं परमानन्ददासजी में भी उसी गहराई के साथ मिलते हैं। उनके बाल और प्रेम के चित्रण में विविध चेष्टाओं का वर्णन सूक्ष्म निरीक्षण बालमनोविज्ञान स्वभावोक्ति का चमत्कार बालकों की ईर्ष्या असूया रागद्वेष आदि उतनी ही उत्कृष्टता उतनी ही विदग्धता और उतनी पूर्णता के साथ चित्रित हुए हैं जितने सूर में। अन्य अष्टछापी कवियों से वे बाल लीला के चित्रण में निस्सन्देह अधिक सफल हैं।

गोदोहन और गोचारण के प्रसंगों में वे वही गोप बस्तियों का घरेलू वातावरण ले आए हैं जो प्राय: सर्वविदित और सर्वचर्चित है किन्तु उनकी मौलिकता उनकी अभिव्यक्ति और सूक्ष्म निरीक्षण में वात्सल्य रस को स्वतन्त्र रस-रूप मिल गया है। सूर के उपरान्त वात्सल्य रस का सफल परिपाक परमानन्ददासजी में ही मिलता है। इन दो सागरों ने वात्सल्यरस की परिपक्वता को जिस कोटि पर पहुँचाया है उस सीमा तक हिन्दी का कोई अन्य कवि कदाचित् ही पहुँचा हो। तथाकथित सभ्य जगत से दूर जनसंकुलता से नितांत निरपेक्ष गोप बस्तियों में जो एक आत्मीय भाव और निजी वातावरण होता है उसका सफल चित्रण कवि ने है। वहाँ परस्पर के आदान प्रदान सभी क्षेत्रों में चला करते हैं। उनमें पगपग पर पराश्रयजन्य अथवा परस्पर सहायकता का वातावरण होता है। कवि ने ऐसा ही वातावरण प्रस्तुत करने की भरपूर चेष्टा की है। गोपी श्रीकृष्ण को बुलाने आती है क्योंकि उसकी गैया उन्हीं से परच गई है अत: कृष्ण ही उसे दुह सकेंगे।

तुम पतिपाव स्यामसुन्दर तुम्हरे कर पहिचाने।
ऊँचे कान करत नीच देखत हुमकि हुमकि होत ठारी।

गोपी वहीं देखने जाना चाहती है। कृष्ण के मुख देखने से जीती हो जाती है। अत: वह एक सखा के लिए सबेरे सबेरे मुख देखने ही चली आई है।

(१) काल मुख देख गई ही दधि बेचन उबरो गयो है बिकाई।
दिन ते दूनों लाभ भयो घर गागर बछिया आई॥

सबेरे सबेरे आने का एक और बहाना—

(२) तुम्हारे खरिक बताई हो दुहवाय हमारी गैया।

अपनी गायों को ही ढूँढने वे कृष्ण के खिरक में चली आई। कैसा स्वाभाविक एवं मनोरम वातावरण है।

गोपाल की गाय भारी सुन्दर है। उस पर भी शृङ्गार बहुत अच्छा हुआ है अत: गोप वृन्द निभकारी मार रहा है।

नीकी देखो गोपाल की गैया।
दूनी देन स्याम जब हाथे यह थु दिखाती नीकी गैया।

## परमानन्ददासजी में रस-व्यंजना—

परमानन्ददासजी मुख्यतः प्रेम के कवि हैं। उनकी काव्य-सीमा जन्म-महोत्सव से मथुरागमन और छद्मागमन तक है। तदनंतर उनकी भक्ति-भावना आत्म-निवेदन एवं दैन्य सम्बन्धी पद हैं अतः विषय की दृष्टि से निश्चित परिधि में रहते हुए भी सभी मुख्य रसों को थोड़ा बहुत ले लिया है। एक दो रसों को छोड़ वे सभी रसों के कवि हैं। सूर की भाँति शृंगार और वात्सल्य का रस सिद्ध कवि उन्हें कहा जा सकता है। उनका काव्य प्रेम तत्व से भरपूर है। अतः प्रेम के विविध रूपों अनुभावों एवं उनके मर्म अथवा मार्मिक पक्षों के उद्घाटन में उनकी वृत्ति खूब रमी है अन्यत्र नहीं। रसराज शृंगार के उभय पक्षों-संयोग और विप्रयोग—की विविध अनुभूतियों में ही उनकी चित्तवृत्ति रमी है।, अतः उनके सागर में शृंगार रस की ही प्रधानता है। हास्य करुण विप्रलंभ वीर अद्भुत और शान्त अल्प मात्रा में है। तथा रौद्र भयानक का अभाव सा है। यहाँ उनके काव्य में शृंगार रस के परिपाक की चर्चा की जाती है।

किशोरावस्था की सरस भूमि में पदार्पण करते वही 'प्रेम' अथवा पूर्व राग नाम की उस वृत्ति का हृदय में उदय होने लगता है जिसमें एक विचित्र मादकता विशिष्ट उल्लास विचित्र सम्मोहन होता है। यह जीवन-वन का वसंत है। इसी से मानव की अनादि वासना नवीन रूप में प्रबुद्ध होकर दूसरे को पाने का तकाजा करती है।

इस 'एकोऽहं बहुस्याम्।" भावना को लक्ष्य करके महाकवि प्रसाद ने कामायनी में लिखा है:—

"जग हो चली अनादि वासना।
मधुर प्राकृतिक भूख समान।
चिर परिचित सा चाह रहा था
द्वन्द्व सुखद करके अनुमान॥

हृदय की यह अनादि वासना जो द्वन्द्व की चाह रखती है, साहचर्य के लिए छटपटाती है। यह साहचर्य ही राग अनुराग स्नेह प्रेम अनुरक्ति प्रणय आदि विविध दशाओं में होता हुआ अन्त में परिणय में पर्यवसित हो जाना चाहता है। युगों के बिछुड़े युग्म मिल जाते हैं। भारतीय संस्कृति इसका मूल कारण प्राक्तन संस्कार बताती है। वस्तुतः इसमें कोई स्थूल हेतु तो दृष्टिगोचर होता नहीं।

हृदय की इस तरल अनुभूति के लिए ही भवभूति ने कहा था—

"व्यतिषजति पदार्थान् आन्तरः कोऽपि हेतु

"कोऽपि हेतु' को स्पष्ट करने के लिए किसी ने साहचर्य का आश्रय पकड़ा किसी ने सौन्दर्य का और किसी ने संस्कार का। परन्तु गुण-श्रवण चित्रदर्शन और स्वप्न दर्शन को भी अनुराग की उत्पत्ति के कारण मानते हुए 'कोऽपि हेतु' के गुप्त कारणों का उल्लेख काव्यों में मिलता है।

अष्टछाप के कवियों ने इस क्षेत्र में बहुत ही स्वाभाविकता से काम लिया है। शृंगार के रससिद्ध कवि महात्मा सूर ने राधा के प्रथम दर्शन में ही अनुरक्ति के बीजांकुरों की विकासोन्मुख दर्शन की चेष्टा की है —

'बूझत स्याम कौन तू गोरी'

यह प्रथम दर्शन और प्रथम सम्भाषण क्रमशः घनीभूत होता चला गया और अंत में वह चिर संयोग का आदर्श बन गया जो अपनी गुरुता में हिमालय से भी अधिक उच्च, गंगा से भी अधिक पवित्र एवं निर्मल विस्तार में सागर से भी विशाल और उच्चता में आकाश से भी उच्च है। भारतीय दाम्पत्य-जीवन का आदर्श राधाकृष्ण से बढ़कर कोई नहीं। युग-युग से राधा-कृष्ण की प्रेम कहानी जनमन-पावन करती चली आ रही है। परमानन्ददासजी की राधा इस प्रकार अचानक नहीं मिल जाती। वह भी गोप-मण्डली की एक प्रमुख सदस्या है। शैशव के सुकुमार दिनों से आकर्षण बढ़ा है। नंद और वृषभानु गोप इनकी गाएं यमुना कछार में चरने जाती हैं। राधा-कृष्ण का यही नित्य कार्य है। वे भी गाएँ चराने जाते हैं आकर्षण और सौन्दर्य ने परस्पर आसक्ति के भाव अंकुरित कर दिए हैं। राधा के आकर्षण ने गाय चराने में विशेष रस उत्पन्न कर दिया है। राधा की मुस्कान पर कृष्ण निछावर हैं—

"गाय चरायबे को व्यसनु।
राधा मुख चाख राख्यौ नैननिको रसु॥
कबहुंक घर कबहुंक बनु खेलन को असनु॥[1]
परमानंद प्रभुहि भावै तेरेइ मुख हँसनु॥

राधा श्रीकृष्ण की नित्य सहचरी है। वह घर और वन सर्वत्र साथ रहती है। यदि प्रातः कृष्ण उठने में विलंब कर देते हैं तो राधा किसी न किसी बहाने से उनके यहाँ पहुँच ही जाती है। प्रेम की यह प्रच्छन्न धारा कितनी सरस मधुर है इसकी महत्ता की इयत्ता नहीं यह गुप्त प्रीति अज्ञात रूप से चली चलती है। लोक में प्रकट हो जाने पर भी इसका उत्तरोत्तर न्यून नहीं होता—

मैं हरि की मुरली बन पाई।
सुन जसुमति संग आपुनो कुंवर बनाय देन को ही आई।
सुनि प्रिय वचन बिहसि उठि बैठे अन्तरयामी कुंवर कन्हाई॥
मुरली के संग हुती मेरी पहुँची दै राधे वृषभान दुहाई॥
मैं तिहारी पहुँची नहि देखी चलो मैं देऊ और बनाई॥
ऐसी प्रीति मदनमोहन की घर बैठे जसुमति बौराई॥
जानी मरम जानती की को दोऊ पी एक अनुराई॥
परमानन्ददास मोहि सूझौ जिन यह केलि जगत करि गाई॥

कैशोर्य की यह अनुरक्ति क्रमशः विकास पथ पर है। राधा कृष्ण से मिलने के बहाने ढूँढ़ती है अब कभी भोजन के लिए निमन्त्रण देने आती है।—

१ कीर्तन।

कहति है राधिका अहीरि।
आजु गोपाल हमारे आवहु ज्यौंति जिमाऊं खीरि ॥
बहुत प्रीति अंतर मन मेरे, नैन ओट दुख पाऊं ॥
तुम हमरो कोऊ जिनु नहीं मानै अरिकाई की बात ॥
परमानन्द प्रभु नित उठि आवहु भवन हमारे प्रात ॥

राधा की विनय है कि कृष्ण उसके यहाँ नित्य प्रातःकाल पहुँचा करें। बड़कपन की अवस्था होने से उनकी परस्पर प्रीति पर कोई संदेह भी नहीं कर सकेगा। राधा पल भर भी उनको नैनों से ओझल नहीं कर सकती यह प्रीति बढ़ चली —

राधा माधौ सों रति बाढ़ी।

वय संधि आ पहुँची है। कामोद्गम हो चला है। स्वरूप-सौन्दर्य से हटकर दृष्टि गुणों पर जा टिकी है।

"बाढ़ति निरखी प्रानप्यारे की परमानन्द गुण गाढ़ी"

राधिका मुग्धा नायिका है, भगवान के स्वरूप पर भोली भाली मृगी की भाँति मुग्ध है सशंक नैनों से भी यमुना तट निकुंज अथवा किसी एकान्त वनस्थली में प्रतीक्षा करती रहती है —

हरि ज्यौं हरि को मधु जोवति काम मुग्धमति ताकी।

प्रेम की इस प्रगाढ़ता से अब परिणाम यह हुआ कि एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते। इस तन्मयता के कारण लोक निंदा का पात्र भी बनना पड़ रहा है —

राधा माधो बिनु क्यों रहे।
एक स्याम सुन्दर के कारन और सबनि की निंदा सहै ॥

यह प्रणय परिणय में पर्यवसित हुआ और राधा परिणीता होगई।

"राधे बैठी तिलक सँवारति।
अंतर प्रीति स्याम सुंदर सों प्रथम समागम केलि सँभारति ॥

परमानन्ददासजी ने राधा को स्वकीया मानकर शृङ्गार के ये मोहक चित्र प्रस्तुत किए जो बरबस पाठक को मुग्ध कर देते हैं।

नववधू संकोच शीला राधा को मोहन बातों में भुला लेते हैं —

"मोहन लई बातन लाई।
गुप्त प्रीति बिन प्रगट कीजे लाल रही अरगाई ॥

परमानन्ददासजी ने कृष्ण का बहुनायकत्व सिद्ध किया है। सूर ने जहाँ अकेली राधा की चर्चा करके एकाध सखी से दूतीत्व कराया है वहाँ परमानन्ददासजी ने चार सखियों की स्वाम

१ निज सुत देखन दीजै रानि।
तुम बहु भाग्य चतुर सिरोमनि मेरी बांह इत गहिए।
परमानन्द स्वामी मन मोहन तुम ही निरमोहिए ॥

कृष्ण कालिंदी तट पर बैठे हुए राधा की उत्कट परीक्षा कर रहे हैं, कभी प्रसाद का बीड़ा भेजते हैं तो कभी नाम ले लेकर गाते हैं—

बैठे लाल कालिंदी के तीरा।
मैं राधे मोहन पठ्यौ है यह प्रसाद को बीरा॥

कृष्ण राधा से अपार प्रेम करते हैं उनका प्रेम विकार ग्रस्त नहीं है अतः राधा का मान व्यर्थ है—

मान तो तासौं कीजे जो होई मन बिगई।

परन्तु फिर भी राधा का मान नहीं दूर होता। दूती ने दूसरा उपाय सोचा। वह राधा की प्रशंसा करती हुई कहती है कि राधा बड़े भाग्यशाली है। मुरली-रव से कृष्ण राधा का ही तो नाम ले ले कर बुला रहे हैं—

राधा माधौ कंज बुलावै।
सुनि सुंदरि मुरली की घोर तेरो नाऊ लै लै गावै॥
कौन सुकृत फल तेरो बदन सुधाकर भावै।
कमला को पति पावन लीला जोवन प्रगट दिखावै।
अब जिनि सुमुख बिलम न कीजै चरण कमल रस लीजै॥

...

परमानन्ददासजी ने राधा के मान विषयक अनेक पद गाए हैं। संयोग शृंगार में वे सुरतांत वर्णन कर गए हैं।

'सुरत समागम रमि रह्यो नदी जमना के रेत।

नायिका भेद की दृष्टि से उनकी राधा के निम्नांकित रूप मिल जाते हैं—

अज्ञात यौवना—

मन हर लै गए नंदकुमार।
बालक दृष्टि परी बरजन तन देख न पायौ बदन सुधार।
हौं अपने घर सुधरौं बैठी पोवत ही मोतिन को हार।
ताकर डारि हार है निकसे बिसर गयौ तन करत सिंगार॥
कहा री करौं कछौ जिनि है गिरधर दिहि मिस हौं बहोरो घर जाऊं।
परमानन्द प्रभु ठगौरी लावनक मदनगुपाल मावती नाऊ॥

ज्ञात यौवना—

औचकहि हरि आय गए।
हौं दरपन लै मांग सँवारत चारयौ हु नयना एक भए॥
नैक चितै मुसिकाय हरि मेरे प्रान चुराई गए।
अब तो भई है और दिनन की बिसरे देह सिंगार ठये॥
तबतें मधुर मुहाय बिरह मन ठगी नंदसुत स्याम भए।
'परमानन्द प्रभु' की रति बाढ़ी गिरिधरलाल आनन्द भए॥

वचन विदग्धा—

आज तुम हिलों ही रहो गाम्हर प्यारे ।
निसि अँधियारी भवन दूरि है बसत सकल्यों हारे ॥
खोरि पन की सेज बिछाऊ या तरवर की छाँह ।
नंद के त्रास तुमसे निकट रहोगी देहुँगी उसीसे बाँह ॥
संग के सखा घर को बिदा करौ हम तुम रहिये दोऊ ।
परमानंद प्रभु मन राखो पाले मनरथ करो मति कोऊ ॥

क्रिया विदग्धा—

री ग्वालिन पिचकारे बोल सुनायो ।
कमल नयन जब करत कलेऊ कौर न मुख लौ नायो ॥
× × × × × × ×
गुप्त प्रीति मोहन मोहिनी की यह परमानंद गायो ॥

वासकसज्जा—

आजी भली जु करति ।
मेरे हार के पाऊ भरति ॥
स्याम हमारे देखत ही हिरौ धरि प्रीति के भूले मेरे लोचन भरति ॥
× × × × × × × ×
परमानंद प्रभु चलत ललित गति कायर चकित चकराप निवारति ॥

खण्डिता—

कमल नयन स्याम सुन्दर नित के आये हो भावत भरे ।
कर नख पर रावत मानों अर्ध शशि धरे ॥
लटपटी सिर पाग बिगत बदन तिलक टरे ।
मरगजी वर कुसुम माल नूपुर पग पंथ परे ॥
दुरत रस उमगि रहे पुलक होत खरे ।
परमानन्द रसिक राय जाही के भाग्य ताही के हरे ॥

मानवती—

मनावत हार परी री माई ।
तू सठ तें मन होत न राधे, हौं हरि सैन पठाई ॥
राजकुमारी होय सो जानें मैं मुख होय बताई ।
नन्दनन्दन को छाड़ि महाराम अपनी रार बढ़ाई ॥
ठोरी हाथ चली दै पूटी तिरछी भौंह चढ़ाई ।
परमानन्द प्रभु करोगी दुलैच्या सो बाबा की बाई ॥

उत्कंठिता—

मदन गोपाल बलैयाँ लैहों ।
वृन्दाविपिन तरनि तनयातट चलि ब्रजनाथ आलिंगन दैहों ॥
रचन निकुंज कुसुम रति आसन नव कुसुमन की सेज बिछैहों ।
त्रिगुन समीर पथ श्रम खोवाऊँगे तव मुख आरि पसेवो पैहों ॥
परमानन्द प्रभु चारु बदन को उचित तम्बोर मुखिन हू दैहों ।

रूपगर्विता—

> छाँड़ि न देत झूठे अभिमान ।
> मिलि रस रीति प्रीति करि हरि सौं सुन्दर है भगवान ॥
> यह जोबन धन छोड़ चारिको पलटत रंग सो पान ।
> बहुरि कहाँ यह अवसर मिलि है ओप रूप को ठान ॥
> बार बार दुतिया बिहरै नहिं अवसर रस पान ।
> परमानन्दस्वामी सुख पावत सब सुख रूप निधान ॥

तात्पर्य यह है कि प्रेम की संयोगावस्था के जितने भी चित्र सम्भव हो सकते थे परमानन्ददासजी ने अत्यन्त सफलता के साथ उन्हें प्रस्तुत किया है उनकी प्रेम-व्यंजना इतनी अकृत्रिम व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक है कि वह पाठक को अनायास ही मुग्ध कर देती है। लोक-मर्यादा की चिंता ने कवि के हृदय की स्वाभाविक उमंग को दबाया नहीं है। प्रेम के गहन नवधार्णव में लोक-लाज मर्यादा गुरुजन-संकोच वेद-मर्यादा सब चुके हैं और केवल एक ही तत्व की आद्योपान्त प्रधानता रह गई है। संयोग शृंगार के इतने विविध चित्र परमानन्ददासजी ने प्रस्तुत किए हैं कि कहीं कुछ और प्रस्तुत करने को कठिनाई से ही पा जाता है। सभी प्रकार के प्रेम के रूप सभी प्रकार की नायिकाओं की अवस्था सभी प्रकार के हार्दिक भाव एक साथ परमानन्ददासजी में देखने को मिल जाते हैं। उन्होंने वस्तु व्यंजना की अपेक्षा भाव-व्यंजना पर ही अधिक दृष्टि रखी है।

अतः सरस मनोरम की दिव्य अनुभूति के लिए दिव्य प्रकृति के सभी उद्दीपनों को प्रस्तुत कर दिया है। एकान्त उपवन निकुंज रमणीय लता सघनकुंज यमुना कछार, ग्रीष्म वर्षा शरद, हेमन्त बसन्त सभी ऋतुएँ अनुकूल प्राकृतिक वातावरण कवि की सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक हैं।

एकान्त निकुंज की शीतलस्पर्शी सात्विक एवं वासन्तिक चन्द्र-ज्योत्स्ना राधा कृष्ण को अतिशय प्रिय है। कृष्ण राधा को वन-सौंदर्य की ओर आकर्षित करते हुए कहते हैं—

> राधे देखि बन के चैन ।
> भृंग कोकिल शब्द सुनि सुनि होत प्रमुदित मैन ॥
> यहाँ बहत मंद सुगन्ध शीतल यामिनी सुख दैन ।
> कौन पुण्य प्रताप को फल तू जो विलसत ऐन ॥
> आज विहरत मिल्यो चाहत मोहन मधुरे बैन ।
> दासपरमानन्द प्रभु हरि आज मन्मथ सैन ॥

इसी प्रकार वर्षाकालीन कृष्ण मेघ उमड़ती घटाएँ, घुमड़ते बादल रंग बिरंगी आकाश धाम आभा पपीहे का बन दामिनी की दमक दादुर मोर कोकिला का बोलना भी तो रस के उद्दीपन करने वाले हैं। राधामाधव के शीतकालीन संयोग शृङ्गार के वर्णन भक्त की लोक दृष्टि से अवश्य ही अश्लीलता की सीमा को स्पर्श कर गए हैं परन्तु भक्तों की दृष्टि से यह लौकिक काम नहीं।

पीढ़े रंगमहल ब्रजनाथ ।
रंग रस की करत बतियाँ राधिका सैं साथ ।।
दोऊ मौढ़ रजाई क्रीडत ग्रीवा भुजा भर बाथ ।
परमानन्दप्रभु काम मधुर मदन कियौ सनाथ ।।
पौढ़े हरि मीनों पट दै ओट ।

तथा—

संग सी वृषभान तनया सरस रस की मोट ।।
कमर कंकन मयक मकली हार बुजा तर्टक ।
सीस पीत दोउ मदन बरसें देत भरि भरि अंक ।।
हृदय हृदय सौं अधर अधर सौं नयन सौं नयन मिलाय ।
भौंह भौंह सौं तिलक तिलक सौं मुखन मुखसौं लपटाय ।।
मालती मद बाढ़ चपा सुभग जाती बकुल ।
दासपरमानन्द सजनी देत फुनि फुनि फूल ।।

स्वकीया राधा के संयोग वर्णन मे परमानंददासजी अष्टछाप के कवियों मे सबसे आगे है। सभी ऋतुओं मे संयोगात्मक वर्णन परमानंदसागर मे उपलब्ध होते हैं। ग्रीष्म में सुगंधित पुष्प सुसज्जित शैय्या मीना पट शरद मे कुंज भवन में शयन शीत में उष्णोपचार आदि सभी का कवि ने विशद वर्णन किया है। इसी प्रकार बसंत में मदन-महोत्सव का उन्माद पूर्ण वातावरण परमानंददासजी के प्रेम काव्य का प्राण है। होली की रंगपाली फाग खेलने का उत्साह, राधा एवं गोपियो की वेष भूषा आदि के इतने मादक चित्र परमानंद दासजी ने प्रस्तुत किये हैं कि पाठक आत्मविभोर हो जाता है।

## परमानंददासजी में वियोग शृंगार—

प्रेम की कसौटी विप्रयोग है। बिना विप्रयोग के प्रेम की परीक्षा नहीं होती। इसी कारण शृंगार के दो पक्ष हैं—संयोग और विप्रलम्भ। काव्य मे दोनो ही का होना अनिवार्य माना गया है तभी शृङ्गार रस का पूर्ण परिपाक हो पाता है। शृङ्गार के दोनो पक्षों—संयोग और विप्रलम्भ—के कारण इसे रसराज की उपाधि प्राप्त है। महाकवि भवभूति ने तो विप्रलंभ को ही महत्ता दी है।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात् ।
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।।
आवर्त बुद्बुद तरंगमयान् विकारान् ।
अम्भो यथा सलिलमेवहि तत् समस्तम् ।।

अर्थात्—

एक करुण रस ही निमित्त भेद से भिन्न होकर पृथक्-पृथक् परिणामो को ग्रहण करता है। जलके आवर्त बुद बुद तरंगादि जितने विकार हैं वे समस्त जल ही के तो हैं।[1]

तात्पर्य यह है कि भवभूति केवल एक करुण रस को ही प्रधान मानकर अन्य रसो को उसका (करुण का) आश्रित एवं रूपान्तर भाव मानते हैं। करुण रस का स्थायी भाव शोक है और शोक उसी के लिए होता है जिससे स्थायी रति अथवा प्रेम प्राप्त हो। प्रीति के अभाव

---

१ उत्तर रामचरित अक—३ श्लो ४७

में शोक हृदय स्थान पा ही नहीं सकता। तो प्रिय के इष्ट की आशंका मात्र से उद्विग्न हो जाते हैं। और दया ममता करुणा आदि न जाने कितने कितने कोमल भाव चित्त में घर कर बैठे हैं वस्तुतः जीवन का सम्बन्ध जितना करुण रस से है उतना अन्य रसों से नहीं। कान्ता विषयक रति के अतिरिक्त रति के दो भेद और हैं एक तो शिशु विषयक रति और दूसरी भगवद् विषयक रति। शिशु विषयक रति वात्सल्य कहलाती है। और भगवद्विषयक रति भक्ति। कान्ता विषक रति का शृङ्गार रस में परिपाक होता है।

बालक विषयक रति जो वात्सल्य मे परिपुष्ट होती है उसमें भी संयोग वियोग भावना होती है। उसमे भक्तों की वियोग विह्वलता तो प्रसिद्ध ही है। कृष्ण भक्त कवियों में और विशेषकर अष्टछापी कवियों मे विप्रलम्भ के सभी संचारी उपलब्ध होते हैं।

कान्ता विषयक रति—वियोग-शृङ्गार-वर्णन तो काव्य प्रेरणा का मूल ही माना गया है। महाकवि वाल्मीकि ने क्रौंची के करुण विप्रलम्भ से ही द्रवित होकर सहसा श्लोक की रचना कर डाली थी। उनका शोक ही श्लोकत्व को प्राप्त हो गया था। इसी प्रकार कविवर पंत ने भी अनुमान किया है—

वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।

अत वियोग भावना ने अष्टछापी कवियो और उनमे भी विशेषकर सूर तथा परमानंददासजी को जिस सरस काव्य रचना की प्रेरणा दी थी वह अनुपम है। जिस माता यशोदा ने अपने नैन कौतुक गोपाल कृष्ण को क्षणार्ध के लिए भी विलग नहीं किया जिसकी सुखद मोहिनी बाल लीलाओं में उसे उठते-बैठते जागते-सोते आपने अहर्निश तन्मय रखा था जो उसका जीवनाधार था वही एकदिन दुष्ट कंस के आमंत्रण पर उसे सहसा छोड़कर चला गया। और वह भी अनिश्चित अवधि के लिए। तब माता का कलेजा टूक टूक हो गया उस दारुण व्यथा को उसने कैसे सहा होगा यह तो वही जानती होगी या भगवान्। मथुरा-गमन के इस करुण प्रसंग को लेकर वात्सल्य वियोग के जो करुण चित्र सूर और परमानन्द ने प्रस्तुत किये हैं वे अन्यत्र दुर्लभ ही रहे।

परमानन्ददासजीने सूर की भांति वात्सल्य-वियोग का विस्तृत वर्णन तो नहीं किया है परन्तु उसके मार्मिक पक्ष को वे छोड़ भी नहीं सके हैं। कृष्ण के शैशव की घटनाएँ माता के स्मृति-पथ में एक एक करके आती हैं। वियोग विह्वला माता पथिक के पैर पकड़ कर विनती करती है कि वे उसके लालों को फिर से ब्रज में पहुँचा जांय।

> जब जब देखें ही जियत।
> मेरे नैन चकोर सुधाकर हरि मुख दृष्टि पियत॥
> सुन पथिक कहें मैं मधुबन हरि मेरे प्राणअधार।
> रामकृष्ण गोकुल के लोचन सुन्दर नंदकुमार॥
> इतनी कही जाइ जानति ही बैंधि कौन सों नातरू॥
> परमानन्द स्वामी है जननि कौन भांति समझाई।

माता उद्धव के रथ को देखने जाती है—

> जसोदा रथ को देखन आई।
> देखो री मेरो लाल बिदेसी कहा करी मेरी माई॥

मेरो छोटा पालने सोवै उघरक उघरक रोवै।
प्रघासुर बकासुर मारे मैंन निरंतर जोवै॥
देहरी घमकन सिर्यो री मोहन सोई बात में जागी।
परमानंद होत जहाँ ठाढे कहत नंद जू की रानी॥

उस जननी ने अपने प्राणवल्लभ प्रिय पुत्र के लिये बड़ी बड़ी मनोतियाँ मानी की प्रतीक्षा का की किन्तु निराशा ही हाथ लगी और उसे अंत मे चिर वियोग का संदेश मिल ही गया। कृष्ण के मथुरागमन और उद्धव-सदेश के इस प्रसग को लेकर इन सरस भावुक कवियों ने हृदय की जिन सूक्ष्म मार्मिक वृत्तियों का उद्घाटन किया है वे हिन्दी साहित्य मे ही क्या विश्व साहित्य में अमूल्य हैं।

वात्सल्य के इन मार्मिक चित्रों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी मे तीनों प्रकार के विप्रलम्भ-पूर्वराग मान और प्रवास—के पद भी दिए हैं। पूर्वराग और मान के उदाहरण तो उनके संयोग शृंगार में मिल जाते हैं किन्तु प्रवास जनित विप्रलम्भ मथुरागमन और उद्धव संदेश में मिलता है। हिन्दी साहित्य मे यही भ्रमर गीत के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी परम्परा भागवत से प्रारम्भ हुई है। कंसवध के उपरात श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को नद यशोदा गोप गोपी के पास अपना सान्त्वना-संदेश देकर भेजा है। यह प्रसग दशमस्कन्ध के ४७वें अध्याय मे है। भागवत मे यह प्रसंग बहुत विस्तार के साथ नही है। न वहाँ गोपिया का तर्क अथवा वाद विवाद मिलता है। न ही कृष्ण के प्रति उपालम्भ। परन्तु सूर परमानन्दादि अष्टछाप के कवियो ने इसी प्रसंग को लेकर बड़ी बड़ी मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। अपनी दिव्य कल्पना शक्ति के सहारे इन भक्तो ने उच्चकोटि की सहृदयता का परिचय दिया है। सूरदासजी का भ्रमरगीत तो पूरा एक स्वतंत्र काव्य-ग्रन्थ ही कहा जा सकता है। किन्तु परमानन्ददासजी का उतना विस्तृत न होकर भी अपनी मार्मिकता मे बेजोड़ है। जिन गोपियो के साथ प्यारे श्यामसुन्दर ने मधुर लीलाएँ की उन्हें वे सहसा कैसे विस्मृत करतें। अतः कुछ दिन तो प्रतीक्षा मे व्यतीत हुए। फिर एक दिन मथुरा की ओर से एक रथ आता दिखाई दिया। रथ में प्यारे श्यामसुन्दर जैसा ही कोई बैठा दिखाई देता है। किन्तु बाद मे पता चला कि वे कृष्ण सखा उद्धव हैं। उद्धव ने कृष्ण का सदेश दिया। वह सदेश क्या था—वियोग विधुरा गोपिकाओं के लिए चिर-वियोग का पीडादायक परवाना था। तन मन धन को वार देने वाली प्रेमस्वरूपा गोपिकाओ का अपने प्राणाधार प्राणवल्लभ श्यामसुन्दर का सन्देश सुनकर जिस करुण व्यथा पीडा ग्लानि निर्वेद का अनुभव किया उसका वर्णन करना कठिन है। उनके जीवन का रस सदा के लिए समाप्त हो गया। तन मन की दशा बिगड़ गई और उन्हें पर कल कहीं भी चैन नहीं। केवल अतीत का स्मरण ही उनकी चेतना का आधार है। वियोग विवशा गोपियों की आन्तरिक स्थिति वर्णनातीत है। किन्तु बाह्य सृष्टि मे भी उनकी वेदना प्रसार पा रही है।

माई री चंद लग्यौ दुख दैन।
कहाँ वो देस कहाँ वन मोहन कहाँ सुख की रैन॥

चलते समय अपने प्यारे कृष्ण को भलीभाँति देख नहीं पाए यही उनको बड़ा भारी पश्चात्ताप है।

चलत न देखन पाए नाथ ।
भीर्ष करि न बिलोक्यो हरि मुख इतनोई रह्यो जिय साल ।

अपनी एक और असावधानी पर भी पश्चाताप है कि चलते समय उनसे रुक जाने के लिए किसी ने नहीं कहा ।

चलत न काहू कह्यो रहनो ।
बिन ब्रजनाथ भई हम व्याकुल पापी दुख सहनो ॥

गोपियों को पश्चाताप है कि वे मन भर के गोपाल के साहचर्य का आनन्द नहीं ले पाई । अतः अब उनकी वीथावस्था में वे विलाप करती फिरती हैं—

जिनकी साध जिय ही रहिरी ।
बहुरि गोपाल देख नहिं पाए बिलपति कुंज अहीरी ॥

×     ×     ×     ×

परमानन्द स्वामी दरसन बिनु नैनन नदी बहीरी ॥

न उन्हें रात्रि में चैन है न दिन में । वे अहर्निश रोई रोई सी रहती हैं । उन्होंने अब शृंगार करना भी छोड़ दिया है । कितनी ही रातें बिना सोए बीत गई हैं ।

कैते दिन भए रैन सुख सोए ।
कछु न सोहाई गोपालहिं बिछुरे रहे पूंजी सी खोए ॥
जब ते गए नन्दलाल मधुपुरी चीर न काहू धोए ।
मुख तमोर नैन नहिं काजर, बिरह सरीर बिगोए ॥
ढूंढत बाट, घाट, बन परवत जहाँ जहाँ हरि खेल्यो ।
परमानन्द प्रभु अपनो पीताम्बर मेरे सीस पर मेल्यो ॥

कृष्ण का यह अतीत साहचर्य अथवा मधुर प्रेमालाप आज स्मृतिपथ में आकर विरह ताप को अधिकाधिक बढ़ा रहा है ।

तुलसी की कौशल्या को राम के घोड़ों का बड़ा अंदेशा है । ये राजहंस के से घोड़े जिन्हें कभी राम ने अपने कर कमलों से पाले पोसे थे अब उनके बिना कैसे रहेंगे । इतना अवश्य है कि भाई भरत राम के पीछे उनकी बार सम्हाल करते हैं फिर भी राम यदि एक बार आकर देख जाते तो कितना अच्छा होता । परन्तु प्यारे श्यामसुन्दर जी, पार्थों के लिए तो इतनी भी सांत्वना नहीं । अब उनकी देख रख और लालन पालन कौन करेगा ।

माई को इहि भाय करावै ।[1]
दामोदर बिन अपनु संभारिन कौन सिंगार करावै ॥
सब कोई पूछे दीपमालिका हम कहा पूजै माई ।
राम-गोपाल जु मधुपुरी पठये भाय भाय ब्रज जाई ॥
काम दोहनी माट मथानी भाय काहि को पूछै ।
जाके मिले चलें मे गोकुल कौन बेनु कल कूजै ॥
करत प्रलाप सकल गोपी जन मन मुकुट हरि लीनो ।
परमानंद प्रभु इतनि दूर बसि मिलन दोहिलो कीनों ॥

यदि इतना वियोग जन्य दुख देना था तो क्यों व्यर्थ ही इतना प्रेम फैलाया । और क्यों इतनी ममता का विस्तार किया था—

माधौ काहे को सिखाई काम की कला ।

गोपियाँ जानती हैं कि मथुरा अधिक दूर नहीं फिर भी कोई संदेश नहीं आता । क्या कोई पथिक उधर से नहीं आता । क्या पत्र लिखने के साधन उनके पास नहीं रहे । क्या उनसे कोई नया प्रेम हो गया है ? अनेक तर्क-वितर्क उनके मस्तिष्क में उठते हैं—

माधौ ते प्रीत भई नई ।
कितनी दूर भई मथुरा ते निकटहि कियो बिदेस ॥
कागद मसि खूटि गई पठियो न संदेस ।
हरिली को कोमल मन ऊधव सेत उसास ।
यह दसा देखि जाहू परमानंददास ॥

विरहिणियों को अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वर्षा ऋतु विशेष दुखदायी होती है । उसमें भी अन्धकारमयी रात्रि में जब पपीहे की पी पी की रट लगती हो आकाश में मेघ गरजता हो चपला चमकती हो उस समय कोई मुरली का मधुर स्वर छेड़ दे तो सम्बन्ध-भावना से प्रिय का स्मरण कितना तीव्र हो जाता है कि रात्रि कटनी कठिन हो जाती है । और भ्रम से गोपी अपनी दशा भूल जाग उठती है—

रैन पपीहा बोल्यौ री माई ।
नींद गई चिन्ता चित बाढ़ी सुरति स्याम की आई ॥
सावन मास देखि बरखा रितु हौं उठि आँगन आई ।
गरजत गगन दामिनी दमकत तामे जीऊ डराई ॥
राग मलार कियौ जब काहू मुरली मधुर बजाई ।
बिरहिन बिकल दासपरमानंद धरनि परी मुरझाई ॥

---

[1] तुलना कीजिये—
राघौ ! एक बार फिर आवौ ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ ।
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज बार बार चुचुकारे ॥
क्यों जीवहिं मेरे राम लाडिले ते अब निपट बिसारे ।
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे ।।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे ॥
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन कहियो मातु संदेसो ।
तुलसी मोहिं और सबहिन ते इनको बड़ो अंदेसो ॥ गीता म क

एक और विचित्र परिस्थिति का चित्रण परमानन्ददासजी ने किया है। जैसा बहुत कम कवियों द्वारा देखने में आता है। गोपीने स्वप्न में श्रीकृष्ण का आलिंगन पा लिया है। इतने में ही निद्रा भंग हो गई। बस वियोग के कारण आँखों से अश्रु बह चले हैं। कितना मनोवैज्ञानिक किन्तु सटीक और स्वाभाविक तथ्य चित्रण है।

मदन मार मारि गये मोहन मूरति कोऊ ।
कमल नैन स्याम सुन्दर जागत है सोऊ ॥
सुपने में अहकि गये दै आलिंगन गाढ़े ।
जागी तो दुखित नयन जल प्रवाह बाढ़े ॥
अति विलास मधुर हास ताकी ही मेरी ।
अरबसु मैं जगत भए ऐसी भई गति मेरी ॥
कैसे करि प्रगट मिलों कैसे कै देखों ।
परमानंद जाय दसा इतनौं कछु लेखौं ॥

वियोग के भय से गोपी आँख नहीं खोलना चाहती। वियोग दशा का सच्चा अनुभव करने वाले महात्मा कबीर ने लिखा है—

'मनु सुपना ही जाय ।

विरहिणी इस भय से नेत्र नहीं खोलती कि खुलने पर यह मिलन स्वप्न में परिवर्तित हो जायगा। कैसा स्वाभाविक चित्रण है। वियोग दशा में बाह्य सृष्टि में भी तो सब विपर्यय ही दीख रहा है—

अब की औरै रीति भई ।
प्रात समय अब नाहि न कुलीयत घर घर जागत रई ॥
ससि की किरन तरनि सम लागत जागत निसा गई ।

रात्रि बढ़ गयी है, किसी तरह भी कटती नहीं ।

हरि बिन बीतति रैन बड़ी ।

सूर की गोपियाँ भी इसी भाँति रात्रि के बढ़ने की शिकायत करती हैं। मेघों का घुमड़ना वर्षा की झड़ी उन्हें भी बुरी लगती है। इसी प्रकार परमानन्ददासजी की गोपियाँ भी काली बदली को उपालम्भ देती हैं—

बदरिया तू कित ब्रज में दौरी ।
मधुबन लाल बसावत जाकी पिपिहा बिरही बिछोह री ।
यहीं व यहीं जाइ भर अपनी दुख पावत है किसोरी ॥
परमानंद प्रभु सो क्यों जीवै जाकी बिछुरी जोरी ॥

रात दिन नेत्रों में अश्रु जल परिपूर्ण रहता है अब न उनमें काजल लगाने की इच्छा है न ही शृंगार करने की न वस्त्र बदलने की ।

ता दिन काजर देहौं सखीरी ।
जा दिन नन्दनन्दन के नैनन अपने नैन मिलैहौं ॥
करौं न तिलक बाधौं न पाट बसन न पचरि पहिरि हौं ।
करौं सिंगार विचार बसन को कबरा गोंथ न बांधै हौं ॥
अब तो जिय ऐसी बनि आई सूके चलत फिरै नाहिं नैहौं ।
परमानंद प्रभु नहीं परैसो अब न जाहिं बार लगै हौं ।

अब तो कृष्ण का पत्र भी पढ़ना दूभर हो उठा है।

पतिया बाँचि हु न आवै।
देखत अंक नैन जल पूरे मदनद प्रेम बनावै॥

उसकी स्थिति व्याकुलता की चरम सीमा को पहुँच गई है। गोपी अपने तन मन की दशा को भूल चुकी है। उसकी दशा फूटे खिलौने जैसी हो गई है। चित्त स्थिर नहीं—

व्याकुल बार न बाँधति छूटे।
जबते हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे॥
सदा अनमनी बिलख बदन अति इहि ढंग रहत खिलौना से फूटे।
बिरह बिहाल सकल गोपीजन अमरत मनहु बटुकन लूटे।
जल प्रवाह लोचन तें बाढ़े बचन सनेह मर्म्मांतर छूटे।
परमानंद कहीं दुख कासों जैसे चित्र लिखी मति टूटे॥

सूरदास की तरह परमानंददासजी की गोपिकाएँ तर्क अथवा व्यंग करने वाली किंवा उपालंभ देनी वाली नहीं हैं। अपितु वे ऊधो को एक अत्यन्त आत्मीय सुजन मानकर विरह की बात कहने बैठ जाती हैं—

ऊधो नाहिन परत कही।
जबते हरि मधुपुरी सिधारे बोहोत ही बिथा सही।

इस प्रकार परमानंददासजी के वियोग शृंगार में जो सरस गम्भीर मार्मिक प्रेमानुभूति है। वह पाठकों को आत्मविभोर करके एक अनिर्वचनीय स्थिति में ले जाती है। उन्होंने सूर की भाँति वियोग की सब नहीं तो बहुतसी अंतर्दशाओं का चित्रण किया है। थोड़ी सी इस प्रकार हैं—

अभिलाष—

सखिरी ता दिन काजर दैहों।
जा दिन नंदनंदन के नयना अपने नैन मिलैहों॥

तथा—

कान्ह मनोहर मीठे बोलै।
मोहन मूरति कब देखोंगी सरसिज चंचल डोलै॥
स्याम सुभग तन चर्चित चंदन पहिरे पीत निचोलै।

चिन्ता—

नवल नवल बिन और न भावै।
अहनिस रसना कान्ह कान्ह रट बिलख बदन ठाड़ी जोवत बट।
तुम्हरे दरस बिनु वृथा जात है मेरे ऊरज धरे कंचन घट॥

स्मृति—

जीय की साध जियही रही री।
बहुरि गोपाल देख नहीं पाये बिलपति कुंज अहीरी॥
एक दिन सो जु सखी इहि मारग बेचन जात दही री।

कबहुंक निविड़ तिमिर आलिंगन कबहुंक पिक सुर गावै ॥
कबहुंक संभ्रम क्वासि क्वासि कहि सखहि हिलमिलि धावै ॥
कबहुक नैन मूंद घर अंतर मनिमाला पहिरावै।
मृदु मुसुकान बंक अवलोकनि चाल छबीली भावै।
एक बार जिहि मिलहिं कृपा करि सो कैसे बिसरावै ॥
परमानंद प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गंवावै ॥

मरण—

प्रीति तो काहू सौं नहि कीजै।
बिछुरे कठिन परे मेरी आली कहौ कैसे करि जीजै ॥

इस प्रकार परमानन्ददासजी ने गोपी विरह पर बड़े अनूठे सीधी सादी उक्ति वाले अनेक भावपूर्ण पद लिखे हैं जो उनकी गहरी प्रेमानुभूति के परिचायक हैं। परन्तु वे हैं मुख्यतः युगल विहार के उपासक। उनकी राधा-कृष्ण-केलि-वर्णन सुरतांत हैं। अतः वे मुख्यतः संयोग शृंगार के ही कवि माने जावेंगे। लोक दृष्टि से भले ही वे मर्यादा बाह्य माने जायें परन्तु एकान्त-भावना के क्षेत्र में उनकी भावधारा प्रेम-लक्षणा-भक्ति प्रधान है। परमानन्ददासजी सूर की भाँति मुख्यरूप से वात्सल्य और शृंगार के ही रससिद्ध कवि हैं फिर भी उनमे अन्य रस मिल जाते हैं।

हास्य—

परमानन्ददासजी के बाललीला परक पदों में हास्य के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं। कृष्ण किसी गोपी की खिड़क मे पहुँच गए हैं। गोपी को परेशान करने के लिए खिड़क का दरवाजा खोल कर बछड़े खोल दिए और गायों को दूसरों की गायों में मिला दिया। इससे पूर्व गोपी को दोहनी ढूंढने में व्यस्त कर दिया—

ढोटा मेरी दोहनी चुराई।
द्वार उघारि खोल दिए बछरा बेसर गैया चुराई।
हौं पचिहारी कहीं नहीं पावत बरजत नाक भाई ॥

एक और हस्य—

कृष्ण एक गोपी के घर में घुस गए हैं, माखन खाकर चिकना पुराना मटका फोड़ दिया। जब माता को उलहना देने गोपी आई, तब श्रीमान् पहिले से ही वहाँ उपस्थित थे।

ऐसे लरिका कबहु न देखे बाट घुचाबि माऊ की माई।
माखन चोरत भाजन फोरत उलटि मारि दै मुरि मुसकाई।

....

पाछे ठाड़े मोहन चितवत धीरे ही ते जाएगी माई ॥
परमानन्ददास को ठाकुर अब्बो पाहुत चोरी जाई।

कभी-कभी मक्खन खाकर दूध लुढ़का कर, दही शरीर से लपेट कर बरके बच्चों पर मट्ठा छिड़क कर भाग जाते हैं।

जसोदा बरजति काहे ते नहीं ।

× × ×

माखन खाइ दूध महि ढोरै लेपत मन दही ।
ता पाछे घो घर के लरिकन भाजत छिरक मही ॥

कभी कभी छोटे-छोटे कुत्ते के पिल्लों को पकड़ कर ले आते हैं ।

लाल कौं भावै कुत गहि धरै घेर ।

× × ×

परमानन्ददास को ठाकुर पिल्ला लावो घेर ।

प्रायः माताएँ बच्चों को ब्याह का प्रलोभन देकर उनको शरारतों से रोका करती हैं । कवि से यह तथ्य भी छिपा नहीं रहा । कैसा स्वाभाविक चित्र है ।

छाँड़ो मेरे लाल अजहुँ लरिकाई ।
यह बात देखि के टोलों ब्याह की बात चलावन आई ।
डरि है सास ससुर चोरी तें सुनि हँसि है दुलहिया सुहाई ॥
उबटि न्हवाइ गूँथ चुटिया बल देख भलो बर करिहै बड़ाई ।

करुण—

करुण का स्थायी भाव शोक है । मथुरा जाते समय इसकी व्यंजना हुई है—

गोपालै मधुबन जिन लै जाऊ ।
मोहि प्रतीत कंस की नाहीं कोप वंश को राज ।
तुम अक्रूर बड़े के बेटा अति कुलीन मति धीर ।
बैठि सभा सकल राजन की जानत हो पर पीर ।
बहिन देवकी वसुदेव सुजन सबको दीन्हों त्रास ॥
बालपन ते निपट में राखे कारागृह में वास ।
कहत जसोदा सुन सुफलक सुत हरि मेरे प्राण अधार ॥
परमानन्ददास को जीवनि छाँड़ि जाहु इहि बार ।

रौद्र—

इन्द्र पूजा का निषेध करते हुए कृष्ण नन्दजी से कहते हैं कि हमें इन्द्र से क्या प्रयोजन है । उसकी पूजा में धन का व्यय करना व्यर्थ है । इस प्रसंग में क्रोध की व्यंजना हुई है । इन्द्र आलंबन है । कृष्ण आश्रय ।

नंद गोवर्धन पूजो जाय ।
जाते गोप ग्वाल गोपिका सुखी सकल को राय ।
जाकी रचि-रचि कीजिहि बनावत बड़ा सब ही नाय ।
गिरि के बल बैठे अपने घर कौनि इन्द्र पर जाय ॥
मेरो कह्यो मान सब लीजे भर भर पकवान खाय ।
परमानन्द प्रभु के पर्वत सदा करत हित माय ।

वीर—

वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' होता है और आलंबन वह शत्रु होता है जिसको आश्रय जीतना चाहता है ।

गर्वन तर्जन भुजा ठोकना आदि अनुभाव हैं। हर्ष गर्व असूया उग्रता धैर्य स्मृति तर्क आदि संचारी होते हैं। मथुरा में धनुष यज्ञ के अवसर पर इसकी व्यंजना हुई है।

काहू को मारग में प्रभु छेकत।
नंदराइ को मातो हाथी आवत असुर लपेटत॥
सहस ग्वाल सब सखा नंद के बल करवत भुज ठोंकत।
कस बस को परिचित करिहैं कौन भरोसे रोकत
मारिहु सुनी? पूतना मारी तृणावर्त अघ केसी।
परमानंददास को ठाकुर यह गोपाल मेरेसी॥

भयानक तथा वीभत्स के उदाहरण परमानंददासजी के उपलब्ध पदों में नहीं मिलते। वे कोमल सरस पवित्र भावों के कवि थे संभवतः उनमें इन रसों का अभाव हो।

अद्भुत—

कैसी माई अचरज अपने भारी।
पर्वत लीनो उठाई भुज में सात बरस को भारी॥
सात धौस निसि हस्तक ही माने वाम पानि पर धार्‌यो।
अति सुकुमार नंद को बारो कैसे बोझ सहार्‌यो।
बरखे मेघ महा प्रलय के तिनते गोप उबार्‌यो॥
गोधन ग्वाल गोप सब राखे मघवा गर्व प्रहार्‌यो।
भक्त हेत अवतार लेत प्रभु प्रकट होत भुव धार्‌यो।
परमानंद प्रभु की बल कहए जिन गोवर्धन धार्‌यो॥

और भी

महा काय गोवर्धन पर्वत एक ही हाथ उठाय लियो।
देवराज को गर्व हर्‌यो हरि अभय दान ग्वालन दियो।

— — — —

अर्जुन विरछ छिनक में तोरि आपन नाम जदुकुल मेंधाये।
परमानंददास को ठाकुर जाको गर्व मुनि गाये।

तथा—

देखो गोपालजू की लीला ठाटी।
सुर ब्रह्मादिक अचरज हूँ है जसुमति हाथ लिये रजु साटी।
ये सब ग्वाल प्रगट कहत हैं स्याम मनोहर खाई माटी।
बदन उघारि भीतर देख्यो त्रिभुवन रूप अराटी।
कैसव के गुन वेद बखाने सेष सहस मुख बाटी।
कबहुँ न काम अंत अन्तरगति बुद्धि न प्रवेश कठिन बहु घाटी।
जनम करम गुन स्याम के अखानत समुझि न परे गूढ़ परिपाटी॥
जाके सरन भये भय नाहीं सो विनु परमानन्द वाटी।

शांतरस—

परमानंददासजी के भक्ति और दैन्य परक पदों में शांत रस ओत प्रोत है। इनमें संसार की असारता जीवन की नश्वरता के साथ भक्ति की एक भाव सरसता झलक रही है।

करत है भक्तन की सहाय।
दीन श्याम देवकीनंदन समरथ यादौराय।
इन्द्र कमल की छाया राखें कमठ निवाय बनाय।
दुष्ट दमन मद हरत गोपपति गोवर्धन लियौ जु उठाय।
कृपा पयोध भक्त चिंतामणि ऐसे विरद बुलाय।
परमानंददास प्रतिपालक वेद विमल यश गाय।

निर्वेद का एक और उदाहरण—

कहुँ न जात पापिनी बैठे।
तजि सेवा बैकुंठनाथ की नीच लोग सग रही है।
जिनको मुख देखें पातक तिनसों राजा राय कही है।
फिर मद मूढ़ अधम अभिमानी जाता नमि दुर्जन लही है।
नाहिन कृपा श्यामसुन्दर की अपने करमि जात बही है।
परमानंद प्रभु सब सुख दाता गुन विचार नहिं नैन सही है।

## कवि की अनन्यता और दैन्य का एक और उदाहरण—

तुम तजि कौन नृपति पै जाऊं।
मदन गोपाल मंडली मोहन कमल नयन जाको ठाऊं।
तुम दाता समरथ त्रिभुवन के जाके दिये अघाऊं।
परमानंददास को ठाकुर मनवांछित फल पाऊं॥

तात्पर्य यह है कि परमानंददासजी के भक्ति दैन्य वैराग्य पदों में शांतरस परिपूर्ण रूप से झलक रहा है। इस प्रकार कवि ने रसराज शृंगार के उभय पक्षों संयोग और विप्रलंभ का प्रधान रूप से वर्णन किया है वात्सल्य को रस कोटि तक पहुँचा दिया है। और अन्य रसों का यथास्थान समावेश किया है।

## परमानंददासजी के काव्य में अन्य चित्रण—

महाकवियों के काव्यों में वस्तु वर्णन के अंतर्गत बहुधा हमें अनेक प्रकार के वर्णन एवं चित्रण मिला करते हैं। कवि की कल्पना अनुभूति और अभिव्यक्ति के ही कारण मौलिक कहा जाता है। ज्ञानी मनीषी अथवा कवि गुणी एक ही वस्तु को यह गुण इस प्रकार अपने पाठकों के सम्मुख रखता है कि पाठक उसे जानते हुए भी मुग्ध होकर उसे बार बार पढ़ना अथवा सुनना चाहता है। यही कारण है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम और लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के लीला चरित्र वाल्मीकि और व्यास के माध्यम से परिचित होते हुए भी भक्त कवियों की अपनी अभिनव अभिव्यक्तियों के कारण नूतन और मधुर लगती हैं। इसी को स्पष्ट करते हुए महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने कहा था कि व्यास-वाल्मीकि आदि कवि पुंगवों ने यद्यपि हरि-चरित का सादर वर्णन किया है, फिर भी मैं अपनी भाषा में अपने आत्म-सुख एवं आत्म-प्रबोध के लिये मैं भाषाबद्ध-पद वर्णन करता हूँ।[1]

---

१ व्यासआदि कवि पुंगव नाना
जिन सादर हरि चरित बखाना
भाषा बद्ध करब मैं सोई
मोरे मन प्रबोध जेहि होइ॥ रा० च० मा० बालकाण्ड

यही कृष्ण कथा जो भारतीय वाङ्मय के अमर गायक महाकवि व्यास की समाधि भाषा (श्रीमद्भागवत) में गाई गई है इन अष्टछाप के भक्त गायकों के हाथ में पड़कर अधिकाधिक मधुर, रसात्मक एवं भावक बन गई है। वही परमानन्ददासजी का भी काव्य विषय रहा है। उसमें भी भगवान की बाललीला जिसमें कवि ने अपने मानस लोक में प्रत्यक्ष किया हुआ सौन्दर्य चित्रण मनोवैज्ञानिक तथ्योद्घाटन सूक्ष्मनिरीक्षण विशेषमता आदि उपलब्ध होते हैं।

परमानन्ददासजी आदिकालीन कवियों या रासोकारों की भांति न तो अत्यंत अतिरंजित अथवा अस्वाभाविक हैं न सूफी कवियो की भांति अतिमानव न निर्गुण कवियों की भांति लोकोत्तर अथवा परात्परवादी। नहीं वे आधुनिक कवियों के समान किसी स्वप्न लोक के विचरणशील व्यक्ति। वे तो सीधी सादी स्वाभाविक कल्पना करने वाले भक्त कवि हैं। इनकी कल्पना इसी लोक की सब की अनुभूत और इतनी स्वाभाविक होती है कि पाठक तुरन्त ही तादात्म्य का अनुभव करता हुआ रसानुभूति में निमग्न हो जाता है। वे गृहस्थ नहीं थे परन्तु गृह वातावरण स्त्रियों के वार्तालाप और व्यवहार शिशुओं की चेष्टाओं आदि के सजीव चित्रण में इतने पटु हैं कि देखते ही बनता है। उदाहरण के लिए हमारे नित्य जीवन में यह धारणा तो बारम्बार चली आ रही है कि सबेरे सबेरे किसी भले अथवा शुभ व्यक्ति का मुँह देखने से सारा दिन आनन्द से बीतता है और कुछ न कुछ लाभ होता है। कवि ने इस तथ्य को एक गोपी के माध्यम से रखा है—

> लाल को मुख देखन को हौं आई।
> काल्ह मुख देखि गई दधि बेचन जात ही गयो है बिकाई ॥
> दिनते दूनों लाभ भयो घर काबर बछिया जाई ॥
> ....
> परमानन्द सयानी ग्वालिन सैन सकेत बुलाई ॥

कृष्ण के मुख देखने से दही भी शीघ्र बिक गया और अच्छी बिका और घर पर काली बछिया गाय ने बियाई। यहाँ भक्तों के लिए स्वरूपासक्ति भी व्यंजित है।

शकट-उद्धार के समय मंगल-गीतो और बाजो के बीच कवि अपनी कल्पना के सहारे एकदम आकस्मिकता का वातावरण पैदा कर देता है।

> करत लई प्रथम नंदलाल।
> ....
> मंगल गीत गावत हरषत हँसत कछु मुख मदन।
> .... ....
> गई लात गिरि परी सकट कौंध तब ही सबै उठि धौरे ॥
> विस्मय भए विलोकत लैनन पूछे ते कछु बौरे ॥
> लिये उठाय कुँवर व्रजरानी रहसी कंठ लपटाई ॥
> प्रेम विवश तब आपु न संभारत परमानन्द बलि जाई ॥

इसी प्रकार कृष्ण के शिशु चेष्टा में आगन में चलने फिरने में मणिमय खंभों में प्रतिबिंब देख कर किलकने में सूर की ही भांति परमानन्ददासजी ने अपनी दिव्य कल्पना

से काम लिया है। कल्पना की सजीवता के कारण ही वे इतने स्वाभाविक सरल सुन्दर कर्षक चित्र उपस्थित कर सके हैं.—

"किलकि-किलकि उठत घुटरुवन टेकत आँगन पानि मेरे अँगना"।

शिशु को गोद में लेकर माता अपने मानस लोक में विचरण किया करती है और अनेक भावी आशाएँ अभिलाषाएँ किया करती है कवि से यह तथ्य छिपा नहीं था—

जा दिन कन्हैया मोसों मैय्या मैय्या कहि बोलेगो।
*ता दिन अति आनंद निरौरी माई सगन कुनुक बज आँगन में डोलैगो।*

बच्चा चलने लगा है। अतः माता डरती है कि कहीं ऐसे स्थान पर न चला जाय जहाँ चोट फेंट लग जाय।

कहत चले मोहन मैया मैया।
दूरि खेलन जिन जाउ मनोहर मारेगी काहू की गैया।
माता जसोदा ठाढ़ी टेरे लै लै नाम कन्हैया॥

बाल-चेष्टा एवं बाल-क्रीड़ा के वर्णन में कवि ने इतनी कल्पनाओं से काम लिया है कि पाठक विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। कवि में मनोवैज्ञानिक चित्रण भी उच्च कोटि के पाये जाते हैं। वर्तमान समय में सभी इस तथ्य से भली भाँति परिचित हैं कि शिशु के इस पीड़ादायक कर्म में विलम्ब नहीं होना चाहिए। फिर पहले ही माताएँ प्रायः सब स्थान से बालक को गोद में लेकर भाग छूटती हैं।

कनक भूमि में लसन कौं दीनी खेलत बार न लागी।
बालक स्याम करन लाग्यो रोहिणी मात सौं मागी।

माताएँ बालक के भविष्य जानने के लिये बड़ी उत्सुक हुआ करती हैं अतः पण्डितों ज्योतिषियों को प्रायः हाथ दिखाया करती हैं—

'अपने सुत को हाथ दिखायो सो कहु जो विधि निरमायो।

देखने में बच्चे कौतुक बहुत चाहा करते हैं—

तब ही हस्त लै मेंद बजावत करत बाबा की आन।

भोजन में बच्चों को मीठा अधिक भाता है।

खाय लौं मीठी खीर जो भाव।
बेला भरि भरि देत जसोदा सूरो अधिक मिलावै॥

शृङ्गार और प्रेम प्रधान पदों में तो मनोवैज्ञानिकता भरी पड़ी है। प्रथम समागम के चिन्हों को देखकर मुग्धा को कितना मानसिक सुख गौरव और आह्लाद होता है—

*राजे बैठी तिलक सवारति।*
× × × ×
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सौं प्रथम समागम केलि सँभारत।

पुनः प्रेम जब प्रगाढ़ हो जाता है तो निर्भीकता की वह स्थिति आ जाती है जब हमें *लोक लाज कुल मर्यादा आदि की तनिक भी परवाह नहीं होती—*

नंदलाल सों मेरो मन मान्यो कहा करैगो कोइरी ।
हौं तो चरन कमल लपटानी जो भावै सो होयरी ॥
× × × ×
जो मेरो यह लोक जायगो अरु परलोक नसायरी ।
नदनंदन को तऊ न छाँड़ो मिलूँगी निसान बजायरी ॥

कवि केवल मानव-मनोविज्ञान का ही कुशल चितेरा नहीं था अपितु शिशु मनोविज्ञान से—भी भलीभाँति परिचित था विविध रंगों अथवा वस्तुओं को देखकर गायों को चौंकना पूँछ उठाकर भागना आदि चेष्टाएँ परमानन्ददासजी ने बड़ा कुशलता से चित्रित की है। सद्य प्रसूता गाय (नैचिकी) वत्स के प्रति कितनी सजग एवं लालायित रहती है कि कहीं उसके बच्चे के पास कोई नवीन व्यक्ति तो नहीं आ रहा है यदि आ जाय तो वह मारने दौड़ती है।

तेरी सौं सुन सुनरी मैय्या ।
याके चरित तू नाहीं जानत जोहि बूझ सकरखाण मैय्या ॥
ब्याई गाय बछरवा चाहत पीवत ही प्रात बन मैय्या ।
याहि देख धौरी बिझुकानी मारन को दौरी मोहि मैय्या ॥
है दीजन के बीच पयों मैं तहाँ रखवारो कोऊ न रहैय्या ।
तेरो पुन्य सहाय भयो है अब उबर्‌यो बाबा नंद दुहैय्या ॥
यह जो उबटि परी हौ मौपै भाज चली कहि दैय्या दैय्या ।
परमानंद स्वामी की जननी उर लगाय हँसि लेत बलैय्या ॥

गाय के बछड़े को लेकर यदि कोई भाग दे तो गाय भी पीछे पीछे दौड़ी चली आती है।
किलक हँसि गिरधर जबराई ।
भाज्यो सुबल लिए गोद बछरवा पाछे धौरी धाई ॥

परमानन्ददास जी ने सम्प्रदाय के अनुकूल ही गोधन को पूज्य बुद्धि के साथ महत्ता दी है। गायों का शृंगार किया जा चुका है।

घटा कंठ मोतिन की लटियाँ पीठिन को माथे चौखार ।
किंकनी नुपुर चरन बिराजत सोभै चलत सुढार ॥

गाय को सजा कर उसे घेर कर दौड़ाया जा रहा है। गाय जब भीड़ से तंग आकर भागती है तो पूँछ उठा लेती है। फिर काली गाय अधिक बेताब होती है—

तब गायन मैं धूमर बैली ।
भजत पूँछ उचकाई सूधी ह्वै ग्वाल नचावत फिरत अकेली ॥

बहुत तंग आकर गाय चिढ़ जाती है पूँछ उठाकर सामने मारने दौड़ती है और छोटे बच्चे परस्पर बचने के लिए आपस में चिपट जाते हैं—

बिचकरि गई धूमर और कारी ।
दूरन्त ग्वाल बछरवा ग्वालिन बदन पिछौरी डारी ॥
तब तो दुकि सन्मुख ह्वै आवी भली भाँति संभारी ।
पूँछ उठाय कै धौरी दोऊ कुँवर भरे अंकवारी ॥

कुचकारत पौंछत मंचुव मुख उर आनंद न समाई ॥
लपटे कर लपटात धोंव भर पूव आर लपटाई ॥

मात यशोदा दधि मन्थन कर रही है वक्षस्थल पर बड़ा हार झूम रहा है साथ ही आभूषणों के मणि चमचमा रहे हैं—

प्रात समय गोपी नन्दरानी ।
मिमित कुच उपजात हियो उर दधि मंथत मथ माट मथानी ॥
× × × ×
रज्जु कर्षत मुख मावत छवि मावत मुदित स्यामसुन्दर मह ।
चंचल चपल कुच हारावली बैनी वलित कलित कुसुमाकर ॥
मनि प्रकास नहिं दीप अपेक्षा सहजभाव राजत व्यालिम वर ।
× × × ×
परमानंद बोध कौतूहल जहाँ तहाँ अद्भुत छवि पैखी ॥

किशोर लीला मे राधा कृष्ण के परस्पर प्रेम और संकेत बड़े ही सजीव और चित्रोपम पर मिलते हैं—

साँवरी बदन देखि मुसामी ।
चले बात फिर चितमी मो तन तबते भय सयानी ॥
के या बाट वरावत पैम्यो हौं तबते भई पानी ।
कमल नैन अपरैना फेर्यौ परमानंदहि जानी ॥

कहीं-कहीं तो कवि ने चित्रोपमता के साथ साथ सूक्ष्म निरीक्षण भी हूब करती है। अपने नटखट बालक की शरारतें सुनकर प्रसन्न होती है पर वह अपनी इस प्रसन्नता को भा हंसी को बच्चे के सामने प्रकट नहीं करना चाहती—

मसी मा बैसवे की बानि ।
बदन गोपाम लाल काहू की राखत नाहिन कान ॥
सुनो जसोदा करत सुत के बहुमे माँट मथान ।
छौरि छौरि दधि डारि अजिर मैं कौन सई नित हान ॥
× × × ×
ठाढ़ी हसत नंदजू की रानी मद मगन मुसकानि ।
परमानन्ददास बह बोल सूक्ष्म भी मानि ॥

किशोर लीला म एक स्थान पर कवि ने चित्रोपमता सूक्ष्म निरीक्षण का बड़ा ही सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। कृष्ण राधा के सहारे खड़े हैं बंसियाँ ताबूल मर्दन कर रही हैं मदस्मित और प्रेम की इस वर्षा मे आनन्द का वारापार नहीं रहता। कवि ने बड़ा ही सरस शब्द चित्र प्रस्तुत किया है—

लटकि रहे लाल राधा के कर ।
सुन्दर बीरी सवारि सुदरी देत केलि करत सुदर वर ॥
ज्यौं चकोर चंदा तन चितवत त्यौं भामो निरखत गिरिधर वर ।
कल कुटीर सब वृन्दावन बोलन मोर कोकिला तब वर ॥
परमानन्द स्वामी मन मोहन बलिहारी या लीला छबि पर ॥

## परमानंददासजी का सौन्दर्य वर्णन—

जैसा कि अनेक बार कहा जा चुका है परमानंददासजी मुख्यतः वात्सल्य और संयोग शृङ्गार के कवि हैं। अतः उन्होंने अपने काव्य में भगवान् के बालक रूप का सौन्दर्य तथा राधा कृष्ण की युगल छवि के सौन्दर्य का चित्रण किया है। इस सौन्दर्य चित्रण में कवि का सूक्ष्म निरीक्षण सौन्दर्य प्रेम सुरुचि-सम्पन्नता दिव्य कल्पना एवं सौन्दर्य-जन्य भाव निमग्नता पदे पदे प्रकट होती है।

ब्रज गोपिकाएँ किसी न किसी बहाने से प्रेमस्वामी बालक कृष्ण को देखने चली आती हैं। उनके शिशु सौन्दर्य पर ही वे मुग्ध हैं। उस शोभा-सिन्धु को वे अघाय कहीं नहीं पाती—

> शोभा सिन्धु न अन्त रही री।
> नंद भवन भरि उमग चलीरी ब्रज की बीथिन फिरत बही॥

अवतारी परब्रह्मको शक्ति-शील सौन्दर्य की त्रिगुणात्मक कसौटी पर कसने का आधुनिक आलोचकों ने एक रिवाज सा कर लिया है उस दृष्टि से भी परमानंददास के पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म लीलावतारी श्रीकृष्ण नितांत खरे उतरते हैं। शोभा सिंधु श्रीकृष्ण स्तन पानावस्था से ही पूतना वध द्वारा शक्ति का परिचय देना प्रारम्भ कर देते हैं और कंस वध-जरासंध और शिशुपाल वध तक जारी रखते हैं इस प्रकार वे असुरों के वध जैसा परुष कर्म करते हैं तो दूसरी ओर माधुर्य का यह दिव्य समन्वय ही भगवदवतार का रहस्य है। दिव्य कर्म दिव्य अधिष्ठान में ही आश्रित होते पाए हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि लोकमंगल के साथ दिव्य सौन्दर्य की पूर्ण कल्पना ही भगवदवतार है। प्रबन्ध काव्य के कवियों ने तो लोक-मंगल को प्रमुखता देकर उसके अधिष्ठान में सौन्दर्य को सीमित करने की चेष्टा की किन्तु प्रेम शैली के मुक्तक कवियों ने सौन्दर्य को प्रमुखता देकर उसे लोक मंगल का अधिष्ठान बनाया। कोमल भावों के अनन्य कृष्ण भक्त कविगण सौन्दर्य-निधि कृष्ण के असुर-निकंदन स्वरूप को विस्मृत किए हुए नहीं हैं। अतः यह कहना कि प्रेम शैली के कृष्ण भक्त कवियों की दृष्टि भगवान की शक्ति शील सौन्दर्य इन तीनों विभूतियों में से केवल सौन्दर्य पर ही टिकी है उनकी काव्य सीमा को अत्यधिक सीमित बनाना है। इन कवियों के भगवान के लोकोत्तर सौन्दर्य पर महत्व देने का मुख्य कारण यही था कि रस-लोलुप मन की चिर तृप्ति के लिए और उसकी सम्पूर्ण चंचलता को एक ही अधिष्ठान में केन्द्रित कर देने के लिए अपने आराध्य के सौन्दर्य पक्ष को अन्य दो पक्षों-शील-शक्ति आदि से ऊपर उभारे रहते थे।

भगवान के शील से अभिभूत होकर ही तो वे भक्ति मार्ग में प्रविष्ट होते थे। किन्तु सौन्दर्य निधि के दिव्य माधुर्य का कल्पना लोक में साक्षात्कार करके वे कृष्णमन को भौतिकता से ऊपर उठाकर एक दिव्य-धाम में भटकाए रहते थे। अष्टछाप के कवियों में और विशेषकर परमानंददासजी में तो भगवत्स्वरूपासक्ति अपनी चरम सीमा पर है। उनके आसक्ति पदों में जो प्रबल तन्मयता है वह अन्यत्र कठिनाई से ही उपलब्ध होती है। लावण्यनिधि कृष्ण को एक बार नेत्र भरकर देखने वाली गोपिका कहती है:—

> जब नंदलाल नैन भरि देखे।
> एकटक रही सम्हार न तन की मोहन मूरति पेखे॥

स्यामबरन पीताम्बर काछे, मरु अंचल की ओर।
कटि किंकिनि कलराव मनोहर छकत तियन चित चोर॥
कुण्डल मलक परत पण्डनि पर चारु प्रभालक लिकसे ओर।
श्रीमुख कमल मद मृदु मसकनि सेत कपि मन नंदकिशोर॥
मुक्तामाल राजत उर ऊपर चितए सखी चलीं हुठि मोर।
परमानंद निरखि शोभा ब्रजबनिता डारति तृन तोर॥

उपर्युक्त पद में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य से अभिभूत होकर ब्रज वनिताओं का देहानुसन्धान रहित होकर उनके नख से शिखान्त सौन्दर्य में उलझने की चर्चा है। श्यामवर्ण पर पीताम्बर फिर थोड़ा ऊपर चलकर कटि किंकणी फिर वक्षस्थल पर कज्जलों का मलक पाने श्रीमुख पर मन्दस्मित और फिर वक्षस्थल पर मुक्तामाल आदि का वर्णन कवियों के सूक्ष्मनिरीक्षण सौन्दर्यानुभूति और उसकी सजीव कल्पना का परिचायक है। श्रीमुख की मद स्मिति तो भक्तों की संपत्ति है। यही उनके परम अनुग्रह की सूचिका है। भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदास जी भी अपने आराध्य की इस प्रार्थ्यपात् मद स्मिति को भूले नहीं और उसकी उन्हें भी पृथक चर्चा करना ही पड़ी।

हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा।
सूचित किरन मनोहर हासा॥ —रा० मा०

भगवान का यह मनोहारी स्मित उनके हृदय स्थित अनुग्रह का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कितनी दिव्य एवं मनोवैज्ञानिक तथ्य पूर्ण उक्ति है।

यह सौन्दर्य बड़े-बड़े अपराधों को भी क्षमा करा देने वाला है। खर दूषण तो भगवान राम के नयनाभिराम सौन्दर्य को देखकर भगिनी के नासा-भंग जैसे अपराध को पी जाने को तैयार थे क्योंकि उन्होंने वैसे लोकोत्तर सौन्दर्य त्रैलोक्य में नहीं देखा था फिर कृष्ण के दिव्य सौन्दर्य पर रीझने वाली गोपिकाएं माखन चोरी अथवा दूध के दुलकाने के अपराध को क्या गिनतीं? प्रत्युत वे तो प्रतिक्षण इसी प्रतीक्षा में थीं कि एक बार उनका मनमोहन कन्हैया आ भर जाय और बाँकी झाँकी दिखला जाय वे उस पर सर्वस्व वार देने को प्रस्तुत थीं। सौन्दर्य के प्रति आत्म विनियोग अथवा सर्वस्व-दान के ऐसे दिव्य उदाहरण अष्टछाप और विशेषकर सूर तथा परमानन्ददासजी में ही प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं।

## वात्सल्य भावापन्न सौन्दर्य वर्णन—

माता यशोदा के पालने में कृष्ण का लोकोत्तर सौन्दर्य ब्रजांगनाओं को आकर्षित किए था:—

बदन निहारत हैं नन्दरानी।
कोटि काम सत कोटि चन्द्रमा कोटिक रवि वारत जिय जानी॥

कोटि कन्दर्प-दर्प-दलन लावण्य ही ब्रजांगनाओं के आकर्षण का कारण है। नख बदन के मणिमय कुट्टिम में रत्न खचित पलना टंगा हुआ है यह मज मुक्ताओं की झालरों से सुशोभित है उसी में माता यशोदा का लाल सोया हुआ है उसकी चितवन और चितवन चैन दर्शकों बरबस अपनी ओर खींच लेती है—

रतन जटित कंचन मनिमय नंद भवन अति पालनो ।
ता ऊपर बन मोतिन लट लटकत तहं झूलत जसोदा को लालनो ।
किलकि किलकि विहंसत मन ही मन चितवत नैन विशालनो ।।
परमानन्द प्रभु की छवि निरखत भावत कछु न परत कछु लालनो । पद सं० ४४

सौन्दर्य के उस दिव्य धाम को देखे बिना ब्रज बालाओं को चैन नहीं पड़ता अतः उसे देखने किसी न किसी मिस से चली ही आती हैं । शिशु थोड़ा बड़ा हुआ है उसकी नन्हीं-नन्हीं दूध की दतिया अत्यन्त प्रिय लगती है ।

"लाल नैन अति चारु बदन की शोभित नन्हीं नन्हीं दूध की दंतियाँ" जैसा चित्रोपम वर्णन शिशु के कुंचित केश मस्तक पर गज मुक्ताओं की लटकन दोनों मांसल हाथों से पादांगुष्ठ का पीना सभी कुछ मार्मिक है ।

माई री कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना ।
× × ×
लाल के चरन तरुन चरन कमल नीलमनि अति जोती ।
कुंचित कच मकराकृत कुंडल कंठ लटकत गज मोती ।
गात अंगूठा गहि कमल पानि मेलत मुख माहीं ।
अपनी प्रतिबिम्ब देख पुनि पुनि मुसुकाहीं ।।

इस अनुपम सौन्दर्य और अद्भुत चेष्टाओं को कहीं नजर न लग जाय अतः माता राई नमक आग उतारा करती है ।

झुलावै सुत को नाहिं पलना करि लिये नवनीत ।
— —
राई लोन उतारति आरति होत सकल मन प्रीति ।
सुरत बड़ो गोकुल में सुखे परमानन्द पुनीत ।

शिशु सौन्दर्य और सौन्दर्याशक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण परमानन्ददासजी के काव्य में भरे पड़े हैं । यही शिशु सौन्दर्य आगे वृद्धि पाता हुआ बाल पौगण्ड अवस्थाओं में होता हुआ किशोर अवस्था में पहुँचता है ।

दिव्य सौन्दर्य से भरा हुआ के यौवन कितना उन्मादकारी हो गया । जो देखता है वही सुध बुध खो बैठता है । उस अनन्त लावण्य निधि लीला बिहारी के भुवन मोहन रूप पर ब्रजगोपिकाएँ क्यों न निछावर होतीं समवयस्का गोप बालाएँ मन न रोक सकीं—

सांवरी बदन देखि लुभानी ।
चले जात फिर चितयो मो तन तबते रंग समानी ।

एक बात भाव में ही लोटपोट हो जाने की अवस्था का वर्णन परमानन्ददासजी के काव्य में भरे पड़े मिलता है यही छोटी और समवयस्का सौन्दर्य मुग्धा गोपियाँ कृष्ण के साथ रहने की इच्छा करने लगीं । उनके घर आने जाने पर कोई बहाने के मिस कोई मुरली के मिस कोई गायों बछड़ों के मिस आने लगीं जिसे कोई मिस न मिला वह पिछवारे आकर धीरे धीरे मन्द स्वर से बोल सुना जाती और प्यारा कन्हैया ऐसा दौड़ जाय पूछता—

आलिन पिछवारे बड़ बोल सुनायो ।

ब्रज वनिताओं का कृष्ण प्रेम माहात्म्य ज्ञान पूर्वक पीछे है सौन्दर्य जन्य पहिले। उस सौन्दर्य पर उन्होंने अपना तन मन प्राण सब कुछ निछावर कर दिया था।

> हरि सौं एक रस रीति रही री।
> तन मन प्रान समर्पन कीनो अपनो नेम ब्रत ले निबहौरी॥

साहचर्य और सौन्दर्यजन्य यह प्रेम ब्रज की नयनाभिराम प्रकृति में पल्लवित होता रहा। यमुना के कूलों कछारों पर वृन्दावन के मार्ग में वंशीवट अथवा मधुबन के उपवनों में सौन्दर्य राशी कन्हैया अपनी प्यारी धूमर कारी धौरी गैय्यों को लेकर मुरली बजाता हुआ विचरता और अखिल ब्रज बालाएँ उसके साहचर्य के लिए तरसतीं और अवसर देखतीं। उनका प्रेम प्रगाढ़ हो चुका था और आत्मसमर्पण पूर्ण। अतः सम शीतोष्ण शरद यामिनी में जबकि अखिल प्रकृति उल्लास से भरी हुई थी रजनीश आकाश में पूर्ण उदय था सम्पूर्ण ब्रज प्रदेश ज्योत्स्ना धौत था ऐसे दिव्य क्षण में सौन्दर्यनिधि कृष्ण ने मुरली नाद किया। जिसको सुनकर चराचर स्तब्ध हो गया ब्रज बालाएँ जो जिस अवस्था में थी गृह पति सुत की चिन्ता छोड़कर दौड़ पड़ीं और महारास अथवा रास लीला का श्रीगणेश हुआ जो कृष्ण साहित्य में सौन्दर्य माधुर्य और दार्शनिकता के लिए अपना निराला स्थान रखता है। अष्टछाप के कवियों ने सौन्दर्य वर्णन के जो तत्व भागवत से उठाए थे उन्हें विकसित और पल्लवित करते हुये महारास के वर्णन तक उसे एक विशाल वट वृक्ष का रूप दे दिया। महारास अपनी दार्शनिक महत्ता के अतिरिक्त अन्तर्बाह्य सौन्दर्य एक दिव्य संकलन है जो भक्ति साहित्य में अपना अप्रतिम स्थान रखता है। सूरदास परमानन्ददासादि अष्टछापी कवियों ने सौन्दर्य को श्रीकृष्ण के चतुर्दिक केन्द्रित करने के उद्देश्य से प्रकृति का भी मनोमुग्धकारी सजीव चित्र अंकित किया है। यही उनका प्रकृति चित्रण है यह प्रकृति चित्रण उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत तो हुआ ही है। कहीं कहीं इन कवियों की स्वतन्त्र रुचि एवं स्वभाव का सूचक बनकर आलम्बन विभाव के अन्तर्गत भी आया है। परमानन्ददासजी के काव्य में प्रकृति चित्रण दोनों ही प्रकार का मिलता है।

## परमानन्ददासजी का प्रकृति चित्रण—

दिव्य लीलाओं के अधिष्ठान कोटि मन्मथ मथनकारी श्रीकृष्ण की क्रीड़ा भूमि ब्रज प्रदेश सभी प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न है। निर्मल नीर नीलाभ प्रफुल्ल गंभीरा यमुना के तटवर्ती प्रदेश नाना पुष्पों पल्लवों से सुसम्पन्न नाना वल्लरियों से वेष्टित अम्ब लिकुच श्याम तमाल स्निग्ध विशाल रसाल हरित हिताय ताल कदम्ब जम्बू वट अश्वत्थादि पादप समूहों से युक्त नाना पुष्पों पल्लवों कुञ्जों और निकुञ्जों से वेष्टित निश्चय ही यह दिव्य भूमि लीलावतारी पूर्ण ब्रह्म की लीलास्थली होने योग्य थी अथवा यों कहना चाहिये कि लीला पुरुषोत्तम ने इस भूमि को अपनी क्रीड़ास्थली इसीलिये बनाया कि वह प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर थी। जो भी हो ब्रज प्रदेश के प्राकृतिक वैभव को और उसके सौन्दर्य को ब्रज साहित्य के सभी कवियों ने चित्रित किया है। कहा जाता है कि भागवतकार द्वादशाध्याय के और श्रीमद्भागवत का प्रणयन दक्षिण में हुआ किन्तु ब्रज प्रदेश के प्राकृतिक वैभव और उसके वैशिष्ट्य सौन्दर्य से उनका हृदय भी अभिभूत था इसीलिये उन्होंने भागवत के प्रमुख वर्ण्य विषय भगवल्लीला के अतिरिक्त ब्रज का प्रकृति चित्रण भी किया है। श्रीकृष्ण लीला

और अन्य लीला उपकरणों के लिये वहाँ श्रीमद्भागवत के प्रभाव की चर्चा ब्रज साहित्य के और विशेषकर अष्टछाप के कवियों पर की गई है। यहाँ यह भी संकेत कर देना उचित प्रतीत होता है कि ये भक्त कवि प्रकृति चित्रण में भी श्रीमद्भागवत का प्रभाव ग्रहण किये हुए हैं वस्तु के पावन जन्म की सिद्धि बाह्य वातावरण पर भी निर्भर होती है अतः भगवान के जन्मोत्सव उनकी बाल एवं किशोर लीलाओं की माधुर्यानुभूति के लिए जिस तरह प्रभाव पूर्ण प्राकृतिक सौन्दर्य की आवश्यकता है उसे चित्रित करना उन सभी कवियों के लिये अनिवार्य था अतः यहाँ संक्षेप में भागवत चित्रित प्रकृति चित्रण की चर्चा के उपरान्त हम परमानन्ददासजी के प्रकृति चित्रण की चर्चा करेंगे—भगवान श्रीकृष्ण के जन्म-इष्ट काल-से ही प्रकृति की अभिरामता भागवतकार ने चित्रित की है वे लिखते हैं—

दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ।
मही मंगल भूयिष्ठ पुर ग्राम व्रजाकरा ॥
नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुह श्रियः ।
द्विजालि कुल सन्नादस्तवका वनराजयः ॥
ववौ वायु सुखस्पर्श पुण्य गन्धवह् शुचि ॥

× × × × × × × ×

मन्द मन्द जलधरा जगर्जुरनुसागरम् —भाग १० । ३ । २-७

अर्थात् दिशाएँ प्रसन्न थी आकाश नक्षत्रों से व्याप्त था पृथ्वी मंगल मयी थी पुर ग्राम और व्रज प्रदेश मणियों से युक्त था। नदियाँ शान्त स्वच्छ, सरोवर कमलों एवं भ्रमरों से युक्त वृक्ष पक्षियों से युक्त तथा वनराजियाँ पुष्पों के गुच्छों से युक्त थी सुगंधमय पवन शान्ति से बह रहा था।

अखिल लोकनायक भगवान् कृष्ण चन्द्र का जन्म विश्व इतिहास की एक अपूर्व एवं दिव्य घटना थी अतः उसके अनुकूल प्राकृतिक वातावरण कितना अधिक आकर्षक अपेक्षित था यह वास्तव तथ्य इन रस सिद्ध कवीश्वरों से छिपा नहीं था। भगवान के जन्म समय में प्रकृति की जिस अभिरामता की ओर भागवतकार ने संकेत किया है उसे उसने अन्त तक निबाहा है यशोदा और उनके बालक कृष्ण का जीवन प्रकृति की गोद में ही लालित पालित हुआ और प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में ही रहकर उन्होंने दिव्य लोक मंगल का विधान करते हुए जन-जन का अनुरंजन किया उस प्रकृति की रमणीयता की कवि पदे पदे चर्चा न की जाती तो एक बहुत बड़ा अभाव रह जाता अतः कथावस्तु के अनुकूल बाह्य वातावरण का निर्माण भागवतकार आदि से अन्त तक करते चले गये हैं। और यही उनकी विलक्षणता कहलाता है।

कृष्ण एक विचित्र परिस्थिति में उत्पन्न हुए और विचित्र परिस्थिति में ही गोकुल पहुँचाए गए। भागवतकार ने एक गम्भीर भयावह परिस्थिति का पुनः निर्माण किया।

मघोनि वर्षत्य सकृद् यमानुजा ।
गम्भीर तोयौघ जवोर्मि फेनिला ॥
भयानकावर्त्त शताकुला नदी ।
मार्ग ददौ सिन्धुरिव श्रिय पतेः ॥ भा १० ।३।४६-५०

बवर्ष पर्जन्य उपांशु गर्जितः ।
शेषोऽन्वगाद् वारि निवारयन् फणैः ॥

घनघोर वर्षा भयंकर आवर्तों से युक्त यमुना उस मध्यरात्रि के भयावह वातावरण में प्राणाधिक प्रिय कन्हैया को गोकुल पहुँचाया गया। इसके उपरान्त भागवत में चित्रित प्रकृति आद्योपान्त अभिराम आकर्षक और हृदयहारिणी है। केवल दावानल की घटना में प्रकृति का रौद्र रूप अंकित किया गया है जिसे भगवान् ने आत्मसात् करके पुन: एक नयनाभिराम वातावरण की सृष्टि करती है। बाल लीला और किशोर लीला के तो सम्पूर्ण माधुर्य का रहस्य ही प्रकृति की अभिरामता है। वृन्दावन गोवर्धन यमुना पुलिन वंशीवट मधुवन तालवन कुमुदवन बहुलावन राधा कुण्ड कृष्ण कुण्ड सुरभिकुण्ड, मानसी गंगा आदि का बड़ा ही अभिराम वर्णन मिलता है। एक स्थान पर भागवतकार लिखते हैं—

वृन्दावन गोवर्धन यमुना पुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राम माधवयोर् प ॥ १ । ११ । ३६

वस्तुत व्रज प्रदेश प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर है। कृष्ण की यह लीला भूमि बाह्या-भ्यन्तर माधुर्य से सम्पन्न होने के ही कारण भक्त मन भावन है। आज भी यहाँ की वायु में भक्ति के वे मादक तत्व निहित हैं जो सरस प्रवासी को तीन लोक से न्यारा कर देते हैं।

वस्तुत प्रकृति सौन्दर्य ऋतुओं की अनुकूलता पर बहुत कुछ निर्भर है भूमिमण्डल पर व्रज प्रदेश की स्थिति कुछ ऐसे सम शीतोष्ण कटिबन्ध पर है जहाँ सबहीं ऋतुएँ अपने अपने समय से आकर रस सिंचन कर जाया करती हैं। इनमे भी दो ऋतुएँ वर्षा और शरद तो व्रज मे अमृत वर्षा ही करने के लिये आती हैं और इसी कारण भागवतकार ने दशमस्कंध में अन्य ऋतुओं की संक्षिप्त चर्चा की है और वर्षा तथा शरद की विस्तृत।

ऋतुओं एवं प्रकृति का मानव मन पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ा करता है जिनके संस्कार जितने सूक्ष्म प्रबल एवं ग्राहक होते हैं उन पर बाह्य वातावरण का उतना ही गहरा प्रभाव पड़ता है और उससे वे गहरी प्रेरणाएँ प्राप्त किया करते हैं इसी कारण संसार का सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाला साहित्य अरण्यों में ही उदय हुआ है और आरण्यक सभ्यता सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। अंग्रेजी कवि वर्ड सवर्थ तो आकाश में इन्द्र धनुष देखते ही हृदय में कुछ ऐसी गुदगुदी का अनुभव करने लगता था कि कविता उससे नदी के स्रोत की भाँति फूट पड़ती थी। इसी प्रकार अतीत से आज तक के विश्व साहित्य स्रष्टा प्रकृति के नित्य साहचर्य में रहकर ही चिरंतन काव्य का सृजन कर सके हैं।

व्रज साहित्य के कवियों का ऋतु सौन्दर्य वर्णन सर्वत्र से प्रसिद्ध रहा है। सूरदास परमानंददास आदि अष्टछाप के कवियों ने जिस तत्परता से भगवान का रूप एवं लीलागान किया है उतनी ही तत्परता एवं भावुकता के साथ उन्होंने प्रकृति चित्रण भी किया है। सूरदास जी ने प्रकृति में उल्लास विलास हर्ष शोक क्रोध शान्त आदि सभी भावों के दर्शन किए हैं। नंददासजी की रास पंचाध्यायी वाली प्रकृति तो मानो भागवत की रास महोत्सव वाली शरदोत्फुल्ल मल्लिकामयी राका-रजनी का विशद भाष्य ही है। इन कवियों में अधिकांश प्रकृति वर्णन उद्दीपन के रूप में पाया है पर कहीं कहीं आलंबन के रूप में भी मिलता है।

परमानंददासजी की प्रकृति में भी वही अष्टछाप और कृष्ण भक्तों की परम्परा का निर्वाह हुआ है साथ ही प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में भी वे भागवत का अनुसरण नहीं छोड़ सके हैं।

यहाँ कतिपय उदाहरणों से उनका भागवत का अनुसरण तो सिद्ध किया ही जायगा। साथ ही उनके काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप देखने की चेष्टा भी की जायेगी। भागवत में बाल्यकाल के समय के बाह्य प्रकृति के जिस वातावरण की मनोग्राह्य चर्चा ऊपर हुई है परमानन्ददासजी ने उसे उसी प्रकार व्यक्त किया है—

> आठें भादों की अँधियारी।
> गरजत गगन दामिनी कौंधति गोकुल चले मुरारी।
> शेष सहसफन बूँदनिवारत सेत छत्र सिर तान्यौ॥
>
> … … … …
>
> जमुना थाह भई तेहि औसर आवत जात न जान्यौ।
> परमानन्ददास को ठाकुर देव मुकति मन मान्यौ॥

प्रस्तुत पद में प्रकृति उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत चित्रित की गई है। साथ ही "मनोमि वर्णन" की यह पद पूरी पूरी छाया ग्रहण किए हुए है। क्रमशः कृष्ण बड़े होते हैं और गोचारण के लिए वन जाने लगे हैं जिसमें झाऊ के वन और जमुना के कछार की चर्चा की गई है। भुजुआ अथवा हौआ के भय से वन की सघनता स्पष्ट व्यंजित होती है।

> मैया निपट बुरो बलदाऊ।
>
> … … …
>
> भीतुरी भुवकार चले तें कहाँ गहन बन झाऊ।

दूसरे पद में—

> बैरी रोहिणी मैया कैसे है बलदाऊ भैया।
> जमुना के तीर मोहि झुझुआ बतायो री॥

प्रस्तुत पदों में कवि का लक्ष्य बाल लीला वर्णन करना है अतः प्रकृति की गौण चर्चा हुई है। साथ ही अभी श्रीकृष्ण की शिशु अवस्था है अतः मुक्त प्रकृति का आकर्षण अभी तक सीमित है ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है प्रकृति का आकर्षण बढ़ता जाता है। शिशु अवस्था में जहाँ बाह्य प्रकृति का नाम निर्देश होता था वहाँ अब धीरे धीरे उसका वर्णन बढ़ने लगा। प्रथम गोचारण हो चुका है अब तो साथ में छाक (मध्याह्न भोजन) बाँध दिया जाता है और कृष्ण बलदाऊ तथा सखाओं के साथ गोचारण के लिए नियम से जाने लगे हैं। पलाश के सघन वन में ढाक के पत्तों पर छाक परोस दी जाती है और सब मिलकर खा लेते हैं। यही नित्य का क्रम है। धीरे धीरे वर्षा ऋतु आती है कवि ने बाह्य वातावरण की पुनः सृष्टि की है—

> "घन रहे बादर सबरी निशा के वर्णन को रहे हैं छाय।"

ऐसे विषम वातावरण में कन्हैया को पुनः गोचारण के लिए बुलाया जाता है। इन स्थलों पर कवि का सूक्ष्म निरीक्षण और प्रकृति का आलम्बन के रूप में चित्रण मिल जाता है। ऐसे स्थलों पर प्रकृति वर्णन किसी भाव की पुष्टि न करता हुआ केवल वर्णना त्मकता लिए हुए ही आता है।

परमानन्ददासजी ने प्रकृति को प्रासंगिक उद्दीपन रूप में चित्रित करने के लिए ऋतुओं के अनुकूल भगवान कृष्ण के श्रृङ्गार की कल्पना की है—

"मोहन सिर धरे कुसुम्भी पाग ।"
तापर धरी कुलहे सिर सोहत हरित भूमि अनुराग ।
तैसे ही बन्यों कुसुंबी पिछोरा लकुटी हाथ मे लीने ।
करत केलि गिरधरन लाल तहँ परमानंद रस भीने ।

वर्षा कालीन सौन्दर्य में कवि का मन अत्यधिक रमा है । ऐसे स्थलों पर उस पर भागवत का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है—

भागवत—

श्रुत्वा पर्जन्य निनदं मंडूका व्यसृजन् गिरः ।

तूष्णीं शयानाः प्राग् यद्वद् ब्राह्मणा नियमात्यये ।

एवं वनं तद् वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् ।
गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ।

वनस्पत्योऽत्र निरन्तराभ्रः अस्त्रवे क्षुधा ।
क्वचिद् वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ॥
निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥

सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः ।
भाग १ २ ९, २१

परमानन्द सागर—

बादर बरन चले हैं पानी ।
श्याम घटा चहुँ ओर ते आवत देखि सबै रतिमानी ॥
दादुर मोर कोकिला कलरव करत कोलाहल भारी ।
इन्द्र धनुष बग पाँति श्याम छवि लागति है सुखकारी ॥
कदम वृक्ष अवलंब श्याम घन सखा मण्डली संग ।
गावत बैन धरे अमृत सुधा सुर बरषत मदन मृदंग ॥
रितु पाई मन भाई सबै बीच करत केलि अति भारी ।
गिरिवरधर की या छवि ऊपर परमानन्द बलिहारी ॥

वर्षाकाल प्रेमी और प्रेमिकाओं के लिए संयोग दशा में परम सुखकारी होता है—

देखो माई भीजत रस भरे दोऊ ।
नवमंडल वृषभानुनंदनी होड परी है ओऊ ॥

सुरंग चूंदरी है स्याम जू की भीजत है रस भारी ।
गिरधर पागु लपटना भीज्यो या छबि ऊपर वारी ॥

परमानन्द प्रभु यह विधि क्रीड़त या सुख की अधिकारी ।

प्रेममयी राधा मेघों से बरसने के लिए अभ्यर्थना करती है ।

बरसि रे सुहाव मेहा मैं हरि को संग पायो ।।
भीजन दे पीतांबर सारी झड़ी झड़ी बूंदन भायो ॥
ठाढ़े हँसत राधिका मोहन राग मल्हार जमायो ।
परमानंद प्रभु तरुवर के तर लाल करत मन भायो ॥

बाह्य प्रकृति का मानकर नंदकिशोर से उनका साहचर्य है । अतः भक्त प्रेमी ग्वालों की भी आकांक्षा है कि वे अब प्रकृति बन जाते तो अच्छा था । इससे प्यारे कृष्ण का साहचर्य तो बना रहता ।

वृन्दावन क्यों न भए हम मोर ।
करत निवास गोवर्धन ऊपर निरखत नंद किशोर ॥
क्यों न भये बंसीकुल सजनी अधर पीवत घनघोर ।
क्यों न भये गुंजाबन बेली रहत स्याम जू की ओर ॥
क्यों न भए मकराकृत कुंडल स्याम श्रवन झकझोर ।
परमानंददास को ठाकुर गोपिन के चित चोर ॥

परमानन्ददास संयोग शृङ्गार के रस सिद्ध कवि हैं अतः उनका प्रकृति और प्रकृति के उपादानों का वर्णन उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक आता है । यमुना के तट पर गोप मंडल में गोपाल बाल नृत्य कर रहे हैं उधर वर्षाकाल के कारण मयूर भी नृत्य कर रहे हैं । कवि ने बड़ा ही सुन्दर साम्य उपस्थित किया है—

नाचे नाचे घनस्याम ताल यमुना के तीरा ।
नाचत नट भेष धरे मदन बीरा ॥

आगे चलकर—

घरी इक मोरन की भाँति देख नाचत गोपाला ।
मिलवत गति भेद नीके मोहन नट ताला ॥
बरसत घन मंद मंद दामिनी दरसावे ।
रमकि झमकि बूंद परें राग मल्हार गावे ॥

बार फेरि भनति उचित परमानंद पावै ॥

अपने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत परमानन्ददासजी ने कृष्ण के सौन्दर्य को ऐसा अनुस्यूत कर दिया है कि उसका मिला जुला रूप पाठक के ऊपर एक ऐसी बिम्ब छाप छोड़ता है कि पाठक एक ऐसे दिव्य लोक में विचरण करने लगता है जहाँ उसको जगत की भौतिकता स्पर्श नहीं कर पाती ।

पावस ऋतु के साथ कवि ने विविध पक्षियों का भी यथा स्थान वर्णन किया है संयोग शृंगार में पावस ऋतु और वर्षा कालीन पक्षियों के कलरव का भावनाओं में भी बड़ा उद्दीपक प्रभाव माना है। परमानन्ददासजी ने इन वर्णनों में अपने सूक्ष्म निरीक्षण और चित्रोपमता का तो परिचय दिया ही है साथ ही प्रकृति को उपमान के रूप में भी वर्णित किया है।

प्रथम पावस मास आगमन गगन घन गंभीर।
चले दामिनी दिशा पूरब अति प्रचंड समीर॥
जहाँ हंस चातक बन कुलाहल बचन मधुर बोल।
गोपाल बाल निकुंज विहरत सखा संग कलोल॥
जहाँ बर्षे दादुर मुग्ध कोकिल मुख पावस धीर।
जहाँ नदी कूल अपार उमड़ी मिल यमुना नीर॥
हरियारे द्रुम माहि चन्द्र वधूगण अति मनोहर जाय।
घन घटा के रूप बेनु बाजत नन्द के अनुराग॥
जहाँ कन्दरा गिरि चढ़े हेला करत बाल विनोद।
जहाँ जाय खोजत वृक्ष कोटर मक्षिका मधु मोद॥

...

जहाँ चकवाक चकोर चातक हंस सारस मोर।
जहाँ सुआ चारस सरस भू पी करत चहुँ दिसि रोर॥ (पद—७८८)

इस प्रकार कवि ने राधा कृष्ण केलि और हिंडोले के साथ बाह्य प्रकृति और उसके विविध उपकरणों—बीर बहूटी सुआ सारस हंस चातक मयूर—आदि की बड़ी सरस चर्चा की है। मानवत शैली का प्रकृति वर्णन भी जिसे आलम्बन विभाव के अन्तर्गत रखा जा सकता है वह परमानन्ददासजी में उपलब्ध होता है जैसे—

वाटिका सरोवर मध्य नलिनी मधुप करे मधुपान।
ऐसो नन्द गोकुल कृष्ण पाछे अमर पति अभिमान॥
रचित हिंडोरो भवन कनिका कासमीरी खम्भ।
हीरा पिरोया लाल लागे और बहु आरम्भ॥
बनी चित्र विचित्र शोभा तीर यमु समान।
बैठे राम रावण युद्ध लीला देखि ता उनमान॥

रास लीला वर्णन में तो यह प्रकृति और भी मोहक हो जाती है। रास प्रकरण में कहा जा चुका है कि परमानन्ददासजी ने शरद् रास और बसन्त रास दोनों को ही मिला दिया है। अतः बासन्तिक शोभा एवं शारदीय शोभा का मिला जुला वर्णन कवि ने यत्र तत्र किया है—

उपवन कुन्जों में पुष्पों का खिलने नवीन कोंपलों के फूटने के साथ शारदीय रात्रि का भी वर्णन मिलता है—

"राधा माधी कंठ लुलाई"

...  ...

सरद निसा सखी पूरन चन्दा देख नवीनो नाई।

एक स्थान पर राधा कृष्ण को शारदीय रजनी का वन वैभव दिखाती हुई कृष्ण के आकर्षणवश आनन्द प्रकट करती है—

नहिं राधा देखहु गोविन्द।
कैसो बनाय बन्यो है बन को पूरन राका चन्द ॥
मद सुगन्ध सीतर मलयानिल कालिन्दी के कूल।
श्याम कुंजी मल्लिका फूली फूले निरमल फूल ॥
अब बन रास होत है सबके मन ही रहत नित राग।
तुम्हरे समीप गीत रस माहीं नाच सरस सुख साज ॥
सुनके बचन बहुत सुखमान्यो हरि दीनी अंकवारि।
परमानन्द प्रभु प्रीति बढ़ाती नागर रसिक मुरारि ॥

कवि ने रास महोत्सव और वसन्त महोत्सव की चर्चा बड़े उत्साह के साथ की है। ऐसा विदित होता है कि वह अपने भावलोक में अहर्निश राधा कृष्ण की युगल लीला का नित्य द्रष्टा अथवा सहचर बना हुआ था। विरहावस्था में परमानन्ददासजी सूर की भाँति वन प्रकृति में चेतनारोपण कर देते हैं। सूर की गोपियाँ मधुबन के हरे भरे वृक्षों को धिक्कारती हुई कहती हैं—

"मधुबन तुम कत रहत हरे।

सूर की बाह्य प्रकृति में गोपियों द्वारा चरम निर्वेद, ग्लानि लज्जा और दुःख की अवस्था में मानवीकरण करके उसे भी विरह की अनुभूति की परिधि में खींचने की चेष्टा की गई है। और यहाँ तक कि कालिंदी तो ऐसी शैया पर दाहक विरह-ज्वर में पड़ी हुई दिखाई देती है। परमानन्ददासजी की गोपियाँ भी विरह की चरम स्थिति में वन प्रकृति में चेतनारोपण कर देती हैं और वे भी प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं।

माईरी डार डार पात पात बूझत बनराजी।
हरि को कब गोकुल न कहूँ लखनि नील वाजी ॥
वसुधा बड़ रूप बढ्यो सुबहु ते नाहिं बोलें।
हरि को पद परस भयो तब नाहिं बोलें ॥

आगे वे प्रत्येक वन मृग से पूछना आरम्भ कर देती हैं।
बूझत है बन मृग मृग बेली।
हमें तजि गए री गोपाल अकेली ॥
कहीं चम्पक मालती तमाला।
तुम कहीं गए नंद लाला ॥

कृष्ण विरह में परमानन्ददासजी की गोपियों को भी वन प्रकृति दुःख और निरानन्द प्रतीत होती है।
बहुरी गोपाल देख नहिं पाए बिलपति कुंज अहीरी ॥

चन्द्रमा की किरनें सूर्यताप के सदृश विदित होती हैं।

ससि की किरन तननिसम लागत बावक जिया गई।
वृन्दावन की भूमि माधवी ग्वालिन छांड़ि दई।।

इस प्रकार चन्द्र चन्द्र-ज्योत्स्ना असह्य एवं कष्टदायक हैं। वर्षा भी अच्छी नहीं लगती। सूर के बादल बरसने चले आए, पर श्याम नहीं आये।

बब ए बदराऊ बरसन आए।

परमानन्ददासजी की बदरिया ब्रज पर मौका पाकर दौड़ पड़ी है। वर्षा क्या कर रही है मानो बाण चुभा रही है।

सनसन सास सतावन लागी बिपना लिख्यौ बिहोरी।

...

परमानन्द प्रभु सौं क्यों जीवें लागी बिपुरी बोरी।

इस प्रकार घन गर्जन पावस आगमन चातक रटन मत्त मयूर कूजन सभी विरह के उद्दीपक हैं। कष्टप्रद हैं—

ना हरि को सदेस न आवो।

घन गरज्यौ पावस रितु प्रगटी चातक पीऊ सुनावो।
मत्त मोर बन बोलन लागे बिरहिन बिरह बढ़ावो।।

विरही जनों को यों तो पल पल युग के समान व्यतीत होता है किन्तु वर्षा, शरद और बसन्त विशेष दुखदायी होते हैं। वर्षा व्यतीत हुई, शरद रात्रि जिसमें कभी रास महोत्सव हुआ था और जिस चन्द्रमा से कभी अमृत वर्षा हुई थी अब वही शरद निशाएँ फीकी रसहीन निरानन्द हो गई हैं—

आई अब तो यह सरद निसा लागत है अति फीकी।
श्याम सुन्दर संग रहत तबही थे अति नीकी।।
ससि हर सताप कारी बरसत बिष बूँदे।
मारुतसुत सुभाव तज्यो बसी बिथा मूँदे।।
परमानन्द स्वामी गोपाल परिहरि हम त्यागी।
प्रान पयान करन चाहत मिलहु कपट बिराई।।

शरद के उपरान्त बसन्त और भी दारुण दुखदायी है—

मधु, माधो नीकी ऋतु आई।

..           ..

परमानन्द प्रभु औध बदी ही नाथ कहाँ औसेर लगाई।

संक्षेप में परमानन्ददासजी के प्रकृति चित्रण के विषय में निम्नांकित तात्पर्य निकाले जा सकते हैं:—

१—परमानन्ददासजी का प्रकृति चित्रण कुछ तो भावगत सापेक्ष और कुछ निरपेक्ष है। उन्होंने प्रकृति को आलंबन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्रित किया है

शृंगार और प्रेम के भावुक कवि होते हुए उनमें प्रकृति चित्रण उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत पर्याप्त रूप में आया है। विप्रलंभ शृंगार में उन्होंने अपनी इस साम्प्रदायिक परंपरा का निर्वाह किया है, कवि ने लीला गान का स्वर अधिक रखा है। अतः सूर अथवा अन्य कवियों की अपेक्षा प्रकृति चित्रण को अधिक महत्व नहीं दिया है। प्रकृति चित्रण अति रंजित कहीं भी नहीं हो पाया है। भावोद्रेक स्वरूप बोधन तथा रस परिपाक की दृष्टि से बाह्य प्रकृति का उपयोग परंपरागत उपमानों के लिए भी कवि ने किया है।

## परमानंददासजी में कलापक्ष—

यह तो अनेक बार कहा जा चुका है कि कवि मुख्यतः भक्त है, काव्य रचना उनका उद्देश्य नहीं। भाव-विभोर स्थिति में भगवान के लीला-सागर में अवगाहन करते हुए जिन पद मुक्ताओं का वह अनायास संग्रह कर सका वे ही आगे चलकर 'परमानन्दसागर' के नाम से प्रतिष्ठित हुए। इन पदों में वस्तु गांभीर्य रस-सौंदर्य एवं भाव-सौन्दर्य की संक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। अब उसके कला पक्ष पर विचार किया जायगा।

कला पक्ष में हम प्रायः निम्नांकित बातों का समावेश करते हैं—

(१) अलंकार विधान।
(२) छन्दोविधान।
(३) एवं भाषा-सौष्ठव।

काव्य में अलंकारों का बड़ा महत्व है। काव्यालंकारसूत्र वृत्ति में लिखा है कि कविता एक तरुणी के समान होती है। वह शुद्ध गुण युक्त होने पर रुचि कर तो लगती ही है परन्तु अलंकारों से सुसज्जित होने पर रसिकों के लिए और भी आकर्षक हो जाती है। इसी प्रकार गुण युक्त काव्य भी अलंकारों से युक्त हो जाने पर काव्य रसिकों के लिए आह्लादजनक हो जाता है।[1] आचार्य मम्मट ने अलंकारों को तीसरा स्थान दिया है। रस भाव आदि अपनी अनिर्वचनीयता के कारण और व्यंग्यार्थ पर निर्भर होने के कारण काव्य में उच्च स्थान प्राप्त किये हुये हैं फिर भी शब्द-सौन्दर्य और मनोहरता अलंकारों पर ही निर्भर है। अग्नि पुराणकार ने तो बिना अलंकारों के मनोहरता स्वीकार ही नहीं की है।[2] अतः भामह, दण्ड, वामन सभी सभी ने अलंकारों की महत्ता स्वीकार की है और अलंकारों को काव्य की शोभा करने वाले धर्म बतलाया है। परवर्ती कवियों ने तो अलंकार के प्रति इतना आग्रह रखा कि उनकी कविता का उद्देश्य ही अलंकार निरूपण होने लगा। काव्य अथवा श्लोक रचनाएं अलंकारों की परिभाषा बतलाने के लिए ही रचे जाने लगे। चन्द्रालोक ऐसा ही ग्रन्थ है।

---

१ युवतेरिव रूपमङ्ग काव्यं स्वदते शुद्ध गुणं तदप्यतीव।
विहित प्रणयं निरन्तराभिः सदलंकार विकल्प कल्पनाभिः॥
का० सू० वृ० १ । १ । २

२ अलंकरणमर्थानामर्थालंकार इष्यते
तं विना शब्द सौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम्।
श्री अग्नि पुराण

३ काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते
काव्यादर्श।

आचार्यों की यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य में भी अवतीर्ण हुई और कुछ कवि लोग केवल काव्य में कला पक्ष को ही महत्व देने के लिये कविता करते थे। रीतिकालीन कवियों में यह प्रवृत्ति बहुत पाई जाती है परन्तु हिन्दी साहित्य के भक्त कवियों ने कविता के इन बाह्य उपकरणों अथवा कला पक्ष को प्रधानता देने के लिये कविता कभी नहीं की। भक्त कवियों का उद्देश्य सीधा सादा प्रभु गुण गान था। अपनी एकान्त भक्ति की तन्मयता में उनके मुख से उद्‌गार रूप जो काव्य निकलता था उसमें रस भाव प्रवाह तन्मयता के साथ साथ स्वयं अलंकार गुण आदि अपने आप लिपट जाते थे। उन्हें उनको लाने अथवा बरबस ठूसने की तनिक भी परवाह नहीं होती थी। कबीर, सूर, तुलसी मीरां एवं अष्टछाप के अन्य कवि ऐसे ही भक्त कवियों की श्रेणी में आते हैं जिनके पीछे काव्यत्व वात्सल्य मूरत की भांति अनुगमन करता था। इन रससिद्ध भावुक कवियों ने काव्य के गुण दोष की लेशमात्र चिन्ता नहीं की है, फिर भी उनका काव्य विश्वसाहित्य में परिगणित होता आया है।

## परमानंददासजी में अलंकार-विधान—

भक्तप्रवर परमानन्ददासजीके सागर में भी अलंकार विधान अनायास ही हुआ है। अलंकार दो प्रकार के होते हैं। शब्दालंकार और अर्थालंकार। सागर में दोनो ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग पाया जाता है। और वह भी बड़े स्वाभाविक रूप में। उनके सरस मधुर पद अनावश्यक रूप से अलंकारों से नहीं लदे हैं। न कवि में पाण्डित्य-प्रदर्शन की अवांछनीय प्रवृत्ति ही है। सूर द्वारा दृष्टकूट पदों में की गई क्लिष्ट कल्पना से ये दूर ही रहते हैं। वे सीधे सादे काव्य के भक्त कवि हैं अतः उन्हें बिना प्रेम के सब आभूषणादि फीके और सारहीन प्रतीत होते हैं—

> काहे को गुवालि सिंगार बनावें।
> सादीए बात गोपालहिं भावे ॥
> एक प्रीति तें सब गुन नीके।
> बिन गुन अभरन सबही फीके ॥ (१११ पृ०—१८७)

बिना प्रेम के स्वर्णालंकार व्यर्थ है उसी प्रकार काव्य में बिना रस के अलंकारों की भरमार व्यर्थ है। अतः उनमें अलंकारों का सांगोपांग निरूपण देखना अथवा खोजना विशेष बुद्धिमत्ता की बात नहीं। उनमें भाव अथवा रस की प्रधानता है अलंकार अथवा कलात्मकता का दुराग्रह नहीं। फिर भी अनायास अथवा सरलता से जो अलंकार उनके काव्यों में चले आये हैं उनकी चर्चा प्रस्तुत की जाती है—

शब्दालंकारों के अन्तर्गत परमानन्ददासजी में अनुप्रास ही बहुलता से प्रयुक्त हुआ है। ये शृंगार के सरस कवि हैं अतः ध्वनि-साम्य और नाद-सौन्दर्य उनकी लेखनी से स्वयमेव प्रस्फुटित हुए हैं। अनुप्रास में भी वृत्त्यनुप्रास उपनागरिका वृत्ति के साथ अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है।

वृत्यनुप्रास (उपनागरिका वृत्ति—)

> बंदो सुखद श्री वल्लभ चरन।
> अमल कमल हू ते कोमल कलिमल हरन (२०१ पृ० १९८)

किस भाँति बर्णा में गोरी राम कृष्ण की भाँति बना दिया है। भक्त गोपियाँ भी पड़ी है।

उपर्युक्त शब्दालंकारों के अतिरिक्त निम्नांकित अर्थालंकारों के उदाहरण भी परमानं सागर में प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं।

उपमा—उपमान उपमेय वाचक और धर्म जहाँ चारों होते हैं वहाँ पूर्णोपमा होती है। वाचक शब्द से उसे भाँती पूर्ण उपमा कहा जाता है।

बन बन साड़िली के चरन
अति ही मृदुल सुगंध सीतल कमल के से बरन। (१६ पृ २१)

यहाँ चरण उपमेय कमल उपमान जैसे वाचक मृदुल सुगंध सीतल-धर्म है।

लुप्तोपमा—

हिंडोरे झूलत है भामिनी पद सं ७७८ पृ २१

× × × × × × × ×

कमल नयन हरि ने मृगनयनी चंचल नयन विशाला

यहाँ वाचक शब्द लुप्त है।

परमानन्दसागर में उपमा अलंकार यत्र तत्र सर्वत्र भरा पड़ा है।

अनन्वय—

एक ही वस्तु को उपमान और उपमेय भाव से कथन किये जाने को अनन्वय अलंकार कहते हैं।

राधा रसिक गोपाल हि भावे।

× × × × × × × ×

उपमा कहा दैन को लाइक ये हरि ये वाही मृग लोचन। (१६९ पृ १२६)

उदाहरण—जहाँ सामान्य रूप से कहे गए अर्थ को भली प्रकार समझाने के लिये उस एक अंग विशेष रूप से दिखलाकर उदाहरण दिखाया जाता है वहाँ उदाहरण अलंकार होता है।

१—बन में छिपीय रही ज्यों दामिनी।
नंद कुमार के वाके ठाढ़ी सोहत राधा भामिनी। (७४७ पृ २६ )

२—नंदकुमार खेलत राधा संग यमुना पुलिन सरस रंग होरी। (१११ पृ १११)

× × × × ×

निरखत नेह भरी अँखियाँ सी ज्यों निरखत चकोरी। (१११ पृ ११२)

३—छता रहत चित चाक चढ़्यो सो और न कछु सुहाय। (४५१ पृ १२१)

प्रतीप—प्रतीप का अर्थ है विपरीत या प्रतिकूल प्रतीप अलंकार में उपमान को उपमेय कल्पना करना आदि कई प्रकार की विपरीतता होती है—

१—बैकोरी यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन देखत चन्द्र लजाया है। (१० पृ ११)

२—मधु से मीठे बोल (२१२ पृ ६७)

३—चमक करत जब हँस नवावत चरक मरक मुनि न्यारी।
(११८ पृ १२८)

रूपक—उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं। परमानन्ददासजी में रूपक अलंकार प्रचुरता से पाया जाता है। रूपक के अनेक भेद हैं।

रूपकातिशयोक्ति—

इसमें उपमान ही रहता है उपमेय नहीं।

'चली है निसंक निरकुंस करिनी एक ठौरे तहाँ माई।' (प० सं २१६)

स्मरण—

पूर्वानुभूत वस्तु के सदृश किसी वस्तु के देखने पर उस पूर्वानुभूत वस्तु की स्मृति कथन को स्मरण अलंकार कहते हैं।

१—जमुना जल खेलत हैं हरि नाव।

बेगि चलो वृषभान नंदिनी अब देखन को चाव।

नीर गंभीर देख कालिंदी पुन पुन सुरत करावै॥

बार बार तुव पंथ निहारत नैनन में अकुलावै। (७४१ पृ २८१)

२—धुम्यो घन देखि मुव नैनी माधो को मुख सुरति करै॥ (६१० पृ० २३१)

उत्प्रेक्षा—

प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप मे सभावना किए जाने को उत्प्रेक्षा अलंकार कहते हैं। परमानन्ददासजी ने उच्चकोटि की उत्प्रेक्षाएकी है उत्प्रेक्षा के बहुत से भेद होते हैं—

वस्तूत्प्रेक्षा—

मदन मधरहत मधुर मुरलिका देखीऐ चंदन तिलक लिलाई।

मनो दुतियाविन उदित प्रथम वसि निकसि बसन मैं देत दिखाई।

(४४८ पृ १२२)

फलोत्प्रेक्षा—

धदपुन मणि कुण्डल कपोल मुख अवमुत पठत परस्पर भाई।

मानों विधुमीन बिहार करत दोऊ जल तरल मैं चलि आई॥

(४४८ पृ १२२)

वाचकलुप्ता उत्प्रेक्षा (प्रतीयमान अथवा गम्या)—

१—को ग्रीषम ऐसो जिमवाई जिनि यह दशा दई।

मैं तन की ऐसी गति देखी कमलनि हेम हुई। (४१२, पृ १४७)

२—कमल मुख कुच बीच पसीना मानो हर मोतिन पुजै हो।

हेम लता तमाल अवलम्बित सीस मल्लिका पुसी हो॥ (२१६ पृ० ६६)

दृष्टान्त—

उपमेय उपमान और साधारण धर्म का जहाँ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है। वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

१—मेरो माई माधो सौं मन मान्यौ।

... ... ...

पय क्यों भिन्न होय मेरी सजनी मिल्यौ दूध जलपान्यौ। (४११ पृ ११६)

२—तबतें इह सु मानो दूरबी जैसे काको मूलरी॥ (४६७ पृ १२८)

३—मेरो मन गोविन्द सौं मान्यो ताते और न जिय भावै।

... ... ...

छाँड़ महार विहार मुख देह नह धीर न चाहत काऊ ।
परमानन्द बसत है उर में जैसे रहत सटाऊ ॥ (४६८ पृ १६८)

४—भाव समागम है प्यारी को ज्यों निरधन ने धन पाए । (२५२, पृ ७१)

प्रतिवस्तूपमा—

इसमें साधारण धर्म वस्तु प्रतिवस्तु भाव से शब्द भेद द्वारा एक धर्म दोनों वाक्यों में कहा जाता है।

मेरो हरि नगा को सो पाम्यो ।
पाच बरस को पूत सावरो तैं क्यों बिसरे जाम्यो । (१६६ पृ ५१)

व्यतिरेक—

उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष वर्णन को व्यतिरेक अलंकार कहते हैं—

झूलत नवल किशोर किसोरी ।
नीलाम्बर पीताम्बर फरकत उपमा घन दामिनि छवि थोरी ।
(७७७ पृ २१ )

परिकर—

साभिप्राय विशेषण द्वारा विशेष्य के कथन किए जाने को परिकरालंकार है—

प्रतिरति स्याम सुन्दर सों बाढ़ी ।

… …

बैनहि नैन मिले मन परसनी मह नागरि मह नागर ।
परमानन्द बीच ही मन मैं बात भई उजागर ॥ (२६७ पृ १२५)

परिकरांकुर—

सुन्दर मुख की हौं बलि बलि जाऊ ।
लावन्य निधि गुन निधि सोभा निधि देख-देख जीवत जाऊ ॥
सब मन प्रति अमित माधुरी प्रकट सधिर लई छाऊ ।
तामें मुस्काय हरत मन स्याम कहत कवि मोहन भाऊ ।
सखा अंस पर बाहु दिए जाको मिली बिनमोल बिकाऊ ॥
परमानन्द नन्द नन्दन को निरखि निरखि उर नयन सिराऊ ।
(२६७ पृ २११)

विशेषोक्ति —

प्रबल कारण होते हुए भी कार्य न हो वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है। बैठ है बड़े हैं फिर भी बड़े कार्य न कर बुराई करते हैं—

कापर ढोटा करत ठकुराई ।
तुम ते आदि जीव या ब्रज में नन्दहु ते वृषभान सवाई ।
ठीकत बाट घाट बधुजन को छीनत माट करत बुराई ।
निकसि गैही बाहिर होत ही बैपरु लाज न किए पत जाई ॥
बात प्रवीन बड़े के ढोटा सो सब तुम कहाँ बिसराई ।
परमानन्ददास को ठाकुर है आविर्भैन गोपी रिझाई ॥ (१७४ पृ ४७)

विषम—

विषम से तात्पर्य है सम न होना।

ऐसो माई कान्ह बटाऊ से रहे बात।
तबकी प्रीति मन की रुसाई फिर पाछे बूझत नहिं बात। (४६ पृ १६६)

काव्यार्थापत्ति—

तात्पर्य के आपड़ने को अर्थापत्ति अलंकार कहते हैं—

राधा माधो बिनु क्यौं रहे। (१७ पृ १२६)

अर्थात् राधा माधव के बिना अब एक क्षण नहीं रह सकती।

काव्यलिंग—

जहाँ कारण की वाक्यार्थता और पदार्थता होती है वहाँ काव्यलिंग अलंकार होता है—

नवनव कुसुम बराऊ राजै नर ठै ठै छुई ओर।
परिमल पै जु ललत ललकत में छवि की उठत झकोर॥
नत दल पत्र प्रवाल बरन सौं कोमल कपित ओर॥(११६, पृ १२८)

अर्थान्तरन्यास—

सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से साधर्म्य अथवा वैधर्म्य से समर्थन किए जाने को अर्थान्तर न्यास कहते हैं—

१—जहाँ ही लगन तहाँ प्रीति सही री।

परमानददास को ठाकुर गोपी ताप गई री। (५२ पृ १७७)

२—बावरिया तू कित ब्रज पै दौरी।

परमानन्द प्रभु सौं क्यौं जीवे जाकी बिछुरी जोरी॥ (११८ पृ १८१)

३—सरिता कहा बहुत सुख जामे जो न होत उपकारी।
एक सो लाख बराबर मिनियो करे जो कुल रखवारी॥ (२०१ पृ ८५)

पर्यायोक्ति—

इसमें किसी बात को रूपान्तर से या पर्याय से कहा जाता है। कृष्ण की रसिक अवस्था आरम्भ हो गई है। गोपी इसे बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती है।

सुनरी सखी तेरो दोष नहिं मेरो भीज रसिया।

सो को जो न करी बस अपने जा तन में बहुरि पितैया।
परमानन्द प्रभु कंवर लाड़िलो अबहिं कछु भीजत मसिया॥(४१ पृ० १४६)

अन्योक्ति—

जहाँ अप्रस्तुत की चर्चा करके प्रस्तुत का संकेत हो वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है—

१—माई मेरो हरि नागर सौं नेह।

..

चौंकि लियो कोउ बंधौ मन को भयौ सन्देह।
सरिता सिंधु मिली परमानन्द एक टक बरस्यौ मेह ॥ (७४६ पृ २१)

२—छाँड़ि न देत झूठे अति अभिमान।
मिलि रस रीति प्रीति करि हरि सौं सुन्दर है अवसान ॥
यह जोबन धन जीत बारिको पावस रंग सो पान।
बहुरि कहाँ यह अवसर मिलि है योग मैन को ठान ॥
बारंबार बूझिका सिखवें कबहुँ अधर रस पान।
परमानन्द स्वामी सुख सागर, सब गुन रूप निधान ॥ (११८, पृ १११)

अतिशयोक्ति—

जहाँ वर्णन अत्यन्त बढ़ा चढ़ाकर किया जाय—
कमल नयन मे एक रोम पर वारौं कोटि मनोज। (१६१ पृ २१)

लोकोक्ति—

प्रसंग पर लोक प्रसिद्ध कहावत के उल्लेख को लोकोक्ति अलंकार कहते हैं—

१—भाभी सौं मन तोरिए।
जीवै प्रीति स्याम सुन्दर सौं बैठे सिंह न रोरिए। (२८ पृ १०२)

२—धीरज धरौ बिन अवसो ही अवस्याई मिलिहैं आय।
सैतमैत क्यो पाइए पाके मीठे आम ॥ (११८ पृ १२७)

स्वभावोक्ति—[1]

डिम्भादि की यथावत् वस्तु वर्णन को स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं—

१—माई री कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत है पलना।

...

लाल अँगूठा गहि कमल पानि मेलत मुखमाही।
अपनो प्रतिबिंब देखि पुनि पुनि मुसकाही ॥ (४६ पृ १३)

२—क्रीडत कान्ह कनक आंगन।
निज प्रतिबिंब बिलोकि किलकि धावत पकरन को परछांयन।
पकरत भावत लखित होत तब भावत चलति जात तहँ आवन।
परमानन्द प्रभु की यह लीला निरखत अनुपति हरि मुखवारन ॥ (७४ पृ २६)

अलंकारों के उपर्युक्त कतिपय उदाहरण परमानन्द सागर में से प्रस्तुत किए गए हैं। यद्यपि परमानन्ददास की भा वह रस गोरी कलात्मकता नहीं था फिर भी पदों के सरस प्रवाह

१ स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्। साहित्य दर्पण।

में उनके चमत्कार अनायास चले आए हैं। वैसे उनमें भाव-सौंदर्य और अभिमधुरता पद पद मिलती है।

## परमानन्ददासजी का छन्दोविधान—

कला पक्ष के अन्तर्गत छन्दों का भी बड़ा महत्व है। अष्टछाप के सभी कवियों ने अपनी काव्य रचना गेयशैली में की है। अतः उनका काव्य पद-बद्ध है। सूरदास एवं परमानंददासजी सम्प्रदाय के इन दो सागरों ने तो सम्पूर्ण लीलागान पदों में ही किया है। वस्तुतः पदशैली की एक लम्बी परम्परा थी जो अष्टछाप के कवियों तक आते-आते पूर्ण विकास को प्राप्त हो गई थी। फिर रसात्मा रसेश कृष्ण जो साक्षात् नाद रूप कहा ही है अपने भुवन मोहन मधुरतम मुरली नाद के लिए भक्तों के परमाराध्य हैं। अतः उनके लीला परक पद संगीतमय होने चाहिए। संगीत और छन्द का परस्पर गठबंधन वैदिक काल से चला आता है। वैदिक साहित्य के नाद सौन्दर्य पर मुग्ध होकर आचार्यों ने उसके छन्दों का अनुसन्धान कर उन्हें सप्तधा विभक्त किया था। उन्हीं बृहत् पंक्ति, जाति त्रिष्टुप अनुष्टुप गायत्री जगती सात छन्दों ने पुराण और काव्य युग तक आते आते इतना बड़ा अब विस्तार कर लिया कि यह एक अलग शास्त्र ही बन गया। छन्दों का बन्धन कुछ समय तक तो ग्राह्य बना रहा फिर स्वच्छन्द मानव प्रकृति ने अन्य अनेक बन्धनों की भाँति इसे भी अग्राह्यनीय समझकर तोड़ फेंका और इससे अपने को मुक्त करना चाहा परन्तु मध्ययुग अथवा भक्तियुग ने छन्दों को पूरा-पूरा महत्व दिया। भक्त कवियों ने भगवल्लीला गान के लिए जो भी शैली सुमधुर अथवा मधुर लोक प्रचलित और सुन्दरतम समझी उसे ही अपनी कला माना। भक्त कविगण अत्यन्त समन्वय वादी थे। उनमें इस तिरस्कार प्रतिक्रियात्मकता असहयोग अथवा बहिष्कार करने की प्रवृत्ति नहीं थी इसीलिये तुलसी ने अपनी युग युग से चली आती सांस्कृतिक राम कथा के लिए विदेशी मसनवी पद्धति को बहुत पसन्द किया था। और उसे भी भारतीय छन्दों के समावेश के साथ। कृष्ण भक्त कवियों ने अपने संगीत प्रधान मुक्तक पदों को गेयशैली में रखा और उनमें उन्होंने अनेक प्रचलित अप्रचलित छन्दों का प्रयोग किया।

छन्द अथवा संगीत रसोत्कर्ष में सहायक होने के कारण काव्य में बहुत ही वांछनीय और ग्राह्य माने गए हैं। वस्तुतः सारा कृष्ण भक्ति काव्य गेय और संगीतात्मक है। संगीत में ताल ही मुख्य है। यदि सम्पूर्ण संगीत को एक शरीर मानें तो ताल को उसका हृदय मानना चाहिए। ताल काल के माप दंड का नाम है। काल के अतिशय गणित को मापकर यति गति की कल्पना की गई है। यति गति के विशिष्ट नियमबद्ध रूप का नाम ही छन्द है जो कभी स्वच्छन्द नहीं।

परमानन्ददासजी का सम्पूर्ण काव्य सूरदासजी की भाँति गेय और मुक्तक है। वस्तु, शैली उद्देश्य और परम्परा उनमें और सूर में इतना अधिक साम्य है कि यदि परमानन्ददासजी अथवा सूरदासजी के पदों के अन्तिम चरण से उनकी छाप अथवा नाम हटा दिया जाय तो एक दूसरे के काव्य को पहिचानना नितान्त असम्भव ही है। अतः दोनों का छन्द विधान और छन्दों के प्रकार और उनकी शैली समान रूपनी ही है।

गेय पदों में प्रारम्भिक अथवा पहला चरण टेक अथवा ध्रुवपद होता है। और शेष चरण उसी भाव को पुष्ट करने वाले होते हैं। रस सिद्ध अथवा उच्च कोटि के प्रथम कवि

चवपया—

इसमें प्रतिचरण १ +८+१२ की यति से ३ मात्राओं का होता है अन्त में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं—

सुनो हो जसोदा मात कहि गोकुल में एक पंडित आयो ।
अपने सुत को हाथ दिखावो सो कहै जो विधि निरमायो ॥ (३८ पृ २ )

प्रिय—

इसमें १ +१ की यति से २ मात्राएँ होती हैं। अन्त में (ऽऽ) दो गुरु होते हैं—

देखत व्रजनाथ मदन कोटि वारी ।
बदन निकट नैन मनि उपमा बिचारी ॥ (१२४ पृ ४२)

रोला—

यह छन्द ११+१३ की यति से २४ मात्राओं का होता है—

हरि रस गोपी सब गोप तियन ते न्यारी ।
कमल नयन गोविंद चंद की प्रानन प्यारी ॥ (८२६ पृ २९ )

बिलास—

यह छन्द १७ मात्राओं का है—

कोटिक ते बिन भृकुटि की ओट ।
अरा हू ठेसरस सब्द की चोट ॥ (४१९, पृ १४२)

लम्बे लम्बे वर्णन जैसे रास होली बसन्त क्रीड़ा आदि में कवि ने झूलना हरिगीतिका आदि छन्दों का प्रयोग किया है ।

सार—

२८ मात्रा का छन्द होता है—

भावति आनंद कंद दुलारी । टेक
बिधु बदनी मृगनयनी राधा दामोदर की प्यारी ।
जाके रूप कहत नहि आवै गुन विचित्र सुकुमारी ॥ (१०८ पृ १२८)

झूलना—

इसमें १२ मात्राएँ होती हैं । इसके कई भेद होते हैं—

मदन गोपाल झूलिये देहौं । टेक
कृष्णा विपिन तरनितनया तट चलि व्रजनाथ आलिंगन देहौं ॥
पवन निकुंज सुभर रति आलय नव कुसुम की सेज बिछैहौं । (१६ पृ १२१)

कवि ने कतिपय विशेष छन्दों का भी प्रयोग किया है । इन्हें साखी अथवा दोहों के अन्तर्गत रखा जा सकता है । इनमें १६ मात्रा वाली चौपाई भी आती है ।

चौपई—

देखो रसिक लाल आयो रसाल ।
खेलत बसंत प्रिय रसिक बाल ॥
गोप गोप की सुभर नारि ।
गावत जुरि मिलि मीठी गारि ॥

परमानन्ददासजी के कुछ ऐसे भी नवीन छन्द हैं। जो संभवतः संगीत में ठीक बैठते हों परन्तु जैसे मात्राओं की गणना से उनकी पहिचान होना कठिन होता है—

> बरन नी बलि बलि जाऊँ बोलत मधुर रस।
> नयन नयन प्रति नयन भुवन बस॥
> चंद निचोल रचे मंजुल बस जाऊँ वारी नवल नैन।
> यह अवलोकन सुर नर मोहे कैसी रिपु जाको दिखायो मैन॥(४२१ पृ १२१)

चौपाई—

इसमें १६ मात्राएँ होती हैं—

> पुनि जैसे नयन छबीली राधा। तें पायो रस सिंधु अगाधा॥
> जो रस निगम नेति नित भाख्यो, ताको तें अधरामृत चाख्यो॥(४२५, पृ १२४)

चौपई—

> कालिंदी तीर कपोल लोल।
> मधु रिपु भाषी मधुर बोल। (४ पृ १६६)

दोहे—

१३ ११ यति से २४ मात्राओं का छंद होता है—

> राजै तू व्रजचापिनी कौन तपस्या कीन।
> तीन लोक के नाथ हरि, सो तेरे आधीन॥

कवि ने गोवर्धन लीला के प्रसंग में रोला और रूपमाला दोनों का ही मिश्रण कर दिया है—

रोला—

> घर घर मंगल होत कहा है भाव तुम्हारे।
> बहु विधि करत रसोई, मध्य हैं सभी सकारे॥ (२७२, पृ ८६)

रूपमाला—

> मोहि देव सब कोई कहते महा जिन भाग्यो लाय।
> देव यह हम करत हैं कर पकवान रसाय॥ (२७२ पृ ८६)

रोला—

> यह विस्मय चित मोहि कौन को करत पुजाई।
> जाको फल है कहा कहो तुम व्रजपति राई॥ (२७२ पृ ८६)

रूपमाला—

> नाम कहा या देव को, कौन लोक को राज।
> इतनी बलि यह जात है, कहा करत है काज॥ (२७२, पृ ८६)

समान सवया—

इसमें १६+१६=बत्तीस मात्राएँ होती हैं अन्त में दो गुरु होते हैं—

> गोपी के दिन मज्जन स्नान करि साज सिंगार स्नान सुभगतन।
> पुनि पूजित दिवसा गोप बरिके परम सुघर आरोगावत सब मिल जन।

जब राजभाषा थी तब लोक भाषा का स्वरूप क्या था और उसका साहित्य कैसा था यह अद्यावधि अन्धकार में है। सर्व साधारण के भावों की अभिव्यक्ति के माध्यम को भाषा कहते हैं। आठवीं नवीं शताब्दी से लेकर १२ वीं शताब्दी के शौरसेन प्रदेश के लोक साहित्य का पता नहीं चलता यह भाग भी अंधकार में ही है अतः ब्रजभाषा अथवा लोक भाषा के उस काल के कुछ विकसित रूप का आभास प्राकृत पैंगलम् में दृष्टिगोचर होता है। जब प्रदेश आचार्य वल्लभ के प्रभाव के कारण पुष्टि सम्प्रदाय का केन्द्र बना और १५, १६ वीं शताब्दी में श्री गोवर्धननाथजी के प्राकट्य के उपरान्त आचार्य ने उनके मंदिर में कीर्तन की व्यवस्था की तब इस लोकभाषा को साहित्यिक रूप मिला। संवत् १५५६ में गिरिराज पर श्री गोवर्धननाथ जी के मंदिर के बन जाने के उपरान्त ब्रजभाषा कीर्तनकारों के पदों में जोरों से प्रयुक्त होने लगी और इस प्रकार ब्रज भाषा के साहित्यिक रूप का अभ्युदय प्रकट हो उठा। क्योंकि सम्भव सागरों अथवा अन्य अष्टछापी कवियों का इतना विकसित भावमय सक्षम अभिव्यक्ति पूर्ण पदसर्जन एकदम आकस्मिक अथवा प्रारम्भिक नहीं हो सकता अवश्य ही यह किसी परंपरा का विकसित रूप है। जो भी हो अभी तो १५ वीं १६ शताब्दी को ही ब्रजभाषा का आदि काल मानना पड़ता है। और इस प्रकार ब्रज भाषा को यदि सुविधा की दृष्टि से निम्नांकित तीन कालों में बांट दें तो उसके स्वरूप के तुलनात्मक अध्ययन में बड़ी सुविधा रहती है।

१—ब्रजभाषा का आदिकाल १५ वीं शती से १७ वीं शती तक।
२—ब्रजभाषा का मध्य काल १७ वीं शती से १९ वीं शती तक।
३—ब्रज भाषा का आधुनिक युग १९ वीं शती से आज तक।

ब्रजभाषा के विस्तार पर यदि हम विचार करें तो इसका ठेठ पूर्वी रूप अवधी कन्नौजी बघेली रूप बुंदेली पश्चिमी रूप हिन्दी अथवा राजस्थानी और इसकी रूप खड़ी बोली से जा मिलेगा। इसका केन्द्र मथुरा और उसके आस पास का प्रदेश है। जब ब्रज भाषा को साहित्यिक रूप मिलना प्रारम्भ हुआ तो इसके दो स्पष्ट स्वरूप हो गए। एक तो ग्रामीण ब्रज और दूसरी नागरिक ब्रज।

इस प्रकार मथुरा आगरा अलीगढ़ और इटावा ब्रज के प्रधान क्षेत्र हैं। इटावे से आगे यह कन्नौज तक जा पहुंचती है। यह नैनीताल के उत्तरी पश्चिमी भाग बीसलपुर भरतपुर में बोली जाती है। और अधिक दक्षिण अथवा पश्चिम में जाने पर यह क्रमशः बुंदेली अथवा राजस्थानी का धारण कर लेती है। आदिकालीन ब्रज भाषा के कवियों में सूरदास नन्ददासादि अष्टछाप के कवि तुलसी मीरां बिहारी आदि आते हैं।

मध्यकालीन ब्रज में—रीतिकालीन कवियों से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक के कवियों का समावेश है। आधुनिक ब्रजभाषा में भारतेन्दु प्रतापनारायण बालमुकुन्दादि से लेकर रत्नाकर एवं सत्यनारायण कविरत्नादिक कवि गण आजाते हैं।

## ब्रजभाषा का आदिकालीन स्वरूप—

यह ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रजभाषा के इस प्रारंभिक स्वरूप के दर्शन हमें अष्टछाप एवं अन्य कृष्ण भक्ति कवियों की रचनाओं में होते हैं। अतः प्रारम्भिक ब्रजभाषा में तथा [illegible] तिवारी के मत इस प्रकार है—

१—संज्ञा तथा विशेषणों के रूप ओकारान्त या औकारान्त होते थे। जैसे बड़ो, तमासो म्हारो। संज्ञाओं के तिर्यक रूप बहुवचन 'न' लगाकर बनते थे सड़कन घरेन घोड़न म्हारेन आदि।

कर्मकार में—कौं का प्रयोग होता था—घोड़न कौं, घरेन कौं।

सर्वनाम में—वाको मोको तोकों आदि।

उत्तम पुरुष में—हौं मो आदि।

संबंध कारक में—मेरो तेरो हमारो आदि।

क्रियापद—

वर्तमान काल की क्रियाओं के ब्रज और अवधी में एक से रूप होते हैं।

करत हौं करित हौं चलत हौं चलतहौं। स्त्रीलिंग में इकारान्त हो जाता है जैसे—गावति हंसति हसावति मुसकति।

बहु वचन में करत हैं जात हैं आदि।

| | एक वचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष— | है होत है। | हैं, होत हैं। |
| मध्यम पुरुष— | है होत है। | हैं, होत हैं। |
| उत्तम पुरुष— | हौं-होत हौं। | हैं होत हैं। |

भविष्यत्

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष— | करैगो। | करैंगे। |
| | करिहै | करिहैं। |
| मध्यम पुरुष— | करैगो। | करोगे। |
| | करि है। | करिहौ। |
| उत्तम पुरुष— | करौंगो। | करैंगे। |
| | करि हौं। | करिहैं। |

भूतकाल

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष— | गई, भयो। | गईं। भए। |
| मध्यम पुरुष— | भयो | भए। |
| उत्तम पुरुष— | भयो। | भए। |

ब्रज में भूतकालिक कृदन्त के रूप में आयो चल्यो आदि बनते हैं। उपर्युक्त उदाहरण ब्रज भाषा के दिए हुए हैं। आदिकालीन ब्रज भाषा के संज्ञा सर्वनाम क्रिया पदों के व्याकरण गत सामान्य एवं संक्षिप्त विवेचन के उपरान्त अब परमानन्ददासजी की भाषा पर विचार किया जाता है।

## परमानन्ददासजी की भाषा—

परमानन्ददासजी ब्रज भाषा के रस सिद्ध कवि हैं। भाव प्रकाश में लिखा है कि वे बड़े लोग और कवीश्वर हू भये।[1] इससे उनका सुपठित होना व्यक्त होता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण में आने से पूर्व वे काव्य रचना करते थे। इस तथ्य का उल्लेख वार्ता में हुआ है। संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व आचार्यजी को जो असाधारण परक पद[2] उन्होंने सुनाए थे उनसे उनकी असाधारण काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है। भावों एवं रसों के तो वे सफल कवि थे ही किन्तु लोकभाषा पर भी उनका असाधारण अधिकार था। यों तो अष्टछाप के सभी कवियों का काव्य ब्रजभाषा के माधुर्य से सुसंपन्न है परन्तु इन दो सागरों सूरदास एवं परमानन्ददास की भाषा के सौष्ठव माधुर्य एवं वैभव को देख कर पाठक न केवल आनन्द विभोर होता है अपितु वह विस्मय विमुग्ध होकर आश्चर्य के सागर में गोते लगाने लगता है। इन दोनों भक्त कवियों के हाथ में पड़कर ब्रज प्रदेश की लोक-भाषा कठपुतली की भाँति उनके इंगित पर नृत्य करने लगती थी। अभिव्यक्ति की कुशलता ध्वनि की मधुरता चमत्कृति की चतुरता विशेषतया आलंकारिक सजीवता के साथ साथ समन्वय की प्रवृत्ति परमानन्ददासजी की विशेषता थी। महात्मा सूरदास जन्मान्ध अथवा प्रज्ञाचक्षु थे। उनका पठन पाठन प्रकृति की मुक्त पाठशाला अथवा आत्मानुभूति की अन्त शाला में हुआ था शेष सब सहज एवं स्वतः अर्जित था। परन्तु परमानन्ददासजी के विद्वान् होने का वार्ता में स्पष्ट संकेत है। विद्वत्ता और अध्यात्मप्रवृत्ति के साथ आचार्य महाप्रभु का दीक्षा गुरुत्व एवं सुबोधिनी का श्रवणादि सब मिलकर इन्हें उत्तम कोटि का भक्त और वाग्वान् सिद्ध कर देने के लिए पर्याप्त है। इसी के परिणाम स्वरूप उनके काव्य में हम शुद्ध परिष्कृत प्रांजल और प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग पाते हैं।

यहाँ उनकी काव्य भाषा पर विचार करने से पूर्व यदि तत्कालीन प्रचलित लोक भाषा के स्वरूप पर विचार कर लिया जाय तो अनुचित न होगा।

## ब्रज भाषा का नामकरण—

ब्रज प्रदेश की भाषा को ब्रज भाषा कहा जाता है। ब्रज शब्द स्वयं प्रदेश वाचक नहीं है। इसका तात्पर्य 'जाना' तथा पशुशाला अथवा गोष्ठ[3] है। परन्तु आगे चलकर वह रूढ़ हो गया। और मध्यकाल तक आते आते यह प्रदेश वाची बन गया।[4] प्राचीन यह शूरसेन का प्रदेश था और सौरसेनी अपभ्रंश यहाँ की राज भाषा थी। ब्रज भाषा की उत्पत्ति इसी शौरसेनी अपभ्रंश से हुई। राज भाषा अथवा साहित्यिक भाषा से लोक भाषा अथवा प्राकृतों (तर्क आधारतो) की भाषा में सदैव अन्तर रहता आया है। शौरसेनी अपभ्र।

1. देखो—वार्ता पर भाव प्रकाश टिप्पणी पृष्ठ ७५—द्वारकादास जी पारिख।
2. कौन बेर भई चलेरी गुपालै।

तथा

जिय की साध जियहि रही री। पृष्ठ ७

3. "व्रज स्यात् गोकुल गोष्ठम्।" वैजयन्ती कोष

देखो—वल्लभानुजन्तो धवधाम् विशेषतार् व्रजमता। भा १ ६।६६

विजया—

इस छन्द में १ +१ +१ +१ की यति से ४ मात्राएँ होती हैं यह प्रायः स्तुति आदि में प्रयुक्त होता है। तुलसी ने इस छन्द में गंगा की स्तुति की है। परमानन्ददास जी ने यमुना की।

मधि मधुर जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति तरंगिनी।
श्याम बरन झलकत अंग छोटत लहर मधुप बर वेष्टित संतत मनोज सघु संगिनी॥
(२७७ पृ १ )

कवि ने आरती आदि के लिए सार्टक छन्द को रसिया की शैली तक में भी प्रयुक्त किया है—

आरति युगल किशोर की कीजै।
तन मन धन न्यौछावर कीजै॥ (१७८, पृ २११)

उपर्युक्त कतिपय प्रधान छन्दों के अतिरिक्त कवि ने लावनी १६+१४ सार छन्द १६+१६ हरिप्रिया १२+१२+१२+१ तोमर १२+१२ आदि छन्दों को भी स्थान रक्खा है।

परमानन्ददास जी के अभी तक के उपलब्ध काव्य को देखते हुए उनकी छन्दों की विविधता आश्चर्य में डाल देती है। सूर की अपेक्षा उनके छन्दों के प्रकार यद्यपि थोड़े हैं फिर भी काव्य परिमाण को देखते हुए उनकी छन्द विविधता पर्याप्त है। छन्दों को देखते हुए उन पर सूर का प्रभाव स्पष्ट कहा जा सकता है। साथ ही हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

उन्होंने सभी सम मात्रिक विषम मात्रिक अपने युग में प्रचलित छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों में मात्राओं की अपेक्षा उन्होंने गति और संगीतात्मकता का विशेष ध्यान रखा है। यति भंग की उन्हें चिंता नहीं थी। उन्होंने रसिया, लावनी, चौबोले आदि ब्रज में प्रसिद्ध चलने वाले पदों को अधिक पसन्द किया है। अपने सम सामयिक सूरदास, कुम्भनदास, कृष्णदास तथा अन्य ब्रज भक्त कवियों से वे पूरे पूरे प्रभावित हैं। परमानन्ददासजी पर सूर की छन्द शैली का भी प्रभाव ग्रहण किए हुए हैं।

---

१—संज्ञा तथा विशेषणों के रूप ओकारान्त या औकारान्त होते थे। जैसे बड़ो, समासो स्हौरो। शब्दों के तिर्यक रूप बहुवचन "न" लगाकर बनते थे लड़कन बड़ेन मोहन स्हौरेन आदि।

कर्मकार मे—कौं का प्रयोग होता था—मोहन कौं, बड़ेन कौं।

सर्वनाम मे—वाकौं मोकौं तोकौं आदि।

उत्तम पुरुष में—हौं मौ आदि।

संबंध कारक में—मेरो तेरो हमारो आदि।

क्रियापद—

वर्तमान काल की क्रियाओं के ब्रज और अवधी मे एक से रूप होते हैं।

करत हौं करित हौं चलत हौं चलतही। स्त्रीलिंग में इकारान्त हो जाता है जैसे—गावति हंसति हंसावति मुसकति।

बहु वचन में करत हैं, खात हैं आदि।

| एक वचन | बहुवचन |
|---|---|
| प्रथम पुरुष—है, होत है। | हैं होत हैं। |
| मध्यम पुरुष—है होत है। | हैं, होत हैं। |
| उत्तम पुरुष—हौं-होत हौं। | हैं होत हैं। |

भविष्यत्

| | |
|---|---|
| प्रथम पुरुष—करैगो। | करेंगे। |
| करिहै | करिहैं। |
| मध्यम पुरुष—करैगो। | करौगे। |
| करि है। | करिहौ। |
| उत्तम पुरुष—करौंगो। | करेंगे। |
| करि हौं। | करिहैं। |

भूतकाल

| | |
|---|---|
| प्रथम पुरुष—गई गयो। | गई। गए। |
| मध्यम पुरुष—गयो | गए। |
| उत्तम पुरुष—गयो। | गए। |

ब्रज मे भूतकालिक कृदन्त के रूप मे आयो चल्यो आदि बनते हैं। उपर्युक्त उदाहरण ब्रज भाषा के दिए हुए हैं। आदिकालीन ब्रज भाषा के तथा वर्तमान क्रिया पदों के व्याकरण पर सामान्य एवं संक्षिप्त विवेचन के उपरान्त अब परमानन्ददासजी की भाषा पर विचार किया जाता है।

कब राजभाषा की तब लोक भाषा का स्वरूप क्या था और उसका साहित्य कैसा था यह प्रश्नाभाव अंधकार में है। सर्व साधारण के भावों की अभिव्यक्ति के माध्यम को भाषा कहते हैं। आठवीं नवीं शताब्दी से लेकर १५ वीं शताब्दी के शौरसेन प्रदेश के लोक साहित्य का पता नहीं चलता यह आज भी अंधकार में ही है अतः ब्रजभाषा अथवा लोक भाषा के उस काल के कुछ विकसित रूप का आभास 'प्राकृत पैंगलम्' में दृष्टिगोचर होता है। जब श्रीमद् आचार्य वल्लभ के प्रभाव के कारण पुष्टि संप्रदाय का केन्द्र बना और १५, १६ वीं शताब्दी में श्री गोवर्धननाथजी के प्राकट्य के उपरान्त आचार्य ने उनके मंदिर में कीर्तन की व्यवस्था की तब इस लोकभाषा को साहित्यिक रूप मिला। संवत् १५५६ में गिरिराज पर श्री गोवर्धननाथ जी के मंदिर के बन जाने के उपरान्त ब्रजभाषा कीर्तनकारों के पदों में जोरों से प्रयुक्त होने लगी और इस प्रकार ब्रज भाषा के साहित्यिक रूप का सम्यक् प्रचार हो उठा। क्योंकि सूरदास सागरों अथवा अन्य अष्टछापी कवियों का इतना विकसित मार्दवमय, सरस अभिव्यक्ति पूर्ण पदावली एकदम आकस्मिक अथवा प्रारंभिक नहीं हो सकता अवश्य ही यह किसी परंपरा का विकसित रूप है। जो भी हो अभी तो १५ वीं १६ शताब्दी को ही ब्रजभाषा का आदि काल मानना पड़ता है। और इस प्रकार ब्रज भाषा को यदि सुविधा की दृष्टि से निम्नांकित तीन कालों में बांट दें तो उसके स्वरूप के तुलनात्मक अध्ययन में बड़ी सुविधा रहती है।

१—ब्रजभाषा का आदिकाल १५ वीं शती से १७ वीं शती तक।
२—ब्रजभाषा का मध्य काल १७ वीं शती से १९ वीं शती तक।
३—ब्रज भाषा का आधुनिक युग १९ वीं शती से आज तक।

ब्रजभाषा के विस्तार पर यदि हम विचार करें तो इसका ठेठ पूर्वी रूप अवधी कन्नौजी दक्षिणी रूप बुंदेली पश्चिमी रूप हिन्दी अथवा राजस्थानी और उत्तरी रूप खड़ी बोली से जा लगेगा। इसका केन्द्र मथुरा और उसके आस पास का प्रदेश है। जब ब्रज भाषा को साहित्यिक रूप मिलना प्रारम्भ हुआ तो इसके दो स्पष्ट स्वरूप हो गए। एक तो ग्रामीण ब्रज और दूसरी नागरिक ब्रज।

इस प्रकार मथुरा आगरा अलीगढ़ और इटावा ब्रज के प्रधान क्षेत्र हैं। इटावे से आगे यह कन्नौज तक जा पहुँचती है। यह ग्वालियर के उत्तरी पश्चिमी भाग धौलपुर भरतपुर में बोली जाती है। और अधिक दक्षिण अथवा पश्चिम में जाने पर यह क्रमशः बुंदेली अथवा राजस्थानी रूप धारण कर लेती है। आदिकालीन ब्रज भाषा के कवियों में सूरदास परमानन्ददासादि अष्टछाप के कवि तुलसी मीरां बिहारी आदि आते हैं।

मध्यकालीन ब्रज में—रीतिकालीन कवियों से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक के कवियों का समावेश है। आधुनिक ब्रजभाषा में भारतेन्दु प्रतापनारायण मिश्र आदि से लेकर रत्नाकर एवं सत्यनारायण कविरत्नादिक कवि गण आजाते हैं।

### ब्रजभाषा का आदिकालीन स्वरूप—

यह ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रजभाषा के इस प्रारंभिक स्वरूप के दर्शन हमें अष्टछाप एवं अन्य कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में होते हैं। अतः प्रारम्भिक ब्रजभाषा के संज्ञा विशेषणों क्रियाओं के रूप इस प्रकार है—

## परमानन्ददासजी की भाषा का स्वरूप—

परमानन्ददासजी कन्नौज निवासी थे। कन्नौजी भाषा का विस्तार इटावे और प्रयाग के बीच के प्रदेश में है। यह हरदोई और उन्नाव के भी कुछ जिलाओं में बोली जाती है इसे ब्रज भाषा का ही एक परिवर्तित रूप समझना चाहिये। इसका साहित्य प्रायः नहीं के समान है। क्योंकि इसके अधिकांश भाषियों ने ब्रज भाषा में ही कविता की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का तो यह मत था कि कन्नौजी भाषा दिन प्रति दिन समाप्त होती जा रही है और इसके अनेक प्रयोग मर गए हैं अथवा मरते जा रहे हैं।[1]

जो भी हो हमें यहाँ कन्नौजी के ह्रास-विकास से प्रयोजन नहीं। यहाँ तो केवल इतना ही कहना है कि परमानंददासजी ने अपनी काव्य भाषा के लिए ब्रज को ही अपनाया। ब्रज के साहित्य में परमानन्ददासजी ने जिस पुष्ट प्रांजल व्यवहार्य सबल ब्रज भाषा का प्रयोग किया है वैसा नन्ददासजी को छोड़कर शायद ही किसी अन्य कृष्ण भक्त कवि ने किया हो। सूर ने यद्यपि प्रचलित ब्रजभाषा का प्रयोग किया है परन्तु उनमें उतना परिमार्जित रूप नहीं मिलता जो परमानन्ददासजी में है। यों तो सूर सभी अष्टछापी कवियों में सिरमौर हैं परन्तु अनेक क्षेत्रों में और विशेषकर भाषा के क्षेत्र में और भी अन्य कवि उनसे बाजी ले गये हैं। ब्रज भाषा का अपना माधुर्य है। भगवान कृष्ण और कृष्ण-भक्ति से समन्वित होकर उसका सौंदर्य और भी निखर गया है। वह कृष्ण भक्तों के हाथों में पड़कर इतनी समृद्धिशालिनी हो गई है कि उसका साहित्य आज सर्वोच्च साहित्य में गिना जाता है।

परमानन्ददासजी का परमानन्दसागर सूरसागर की टक्कर का कहा जाता है। यह न केवल भाव कल्पना अथवा रस की दृष्टि से ही सूरसागर की टक्कर का है अपितु भाषा की समृद्धि एवं उसके सौष्ठव की दृष्टि से भी उससे पीछे नहीं।

तत्सम तद्भव देशज शब्दों के प्रयोगों, लोकोक्तियों वाग्धाराओं (मुहावरों) के एवं योगों के साथ अन्य प्रान्तीय शब्दों का कुछ प्रयोग तो 'सागर' मिलता ही है। परन्तु कुछ का प्रभाव भी उसमें परिलक्षित होता है। विदेशी शब्दों को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति से इस भाषा में गहरी सजीवता व्यापकता और मोहकता के दर्शन होते हैं।

परमानन्ददासजी के सहृदय पाठक के भाव मग्न होने तथा रस निमज्जित होने का रहस्य ही यह है कि उनकी भाषा में उच्च कोटि की व्यंजकता लाक्षणिक वक्रता तथा सक्षिप्तता है। यहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त तत्सम तद्भव देशज शब्दों के साथ अन्य प्रान्तीय एवं विदेशी शब्दों की सूची प्रस्तुत करने के पूर्व उनकी भाषा को आदिकालीन ब्रज भाषा की कसौटी पर कसने की चेष्टा करेंगे।

परमानन्ददासजी ने भी संज्ञा तथा विशेषणों के ओकारान्त ही प्रयुक्त किये हैं—

सुभौरी माघ मगन बधाव बधायो हो। (१)

घर घर आनन्द होत बदन के दिन दिन बढ़त सवायो। (२९)

भाग बधाई को दिन नीको।

---

१ देखो—हिन्दी शब्द सागर भूमिका भाग १ —१९

संप्रदान —

खड़ी बोली में 'लिए' चिन्ह संप्रदान कारक के लिए आता है। परमानन्ददासजी ने इसके 'कों' प्रयोग किया है।

'लाल कौं मीठी खीर जो भावै। (११२)

अपादान—

खड़ी बोली में अपादान का चिन्ह 'से' होता है। ब्रज में 'तें' आता है। 'सूं' का भी प्रयोग होता है।

१ 'ओपे तें बोली बैनन की मधु की कौन बड़ाई। (६८)

२ तबते सूद सूं नातो टूट्यो जैसे काचो सूत सखीरी। (४६७)

सम्बन्ध —

खड़ी बोली में सम्बन्ध कारक रूप 'मेरा' हमारा तेरा तुम्हारा उसका उनका आदि रूप होते हैं। ब्रज में मेरो हमारो तेरो तुम्हारो वाको उनको अथवा तिनको आदि रूप होते हैं।

परमानन्ददासजी ने ब्रज के साथ खड़ी बोली के रूपों का भी प्रयोग किया है।

यशोदा तेरे भाग्य की कही न जाई। (४१)
तिहारे बदन के हौं रूप रीझी। (१२७)
वारी मेरे लटकन पग धरो छतियां। (४४)

कहीं कहीं 'कौ' प्रयोग कवि ने किया है—

श्रीराधा जू को जन्म भयो सुनि माई। (१६४)

कहीं 'याके' वाके आदि का प्रयोग मिलता है—

मानो याके भाग की बेरी। (१८६)

खड़ी बोली में 'इसके' का प्रयोग होता है। साथ ही 'मेरो' तेरो' का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है—

'तेरो री लाल मेरो माखन खायो। (१४७)
मेरो मन बावरी भयो। (४६४)
मैं 'अपनों' मन हरि सौं जोर्यो। (४६१)

स्त्रीलिंग में "री" का प्रयोग—

डोला "मेरी" दोहनी दुराई। (६८)

परमानन्ददासजी के काव्य में क्रिया पद—

भाषा का स्वरूप क्रिया पदों पर निर्भर रहता है। खड़ी बोली में वर्तमानकाल की क्रिया में एकवचन आकारान्त होता है। यह क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है। भूत में था, के तथा भविष्यत् गा और गे क्रिया के अन्त में लग जाते हैं।

ब्रजभाषा में क्रियाओं के रूप में खड़ी बोली से कुछ भिन्नता लिए होते हैं—

वर्तमान काल में—

ब्रज भाषा में "क्रिया" वर्तमान काल में ह्रस्व अकारान्त हो जाती है। जैसे—

(१) आज गोकुल में बजत बधाई।

(२) ब्रज में फूले फिरत अहीर।
(३) तुम को मनावत खोई दिन सारी।
(४) घर घर ग्वाल देत हैं हेरी।
(५) ब्रज में होत है कुलाहल भारी।

स्त्रीलिंग में क्रिया ह्रस्व इकारांत हो जाती है—

(१) बदन निहारति है नंद रानी।
(२) खड़ी घूमति नैन बिसालै।
(३) साँवरो बदन देखि लुभानी।

कहीं कहीं एकारान्त क्रियाएँ वर्तमान काल में प्रयुक्त हुई हैं—

"हो हो होरी हलधर गावे।" (१ १)
ग्वाल को मारै कुछ मारे सब बेर। (१ ३)
मात जसोदा दही बिलोवे। (४७)

वर्तमान काल में एकारान्त ओकारान्त क्रिया का प्रयोग—

(१) यह तन कमल नयन पर वारौं सामलिया मोहि भावे री। (७८)
(२) नद बधाई दीजे ग्वालन। (१८)

कहीं कहीं खड़ी बोली की क्रियाओं का रूप स्पष्ट है—

(१) देखो री यह कैसा बालक रानी जसोमति जाया है। (१७)

स्त्रीलिंग में खड़ी बोली से थोड़ा ही अन्तर पड़ गया है।

कहति है राधिका अहीरि। (१६१)

खड़ी बोली में "कहती है" होता है।

भूतकाल—

खड़ी बोली में भूतकाल की क्रिया में या तो 'था' 'थी' 'थे' लगता है या क्रिया का रूप आकारांत और बहुवचन में एकारान्त हो जाता है। जैसे—

वह गया वे गए।
तू गया तुम गए।
मैं गया हम गए।

पूर्णभूत में—

वह गया था वे गए थे।
तू गया था तुम गए थे।
मैं गया था हम गए थे आदि।

परमानन्ददासजी ने भूतकाल के प्रयोग ओकारान्त किए हैं—

(१) माई तेरो कान्ह सब छल लाग्यो। (९३)
(२) ग्वालिन तो पै ऐसो क्यों करि आयो। (१४६)
(३) मेरी करी बहुरिया ले गयो री। (१८७)
(४) काल ही दिन ऐसे छल सायो। (११४)
मेरो मन कान्ह हर्यो। (४६३)

देखो री यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है ।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन देखत चन्द्र लजाया है ।
पूरन ब्रह्म अलख अविनाशी प्रकट नर तन धर आया है ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै केसरि तिलक लगाया है ॥ १७ पृ ११
हुमरावत हुलसावत नाचत अंगुरिन अग्र दिखाय दिया ।
.. दुख बिसरत सुख होत जिया ।
.. हाव भाव चित चाव किया ।

इनके अतिरिक्त भेटिए (८४६) भेटिए (८४६) दीजिए (८४६) लीजिए (८४६) पाइए, (८४६) पूरिए (८४६) आदि अनेक खड़ी बोली के प्रयोग हैं। क्रियाओं के रूपारें पद पद्धति पर बनाई गई हैं जैसे देता देता ( ६८ ) आदि ।

क्रिया पदों के अतिरिक्त कवि की भाषा में तत्सम तद्भव देशज एवं विदेशी आदि सभी प्रकार के शब्द मिलते हैं। इससे न केवल उनकी भाषा का मधुर प्रवाह ही जाना जाता है अपितु लोकभाषा पर असाधारण अधिकार और शब्दों का सुप्रयोग एवं आत्मसात करने की प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं। कवि को अपनी अभिव्यक्ति सशक्त और पुष्टतम बनाने की चिन्ता थी उसमें अनावश्यक बहिष्कार प्रवृत्ति नहीं थी। नीचे परमानन्दसागर में प्रयुक्त कतिपय तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों की सूची प्रस्तुत की जाती है।

उपर्युक्त तत्सम शब्दों के अतिरिक्त कवि उच्चकोटि का संस्कृतज्ञ था। उसने प्रांजल सुपरिष्कृत परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से वे सभी अष्टछापी कवियों में उच्चकोटि के ठहरते हैं। प्रायः शेष पदों में संस्कृत क्लिष्ट पदावली का प्रयोग तथा चीन नहीं ठहरता परन्तु कवि ने अनायास ही समस्त-पदों के प्रयोग किये हैं और इस प्रकार ब्रजभाषा को न केवल एक साहित्यिक भाषा का ही रूप दिया है अपितु उसको टकसाली और निखरी हुई बनाकर उसका स्तर ऊँचा बना दिया है। संस्कृत शब्दों का चयन और उनका सुप्रयोग परमानन्ददासजी की अपनी विशेषता है। यहाँ उनके काव्य में प्रयुक्त समास शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

## समास शब्द एवं समासान्त पदावली—

मानव हृदय कमलोज (१५) कनकधाम (२८) विश्वंभर (६१) मुखमंडल (२८) पदुम नाभ (२६) पीत-पेय (२ ) रतन रचन बाहुपाणि (६२) मदनमोहन (६२) रतन जटित (४ ) भूरि भूतर मधु (४३) ब्रह्मादिक (६६) नेति-नेति (६६) ब्रजनारिव (७२) नीलवसन (१ १) सुखकन्दन (२८) आनन्द निधान (६२) मित्र समाज (१ ६) नीलवसन (१ १) मनमथ (१ ६) मुखकमल (१ ६) नयन सुधानिधि (१ ६) माला पुष्प (११ ) पद्मरज (१११) कुन्द मणि सुर रचित (१२४) रतन जटित कंचन मणिमय (४३) कुन्दन मणिमाल (१२४) चमर कठ पीत वसन दामिनी (१२४) वनमाल (१२४) जलधाम (१२४) जलज ... पद्माम्बरोज ( ६ ) चतुरानन (८२) स्वर्ण मरत (२२) विधि निपद्य (२२) मुक्ता मणिहार, मणिचारामरा (१२४) मणिप्रकाश (११७) दीप प्रवेशा (११७) नयन अम्बपान कुचहारावलि (११७) चिबुक केश (११ ) वेणी ग्रथित (११७) कलित कुसुमाकर (११७) शोभितवर कुण्डल छवि (११८) कटि किंकिणि नूपुराव मनोहर (१४१) व्याधि-व्याधि (१६४) मुक्तामणि (१४१) मृगनयनी (१८६) बहुमति विपरीत (७ ८) सुरत-सागर तरल (११ ) गजगामिनी (७१४) सरोवर-अम्बु-नलिनी (७ ६) हरिप्रीतिमया तीर (४२१) नयन निकट (११ ) सुभग रति मानस (१६ ) निबकर ग्रथित (७०६) जगमग अति अमित माधुरी (१११ ११ ) प्रथम समागम (१ १) छबीपति (४ ) कुटिल कटाक्ष (१७५) अनुराग राग (४ ५) प्राचीदिशा (४ ५) कमल कोप-वरन रव (१ ८) अमित मुरली (२६१) कनक कन (२१६) हिमकता तमाल मयसचित (२१६) मूर्ति मर्यादा (२१ ) नवराधि ( ?? ) पुरत खचित (१२१) गुणराशि (१ १) भाव-समागम (२६२) भाव-बधा (२४ ) मधुरभाव ( ६ ) नैबोन्द्य सुनिश्चित ( ६ ) गुणप्रवाद ( ६ ) मख पुष्प (६२१) कोटि ब्रह्माण्ड कलित भ्रमर (४४ ) पीत रज मण्डित (२१२) बाल रस (४१ ) निर्मल मरद कलाकृति शोभा (७१८)।

## कवि में नाद सौंदर्य और संगीतात्मकता—

कवि को नाद सौंदर्य एवं संगीतात्मकता का बड़ा ही ध्यान था। अतः उसने श्रुतिमधुर पद योजना और कोमलकान्त पदावलियों का चयन पद-पद पर किया है। जहाँ जैसे प्रसंग थे उसी के अनुकूल शब्द-योजना परमानन्ददास के काव्य की अपनी विशेषता है। अंग्रेजी में इसे 'ओनोमेटोपोइया' अलंकार नाम दिया गया है। नीचे नाद सौंदर्य के कतिपय उदाहरण परमानन्ददासजी के प्रस्तुत किए जाते हैं—

(१८९) महल (११२, चोलना (२१४) बेरी (२२१) बहीना (२२६) बालक (२७) पुराव (७४१) मुमुचा (१ ) मधीपति (४ ८) मंत्री (११७) टकुअकु (४२९) हिनियो (११९) बोहिलो (५१ ) बरिस (२ ) मकवाम्यो (१५६) बिलमु (५१२) निवाज (५१२) माम्यो (२५१) बेम (८ ९) बटाउ (५२९) मोट (११३) सहिध (७८१) बहुरा (११५) सरिका (२६) घिराने (७८१) घनुसाई (१) सुवम (४२१) बसीठि (२४२) ।

## खड़ी बोली के योग—

किवाड (१४७) कीच (५४५) खिसौना (५५७) खटको (३७४) मेंब (९५) पंचाल (८१४) तीस (२६३) टहल (८४८) बहल (७४९) ताव (११९) बेघट (१८) विदेश (५२६) पेनी (५८५) मैदान (९५) झगड़ो (१८ ) तुम्हारे (५६) मंगलगाए (११७) खिसारी (१८७) त्यौहार (५५१) ठनक (११८) डरेरे (११९) निराली (७८) पैनी (४८ ) बानिक (१२२) बहोत (२७) पसूनो (७१८) सिरताज (१ २) बिहान (५५८) मोस (९९) कहानी (५९१) पूमी (२२१) छमाई (१ ६) भिखारी (८९१) ।

उपर्युक्त प्रान्तीय शब्दों के अतिरिक्त कवि ने अनेक विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है ।

दाग (४२५) हजार (५१५) खयाल (४७४) गुलाम (४९२) मोमिन (९२७) गनी (११९) खासा (११७) कुनस (८९२) खसम (७०२) बजाजी (बजान) (१२५) जासूस (४९२) बखी (२४९) झरोखा (४९४) नामी (९१) ताफ्ता (७४२, तमाशो (९९) दरखत (७५) दमामा (२१) बगा ५११) बाग ,९१९) दफ्तर (८८ ) दहल ७४९) दीवाना (८११) यार (८११) नाहक (११७) पैरबी (५ २) बखिल (११९) बिहान) (५५८) मैदान ९५) महक (७५ ) मखतूल (१४४) मीच (८८ ) मसाली (८८ ) नायक (११९) मूब (२६) शहनाई (२७) छोर (छीर) (११७) सेहरा (१७५) तहल (७४९) चोबा (२१४) सिरताज (१ २) दमाम (१७५) ।

उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त कवि ने मुहावरों और लोकोक्तियों का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है । इनसे भाषा में एक विशिष्ट प्रवाह, रोचकता एवं प्रकृत सौन्दर्य आगया है । मुहाविरे एवं लोकोक्तियों से ब्रज की लोक भाषा को जो साहित्यिक रूप कवि के द्वारा दिया दिया गया है वह अपना एक निराला महत्व रखता है । सूरदास एवं परमानन्ददासजी की भाषा को देखने से विदित होता है कि उस काल की ब्रज भाषा एक सुदीर्घ भाषा-परम्परा का विकसित रूप है । अष्टछाप के कवियों से पूर्व की इस परम्परा की खोज ब्रजभाषा के प्रति एक बड़ा उपकार समझा जावेगा । सम्भवतः इस परम्परा का स्वरूप आगे आवेगा ।

परमानन्ददासजी द्वारा प्रयुक्त कतिपय मुहावरे अथवा लोकोक्तियां इस प्रकार हैं—

१—उदय भयो जागो कुल दीपक । (३)
२—ब्रज में फूले फिरत अहीर । (४)
३—अच्छी भईया फाग । (५)
४—पूजे मन के काम । (१४)
५—आनंद भरी नंद जू की रानी फूली अंग न समाई । (११)
६—देखत चंद्र लजाया है । (१७)

७—कस न परत दुख बालनो। (४१)
८—परमानंद धाकि जरो बाकी पू टेढ़ी दृष्टि पहै। (टेढ़ी नजर) (११२)
९—परमानंद रानी के सुत सौं को कछु कहे सो थोरी। (१११)
१०—कमल नयन मेरी मोलियन तारो। (बच पै) (११२)
११—चतुर चोर बिना अपुरुष गढ़ि गढ़ि छोल बनावत। (१४ )
१२—बनि बहनो वृषभानु गोप को भाग बसा घसि धाई। (११६)
१३—देखत रूप बिहूत चित लाग्यो ताही के हाथ बिकानो। (४२७)
१४—परमानंद प्रीति है ऐसी कहा रंक कहा रानी। (४२७)
१५—परमानंद प्रभु बतरस अटकी बान लियो भरु डगर बताई। (११६)
१६—ऐसे बोल बचाव करें यह मेरे मन गटको। (१७४)
१७—परमानंद मानी ना छूटे माया कुआ में पटको। (१७४)
१८—हौं बरपन लौं मोल सँभारते चारयो ममा एक भए। (४४१)
१९—नद नवत हो ठठ न छाँडो मिलो निमान बजाई री। (४४३)
२०—सबको मिल होय मेरी रजनी मिलवो दूध मस पाम्यो। (४१२)
२१—हरि सौं चोर समनि सौं तोयों। (४ १)
२२—आगे पाछे सोच मिट्यो जियको। (४१२)
२३—बाट मोंड मटुका ले फोयों। (४११)
२४—कहनो होय सो कहो सखीरी कहा मेरो मुख मोर्यो। (४११)
२५—परमानंद प्रभु लोक हँसन दै लोक बेद तिनका सो तोर्यो। (४११)
२६—परमानंद मले तहँ मनवो यह सब रह्यो धर्यो। (४१२)
२७—तब ते गृह तू नाचो ट्रको बसे काचो सूत री। (४१७)
२८—परमानंद बसत हैं बर मैं जैसे रहत बत्तीस। (४१८ १११)
२९—ता हरिसों प्यारी राधिका दे दै बैठत पीठि।
३०—बेर बेर इत उत फिरि आवत बिजया खाइ भई बोगी। (४ १)
३१—बयुधि बीति नो बाजव समुझत नहिं कछु करई मीठी। (२४२)
३२—नाहिन नाच महाजन बाग्यो भयो है खरे तें खोटे। (२८७)
३३—परमानंद बज बासी बावरों अँगूठा दिखाय रस दै बधो रोग (२८७)
३४—परमानंद प्रभु हम सब जानत तुम गाल बजावत रीते। (८ १)
३५—परमानंद प्रभु या बाड़े को कीजिए मुँह कारो। (११६)
३६—परमानंद प्रभु या बोड़े की देस निकासो दिवाऊँ। (११५)
३७—सँत मत गयो पाइये पाके मीठे आम। (६१ )
३८—फूकि फूकि हौं पाइ परत मेरे बैठे बरे कुमारी। (६१ )
३९—ऐसी चितवन को तन चितवत लोट पोट करि डारे। (६२१)
४०—सोवत सिंह जगायो पायो संतन को दुख दीनी। (४७७)
४१—बड़े पराये बस लागत हो यह बन पनको नीको छाई। (४८८)
४२—जो तुम ख्याल करो नागुन को तो हौं वाके पैट समाऊँ। (४८८)
४३—परमानन्द स्वामी चिरजीवहु तुम जिन लागहु ताती बाँव। (४८१)
४४—कोऊ प्रीति श्याम सुदर की, बैठे सिंह न रोरिए। (५ ७)

'भादौं' से 'बरैया' विशेषण मदृश लगता है। (१)
प्रकारच का प्रकाश किया गया है।

परमानन्द प्रभु प्रीति मानि है यह रस बात प्रकाश नहीं। (५ २)

इसी प्रकार शिवजी का "शिव" बीच का बिच' इच्छा का 'इच्छ' बीतत का 'बितत" आदि प्रयोग सुन्दर नहीं लगते।

"गयो नन्दराय के घर शिव।
सब गोकुल के लरिकन के सग बैठे है माय बिच। (१२१ पृ १०७)
× × × ×
परमानन्द प्रभु मोहन कीनो प्रति रुचि माग्यो 'इच्छ'
'बाकै मन मे कहा बितत है प्राण जीवनधन राई। (७२१)

स्तुति को रहुति भी कवि ने यत्र तत्र लिखा है,
यह बस परमानन्द गावै।
कछु रहुसि बधाई पावै॥

कहीं-कहीं भावो की स्पष्टता के लिए पाठक को अध्याहार करना पड़ता है—
रहि हौं धाई पुकारिहौं ना कछुकी बच बोल।" (११८)

यहाँ अर्थ स्पष्ट नही होता। अतः अध्याहार करना पड़ता है कि 'मैं जाकर चिल्लाकर कह दूँगी किन्तु कछुकी के वचन नही बोलने दूँगी।" आदि।

व्याकरण गत (च्युत संस्कृत) दोष भी यत्र तत्र मिलते है।
"सोच" स्वयं भाव वाचक सज्ञा है उसमे "ना" लगाना व्यर्थ है।
'विप्र बुलाय सोचमना कीनी सर्व मलार मुटामो।
इसी प्रकार "कृपा" पुल्लिग है स्त्रीलिंग मे कवि ने प्रयोग किया है।
"प्रेरक पवन कृपा कैसो की परमानन्ददास चित चेत। (८४ )

इसी प्रकार परमानन्दसागर में यत्र तत्र दुरान्वय दोष भी मिल जाते है। नीचे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जाते है—

१— 'राई लौन उतारि बहु कर बार फेरि वारत तन मन धन।" (६४)
२—शिव नारद सनकादिक महामुनि मिलवे करत उपाई। (४३ पृ १५)

कवि ने एकाध स्थल पर काल दोष भी उपलब्ध होता है। व्रज गोपिकाएँ कृष्ण के लिए गालियाँ गाती है।

तेरी कूखी पंच भरतारी।
सो तो अर्जुन की महतारी॥

तेरी प्रीति पुमड़ा वारी।
सो तो प्रर्जुन संग सिधारी॥ (१७१ पृ ३१४)

पुमड़ा-प्रर्जुन परिणय प्रसंग बहुत बाद में हुमा। प्रजलीला में उसका कथन काल दोष के अन्तर्गत ही लिया जायगा।

फिर भी परमानंददासजी मे दोष नाम मात्र के लिये ही हैं। ह्रस्व-दीर्घ मात्राओं का प्रयोग तो छन्दों में बसा ही करता है। मै दोष सभी रस सिद्ध कवियो मे मिलते हैं। फिर कवियो के लिये छन्दों की तोड़ मरोड़ प्रथवा ह्रस्व-दीर्घ के प्रयोग के लिये कवि ने अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखी है। काव्य शास्त्र के आचार्यों ने भी ऐसी स्वतन्त्रता अथवा छूट कवियो के लिये घोषित करदी है—

'अपि माष मष कुर्यात् छन्दो भंग न कारयेद्।

यत छन्दो भग से बचने के लिये ही रससिद्ध कवि इस प्रकार छन्दों की तोड़ फोड़ अथवा ह्रस्व दीर्घ की स्वतन्त्रता लिए रहते हैं। इतने पर भी सूर काव्य की भाँति परमानंददासजी के काव्य मे भी यति गति भंग दोष पर्याप्त रूप मे मिल जाते हैं।

उदाहरणार्थ—

१—वारी मेरे लटकन पगबरो छतियाँ।
कमल नैन बलि जाउ बदन की शोभित नन्हीं नन्ही दूध की वतियाँ।
यह मेरी यह तेरी यह बाबा नन्द जू की यह बलभद्र भैया की
यह ताकी जो झुलाए तेरी पलना।

२—मोहिनय छवि न बिलोकन देही।
बार बार चाव परत जसोदा कान्ह कमेउ लेही।
बाधि छुद्र घण्टिका मुदित नद जू की रानी। (११६)

३—री माधो के पायन परिहौं।
स्याम सनेही जब बैठोंगी तन न्योछावर करिहौं।
लोक वेद की कान न करिहौं।
नहिं काहू ते डरिहौं। (४२१)

४—अति रुचि मदन गुपाल बुलावै।
तेरोई नाँव लै लै हँसु बजावै॥
यह सकेत कह्यो बन बहियाँ। (३२६)

अस्तु उन उदाहरणों के अतिरिक्त परमानंददासजी मे यति गति भग दोष कहे नहीं मिल जाते हैं। सम्भवत सगीत में अथवा पदगान के आरोह अवरोह मे यह दोष छप जाता हो परन्तु कविता की दृष्टि से भी सूर एव परमानंददासजी के पदों में यति-गति भग प्रमादवश ही मिल जाते हैं। अतः परमानन्ददासजी की भाषा के विषय में यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उनमें ब्रजभाषा का निखरितम रूप मिल जाता है उनकी ब्रजभाषा शुद्ध पुष्ट, प्रांजल

संस्कृत पदावली युक्त है। इसमें अरबी फ़ारसी आदि विदेशी शब्दों के यथास्थान उचित और सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनमें बहिष्कार की प्रवृत्ति न होकर समन्वय की प्रवृत्ति थी। समन्वय वृत्तिकला की सौन्दर्य-वृद्धि में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त कवि की भाषा में प्रवाह 'माधुर्य' प्रसाद आदि सभी गुण विद्यमान हैं। उसमें भावाभिव्यक्ति की पूरी-पूरी क्षमता के साथ भाषा पर असाधारण अधिकार पाया जाता है।

कवि में शब्द चित्र प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता थी। अष्टछाप में सूर के उपरान्त यदि किसी को भाव भाषा और शैली की दृष्टि से महत्ता दी जा सकती है तो परमानन्द दासजी को ही।

परमानन्ददासजी की ब्रज बोली समस्त अष्टछापी कवियों की अपेक्षा सर्वाधिक और सुप्रयुक्त पाई जाती है। एक प्रकार से वे भावी भाषा के रूप का संकेत दे गये थे। उन्होंने प्रसंगानुकूल भाषा का व्यवहार किया है। उनकी ब्रज भाषा में नागरिकता और सरल ग्रामीण वातावरण का समन्वित चित्र है। सौन्दर्य माधुर्य एवं भक्ति-वर्णन के प्रसंग वाले पदों में भाषा उच्च कोटि की सुसंस्कृत एवं भाव पूर्ण हो गई है।

— ०:—

नवम अध्याय

# कीर्तनकार परमानंददासजी

## संगीत और भक्ति साधना

भक्ति अथवा उपासना का संगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव बुद्धि में जब से किसी उपास्य की भावना की सुपुष्ट उसका भावसागर भी उपास्य के प्रतिवेदन में संगीतात्मक हो उठा था। उपास्य के अव्यक्त अथवा अप्रत्यक्ष होने पर भी वह लय के साथ गाता था। "कस्मै देवाय हविषा विधेम" सम्भवतः इन्हीं मंत्र पदों अथवा पद समूहों की समवेत स्वर लहरी में सामूहिक गान की नींव डाली होगी। इसका तात्पर्य यह है कि प्राग्वतार युग की वैदिक स्तुतियाँ स्वरात्मक और लयात्मक दोनों ही प्रकार की होने से छन्दोमयी हैं। वैदिक छन्दों-त्रिष्टुप् अनुष्टुप् आदि का गठन स्वर के आरोह अवरोह के आधार पर ही हुआ था उसे ही उदात्त अनुदात्त एवं स्वरित् में विभाजित कर उनकी स्थितियाँ निश्चित की गई थीं। वे वैदिक मंत्रों के प्रत्येक अक्षर को मात्रों के आधार पर ही खोजती थीं। इस प्रकार वैदिक युग में सामूहिक गानपद्धति का उदय हो चुका था। इस गान में वैदिककालीन आर्यों के हृदय स्थित-भावों की उनके 'उपास्य' के प्रति अभिव्यक्ति होती थी। भाव तन्मयता की स्थिति में वे अपने भावलोक में अव्यक्त से साक्षात्कार करते थे। और भौतिक शरीर से ही कल्पना के दिव्य लोक में विचरण करते थे। क्रमशः उपासना की यह स्वर-लयात्मक पद्धति इतनी लोक प्रिय हुई कि उसका एक अलग वेद बन गया जो 'सामवेद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन उपनिषदों और पुराणों में सामगान की खूब चर्चा है। 'उद् इति ह्युदगीथ मुपासीत'। आदि उपनिषद् वाक्यों में उद्गाता को लक्ष्य करके ही ये वाक्य कहे गए हैं। स्वर साधना में निपुण वैदिक मंत्रों के उच्चारण कर्ता को उद्गाता कहा जाता था। तात्पर्य यह कि स्वरसाधना मानव की प्राकृतिक अभिरुचि है। और इस साधना का सम्यक उन्नयन उसकी 'तप' भावना का व्यावहारिक रूप है। जिस प्रकार समाधि में देह-बुद्धि का विसर्जन होकर ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय का एकीकरण हो जाता है उसी प्रकार संगीत में भी देह-बुद्धि का विसर्जन होकर 'लय' की निर्विकल्प सिद्ध स्थिति प्राप्त होती है। और समाधि जन्य स्थिति में मानव आनन्द में अवगाहन करने लगता है।

इसलिये संगीत में 'लय' पर महत्व देने का यही कारण है कि वह मन को विलय करने की प्रत्यक्ष-साध्य 'आनन्दात्मक स्थिति' है हमारे यहाँ रसो वै सः कह कर 'रस' को ब्रह्म का अथवा ब्रह्म को रस का पर्यायवाची माना है। अतः रसात्मक संगीत मन को निरोध करके अथवा ब्रह्म में संनिविष्ट करने का सर्वसुगम और सर्वसुलभ अनुपम साधन है—

सगुण भक्ति के उदय होने और भागवत-धर्म के प्रतिष्ठित हो जाने पर नवधा भक्ति का प्रचार हुआ। इसमें कीर्तन भक्ति को द्वितीय स्थान दिया गया। श्रीमद्भागवत' में नवधा भक्ति का क्रम इस प्रकार है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ ७।५।२३

भागवत सम्प्रदाय से सबंध रखने वाली १०८ पांचरात्र संहिताओं में कीर्तन की खूब चर्चा हुई है। कीर्तन अथवा संकीर्तन 'शब्द' कृत् धातु से बना हुआ है। जिसका अर्थ है 'संशब्दन' अथवा सम्यक् शब्द करना। 'शब्द' को नित्य माना है।[२] शब्द ब्रह्म भी है नाद भी है।[३] गीत अथवा संगीत नादात्मक होता है।[४] सम्पूर्ण जगत इस नाद के अधीन माना गया है।[५] इस प्रकार कीर्तन की नित्यता सिद्ध होती है। कीर्तन में अनुकथन का अर्थ निहित है।

सततं कीर्तयन्तो मां तुष्यन्ति च रमन्ति च"

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में कीर्तन को संतोष का देने वाला और मन को रमाने वाला माना गया है। रमणं आनन्द की स्थिति है। मन की इस आनन्दमयी स्थिति की उपलब्धि कीर्तन अथवा 'संगीतात्मक अनुकथन' से अनायास ही हो जाती है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि कीर्तन का नवधा भक्ति में द्वितीय स्थान है। प्रथम भक्ति-श्रवण सरलतम वर्णित है। अतः उसमें पराश्रितता है। अन्य कोई भगवच्चर्चा करे तभी श्रवण भक्ति की साधना हो सकती है। परन्तु कीर्तन व्यक्तिगत-साधना अथवा आत्म-साधना की वस्तु है। अध्यात्म क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयास की दृष्टि से कीर्तन का प्रथम स्थान मानना चाहिए। अतः श्रवण भक्ति के उपरान्त 'कीर्तन' पर सभी भागवत सम्प्रदायों ने महत्व दिया है। कीर्तन का प्रारम्भ यों तो भक्तों के मत से शुकदेव नारद सनत्कुमारादि से माना गया है परन्तु १३ वीं १४ वीं शताब्दी में जब उत्तर भारत में भक्ति सम्प्रदायों का आन्दोलन चला तब से कीर्तन को महत्ता अधिक मिली। यों तो आलवार भक्त-विशेषकर अंडाल कीर्तन ही करती थी। दक्षिण में सगुण-कीर्तन परम्परा शताब्दियों से पाई जाती है। बंगाल में चैतन्य-सम्प्रदाय में तो कीर्तन को ही एकमात्र निःश्रेयस् का साधन माना है। इसी आधार पर लोक जिह्वा पर नाचने वाला निम्नांकित श्लोक भगवद्वाक्य के रूप में भक्तों की परम्परा में आज भी प्रचलित चला आ रहा है।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

अतः सगुण भक्ति के सभी सम्प्रदायों में आज तक कीर्तन भक्ति का अनिवार्य स्थान है। महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर तुकाराम एकनाथ रामदास तथा गुजरात के नरसी मीरां जनाबाई, बंगाल में चैतन्य के अनुयायी एवं महाप्रभु में अष्टछाप तथा परवर्ती देवाधिदेव प्रभु के समक्ष कीर्तन करने के लिए प्रसिद्ध हैं। भक्ति की एकान्त सहचरी तन्मयता की एकमात्र

१ सिद्धान्त कौमुदी-सूत्र संख्या ६८१
२ शब्दो नित्यः ।
३ नाद ब्रह्मैव नाद । सं० रत्नाकर
४ गीतं नादात्मकं वाद्यं नाद-व्यक्त्या प्रशस्यते ।
तद् द्वयानुगतं नृत्यं नादाधीनमतस्त्रयम् । संगीत रत्नाकर अ० ब० २
५ नादाधीनं जगत् ।

साधनभूता यह कीर्तन भक्ति प्रभु का जब मानस में अथवा इन्द्रिय-प्रत्यक्ष से आविर्भाव शीघ्रता से कराके भक्तों को अनुभव कराती है।[१] इस कीर्तन भक्ति के दो स्वरूप पाये जाते हैं।

१—नाम संकीर्तन अथवा ध्वनि गान।

२—पद संकीर्तन अथवा भगवल्लीला गान।

सभी सगुण भागवत-सम्प्रदायों में कीर्तन भक्ति के ये दोनों ही रूप पाये जाते हैं। नाम संकीर्तन का बड़ा भारी माहात्म्य कहा गया है। भगवन्नाम से अनन्त पापों के नाश का अद्भुत चमत्कार है। भक्तों में तो यहाँ तक प्रचलित है कि भगवान् भी नाम—माहात्म्य का गान नहीं कर सकते।[२] अतः नाम-संकीर्तन देव पद से सगुण भक्ति का प्रथम सोपान मान लिया गया है। बंगाल में महाप्रभु चैतन्य कि:—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस महामन्त्र के गान से ही सर्वसाधन सम्पन्नता पाप रहितता तथा परा भक्ति की प्राप्ति मानी है। महाराष्ट्र के सन्तों में 'पुण्डरीक वरदे हरि विट्ठल' अथवा 'रामकृष्ण हरि विट्ठल' के नाम-घोष से अखिल पापों का नाश माना है। मीरा के 'प्रभु गिरिधर गोपाल' एवं नरसी का 'श्यामसिया कृष्ण' सर्व विदित ही है। ब्रज के भक्तगण भी नाम संकीर्तन में पीछे नहीं रहे। उनका राधा कृष्ण का नाम घोष अथवा—

श्री यमुना जी गोवर्धननाथ।

महाप्रभु श्री विट्ठलनाथ॥

का ध्वनिमय संकीर्तन ब्रज की कुंजों यमुना के कछारों में प्रतिध्वनित होता रहा है।

यह ध्यान देने की बात है नाम-घोष करने वाले भक्त अपनी अपनी सम्प्रदाय भावना के अनुसार ही संकीर्तन करते हैं। साथ ही सभी नाम-संकीर्तन करने वाले भक्त लीला-गान भी किया करते हैं और इसी लीलागान अथवा पद-कीर्तनभक्ति ने आगे चलकर अनेक भावमय भक्ति काव्यों को जन्म दिया। भगवन्माहात्म्य परक पद अथवा भगवल्लीला परक पद दोनों ही मुक्तक शैली से महाकाव्य का रूप धारण कर लेते थे। इस प्रकार से कीर्तनकार अनायास ही महाकवि बन जाते थे। तन्मयता की चरम स्थिति में इन भक्त कवियों का भाव-सागर जब उद्वेलित हो उठता था तो वाग्देवी सरस्वती उनका अनुवर्तन करती हुई 'रासमंडल' की भाँति या धुनि विशेष पर नृत्य करने लग जाती थी। और इस प्रकार सुरसरि के अनन्त प्रवाह की भाँति भक्ति-काव्य धारा अथवा भावधारा बह पड़ती थी। महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर के अभंग और मोचिनी तुकाराम के अभंग नरसी एवं मीरा के भक्ति-पद इसके पुष्ट प्रमाण हैं।

भारतीय धर्म उपासना में संगीत और भक्ति का यह गठबन्धन युगों युगों से चला आ रहा है और आगे भी अन-तकाल तक चलता चला जायगा। संगीत और भक्ति का यह अविच्छिन्न सम्बन्ध मध्ययुग अथवा भक्तियुग में अधिक पुष्ट हो गया था। पुष्टि सम्प्रदाय के भक्तों ने भक्ति की पुष्टि के साथ संगीत पद्धति के पुष्टतम स्वरूप का भक्तिक्षेत्र में समावेश कर मध्य युग की भटकती हुई संगीत-पद्धति को व्यवस्थित कर दिया और इस प्रकार संगीत की धारा भारतीय भक्ति-मार्ग की पुण्य धारा के रूप में परिवर्तित होकर निर्वस्तु की साधिका बन गयी।

---

१ स कीर्त्यमान शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान्। नारद भ सूत्र।

राम न सकहिं नाम गुन गाई  मानस—बालकाण्ड

## पुष्टिसम्प्रदाय की संगीत-साधना

भगवल्लीला-कीर्तन पुष्टिसम्प्रदाय में अत्यन्त ही प्रभु तोषक माना गया है।[1] यदि यह कीर्तन शुद्ध संगीत-पद्धति के अनुसार हो तो साम्प्रदायिक भक्तों का विश्वास है कि भगवान् स्वल्प काल में ही निज लीला के दर्शन कराने का अनुग्रह करते हैं। आचार्य चरण श्री गीत-संगीत सागर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भाव प्रकाश के मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में 'संगीतं श्रुति मूर्धनि' कह कर भगवान् को नमस्कार किया गया है।

पुष्टिमार्ग में सेवा के तीन स्वरूप हैं—राग भोग और शृंगार तीनों ही युगपद् चलती हैं। प्रातः काल ही नन्द-मन्दिर में 'मंगल मंगलम्' की मंगल ध्वनि के साथ घंटानाद होता है और तानपूरा तथा मृदंग की ध्वनि होने लगती है। संगीत की इस प्रमुखता का श्रेय मुख्य रूप से गोस्वामी विट्ठलनाथजी को है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने अष्टछापी चार प्रमुख शिष्यों को भगवल्लीलागान का आदेश दिया था। इनमें सूरदास प्रमुख थे। सूर को श्री गोवर्धननाथ जी के मन्दिर में कीर्तन भार देने के उपरान्त उन्होंने अन्य शिष्यों को भी क्रमशः यही आदेश दिया। और सभी शिष्य क्रमशः श्रीनाथजी के मंदिर में आकर अपने अपने ओसरे पर लीलागान करते थे। संवत् १६ २ में जब अष्टछाप की स्थापना हुई और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने जब विधिवत् सेवा का मंडान किया तब आठों प्रहरों के लिए अष्टछापी आठों महानुभावों का कीर्तन करने का ओसरा आ जाता था। यहाँ आठों कवि महानुभावों के कीर्तन ओसरे का समय दिया जा रहा है। उदाहरणार्थ—

| दर्शन का ओसरा | कीर्तनकार | समय |
|---|---|---|
| १—मंगला | परमानन्ददासजी | प्रातः ५ से ७ बजे तक |
| २—शृंगार | नन्ददास जी | प्रातः ७ से ८ बजे तक |
| ३—ग्वाल | गोविन्दस्वामी | प्रातः ८ से ९ बजे तक |
| ४—राजभोग | कुम्भनदास एवं आठों भक्त | प्रातः ९ बजे से १२ बजे तक |
| ५—उत्थापन | सूरदास | मध्याह्नोत्तर ३½ से ४½ तक |
| ६—भोग | चतुर्भुज दास एवं आठों भक्त | सायं ५ बजे (तक) |
| ७—सन्ध्यार्ति | छीतस्वामी | सायं ६½ बजे |
| ८—शयन | कृष्णदास | सायं ७ से ८ बजे तक |

ये आठों महानुभाव शास्त्रीय संगीत-पद्धति से भगवल्लीला गान करते थे। अतः संगीत के प्रति इन महानुभावों का जो उपकार है उसके लिये भारतीय संगीत-कला सदा ऋणी रहेगी।

भारतीय संगीत की दो शैलियां हैं। उत्तरी शैली एवं दक्षिणी शैली। अष्टछाप के कवियों ने उत्तरी शैली को ही अपनाया है। उत्तरी शैली ध्रुपद शैली कही जाती है। ब्रज भक्तों

१ सो नित्य नेम में जब कुम्भनदास जी परमानन्द जी के कीर्तन के ओसरा आवते——(चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृष्ठ ५२६)

में इसे ही अंगीकार किया है। इस शैली में मुगल दरबार के गवैयों ने कुछ इधर उधर का परिवर्तन कर के अपनी कुछ निराली पद्धतियों—'ख्याल'—आदि का—आविष्कार किया था उसको ब्रज के और विशेष कर अष्टछाप के कीर्तनकारों ने नहीं सम्मिलित किया। और इस प्रकार अष्टछापी कीर्तनकारों की अपनी एक शुद्ध संगीत पद्धति पृथक थी। इस पद्धति में भी कतिपय राग रागिनियाँ ऐसी थीं जो साम्प्रदायिक मंदिरों में वर्जित थीं। उदाहरणार्थ भैरवी तथा यमन कल्याण आदि राग साम्प्रदायिक मंदिरों में यथावधि नहीं गाये जाते[1]। अष्टसखाओं का ध्रुपद संगीत इस शैली के चार मतों में से कृष्ण मत के अन्तर्गत गौरहार अथवा गोबरहार वाणी में आता है। इसके प्रवर्तक संगीत सम्राट् स्वामी हरिदास जी माने जाते हैं और यह स्वामी गान पद्धति कहलाती है। इसमें स्थायी[1] अन्तरा[2] संचारी[3] और आभोग इस प्रकार चार भाग होते हैं। लिखा है कि "प्रभु भक्ति राजा की स्तुति मंगल-कार्य धर्म पुराण तत्वज्ञान संगीत की या गीयता हृदय की उदार उन्नत भावना आदि ध्रुपद गायन में ही होते हैं।"[2]

धमार गायन पद्धति भी उच्च कोटि की होती है। उसको उच्च कोटि के कलाकार ही गा सकते हैं। 'संगीत कीर्तन—साहित्य में बसन्त राग के अतिरिक्त होरी की भावना वाले कीर्तन 'धमार' कहलाते हैं। क्योंकि अधिकांश कीर्तन अथवा पद धमारताल में ही गाये जाते हैं। इसके साथ झाँझ, पखावज सारंगी किन्नरी डफ चंग आदि वाद्यों का प्रयोग होता है और इस प्रकार संगीत शास्त्र में कथित तत वितत सुषिर एवं घन चारों ही जाति के वाद्य इन मंदिरों में प्रयुक्त होते हैं।

नृत्य—ब्रज भक्तों ने नृत्य की भी बहुत चर्चा की है। कृष्ण लीला में नृत्य का आध्यात्मिक रहस्य भी संकेतित है किन्तु कला के रूप में भी मन्दिरों में नृत्य कला पूजित है। देवदासियाँ तो प्रायः मन्दिरों में नृत्य करती ही थीं। मीरां गिरधर गोपाल के सामने नाचती ही थी। अतः *"गीत वाद्य तथा नृत्यत्रय संगीतमुच्यते"* के अनुसार इन कृष्ण भक्त कवियों ने संगीत का कोई अंग अछूता नहीं छोड़ा था। अतः सम्प्रदाय में गायन वादन एवं नर्तन तीनों का एकत्र रूप कीर्तन संगीत के नाम से पुकारा जाता था। यह सब आज भी उसी प्रकार चल रहा है। सम्प्रदाय में सूरदासादि अष्टसखाओं ने जो पद्धति प्रचलित की थी वह (यथावधि) वर्तमान है। वह अपने सम्पूर्ण विधि-निषेधों सहित अक्षुण्ण अबाध परम्परा के रूप में चली आरही है।

## सम्प्रदाय के विशिष्ट राग—

सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि रासोत्सववाली गोपिकाओं के द्वारा [illegible] रागों की उत्पत्ति हुई थी। शारदीय राका रजनी की मध्य रात्रि में जब भगवान ने रास किया था तब सकल गोपिकाएँ वंशी की ध्वनि से आकृष्ट होकर वन में चली आईं और महारास का प्रारम्भ हुआ। उस समय उन [illegible] गोपिकाओं ने जुदे जुदे राग से प्रभु को प्रसन्न किया था। परन्तु वे सब भिन्न होने के कारण लोप हो गए। अब रागों की संख्या केवल [illegible] रह गई है। वे सब वर्षों से

1 देखो—नवीन कीर्तन पद्धति वाले नित्य कीर्तन पृष्ठ १ तथा ४४।
2 वही— पृष्ठ ११ तथा १२।

"कौ रस रसिक कीर मुनि गायौ ।

अवश्य ही गाया जाता है ।

सम्प्रदाय में जयदेव की अष्टपदियाँ—'चंदन चर्चित नील कलेवर' तथा 'सारा-मधुना नारायण अनुगत अनुसर मा राधिके' तथा गोप भारती में—देहि मे पद पल्लव मुदार आदि निश्चित रूप से गाई जाती हैं । अष्ट सखाओं के अतिरिक्त साम्प्रदायिक मन्दिरों में नागरीदास श्रीभट व्यास जी हरिदास हितहरिवंश रामदेव आदि के पद भी कीर्तन—में स्वीकृत हैं ।

ऊपर कहा जा चुका है कि मरम यमन कल्याण आदि राग अस्पृश्य होने के नाते नहीं गाये जाते । इसी प्रकार मीराँबाई के पद भी वल्लभ-सम्प्रदाय में स्वीकृत नहीं हैं । इसका कारण आधुनिक विद्वानों ने यह बतलाया है कि मीराँ अनुरोध करने पर भी वल्लभ की शिष्या नहीं हुई पर यह मत अटकल मात्र है । आचार्य वल्लभ किंवा उनके वंशजों से ऐसा प्रयत्न कभी नहीं किया गया ।[1] फिर मीराँ के पदों को क्यों नहीं गाया जाता ? इसका कारण मीराँ की निर्गुण प्रवृत्ति है । मीराँ का 'जोगिया' सम्प्रदाय को मान्य नहीं । फिर मीराँ में सम्प्रदाय-मान्य कृष्ण की बालभाव की उपासना भी नहीं ।

## परमानन्ददास की कीर्तन-सेवा—

वार्ता में आया है कि सो एक समय परमानन्ददास कन्नौज से मकरस्नान को प्रयाग में आये सो वहाँ रहे । और कीर्तन को समाज नित्य करें सो बहुत लोग इनके कीर्तन सुनिवे को आवते ।[2] इससे विदित होता है कि परमानन्ददास जी सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व भी उच्चकोटि के गायक रहे होंगे क्योंकि उनके गान की प्रसिद्धि चारों ओर फैल चुकी थी । दूसरे अनेक गायक उनके साथ रहते थे ।[3] वे अपने घर कीर्तन का समाज एकत्र किया करते थे । स्वयं भी वे गान विद्या में बड़े (अत्यन्त) चतुर थे ।[4] महाप्रभु के अडैलिया (अभी चतुर) की राग (संगीत) पर बड़ी आसक्ति थी । इसी के द्वारा वे महाप्रभु की शरण में आए थे । महाप्रभु वल्लभाचार्य को उन्होंने अपने पद सुनाये और उनसे दीक्षा प्राप्त की । आगे चलकर आचार्य की आज्ञानुसार भागवत की बाललीला को उन्होंने अपना काव्य विषय बनाया । इन सब प्रसंगों से परमानन्ददासजी का सूरदास की भाँति उच्चकोटि के साहित्यकार और संगीतज्ञ होने का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है । उन्होंने सुबोधिनी के आधार पर पदों की रचना की थी । इस प्रकार पद-रचना और कीर्तन—यही उनके जीवन के दो कार्य थे । आगे चलकर आचार्यजी के साथ जब वे ब्रज में पधारे तो श्रीनाथजी के मन्दिर में उन्हें कीर्तन सेवा सौंपी गई । और यह सेवा उन्होंने आजीवन निभाई । लगभग ६२ वर्ष की लम्बी आयु तक साहित्य और संगीत की एकान्त साधना जिस व्यक्ति ने की हो उसके उच्च कोटि के कवि और संगीतज्ञ होने में क्या सन्देह रह जाता है । अतः इनका 'परमानन्दसागर' लीला-सागर होने के साथ-साथ संगीत सागर भी कहा जा सकता है ।

---

१ देखो—मेरा लेख मीराँबाई और वल्लभाचार्य—भक्तिभारती अंक—२ ।

२ देखो—चौरासी वैष्णवन की वार्ता-परीख-संस्करण पृ०—८११

३ सो परमानन्द के साथ समाज कीर्तन करें अनेक गुनी जन संग रहते । वार्ता

४ [illegible] पृ०—८९

कवि ने अपने 'सागर' में अपने समय के प्रचलित सभी राग रागनियों का समावेश किया है। पदों का विषय भगवान की बाल पौगण्ड और किशोर लीला है। अतः उनका कीर्तन का समय मंगला राजभोग और शयन भोग है। नित्य-कीर्तन और वर्षोत्सव में उनका विशिष्ट प्रोसरा अथवा समय है। नित्य के कीर्तन में 'मंगल मंगल' का पद और भागवत कथा के अन्त में नाम-संकीर्तन वाला पद भक्तों की सम्पत्ति आज भी बना हुआ है। सम्प्रदाय की प्रणाली से जब वे प्रभु समक्ष कीर्तन करने बैठते थे तो उनके साथ आठ-आठ अष्ट-गायक तथा भीतरिये रहते थे।[1] जो टेक उठाने का कार्य करते थे। परमानन्ददासजी के आठ अंग गायकों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) पद्मनाभदास (२) गोपालदास (३) भास्करसु (४) बंसाबरदास (५) सगुनदास (६) हरिजीवनदास (७) माणिकचन्द और (८) रसिकबिहारी।

उक्त आठों अष्ट गायकों के साथ श्रीनाथजी के समक्ष नित्य कीर्तन करना परमानन्ददासजी की जीवन चर्या थी। नित्य कीर्तन के साथ वर्षोत्सवों पर भी विशिष्ट कीर्तन प्रस्तुत करना वे नहीं भूले हैं। उनके पदों में उनका उच्चकोटि के संगीतज्ञ होने का पता चल जाता है। परमानन्ददास जी ने अपने पदों में कतिपय राग रागिनियों के नामों का उल्लेख कर उनके लक्षण और समय का संकेत दिया है। उस आधार पर उन्हें लक्षण-पद भी कहा जा सकता है वे हैं—

गौरी आसावरी सारंग मलार केदारा आदि।

१—गौरी—

मोहन नैकु सुनइये गौरी।
बनते आवत कुंवर कन्हैया पहुपमाल ल दौरी।
मदन गोपाल झूलत हिंडोले।
वामभाग राधिका बिराजें पहिरें नील निचोल।
गौरी राग अलापत गावत कहत मधुरे बोल॥

२—आसावरी—

यह रागिनी भैरव के अन्तर्गत है कवि ने इसकी चर्चा की है। डेढ़ प्रहर दिन चढ़े गाई जाती है। कवि ने ठीक इसी समय आसावरी राग गाया है।

आजु नीको बन्यो राग आसावरी।
मदन गोपाल बेन नीकी बजावत मोहन नाद सुनत भई बावरी।

३—मलार—

बरिस रे सुहाये मेहा मैं हरि को सग पायो।
भीजन दे पीताम्बर सारी बड़ी बड़ी बूंदन आयो॥
ठाड़े हँसत राधिका मोहन राग मल्हार जमायो।
परमानन्द प्रभु तरुवर के तर लाल करत मन भायो॥

मल्हार वर्षा कालीन राग है। इसी में कवि ने लम्बी तान की चर्चा की है।

'परमानन्द स्वामी मन मोहन उपजत तान बिताने।

---

१ बारकी पथ में अंगगायक खासकरी (ताल देने वाले) कहलाते हैं। सम्भवतः कि अंग गायक रखने की परम्परा पुष्टि सम्प्रदाय में बारकरियों से आई हो।

और शान्त का सारंग राग से अतिशय सम्बन्धित है। सारंग कफका प्रकोप शान्त करता है। इसके अतिरिक्त कवि का राजभोग में कीर्तन का औसरा पड़ता था। इसलिए भी कवि को सारंग प्रिय था। दूसरे सारंग शब्द के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सम्बन्धी अनेक वस्तुओं का समावेश है। अतः सम्बन्ध भावना के आधार पर कवि को यह राग अत्यन्त प्रिय था। सारंग राग के अनेक भेद हैं—लोध सारंग शुद्ध सारंग वृन्दावनी सारंग मियाँ का सारंग बड़ हंस सारंग मध्यमादि सारंग आदि। अतः—

१—स्वर की दृष्टि से
२—राग की दृष्टि से
३—रस की दृष्टि से
४—एवं सारंग शब्द के अर्थ की दृष्टि से तथा

१—भगवान के शृंगार वामन मयूरपिच्छ कमल पुष्प आदि वस्तुओं की सम्बन्ध भावनाओं की दृष्टि से कवि को सारंग राग प्रिय था। इस कारण कवि ने अनेक पदों की रचना सारंग राग में की है।

कीर्तन गान की दृष्टि से कवि सम्प्रदाय में अपना एक विशिष्ट स्थान तो रखता ही है। नृत्यकला का भी कवि को अच्छा ज्ञान था। उसने उरप तिरप आदि शब्दों का अपने पदों में प्रयोग किया है। नृत्य कला के विद्वान् बतलाते हैं कि नृत्य और संगीत जब साथ चलते हैं तब उरप तिरप प्रयुक्त होते हैं। उरप एक के बाद एक स्वर के आरोह को उरप कहते हैं एक के बाद एकस्वर के अवरोह को तिरप कहते हैं "ततथेई" नृत्य है। तालमान रहित ताल लय युक्त पद संचालन को 'नृत्त' कहते हैं। ब्रज में ये ही बोल प्रचलित हैं इन सबसे कवि का नृत्य कला विषयक ज्ञान का पता चलता है उदाहरण के लिये—

नर्तत मण्डल मध्य नन्दलाल।
× × × × × ×
ताल मृदंग 'ततथेई' बाजत ततथेइ बोलत बाल।
उरप तिरप तान लेत नट नागर गावत गन्धर्व गुनी रसाल।

यहाँ अन्तिम चरण में चार प्रकार के व्यक्तियों की चर्चा कवि ने की है।

नट नागर गन्धर्व गुनी रसाल। यहाँ नट से तात्पर्य नृत्यकार से तथा नागर संगीत शास्त्र के पंडित से गन्धर्व का कंठ संगीत के गाने वाले से तथा रसगुनी तीव्र कलाभो-गायन शास्त्र एवं नृत्य के पारखी अथवा समझने वाले से तथा नागर पारखी अथवा समझने वाले से और रसालक से रसिक का तात्पर्य लेना चाहिये। इससे विदित होता है कवि संगीत शास्त्र की बहुत सी बारीकियों में उतर गया था और उसका उसे पूरा पूरा ज्ञान था।

२—ब्रज वनिता मध्य रसिक राधिका बनी शरद की राति हो।
नृत्यत ततथेई गिरिधर नागर और स्याम घनकी कांति हो।

---

१ देखो—सारंग शब्द के अर्थ सुन्दर, विभिन्न वर्ण युक्त, सिंह, हाथी, भ्रमर, कोयल, खंजन, मयूर, राजहंस चातक, मेघ बादल पुष्प कमल कपूर धनुष कपोत शंख, भोजन, सर्प, चन्द्रमा, चन्दन सागर आदि [बृहद् हिन्दी कोश १—१४२१]

३—रास रच्यो बन कुंवर किसोरी ।
बाजत बेनु रबाब किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि घोरी ।
तततथेई तततथेई सबद उघटत पिय भले बिहारी बिहारिन जोरी ।

४—नाच्यो तान मरसक राधे सरद चांदनी राति ।
तततथेई तततथेई थेई करत गोपीनाथ गोरी भांति ।

५—रास मंडल मध्य मंडित मोहन [illegible] सोहत भामिनी रूप निधान ।
हस्त हेम, चरन चारु निर्तत भांवी भांतिन मुख हास भौंह बिलास ॥
भौंह भेद नैननि ही मान ।

यहाँ हस्तरूप से नृत्य भंगिमाओं अथवा हाथों की मुद्राओं की ओर संकेत है । जिसकी भरत नाट्यम में पर्याप्त चर्चा है । कवि को इन मुद्राओं एवं भौंह संचालन का ज्ञान था । नृत्य शास्त्र में हस्त संचालन द्वारा अनेक रसों का उदय और उनका परिपाक माना गया है ।

## वाद्यों की चर्चा—

संगीत नृत्य की चर्चा के साथ साथ कवि ने मुख द्वारा बजाये जाने वाले जैसे बंसी भेरी नफीरी आदि सुषिर वाद्य तंतु वाद्य तथा वितत वाद्य (चर्म से मंडित) मृदंग पखावज डफ खंजरी ढोलक डमरू दमामा आदि एवं घन धातु के—जैसे झांझ झालर ताल मंजीरा आदि वाद्यों की भी पर्याप्त चर्चा की है ।

उदाहरणार्थ—

१—नंदकुमार खेलत राधा संग ।
जमुना पुलिन सरस रस होरी ॥
× × × × × ×
बाजत चंग मृदंग अघोटी
परह्‌ झांझि झालरी सुर जोरी ।
ताल रबाब मुरलिका बीना मधुर सबद उघटत धुनि जोरी ।

२—सब ग्वालिन मिलि मंगल गायो ।
ताल किन्नरी ढोल दमामो भेरि मृदंग बजायो ।
लीला जनम करम हरि जू की परमानन्ददास जस गायो ।

३—बने बन आवत मदन गोपाल ।
बेनु मुरज उपंग मुख चंग बजत बिबिध सुरताल ।
बाजे अनेक बेनु रव सौं मिलि रंजित किंकिनी जाल ।

४—रितु बसंत के आगम मधुर भयो मदन को जोर ।
× × × × × ×
ताल पखावज चरच ही बीना बेनु रबाब ।
महुवरी चंग अरु बांसुरी बजावत गिरधरलाल ॥

कीर्तन-संगीत के अतिरिक्त कवि के नाम ध्वनि अथवा ध्वनि-कीर्तन के एक[1] दो पदों से अनुमान होता है कि कवि नाम संकीर्तन पर भी महत्व देता था।

उपर्युक्त कथन से तात्पर्य इतना ही है कि—

कवि उच्च कोटि का संगीतज्ञ था। उसने अपने समय की सभी प्रचलित संगीत पद्धतियों को तथा कीर्तन संगीत अथवा पद कीर्तन के साथ ध्वनि कीर्तन को भी तुल्य महत्व दिया था। कवि को गायन वादन और नृत्य तीनों का अच्छा बोध था। उसने राग रागनियों में उत्तरी शैली को ही अपनाया। कीर्तन संगीत के क्षेत्र में सम्प्रदाय में उसका अपना विशिष्ट स्थान है जो आज तक भी मान्य चला आता है। विशिष्ट अवसरों—वर्षोत्सवों और नित्य सेवा में उसके अनेक पद निश्चित हैं और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए हैं।

— —

१ [illegible] पद संख्या—११

## दशम अध्याय

# परमानन्ददासजी और ब्रज संस्कृति

लोक जीवन की सर्वमान्य दीर्घ अभ्यस्त परिमार्जित सुसंस्कृत चर्या अथवा व्यवहार परम्पराओं को 'संस्कृति' नाम दिया जाता है। इसके कई रूप हैं—राष्ट्रीय-संस्कृति सामाजिक संस्कृति प्रादेशिक संस्कृति आदि। पुष्टि-सम्प्रदाय का केन्द्र-स्थल भगवान् श्रीकृष्ण की लीला भूमि ब्रज प्रदेश रहा है। अतः सभी अष्टछापी महात्माओं ने अपने अमरकाव्यों में ब्रज-संस्कृति की ही चर्चा की है। ब्रजभक्तो की व्यक्तिगत-साधना मे ब्रज-संस्कृति बिंबप्रतिबिम्ब भाव से घोषित है। क्योंकि संस्कृति सामाजिक वस्तु है। व्यक्ति समाज की इकाई है। अतः समाज की सर्वमान्य परम्पराओं का अनुगामी होने के लिये वह विवश है। ब्रजभक्तों का अमर काव्य स्वान्तःसुखाय होते हुए भी वह लोक-बाह्य नहीं न उसे नितान्त ऐकान्तिक ही कहा जा सकता है। किसी विशिष्ट प्रदेश अथवा विशिष्ट समाज की संस्कृति की जब हम चर्चा करते हैं तो उसके आचार विचार संस्कार खान-पान रहन सहन रीति रिवाज पर्व उत्सव कला दर्शन विज्ञान उपासना आदि सभी को लेते हैं। इन्हीं के द्वारा हम व्यक्ति अथवा समाज की संस्कृति के स्वरूप को सामने ले आते हैं।

आर्यावर्त के अन्तर्गत ब्रह्मावर्त और उसमें भी गंगा यमुना के मध्य के भू भाग (अन्तर्वेद) की संस्कृति को ब्रजसंस्कृति का प्रदेश माना जाता है। यह देश आर्यों का सनातन देश है। इसी भूभाग मे पूर्ण पुरुषोत्तम जिन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम और लीला-पुरुषोत्तम कहा जाता है—राम-कृष्ण-का अवतार हुआ। इसी प्रदेश के धर्म ज्ञान-विज्ञान दर्शन और कला ने चरम उन्नति के कारण विश्वगुरुत्व का गौरव प्राप्त किया है। यहीं की संस्कृति ने अरण्यों में जन्म ले कर भी बड़े बड़े विशाल राष्ट्रों की चरम नागरिकता को चुनौती दी है।

सूर्यचन्द्र नक्षत्रादि से दीप्त मुक्त गगन के नीचे और निसर्ग रमणीय लता-वृक्षादि से सम्पन्न शस्य श्यामला उर्वरा वसुन्धरा के वक्ष पर प्राकृतिक जीवन-यापन करते हुए जीव दया के लोक आदर्श के साथ गोप-सभ्यता में पले वासुदेव श्रीकृष्ण की संस्कृति का मूल मंत्र था—

आत्मन प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"

अतः सुरसरि की जीवन-धारा की भाँति यही संस्कृति समूचे विश्व की शिरमौर संस्कृति सिद्ध हुई। रागानुगा भक्ति के परमपोषक आचार्य वल्लभ ने यहीं की अपठित लोक वेद मर्यादातीत ब्रज सीमन्तिनियों को अपना गुरु माना है। इन्हीं के निश्छल निष्पन्न एकान्त भक्तिभाव को प्रभु प्राप्ति का एक मात्र-साधन मानकर इसी संस्कृति को महत्त्व दिया था। जाति के तैलंग ब्राह्मण हो कर भी उन्होंने ब्रज संस्कृति के प्रसार एवं प्रचार में अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया था। इसी प्रदेश की भक्ति का आदर्श उनकी भक्ति का आदर्श

भेष वितरण—

नंद बधाई दीजै ग्वालन ।

छठीपूजन—

मंगल चौस छठी को आयो ।

पलना—

हीलरी हुलरावै माता ।

अन्नप्राशन—

अन्नप्राशनदिन नंदराम को करत जसोदामाय ।

कर्णवेध—

गोपाल के वेध कर्ण को कीजै ।

नामकरण—

महरि गगन-पति गर्ग कह्यौ ॥

यह बालक अवतार पुरुष है 'कृष्ण' नाम आनन्द कह्यौ ॥

करवट—

करवट लई प्रथम नन्द नन्दन ।

भूमि पर बठाना—

हौं वारी

कर तें उतारि भूमि प रासे इहि बालक कौं कीनौं ।

यज्ञोपवीत—

माई तेरो कान्ह कौन अब हम लाग्यौ ।

परमानन्ददास को ठाकुर कांधे परयौ न तागो ।

वाग्दान अथवा टीका—

माव ललन की होत सगाई ।

× × ×

वृषभान गोप टीका दै पठयौ सुन्दर श्याम कन्हाई ।

विवाह—

ब्याह की बात चलावन आए ।

ब्रजनी री गावौ मंगलचार ।

भामर लेत प्रिया अरु प्रियतम तन मन दीजै वार ।

सुहागरात—

सोई सीष सुहावनी दिन दूल्है तेरे ।

× × ×

दुलहिन रैन सुहाग की दूलह मन भावो ।

संस्कारों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने बहुत सा ब्रज रीतियों की भी चर्चा की है । जैसे-राई लोन उतारना—

पुरवौ साध नन्द मेरे मन की ।
राई नोन उतारि दुहूँ कर धरै न दिष्टि दुरजन की ।

इसके अतिरिक्त काजल के डिठौना लगाना,—मूर्छा में कहीं कर्णवेध में दुलन कहीं चमत्कार आदि देखना बच्चों के गले में व्याघ्र-नख (बघ-नखा) पहिनाना बच्चों पर कर उतार कर न्यौछावर करना बाल्यवादी बनना घूँघट की प्रथा आदि । उत्सवों पर स्त्रियों के अंध विश्वास—जैसे-देहरी लाँघन के समय शकुन अपशकुन का विचार मांगलिक अवसरों पर गालियाँ गाना आदि ।

## ब्रज की वेशभूषा एवं आभरण—

परमानन्ददासजी ने ब्रज की वेश भूषा में गोपवेश की ही अधिक चर्चा की है । कवि पर मुकुट तथा दुपट्टे की पाग के साथ तनिया और बनमाला की चर्चा उनके अनेक पदों में मिलती है । कवि मर्यादावादी था । इसी कारण सम्भवतः स्त्रियों की शृङ्गार सज्जा के वर्णन में उसका मन अधिक नहीं रमा किन्तु कृष्ण के शृङ्गार-परिधान की छोटी से छोटी वस्तु को वह अपने वर्णन का विषय बनाना नहीं भूला । स्त्रियों की शृङ्गार सज्जा का उसने सामूहिक रूप से कथन किया है—

'भूषण बसन साज सबन के सकल सिंगार बनाई ।'

कृष्ण का बाल शृङ्गार—

तिलक कंठ, कठुला मनि पीताम्बर तापै पीतवसन को चोलना ।

किशोर शृङ्गार—

अरुण पाग पर जरकसी छापर सिरन अपार ।

इस प्रकार कवि ने चोली सारी नीलाम्बर पीताम्बर, सूथन पाजामा कुलहे बागे झगारे, मयूर-पिच्छ इजारबंद जरकसी चीरा पाग बाजूबन्द उपरना दुपट्टा सभी की चर्चा की है ।

आभूषणों में—माला और मी कंठ में नासिका पर बेसर, ठोड़ी पर चिबुक मस्तक पर टीका नैनों में अञ्जन कानों में मकराकृति-कुण्डल कंठमाला मुद्रिका कौस्तुभ-मणि आदि की चर्चा उनके 'सागर' में भरी पड़ी है ।

## धार्मिक परम्पराएँ—

परमानन्ददासजी कार्तिक माहात्म्य यमुना स्नान[१] कात्यायनी व्रत गौरी पूजन[२] अष्टमी पूजा पवित्रा धारण[३] शालग्राम तुलसी पूजन नाम-महिमा आदि की यथास्थान चर्चा कर गया है ।

कर्मकाण्ड की ओर संकेत—

(१) विप्र बोलि करमी करी दीनी बहु गैयाँ ।

---

१ परमानन्द सागर पद सं ४९
२ वही ७५
३ वही
वही
४ वही २१२

ब्राह्मण वरण भोजन गोदी मायादि मांगलिक कार्यों पर कवि ने ब्रज की वैदिक संस्कृति की ओर संकेत किया है।

(२) विप्र बुलाए मंत्र पूजन की गिरिराज।
पूजन को आरंभ कियो सोडश उपचारें।
धोती धूप न्हवाय आहुतियाँ अगा बस डारें॥

## पर्व और उत्सव—

परमानन्ददासजी ने सम्प्रदाय मे मान्य (१) राम (२) कृष्ण (३) नृसिंह (४) वामन इन चार जयन्तियो के अतिरिक्त वर्ष भर के उत्सव सम्बन्धी पद बनाकर ब्रज संस्कृति मे मान्य सभी पर्वों की चर्चा की है दीपावली गोवर्धनपूजा गोपाष्टमी हेमन्त स्नान मकर सक्रान्ति बसन्त पंचमी होली रामनवमी अक्षय तृतीया आदि पर्वों की विशिष्ट चर्चाएं की हैं। इन चर्चाओं में ब्रज का हास विलास उल्लास आनन्द धर्म-भावना तथा बातों सभी की ओर कवि का पूरा-पूरा संकेत है।

इसके अतिरिक्त कवि ने पवित्रा और जवारे को साम्प्रदायिक दृष्टि से महत्व दिया है। पवित्रा का तो सम्प्रदाय में अत्यधिक महत्व है ही। किन्तु भाद्रपद शुक्ला तृतीया जिसे 'हरतालिका तीज' कहते हैं उस दिन तथा दशहरे के दिन जवारे (यवांकुर) जौ के कुल्ले भगवान् के सिर पर धराये जाते हैं। तदनन्तर भक्त लोग भी धारण करते हैं। इन दोनों उत्सवों की कवि ने काफी चर्चा की है।

उत्सवो मे नाना प्रकार के खेल और क्रीड़ाएं भी चलती हैं। अतः चौपड़ पांसा शत रंज चट्टा-बट्टा चकरी भगी लट्टू फिरकनी पतग गेंद आंख मिचौनी जल क्रीड़ा मल्लयुद्ध आदि सभी खेलों का कवि ने यथास्थान वर्णन किया है। ब्रज संस्कृति मे ये खेल प्राचीन काल से चले आ रहे हैं।[३]

### खान-पान-भोजनादि—

ब्रज भक्त भोजन के विषय में सर्वाधिक सुसंस्कृत है। यथा 'देह तथा देवे' के अनुसार ब्रजभक्त यावन्मात्र सात्विक पदार्थ भगवान को भोग में रखते हैं। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने श्रीनाथजी के भोग में विशाल वृद्धि कर दी थी। सम्प्रदाय मे असमर्पित वस्तु का सर्वथा त्याग है। अतः ब्रज भक्तो के प्रसाद मे यावन्मात्र भोज्य-पदार्थों का समावेश है। अन्नकूट अथवा कुल वारा अरोगाने की प्रथा उन्होंने भागवत के आधार पर ही चलाई थी। इसमें ५६ प्रकार के

---

१ महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का नियम था कि वह नित्य नई पोशाक भगवान को धारण कराते थे। आगे चलकर जब यह सम्भव नहीं हो सका तो ३६ सूतों की माला ही प्रभु को धारण की जाने लगी। श्रावण मास वाली श्रावण शुक्ला एकादशी को महाप्रभु जी ने श्रीनाथजी से पवित्रा अर्पण करने के उपरान्त श्री गोवर्धननाथजी को पवित्रा अर्पण किये थे। सम्प्रदाय में यह परिपाटी आज भी प्रचलित है। देखो पद सं०—१२७ ११ २११।

२ ज्वारे जव के कोमल कुल्ले जो किसी पात्र में रुई या सकोरे में उगाये जाते हैं। इनकी हरतालिका तृतीया और दशहरे के दिन पूजा होती है। उस दिन भगवान को ये अर्पण किये जाते हैं।

पद संख्या २ ९।

३ जल भाव योजक दर्शन किशोरी। प० १

जनम गाँठ दिन मंगलाचार की करत जसोदा माय ।
ब्राह्मण-देव पूजि कुलदेवी बहुत दयानो पाय ।
कुटुम्ब जिमाय पाटंबर दीने भवन आपुने आय ।
मागध भाट सूत मनमाने सबहिन हरष बढ़ाय ॥ (५४)

मूर्ति पूजा एवं परिक्रमा विधि—

गोवर्धन पै दीपदान कियौ मन भायौ ।
चहुँ दिसि जगमग जगमग ज्योति कुहूनिसि भयौ सुहायौ ।
परिक्रमा सब कोऊ चले दाहिनो दियौ गिरिराज ।
गीत नाद उद्घोष सौं मगन भए ब्रजराज ॥
यह निस्चय सब विध कियौ गिरि को कियौ सम्मान ॥

## परमानन्दसागर में उल्लिखित ब्रज के स्थान—

परमानन्ददासजी ने अपने काव्य में प्रसंगवश अनेक ब्रज के स्थानों की चर्चा की है। इससे न केवल भगवान् के विविध लीला—स्थलों का ही संकेत मिलता है अपितु कवि का ब्रज के प्रति प्रेम और उन स्थानों की ऐतिहासिकता भी सिद्ध होती है। वे स्थान हैं—गोकुल मथुरा मधुवन मानसीगंगा बंसीवट, बरसानो कदम्ब खंडी गोवर्धन गोकुल नन्दगाम चरणौली वृन्दावन कुमुदवन श्यामढाक चोमनशिला दानघाटी सिंदूरशिला पलासवन बहुलवन बदम्बवन मधुवन तमालवन त्रिभुवन मानसरोवर आदि।

१—आज गोकुल मे बजत बधाई ।
२—जापर ढोटा करत-ठकुराई ।
× × × × × ×
सैसव बाल्य-गाठ मधुबन को सोरह गाट करत कुराई ।
३—मेरी मरी मदुकिया लै गयौ री ।
× × × × × ×
वृन्दावन की सघन कुंज में ऊँची नीची गोरी गहि गयो री ।
४—मानसी गंगा गोर सों स्नान करावे नंदराय ।
५—मैया री मैं गाय चरावन जैहौं ।
× × × ×
बंसीवट की सीतल छैयाँ खेलत मैं सुख पैहौं ।
६—ब्याह की बात चलावत मैया ।
बरसाने वृषभान गोप के लाल की कई सगैया ।
७—कुंज भवन में मंगलचार ।
गोरी रची कन्म गरी मे तपनगता मदन विहार ।
८—आयौ मथुरा पथ्य हठीलो । पद—१
९—गोवर्धन गोकुल वृन्दावन नव-निकुंज प्रति नित्य विलास ।

[illegible]

१०—चलि री सखी नंदगाम बसिए। (६४)

११—परी छाक हारी पाँच मानति ब्रजराज लाल की। (६४२)

× × × ×

जाजत बेनु धुनि मुनि बसन यति परासोली के परे।

× × × ×

हँसि हँसि कहि कहि फेंटा कटिन की खोटत छाक बन टाकन माँह।

१२—भाज बनि मीठो भरत गोपाल।

× × × ×

बहुत दिवस हम रहे महूवर बन कृष्ण तिहारे साथ।

१३—श्यामढाक तर मंडल जोर जोर बैठे सब छाक।

× × × × ×

१४—सिमा पखारो भोजन कीजै।

१५—दानघाटी छाक भाई गोकुल ते काँवर भरि भरि।

१६—हँसत परस्पर करत कलोल।

× × × ×

तोरे पलासपत्र बहुतेरे पनवारो कीयों विस्तार। (६२१)

१७—टेरत हरि फैरत पट पियरो।

आयो रे आयो मैया बुलाओ गहवर छाँह[१] वृन्दावन नियरो।।

१८—कदम[२] तर जसोदौंति पयो भोजन।

१९—भोजन कीनो री गिरवरधर।

बहुरा बरनी मण्डल की सोभा मधुबन तास वंदंबतर[४]

२ —धवना तेरे बन है न और।

यमुना तीर तमाल[५] लता बन फिरत गिरधुस नंद किशोर।

२१—प्रतिन भावें स्याम प्रदय स्याम बहुत लागी गोपी कहाँ गए स्याम।

२२—मधुबन माहि बसत बन ढूँढ्यो त्रिभुवन कंचन धाम।

इस प्रकार परमानन्ददासजी ने उक्त २४ स्थानों की तो स्पष्ट ही चर्चा की है। कतिपय स्थानों का वहाँ की लीला द्वारा संकेत मिलता है, परन्तु काव्य में उनका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। कृष्ण लीला को कवि ने गाई है वह सारस्वत कल्प की है। अतः जिस वृन्दावन अथवा मधुबन की चर्चा उसके काव्य में है वह गिरिराज के निकट ही होना चाहिए। क्योंकि यमुना और गिरिराज में ही दो स्थान ऐसे हैं जो युग युग से अटल हैं और प्राचीनता के द्योतक हैं। फिर महाप्रभु जी की निज वार्ता में आया है।

१ यहाँ वृन्दावन की ओर संकेत करता है

२ यह बहुर का वृन्दावन के निकट है

३ कदम वन की ओर संकेत है।

४ वृन्दावन मधुबन कदमवन

५ तमालवन

—ताते श्री गोवर्धननाथजी की आज्ञा लेके श्री आचार्य श्री महाप्रभु परासोली पधारे। तिन को नाम आदि वृन्दावन है, सो वहाँ आय के श्री आचार्य महाप्रभु देखें सो गोपालदास गाये हैं।"—निजवार्ता

फिर गोवर्धन की स्थिति वृन्दावन के निकट मानी गई है। गर्गसंहिता के वृन्दावन खंड में इसका प्रमाण है।[१] कवि के समय में ब्रज की जो स्थिति थी उसमें और आज के ब्रज में कोई विशेष अन्तर नहीं। हाँ उन्होंने गिरिराज के पास मधुबन तथा वृन्दावन की चर्चा करती है। आज का वृन्दावन पुष्टि-सम्प्रदाय का केन्द्र-स्थल नहीं है। अष्टछापी—कवियों ने जिस वृन्दावन और गोकुल की चर्चा की है। वे उस समय गिरिराज के निकट स्थित थे। उसी प्रकार मध्याह्न छाक क्रीड़ा गोचारण शृंगार आदि के स्थान—गहुरवन मध्बन प्रेमवन बहुरवन शृंगार बट, आदि स्थानों को लीलाओं की चर्चा तो है किन्तु इन स्थानों की स्पष्ट चर्चा नहीं। यों तो सत्यनारायण जी कविरत्न के शब्दों में सम्पूर्ण ब्रज ही रस कमण्डलु है।[२]

इस ब्रज भूमि के प्रति कवि की इतनी श्रद्धा थी कि जिसके सामने वह वैकुण्ठादि धामों को भी तुच्छ समझता था। पावन यमुना कूल कदम्ब की शीतल स्निग्ध छाया और ब्रजवास यही कवि की इच्छा थी।

> कहा करू वैकुण्ठहि जाय।
> जहा नहीं नंद जहा न जसोदा जहाँ न गोपी ग्वाल न गाय।
> जहाँ न जल जमुना को निर्मल और नहीं कदमन की छाय।
> परमानंद प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय॥

जिस ब्रज-भूमि से कवि की इतनी ममता थी उस प्रदेश की भाषा वहाँ की संस्कृति वहाँ का जलवायु एवं वातावरण उसको आजीवन प्रिय रहा और उसे छोड़कर वह कभी न जा सका।

परमानन्ददासजी की बहुज्ञता—

परमानन्ददासजी के काव्य का गम्भीर अध्ययन करने से हम दो तथ्यों पर पहुँचते हैं—

(१) कवि उच्चकोटि का विद्वान् और बहुज्ञ था।

(२) उसका उद्देश्य कविता न होकर भगवत्सेवा का प्रतिपादन एवं लीला रस का आस्वादन था।

कवि की बहुज्ञता का परिचय हमें उसके पदों के आधार पर मिलता है। एक ओर जहाँ वह उच्चकोटि का दार्शनिक कवि और रसिक था वहाँ दूसरी ओर वह उच्चकोटि का सगीतज्ञ भी था। इसके उपरान्त उसका ज्योतिष ज्ञान भी उसके पदों से विदित होता है। उसने ग्रह तथा गुण-कर्मों की चर्चा की है। चन्द्र-बैल व गुरुबल तिथिबल नक्षत्र वार आदि की ओर उसने संकेत किया है।[३]

कवि न्याय का भी पण्डित था। उसने अनुमान-प्रमाण की एक स्थान पर चर्चा की है।

---

१ यदि गोवर्धनो नाम वृन्दारण्ये विराजते—ग स ब श्लोक ११

२ ब्रज विपिन दों बरति—चाक बारन पुनि रचन।

वे रस पूर्ण कमंडल बा बरत बन व रस॥

३ परमानन्दसागर—पद १

दस ससि क मनुमास प्रमाण भमक बनावत सगरी।

इसी प्रकार पाक शास्त्र में भी उसकी गति थी। अनेक पदों में उसने वस्तु परिगणन शैली के आधार पर पक्वान्नों-व्यंजनों के नाम गिनाये हैं। गोवर्धनलीला वाला पद तो इसीलिये लम्बा है कि उसमें पूरे अन्नकूट तथा कुनवारे के भोग के पदार्थों का वर्णन आ गया है।[1]

इसी प्रकार कवि ने वेशभूषा चित्रकला आदि के वर्णन भी किये हैं।

ऐसे ही ये सब कवि की बहुज्ञता के परिचायक हों परन्तु उसका लक्ष्य केवल भगवद् सेवा की महत्ता और लीला रस का आस्वादन करना और उसका प्रतिपादन करना था। उसने अपने सम्पूर्ण काव्य में इसी लक्ष्य की पूर्ति की है।

कवि का पौराणिक ज्ञान उच्च कोटि का था। उसके अनेक पदों से पुराणों के विविध आख्यानों के ज्ञान का परिचय मिलता है।[2] परन्तु उसने भागवत के अतिरिक्त केवल पद्म-पुराण का ही उल्लेख किया है। इसके दो हेतु हैं। पद्म-पुराण भागवत के उपरान्त भक्ति का सर्वाधिक प्रतिपादक ग्रन्थ है। दूसरे भागवत की महत्ता पद्म-पुराण में सर्वाधिक प्रतिपादित की गई है श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ के ६ अध्यायों में जो माहात्म्य दिया हुआ है वह पद्मपुराण से ही है। अतः उसने पद्मपुराण से भक्ति तीर्थ-माहात्म्य एवं भागवत माहात्म्य श्रीमद्वल्लभाचार्य से सुना[3]। और उसी पर दृढ़ रह कर गोपी-भाव की साधना करता रहा।

---

[illegible] रत्नाकर-कुमार [illegible] [illegible]
१ रत्नाकर [illegible]
३ [illegible]

३—कृष्णदास । १५५३-१६३६ । अवस्था ८३ वर्ष शरण संवत् १५६८—१५ वर्ष
४—परमानन्ददास । १५५० १६४१ । अवस्था ९१ वर्ष शरण संवत् १५७७—२७ वर्ष
५—गोविन्द स्वामी । १५६२ १६४२ । अवस्था ८ वर्ष शरण संवत् १५९२—३ वर्ष
६—छीत स्वामी । १५७२ १६४२ । अवस्था ७ वर्ष शरण संवत् १५९८—२ वर्ष
७—चतुर्भुजदास । १५७५-१६४२ । अवस्था ६६ वर्ष शरण संवत् १५९८—११ वर्ष
८—नन्ददास । १५९०-१६४ । अवस्था ५ वर्ष शरण संवत् १६ ७—१७ वर्ष

इस प्रकार शरणकाल और लीलापरक रचना परिमाण की दृष्टि से परमानन्ददासजी का चतुर्थ स्थान एवं आयु भावानुभूति तथा काव्य सेवा की दृष्टि से वे सूर के पश्चात् आते हैं परन्तु इन कवियों की सभी क्षेत्रों में परस्पर तुलना करना कठिन होगा। प्रत्येक महानुभाव का अपना एक विशिष्ट महत्व है और उपासना की विशिष्ट रुचि है जिसमें वह पूर्ण रूप रमता है।

उदाहरणार्थ—

सूर बाल-लीला तथा मान-लीला एवं विप्रलम्भ शृंगार, के लिए प्रसिद्ध हैं—इस क्षेत्र में वे अप्रतिम हैं। मैयापाणी कृष्ण की सूक्ष्म चेष्टाओं के वर्णन से लेकर मणिखंभों में प्रतिबिम्ब को लोनी खिलाने तक के स्वतः चित्र सूर ने अपनी दिव्य प्रतिभा से प्रस्तुत किये हैं इस क्षेत्र में उनके समकक्ष दूसरा कवि ठहर नहीं पाता। इसी भांति राधा की मान-लीला में—सूर ने उनके अन्तर्गत उत्कट प्रेम की जो अभिव्यक्ति की है, वैसे कोई अन्य कवि नहीं कर सका है। मानवती राधा एवं कृष्ण के विविध भावों का जो मनोवैज्ञानिक चित्रण सूर ने उपस्थित किया है वह चिरकाल से साहित्य की अमर सम्पत्ति बना हुआ है। सरस भावुक प्रज्ञाचक्षु सूर ने—जिसने कभी गृहस्थाश्रम की झंझटों को नहीं झेला न जिसने कभी प्रणय प्रेम-परिहास-विलासों को स्थूल चक्षुओं से देखा वह दिव्य मानवती राधा के मान को इतनी सजीवता के साथ कैसे प्रस्तुत कर सका यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। निश्चय इस क्षेत्र में सूर अद्वितीय हैं। इसी प्रकार भ्रमर-गीत में गोपियों का विप्रलम्भ प्रस्तुत करने में सूर ने कोई कसर नहीं उठा रखी। वियोग-दशा की जितनी भी मार्मिक दशाएँ सम्भव हो सकीं कल्पना और अनुभूति के धनी सूर ने सभी प्रस्तुत करदी हैं। उनका विप्रलम्भ हिन्दी साहित्य का और विशेषतः ब्रज-साहित्य का जगमगाता हुआ अमिट रत्न है जिसकी दिव्य-प्रभा कभी भी मन्द न हो सकेगी।

अतएव उक्त तीनों ही भाव-क्षेत्र में सूर निश्चय ही अन्यतम मूर्द्धन्य कवि हैं परन्तु परमानन्ददासजी भी सूर की भांति अपने काव्य के कुछ विशिष्ट क्षेत्र रखते हैं। वे मुख्यतः बाल पौगण्ड और किशोर लीला के कवि हैं। उनका बाल-लीला वर्णन सूर की अपेक्षा संक्षिप्त अवश्य है और सूर की भांति वे अनन्त शिशु चेष्टाओं को प्रस्तुत भी नहीं कर सके हैं फिर भी जितना वर्णन उन्होंने किया है वह अद्वितीय है। इसी प्रकार विप्रलम्भ के भी वे सिद्ध कवि हैं।

उन्हीं के अपने शब्दों में—

'बिछुरत कृष्ण प्रेम की वेदन कछु परमानन्द जानी। (४८२)

इसी प्रकार माहात्म्य ज्ञान होने पर भक्ति की तन्मयता से वे पुकार उठते हैं।

"मन न जानी चरन अम्बुज महिमा मैं जानी।

भगवान के गोप-वेष की लीला के वे अन्यतम कवि हैं।

"परमानन्द गोप भेस लीला अवतारी।

परन्तु परमानन्ददासजी हैं मुख्य रूप से किशोरलीला के ही गायक। यौवन के वासन्तिक उन्माद भरे चिरवसन्त का सन्देश देने वाले प्रेम की अमरता एवं सौन्दर्य तथा साहचर्यजन्य-हृदय की गहरी प्रणयानुभूति को परमानन्ददासजी ने जितनी सफलता के साथ चित्रित किया है उतना हिन्दी का अन्य कवि शायद ही कर सका है। युगल लीला की भावकता में कवि स्वयं इतना भावविभोर हो गया था कि उसे बाह्य-जगत् अथवा मर्यादा का भान नहीं रहा और उसका किशोर लीलात्मक-काव्य एकदम एकान्तिक रागानुगा-भक्ति-सम्पन्न भक्तों के ही काम का रह गया है। उसने मर्यादा के सभी बन्धन विच्छिन्न कर दिये। उसे लोक-वेद की सुदृढ़ मर्यादा प्राचीर सैकत की शिथिल राशि प्रतीत हुई। जिसे उसने अपने भावात्मक पदाघातों से अनायास ही समाप्त कर दिया। सर्वस्व वार देने की निश्छल मनोवृत्ति का जो अलौकिक परिचय कवि ने अपनी चरम रूपासक्ति में दिया है—वह अद्वितीय है। युगल लीला के रसाब्धि में कवि पूर्णतया अवगाहन करके जिस आनन्द सुमेरु पर विचरण करता था वह इस पार्थिव जगत् की कल्पना से सर्वथा परे है। रस की वह गहराई अथवा आनन्द की वह अभ्र लिह ऊँचाई अनुभूति की वस्तु है शब्दों की नहीं। परमानन्ददासजी इस क्षेत्र में सभी अष्टछापी कवियों में मूर्धन्य हैं अपनी तन्मय अलौकिक रसमयता के कारण उन्हें अद्वितीय कहना अनुचित नहीं। उनकी भक्ति का रहस्य है—'कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते।"

अष्टछाप के नंददासजी अपनी रासलीला के लिये प्रसिद्ध हैं। निस्सन्देह उनकी रास लीला की शारदीय ज्योत्स्ना इतनी शीतल-इतनी मधुर इतनी दिव्य एवं आकर्षक है कि उसके सामने अन्य कवियों का रास-वर्णन फीका पड़ जाता है।

नंददासजी में द्विविध पाण्डित्य के दर्शन होते हैं—उनके पदों में लीला भक्ति-भावना सिद्धान्त-चर्चा तो है ही उधर किसी मित्र का मन रखने के लिये अनेकार्थमंजरी नाममंजरी रस मंजरी विरहमंजरी आदि पांच मंजरियों के आदि ग्रन्थों में से भी वे एक हैं। इस प्रकार रीति कालीन शृंगार प्रवृत्ति का शिलान्यास वस्तुतः उन्हीं से समझना चाहिए। इस दिशा में उन्होंने साहित्य का नया पथ-प्रदर्शन किया है। उसे हम लौकिक अनुभूति से अलौकिक भक्ति की ओर अभिमुख करने का प्रयत्न करेंगे। इसलिए नंददास जड़िया और सब गढ़िया। कहा गया है। परन्तु आध्यात्मिक तन्मयता जो परमानन्द में है उसका उनमें अभाव है। इसी प्रकार गोविन्दस्वामी के विषय में एक लेखक की निम्नांकित पंक्तियों से हम नितान्त सहमत हैं कि—

वे एक प्रतिभाशाली कलाकार, मानव-हृदय की सूक्ष्म वृत्तियों के द्रष्टा दार्शनिक भक्त और अमर कवि हैं। सभी अष्टछाप की काव्य प्रतिभा प्रायः एक सी है क्योंकि सभी को उनके शिरोमुकुट सूर से प्रकाश प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन मिलता है। अष्टछापी कवियों का एक मौलिक स्वरूप है। अतएव उनकी तुलना किसी अन्य कवि से करना एक प्रकार से अनुचित ही है। वात्सल्य के अनूठे चित्र बाल मनोवृत्तियों की अद्भुत-व्यंजना वियोग और संयोग की विविध अन्तर्वृत्तियों का हृदयस्पर्शी वर्णन तथा भक्ति की अलौकिक मनोरमता

गोविन्दस्वामी की अपनी विशेषतायें हैं—इनका काव्य लौकिक-अलौकिक दोनो दृष्टियों से उपादेय है—

संगीत की भाव-विभोरता परमानन्ददासजी जैसी गोविन्दस्वामी मे भी मिलती है। परन्तु इनमे परमानन्ददासजी की एकान्त रामानुगा भक्ति का उतना विशद प्रतिपादन नहीं मिलता।

इनके अतिरिक्त कुम्भनदास कृष्णदास छीतस्वामी एव चतुर्भुजदास आदि सभी कृष्ण-लीला गायक भक्तजन कृष्ण चरित गान के लिये हिन्दी-साहित्य मे अमर हैं। तथापि वे सूरदास परमानन्ददास एव नन्ददास के उपरान्त ही आते हैं। इन कवियो का अपना अपना क्षेत्र है। परन्तु इनका साहित्य इतना कम उपलब्ध है कि सूर और परमानन्ददासजी के काव्य मे इनके निखिल भावो तथा कथावस्तु का समावेश हो जाता है। फिर अष्टछाप के सभी कवियों मे यद्यपि प्रत्येक ने श्रीकृष्ण लीला के प्रत्येक प्रमुख प्रसग को लेकर पद रचना की है। तथापि कुछ विशेष प्रसग कुछ ही कवियो ने लिखे हैं। इसका कारण उनके व्यक्तिगत सस्कार हैं। परमानन्ददासजी ने पुष्टलीला के प्रसग को अन्य अष्टछाप के कवियो ने नाम मात्र को ही स्पर्श किया है। इस प्रकार कुम्भनदास कृष्णदास छीतस्वामी आदि ने रासलीला और भ्रमरगीत के प्रसगो को इतनी मार्मिकता अथवा महत्व के साथ नहीं लिया है जितना सूर, परमानन्द अथवा नन्ददास ने। अत हम परमानन्ददासजी की विशेषताओं पर दृष्टिपात करें तो इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं।

१—वे बालपौगण्ड और किशोर लीला के अद्वितीय गायक है।

२—विप्रलम्भ की अपेक्षा इनमे सयोग शृ गार की ही प्रधानता है।

३—वे सम्प्रदाय के कट्टर अनुयायी भागवत सीलानुसारी हैं। अत इनमें साम्प्रदायिक विशेषताएं उपलब्ध होती हैं।

४—महाप्रभु एव सुबोधिनी के वे अप्रतिम उपासक हैं। उनके पदो को यदि सुबोधिनी की विशद व्याख्या कहा जाय तो अनुचित न होगा।

५—महाप्रभुजी के अनन्य भक्त होते हुये भी वे बत्तहरण वाले भगवन्माहात्म्य को भूले नही इससे उनकी मौलिकता एव स्वत त्र रुचि का परिचय मिलता है।

६—महाप्रभुजी ने वत्सहरण वाले तीन अध्यायो को प्रक्षिप्त माना है किन्तु अष्टछाप के कवियों मे सर्वाधिक भागवत का अनुसरण करने वाले होकर भी इन्होंने इस प्रसग को ग्रहण किया है। भागवत और पद्मपुराण के श्लोक उन्होंने अपने पदो मे जब तब सर्वत्र दिये हैं।

७—सूर के उपरान्त ब्रज-सस्कृति का पूरा चित्रण यदि कहीं है तो परमानन्ददासजी मे। अष्टछाप के अन्य कवियों मे ब्रज-सस्कृति का उतना विशद चित्रण नहीं।

८—सूर के उपरान्त यदि ही काव्य परिमाण की दृष्टि से नन्ददासजी आते हो। परन्तु निर्व्याज प्रीति के वर्णन मे परमानन्ददासजी ही अगली है।

१ हंसो—१ स्तम्भ—१

६—यदि सूर बाललीला, नन्ददासजी अपनी रासपंचाध्यायी और कृष्णदास अपनी रासलीला के लिये अमर हैं तो परमानन्ददासजी अपनी बाल किशोर और युगललीला के लिये अमर और अप्रतिम हैं। वे भाव-क्षेत्र के एकान्त भावुक कवि हैं। इस के दिव्य उदाहरण इतने हैं कि पाठक किसको ले किसको छोड़े। अतः इनके लिये यही वाक्य ठीक उतरता है कि—

भरे भवन के ओर भए अदभुत ही हारे।"

अतः परमानन्दजी सूक्ष्म निरीक्षण, भगवदाश्रित भाव प्रवणता, कल्पना, अनुभूति संवेदित तथा भाषा की सजीवता, मधुरता, सरलता, सुबोधता एवं रसात्मकता के लिये ब्रज भाषा भक्ति-साहित्य में एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। उनकी काव्य शक्ति अप्रतिम और भक्ति-भावना अद्भुत है।

कृष्णार्पणमस्तु

# सहायक ग्रंथों की सूची


वेद उपनिषद् एवं पुराण साहित्य—

१—ऋग्वेद
२—यजुर्वेद
३—तैत्तरीयोपनिषद्
४—गोपालतापिनीयोपनिषद्
५—अग्निपुराण
६—श्रीमद्भागवत महापुराण
७—स्कन्द पुराण
८—गर्ग संहिता
९—नारदीय-भक्ति-सूत्र
१०—शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र
११—श्रीमद्भगवद्गीता

साम्प्रदायिक-साहित्य

१२—श्रीमद् ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्-निर्णयसागर बम्बई
१३—श्रीपति टिप्पणी-गोस्वामी विट्ठलनाथजी कृत
१४—अष्टछापामृत प्राणनाथ
१५—उज्ज्वल नीलमणि-निर्णय सागर
१६—तत्त्वदीप निबन्ध
१७—तत्त्वार्थ दीप निबन्ध-यूनियन प्रिंटिंग प्रेस अहमदाबाद
१८—नागर समुच्चय—नागरीदास
१९—भक्तमाल भक्तिसुधा-नवलकिशोर प्रेस
२०—भक्तमाल-टीका प्रियादास
२१—भक्तविनोद-कवि मियासिंह
२२—नामप्रकाश-अष्टछाप-स्मारक समिति मथुरा
२३—भक्तिवर्द्धिनी ठेलीवाला
२४—भक्तिहेतु भक्त नामावली-नागरीदास
२५—वल्लभ दिग्विजय
२६—वल्लभ-पुष्टि-प्रकाश
२७—[illegible] चतुःश्लोकी
२८—वैष्णवाह्निक पद
२९—विद्वन्मण्डनोपोद्घात—वल्लभाचार्य विद्यामन्दिर मथुरा
३०-४५—षोडश ग्रन्थ
४६—सम्प्रदाय कल्पद्रुम

८४—अष्टछाप
८५—श्री वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त
८६—श्री विट्ठलेश चरितामृत परीख
८७—वार्ता साहित्य मीमांसा-परीख
८८—अष्टसखान की वार्ता-परीख
८९—गोविन्द स्वामी—काकरौली
९ —कृष्णदास—काकरौली
९१—चौरासी वैष्णवोन् कौन काकरौली
९२—बैठक चरित्र हस्तलिखित–बजरंग पुस्तकालय
९३—निज वार्ता हस्तलिखित।
९४—दी कल्चरल हैरीटेज आफ इण्डिया बुक फिरी

## दार्शनिक

९५—ब्रह्मवाद ले रामनाथ शास्त्री
९६—पुष्टिदर्पण
९७—भक्ति और प्रपत्ति का स्वरूपगत भेद
९८—पुष्टिमार्ग—परीख

## हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ

९९—शिवसिंह सरोज
१ —गार्सादतासी—डा लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
१ १—मिश्र बन्धु विनोद
१ २—दी मोडर्न हिन्दी आफ हिन्दुस्तान—ग्रियर्सन
१ ३—अकबर दी ग्रेट मुगल एम्परर
१ ४—इम्पीरियल फरमानस्—मर्बेरी
१ ५—हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर एफ इ की
१ ६—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१ ७—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा रामकुमार वर्मा
१ —हिन्दी साहित्य की भूमिका–आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
१ ९—हिन्दी साहित्य—आचार्य हजारीप्रसाद
११ —हिन्दी भाषा और साहित्य—डा श्यामसुन्दरदास
१११—मोडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान
११२—काकरौली का इतिहास
११३ हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास—अयोध्यासिंह उपाध्याय
११४ –हिन्दी साहित्य का इतिहास—ब्रजरत्नदास
११५—हमारी हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार
११६—हिन्दी साहित्य की चर्चा—गंगाराम

## आलोचनात्मक ग्रंथ

११७—अष्टछाप परिचय—परीख और मीतल
११ —अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग १—डॉ दीनदयालु गुप्त

११९—अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग २—डा. दीनदयाल गुप्त
१२०—सूर और उनका साहित्य—डा. हरवंशलाल शर्मा
१२१—सूरदास—डा. ब्रजेश्वर वर्मा
१२२—सूर निर्णय—परीख
१२३—अष्टछाप—डा. धीरेन्द्र वर्मा
१२४—सूरदास—आचार्य शुक्ल
१२५—सूर साहित्य की भूमिका—भटनागर और त्रिपाठी
१२६—मध्यकालीन धर्म साधना—डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी
१२७—मध्यकालीन प्रेम साधना—परशुराम चतुर्वेदी
१२८—योग प्रवाह—डा. सम्पूर्णानन्द
१२९—रसेस श्रीकृष्ण—जे. जी. शाह
१३०—भारतीय साधना और सूर साहित्य—मुं. शीराम शर्मा
१३१—व्यास वाणी—सम्पादक राधाकृष्ण गोस्वामी

## काव्य ग्रन्थ एवं संगीत ग्रंथ

१३२—परमानन्दसागर—परीख जी की १७५४ वाली २ प्रतियो
१३३—परमानन्दसागर—नाथद्वारा पुस्तकालय हस्तलिखित ४ प्रतियाँ
१३४—परमानन्दसागर—सम्पादक डॉ. गोवर्धननाथ शुक्ल
१३५—कीर्तन संग्रह भाग-१
१३६—कीर्तन संग्रह भाग-२
१३७—कीर्तन संग्रह भाग-३
१३८—अष्टछाप पदावली—डा. सोमनाथ
१३९—रागकल्पद्रुम भाग-१
१४०—रागकल्पद्रुम भाग-२
१४१—रागरत्नाकर
१४२—ब्रज माधुरी सार—वियोगी हरि
१४३—संगीत रत्नाकर भाग-१
१४४—संगीत रत्नाकर भाग-२
१४५—संगीत कीर्तन पद्धति अने नित्य कीर्तन—[illegible]
१४६—ध्रुपद स्वर लिपि—हरिनारायण मुखोपाध्याय
१४७—भ्रमरगीत—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१४८—श्री बालकृष्ण लीलामृत
१४९—रास पंचाध्यायी भ्रमर गीत—नन्ददास

## कोष-व्याकरण-लक्षण ग्रन्थ

१५१—अमर कोष
१५२—वैजयन्ती कोष
१५३—सिद्धान्त कौमुदी
१५४—काव्य प्रकाश

८४—अष्टछाप
८५—श्री वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त
८६—श्री विट्ठलेश चरितामृत परीख
८७—वार्ता साहित्य मीमांसा-परीख
८८—अष्टछाप की वार्ता-परीख
८९—गोविन्द स्वामी—कांकरोली
९०—कुम्भनदास—कांकरोली
९१—चौरासी वैष्णवोम् बैठक कांकरोली
९२—बैठक चरित्र हस्तलिखित-बजरंग पुस्तकालय
९३—निज वार्ता हस्तलिखित।
९४—दी कल्चरल हैरीटेज आफ इण्डिया बुक सिरी

## दार्शनिक

९५—ब्रह्मवाद के रामनाथ शास्त्री
९६—पुष्टिदर्पण
९७—भक्ति और प्रपत्ति का स्वरूपगत भेद
९८—पुष्टिमार्ग—परीख

## हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ

९९—शिवसिंह सरोज
१ —पार्श्वनाथी—डा लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
१ १—मिश्र बन्धु विनोद
१ २—दी मोडर्न हिन्दी आफ हिन्दुस्तान—ग्रियर्सन
१ ३—अकबर दी ग्रेट मुगल एम्परर
१ ४—हम्मीरिया परमानम्—मनैरी
१ ५—हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर एफ ई की
१ ६—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१ ७—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा र
१ ८—हिन्दी साहित्य की भूमिका—आचार्य हजारीप्रसाद द्वि
१ ९—हिन्दी साहित्य—आचार्य हजारीप्रसाद
११ —हिन्दी भाषा और साहित्य—डा श्यामसुन्दरदास
१११—मोडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान
११२—कांकरौली का इतिहास
११३ हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास—अय
११४—हिन्दी साहित्य का इतिहास—ब्रजरत्नदास
११५—हमारी हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार
११६—हिन्दी साहित्य की चर्चा—पत्रावाल

## आलोचनात्मक ग्रंथ

११७—अष्टछाप परिचय—परीख और मीतल
११८—अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग १—डॉ दीनदयालु गुप्त